सिरि-भगवंतभृदबलिभडारयपणीदो

म हा वं धो

[महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]

४ चउत्थो पदेशवन्थाहियारो [चतुर्थं प्रदेशवन्थाधिकार] पुस्तक ६ हिन्तीमाणात्रवाद सहित



—सम्पादक— पण्डित फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम भावति) ११०० प्रति (आश्विम बीर नि० सं० २४८४

संकरका ११५७

मूल्य ११ रु०

स्व॰ पुण्यश्लोका माता मृतिदेवीको पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहु शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय झानपीठ मूर्तिदेवी जैन-यन्थमाला



इस प्रम्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपअंग, हिम्दो, कस्त्र, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपल्यक्ष आगमिक, दार्यनिक, पौराणिक, साहित्यक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और वयासम्भव अनुवाद आदिके साथ मकारन होगा। जैन मण्डारोंको सूचियाँ, रिराललेक-स्माह, विशेष्ट विहालोंके ज्यावयन-मण्य और लोकहित्यकारों जैनाहित्य प्रमाथ में में।

प्रत्यमाना सम्पादक डॉ॰ हीरालाल जैन, एम॰ ए॰, डी॰ निट्॰ डॉ॰ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एस॰ ए॰, डी॰ निट्॰

प्रकाशक अयोष्यात्रसाद गोयलीय मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाञ्चण्य होड, वाराणसी

फाल्गुन कृष्ण ६ वीर नि०२४७०

सर्वाधिकार सुरक्तित

ं विक्रम सं०२००० १८ फरवरी सम १६४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी



म्बर्गीय मनिदेवी, मातेदवरी साह शान्तिप्रसाद जैन

ANAMAPITHA MURTIDEVI, JAIN GRANTHMALA PRAKRIT GRANTHA NO. B

MAHĀBANDHO

[MAHĀDHAVALĀ SIDDHĀNTA SHĀSTRA]

Chautho Lades Bandhahiyaro

Vol. IV

PRADESH BANDHÄDHIKÄRA

WITH

HINDI TRANSLATION



Editor

Pandit, PHOOL CHANDRA Siddhant Shastry



Published by

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition }

ASHVIN VIR SAMVAT 2484 VIKRAMA SAMVAT 2014 OCT. 1957 Price Rs. 11/-

BHÁRATÍYA JÑÁNA-PÍTHA Kashi

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRÎ MURTÎ DEVÎ

BHĀRATĪŸA JNĀNA-PĪTHA MŪRTI DEVI JAIN GRANTHAMĀLĀ

PRĀKRIT GRANTHA NO. 8

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC PHILOSOPHICAL,
PAURĀNIC, LIDERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI,
KANNADA AND IAMIL ETC, WĪL BE PUBLISHED IN
THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATION IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS. STUDIES OF COMPLIENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors

Dr. Hiralal Jain M. A., D Litt Dr. A. N Upadhye M. A., D Litt. Publisher

Ayodhya Prasad Gogaliya Seoy., BHARATIYA JNANAPITHA DURGAKUND ROAD, YARANASI

Founded on Phalguna Krishna 9. Vira Sam. 2470

All Rights Reserved.

Vikrama Samavat 2000

प्राथमिक

हर्षकी बात है कि गत वर्ष महाबन्धकी पाँचवीं जिल्ह प्रकाशित होनेके प्रमात् क्यामग एक हो वर्षेमें यह कुठी जिल्ह प्रकाशित हो रही है। अब इसके प्रभात् महाबन्धको सम्पूर्ण होनेमें केवल एक और जिल्हरको कमी रही है। उसका भी मुझल-कार्य चाल् है और आशा की जा सकती है कि वह भी शीन्न पूर्ण होकर प्रकाशमें आ जायगी। जिस तपरताके साथ वह जैन-साहित्यका अत्यन्त महत्वपूर्ण और महान् कार्य समझ हो रहा है, उसके लिए प्रमाक विदान सम्पादक एं० कुरुक्यकृत्री सिद्धान्तराक्षी तथा भारतीय जानपांठके अधिकागि क कार्यकर्त हमारे व समस्य जिज्ञासु संसारक धन्यवाहके पात्र हैं।

सहावन्धमें वर्णित प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारके कर्मकर्थोमेंसे प्रथम तीन का वर्णन पूर्व प्रकृतित पाँच जिल्होंमें समाग्र हो चुका है। प्रस्तुत जिल्हमें प्रदेशकन्थ अधिकारका एक भाग समिमलित है। शेष भाग अगर्जी जिल्हमें पूर्व होकर इस प्रन्थराजको समाग्रि हो जावगी।

कमंतिहान्त कैन दर्शनकी प्रधान वस्तु है। वह उसका प्राण कहा जाय तो अखुक्ति न होगी। इस विषयका सर्वाहरूए सुम्पवस्थित विस्तारते वर्णन जैसा इन प्रम्योमें पाया जाता है, वैसा अन्यन कहीं नहीं। इसी गीरवके अनुरूप इन प्रम्योंकी समाजर्मे और धर्मावतनोंमें प्रतिष्ठा होगी ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

इन प्रम्योंका स्वाध्याय सरक नहीं है। विषयको गृहताके साथ-साथ पाठ-एचना भी अपसी विकत्याता रखती है। पाठक देखों कि अधिकांत स्थालेंदर पूरा पाठ न देकर प्रतीक प्रवर्शके आगे विशिव्या रख दी गई हैं। यह इसिक्य करना पदा है कि नहीं तो प्रम्थक विस्तार द्विरक्तियों द्वारा बहुत कर जाता पाठकोंकी सुविधा और प्रम्थके सीष्ठकों दिश्ति यदि पाठ पूरे करके ही प्रकाशित होते तो बहुत अच्छा था। तथापि सूक पाठकी इस कमीकी पूर्ति विद्वान सम्यादकने अपने अनुवाद द्वारा कर दी है। आशा है कि इस अनुवाद की सहायतासे कमीस्वाम्यसे परिस्थित पाठकोंको विषयके समस्त्रेमें तथा यदि वे बाहें तो पूरके पाठांका क्षस पाठ अनुमान करनेमें विशेष कठिनाई न होगी। सम्यादकने जो विषय-परिचय आदिमें है दिया है उससे प्रम्थको इस्तामककवन समस्त्रेमें सुविधा होगी।

अन्यको सन्यादन-सामग्री वहीं रही है जो पृष्ठे भागोंमें और सन्यादन-शैकी बादि भी तद्वुलार हो। जैका 'सम्यादकीय' में कहा गया है ताइपत्र प्रतिका पाठ तो सम्यादक समुख रहा है, किन्तु सृक्ष तादपत्रींका पाठ नहीं। संकेत स्पष्ट है कि ताइपत्र प्रतिका पाठ भी ताइपत्रोंके पाठके सोकहो काते अनुकूक नहीं है। उससे जो उस मुक्त मिले जानकुककर पाठ-भेद किये गये हैं, या जो प्रमादन स्वकत हो गये हैं उनका संकेत व परिमार्जन वहाँ नहीं किया गया। इस प्रकार ताइपत्र प्रतिके एक बार पूरे पाठके सिकानको आवस्यकता तेण है। इस आया। करते हैं कि इस बुटिको सूर्विका आयोजन ब्याठे भागके समास होते ही किया जायगा, जिससे कि इस प्रकारानमें पूर्ण प्रामाणकता आ जाय और इन ताइपत्रोंकी हावद-रचनाकी दृष्टिके हमारी चिन्ता सिट जाय।

इन बातोंके सम्बन्धमें हमारा जो मत है उसे हम अगले भागके वक्तव्यमें विस्तारसे व्यक्त करेंगे ।

हीरालाल जैन आ० ने० उपाध्ये मन्थमाला सम्पादक

सम्पादकीय

प्रदेशकन्य पट्सण्डागमके कुठ सण्डका चौचा भाग है। इसका सम्पादन व अनुवाद विकास प्रकाशन योग्य बनानेमें क्लामग एक वर्ष कता है। इसके सम्पादनके समय हमारे सामने दो प्रवियाँ रही हैं—एक मेंसकार्पा और तुसरी ताम्रवन रही है उसके सम्पादन कार्यम प्रविक्त हमा हमा नहीं प्राप्त कर सके। फिल भी वो भी सामग्री इसारे सामने रही है उसके सम्पादन कार्यम प्रवीह सहायता मिली है कौर बहुत कुछ स्वावित अंगोंकी पूर्ति एक दूसरी प्रविक्त होती गई है। प्रकाशित हुए मूळ मन्यके देखनेसे विदित्त होगा कि हतना सब करनेपर भी बहुत स्थव ऐसे भी मिलीं जहाँ पाठको जोदनेकी आवश्यकता पदी है। इस भागमें ऐसे होटे-वई पाठ जो कररसे जोड़े गये हैं सीसे अधिक हैं। इसने इस पाठोंको जोड़ते समय गुवद रूपसे स्वाभावके आधारसे विचार करहे ही उन्हें जोड़ा है। पर वे जोड़े हुए अकम दिखकाई हैं इसके किए इसने उन्हें [] चलुकोण मैक्टेस्र अकसरे दिखका दिया है।

यों तो अनुभागकणके प्रारम्भिक व सम्बक्षे अंशके एक-दो तावपत्र नह हो गये हैं। पर प्रदेशकण्यमें गष्ट हुए तावपत्रोक्षी वह सात्रा कफ्षी वह गाँह है। इन तावपत्रोंके नह होनेसे कई प्रक्षणण एँ स्वक्ति हो गाई हैं जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी बुटित हुए वहें अंशोंकों यथावत् पूर्ति नहीं को वा सकती है, इस्तिल्प हमने उन्हें वैसा हो बोद दिया है। हो वहाँ पढ़ादि शब्द या वावयांग स्वक्ति हुआ है उसकी अनुसन्धानपूर्वक पूर्ति अवश्य कर दो गाई है और टिप्पणॉर्स बुटित अंशको दिख्ला दिया गया है। इस सागर्से बुटित हुए बढ़े अंशोंके लिए देखिए एड धन, नर, १५४ भीर १३२।

महायन्यके प्रदेशकथ प्रकारणमें ऐसे तीन स्थल सिलते हैं जहाँ प्रवाइज्जत और अन्य उपदेशक। स्पष्टरूपसे मूलमें निर्देश किया गया है। प्रथम उक्लेख भुजगार अनुयोगद्वारके अन्तर्गत मूल प्रकृतियोंकी अपेका एक जीवकी अपेका काल्यरूपणामें किया गया है। वहाँ कहा गया है—

'अवद्विः पवाह्इजंतेण उवदेसेण ज॰ ए॰, उ॰ एक्कारससमयं। अण्णेण पुण उवदेसेण ज॰ ए॰, उ॰ पण्णारससम॰।'

सात कर्मोंके अवस्थितपरका पचाइजंत उपरेशके अनुसार जयम्य काल एक समय है और उन्ह्रष्ट काल म्यारह समय है। परन्तु अन्य उपरेशके अनुसार जवन्य काल एक समय है और उन्ह्रष्ट काल पन्नह समय है।

दूसरा उल्लेख उत्तर प्रकृतियोंकी भपेषा उल्कृष्ट सन्निकर्प प्रकालके समास होनेपर नाना प्रकृति-बन्धके सन्निकर्पके साधनके लिए जो निदर्शन पद दिया है उसके प्रसंगसे आया है। बहाँ लिखा है—

पवार्जित उपरेशके अनुसार मूळ्यकृति विशेषकी भरेषा कर्मका भवारकाळ स्तोक है। पिण्डमकृति-विशेषकी अपेषा कर्मका अवहारकाळ असंस्थातगुणा है। उत्तरमकृति विशेषकी अपेषा कर्मका अवहारकाळ असंस्थातगुणा है।...उपरेशके अनुसार स्टाक्तिविशेष आविक्ति वर्गस्टक्का असंस्थातवां सामप्रमाण है। पिण्डमकृतिविशेष एक्पोपमके वर्गसूळके असंस्थातवें भागप्रमाण है। उत्तरमकृतिविशेष पर्यापमके असंस्थातवं सामप्रमाण है। तीसरा उल्लेस भुजगारियमिक्ट अन्तर्गत उत्तरप्रकृतियाँका एक जीवकी अपेका कालका निर्देश करते हुए किया गया है यह उल्लेस प्रथम उल्लेसके समान है, इसलिए यहाँ उसका अलगते निर्देश नहीं किया है।

पूर्व भागोंके समान हमें इस भागको स्ववस्थित करनेमें सहारनपुरनिवासी बन्धुहप श्रीपुक एं॰ रतनचन्द्रजी मुक्तार और श्रीपुक नेमिचन्द्रजी बकीलका सहयोग मिलता रहा है, इसलिए हम उनके आभागी हैं।

कर्मसाहित्यका विषय बहुत गहन और अनेक भागों व उपभागोंमें बटा हुआ है। वर्तमान कालमें उसके गहन अध्ययन-अध्यापनको व्यवस्था एक प्रकारते विश्वित्य हो गई है, हस्तीलए सहावस्थके सम्पादन, संशोधन और अनुवादनें सम्मव है इससे अनेक बुटियों रह गई हों। हमें आशा है पाठक उनके लिए हमें बसा करेंगे। और जहाँ कहीं कोई बुटि उनके ध्यानमें आवे उसकी सुचना हमें अवस्य ही देनेकी हुए। करेंगे।

फुलचन्द्र सि० शा०

विषय-परिचय

यह सहाबन्धका अन्तिस भाग प्रदेशकन्य है। इसमें प्रत्येक समयमें बन्धको प्राप्त होनेवाले मूल और उत्तर कमोंके प्रदेशोंके आश्रयसे मूल प्रकृतिप्रदेशकन्य और उत्तरप्रकृतिप्रदेशकन्यका विचार किया गया है। किन्तु दोनोंके विचार करनेका क्रम एक होनेसे यहाँ एक साथ प्रन्यके हार्दको स्पष्ट किया जाता है।

भागाभागस्सुद्राह्वार—मूल्मं सर्व प्रथम बाद कर्मों का बण्य होते समय किस कर्मको कर्मपरमाणुमंका कितना भाग मिलता है इसका विचार करते हुए बतलाया गया है कि आयुक्संको सबसे स्तोक भाग मिलता है। उससे नामकरण में भी गोजकर्मको विचेष अधिक भाग मिलता है। उससे नामकरण, दर्गनावरण और अपत्याद कर्मको विचेष अधिक भाग मिलता है। इसका कारण वचा है इस बातका निर्देश करते हुए वहाँ लिला है कि आयुक्संका स्थितिवन्य सब्दल है, इसका कारण वचा है इस बातका निर्देश करते हुए वहाँ लिला है कि अयुक्संका स्थितिवन्य सब्दल है, इसकिए उसे सबसे योचा माग मिलता है। वेदगंगक सिवा शेष कर्मों किसकी स्थिति दांच है उसे बहुत भाग मिलता है कि येदा विचेष विचयम यह क्ला है कि वह वाचके निर्देश करते हुए वह लिला है कि यदि वेदगंग नहीं तो सब कर्मे जीवको सुक्ष और दुःख उत्पक्त करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिए उसे सबसे अधिक माग मिलता है। देवाजब्द कर्म मुक्ति की चूलिंमें सकारण बटवारेका यहाँ कर दिख्लावा गया है। सात प्रकारके और वह प्रकारके कर्मोंका बन्ध होते ससम्ब मी बटवारेका यहाँ कर जातना चाहिए। सात्र प्रवाही वस कर्मका बन्ध नहीं होता उसे भाग नहीं मिलता है इतनी विधेषता है।

उत्तर प्रकृतियोंमें कर्म परमाणुओंका बटवारा करते समय बतलाया है कि आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध होते समय जो ज्ञानावरणीय कर्मको एक भाग मिलता है वह चार भागोंमें विभक्त होकर आभिनि-बोधिकज्ञानावरण, अतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण इन चार कर्मीको प्राप्त होता है । यहाँ जो सर्वधाति प्रदेशाम है वह भी इसी कमसे बट जाता है । केवलकानावरण सर्वधाति प्रकृति है, इसलिए उसे केवल सर्वधाति इच्य ही मिलता है किन्त देशधाति प्रकृतियोंको दोनों प्रकारका द्रव्य मिलता है। दर्शनावरणमें तीन देशघाति और छह सर्वधाति प्रकृतियाँ हैं। इसलिए देशघाति द्रव्य वेशघातियोंको और सर्वधाति इय्य देशघाति और सर्वधाति दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंको मिलता है । यहाँ जिनका बन्ध होता है उनमें यह बरवारा होता है। वेदनीय कर्ममें जब जिसका बन्ध होता है तब उसे ही समस्त भाग मिलता है। सोहतीय कर्मको जो डेशधाति भाग मिलता है उसके डो भाग हो जाते हैं---एक कवायवेदनीयका और उसरा नोकवायवेदनीयका। इनमेंसे कवायवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें और नोकवायवेदनीयका द्रव्य बन्धके अनुसार पाँच भागोंमें विभक्त हो जाता है। तथा मोहनीय कर्मको जो सर्वेषाति त्रव्य मिलता है उनमेंसे एक भाग चार संज्वलन क्यायोंमें और इसरा एक भाग बारह क्यायोंमें और मिथ्यात्वमें विभक्त हो जाता है। अपने बन्ध समयमें आय कर्मको जो भाग मिलता है वह जिस भायका बन्ध होता है उसीका होता है। नामकर्मको जो भाग मिसता है उसके बन्धके अनुसार गति. जाति. शरीर आदि रूपसे अलग अलग विसाग हो जाते हैं । गोत्र कमेर्से जिसका बन्ध होता है उसे ही समान भाग मिलता है। तथा अन्तराय कर्मको मिलनेवाला उच्य पाँच भागोंमें बट जाता है। इस प्रकार १० महाबन्ध

यह उकर प्रकृतियों मागाभाग जानना वाहिए। रवेतान्वर कर्मग्रकृतिकी वृर्णमं मां इसका विचार किया गया है पर बहाँ सर्ववाति इस्पका बटवारा सर्ववाति और देशपाति दोनों प्रकारकों म्रकृतिवाँमें होता है इसका उक्लेक देक्नमें नहीं आया। वहाँ दो बातें लास रुपसे प्यान देने योग हैं—एक तो यह कि बन्धको प्राप्त होनेवाले इस्पमें सर्ववाति इस्प अनन्तर्य भागमगण और देशपाति इस्प अनन्त बहुभाग प्रमाण होता है। दूसरी यह कि चीबीस अनुयोगदारोंके अन्तर्में अवस्वहृत्व अनुयोग हारमें ज्ञानावरणादि की उक्तर प्रकृतियोंमें मिकनेवाले इस्पका अवस्वहृत्व बनकाया है, इसलिए उसे प्यानमें स्वकर इस्पका बटवारा करना चाहिए।

चौबीस अनुयोगद्वार

स्थानप्ररूपणा—इस अनुयोगङ्गारु दो भेद हैं—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशवन्यप्ररूपणा। । योगस्थानप्ररूपणाम पहले उन्ह्रष्ट और जबन्य योगस्थानींका चौदह जीवस्सासीके आध्यये अरुपबृद्ध व प्रदेशजरुपबृद्धका विचार करके दश अनुयोगङ्गारीके आध्यक्षे योगस्थानींका विरोण विचार क्या है। वे दश अनुयोगङ्गार वे हैं—अविसागशिन्वेद्रप्ररूपणा, वार्गणाप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिया, परम्परोपनिया, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणाऔर अरुपबृहुत्व।

वांग-विरोपके कारण मन, वचन और कायके निमिन्नसे आस्मायदेशोंमें वो च्यालता उत्पन्न होता है है उसे पोग कहते हैं। वस्ति सर्व आस्मायदेशोंमें पूर स्थान कहीं होती किन्तु आस्माके वो मदेश शुक्तकरमें व्यापारतत होते हैं उनमें वह सर्वाधिक पाई वाती है और उनसे कमे बुए मदेशोंमें उन्न कम पाई जाती है। हसामक वस्ति चंत्रकार तो सर्व आस्मायदेशोंमें पाई बाती है पर वह उन्हरोंने उन्न कम पाई जाती है। हसामका वस्ति च स्वत्रकार तो सर्व आस्मायदेशोंमें पाई बाती है पर वह उन्हरोंन होती बाती है, हस्तिष्ठ प् वीवके सम मदेशोंमें योगका तारतस्य स्थापित होकर एक योगस्थान बनता है। उदाहरणार्व किसी मतुष्य के शुक्तकर एक हामसे पानीसे मरी हुई बालडोंने उटानेपर उस हामके आस्मायदेशोंमें विशेष विचाय होता है। ह । वहाँ हामके सिवा शतिरके स्थापन कारतम्य स्थापता आस्मायदेश मी यच्चिए उस कार्सेमें बोगहान दे रहे हैं पर उनमें वह खिचाव उपरोक्तर होन-हीन होता जाता है, इस्तिष्ठ कारकेस्य परिवाद हामके आस्मायदेशोंसे जितनी योगशक्ति अनुभव की जाती है उतनी अन्यत्र नहीं । यही कारण है कि आत्माके सब प्रदेशोंमें योग-शक्तिकी हीताधिकता उत्पन्न होकर वह सब मिलकर एक स्थान बनाती है । यहाँ योगस्थानप्ररूपणामें दस अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे मुख्यरूपसे इसी बातका विचार किया गया है । पहले अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणा में प्रत्येक आत्मप्रदेशमें योगशक्तिके कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं यह बतलाया गया है। वर्गणाप्ररूपणा में कितने अविभागप्रतिच्छेडोंकी एक वर्गणा होती है यह बतलाया गया है। स्पर्धकप्ररूपणामें कितनी वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है यह बतलाया गया है। अन्तरम्ररूपणामें एक स्पर्धककी भन्तिम वर्गणासे दसरे स्पर्धकर्का प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेचा कितना अन्तर होता है इस बातका निर्देश किया गया है। स्था प्रक्रपणामें कितने स्पर्धक मिलकर एक योगस्थान बनता है यह बतलाया गया है। भनन्तरोपनियामें जयन्य योगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट योगस्थान तक प्रत्येक योगस्थानमें कितने स्पर्धक बढते जाते हैं यह बतलाया गया है । परस्परोपनिधार्से जघन्य योगस्थानके स्पर्धकोंसे कितने योगस्थान जानेपर वे दने होते जाते हैं यह बतलाया गया है। समयप्ररूपणामें उत्कृष्टरूपसे चार, पाँच, छुह, सात, आठ, सात, छह. पाँच. चार. तीन और दो समय तक अवस्थित रहनेवाले कितने बोगस्थान है इसका विचार किया गया है। बढिन रूपणामें लगातार कीन बढि या हानि कितने कालतक हो सकता है इस बातका विचार किया गया है। अल्पबहत्वप्ररूपणामें अलग्-अलग् कालतक अवस्थित रहनेवाले योगस्थानोंका अस्पबहरव दिखलाया गया है। इन दस अनुयोगद्वारोंका विशेष खलासा मुखके अनुवादमें विशेषार्थ देकर किया है. इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए । स्थानप्ररूपणाका इसरा भेद प्रदेशवस्थानप्ररूपणा है । इसमें यह बतलाया गया है कि जो योगस्थान है वे ही प्रदेशबन्धस्थान हैं। किन्त जानावरणाटि प्रकृति विशेषके कारण वे विशेष अधिक हैं।

सर्व-नोसर्वप्रदेशवन्ध-- जानावरणादि कर्मोंडा प्रदेशवन्ध होने पर वह सर्वबन्धकप है या नोसर्वयन्धकप है इसका विचार इन रोनों अनुयोगद्वारों में किया गया है। जब सब प्रदेशवन्ध होने पर उसे सर्वबन्ध कहते हैं और जहाँ उससे न्यून प्रदेशवन्ध होता है उसे नोसर्वबन्ध कहते हैं। मात्र यह ओध और आदेशसे दो प्रकारका है, इसलिए मुख और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेचा जहाँ जो सम्मव हो वहाँ उसे चटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-अञ्चल्कृष्टप्रदेशबन्ध-जानावरणादिका प्रदेशबन्ध होने पर वह उल्कृष्टकर है या अनुत्कृष्ट-रूप हसका विचार हन दो अनुयोगदारोंमें किया गवा है। जहाँ सुरू और उत्तर प्रकृतियांका ओघ और आदेशसे यपासम्भव उल्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है वहाँ उल्कृष्ट प्रदेशबन्ध कहळाता है और मूळ व उत्तर प्रकृतियांका इससे न्यून प्रदेशबन्ध होता है वह अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध कहळाता है।

जामन्य-अजाधन्यप्रदेशबन्ध —जानावरणादि मुख्य व जलर प्रकृतियोंका प्रदेशबन्ध होने पर वह जन्म है या अजाधन्य हरका विचार इन दो अनुयोगद्वारोंमें क्रिया गया है। बन्धके समय ओष और अदिग्रेसे यथासम्भव सबसे कम प्रदेशबन्ध होने पर वह जधन्य प्रदेशबन्ध कहलाता है और उससे अधिक प्रदेशबन्ध होने पर वह अजाबन्य प्रदेशबन्ध कहलाता है।

सावि-अनावि-भुव-अभुवप्रदेश्यम्भ — हन वार्ते अनुयोगदाराँमें जो उरकृष्ट श्रादि वार प्रकारका प्रदेशक्य बरकाया गया है वह सावि शादि किस कप है इस बातका विचार किया गया है। मूछ व उत्तर प्रकृतियाँकी अपेषा इसका विशेष बुकासा हमने विशेषार्थेक द्वारा उस प्रकृतक समय किया ही है, इसकिए वहींसे आन केना चाहिए। संबेपसे उनकी संतिष्ट इस प्रकार है—

कर्म	বক্ত	भनुकृष्ट	वधन्य	अजबन्य
ज्ञानावरण मूछ व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अभुव	सादि आदि चार	सादि-अश्रुव	सादि-अधुव
दर्शनावरण मूरू व खुद्द उत्तर प्रकृतियाँ	सावि-अभुव	सादि आदि चार	सादि-अभुव	सादि-अधुव
स्यानगृद्धि आदि तीन	सादि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अञ्जुव
वेदनीय मूख	सादि-अधुव	सादि आदि चार	सादि-अधुव	सादि-अधुव
उत्तर प्रकृतियाँ	सावि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अध्रुव	सादि-अधुव
मोहनीय मूळ व मिष्यास्त, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोक्षाय	सादि-अधुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रु व
बारह क्याय, भव और जुरुँद्सा	सादि-अधुव	सादि भादि चार	सादि-अधुव	सादि-अधुव
आयु मूरू व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अधुव	सादि-अध्रुव	सादि-अधुव	सादि-अधुव
नामकर्म मुख	सादि-अधुव	सादि आदि चार	सादि-अधुव	सादि-अध्रुव
नामकर्म की सब उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अध्रुव
गोत्रकर्म मूछ	सादि-अध्रव	सादि बादि चार	सादि-अधुव	सादि-अध्युव
गोत्रकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अधुव	सादि-अधुव	सादि-अभुव	सादि-अधुव
अन्तरायकर्म मूल व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अधुव	सादि आदि चार	सादि-अधुव	सादि-अध्रुष

स्वामित्वप्रकरणा—इलमें भोव भीर भारेशसे मूल व उत्तर प्रकृतिसँके उत्कृष्ट भीर जवम्ब प्रदेशकथके स्वामीका निर्देश किया गया है। यहाँ इसे संदा्ध देकर विश्वकावा जाता है—

विषय-परिचय मूल प्रकृतियोंका ओप्रसे उत्कृष्ट व जघन्य स्वामित्व

मूल प्रकृतियाँ	उत्कृष्ट स्वामित्व	जधन्य स्वामित्व
ब्रह मूल प्रकृ ०	कृह कर्मोंका बन्ध करनेवासा उपशामक व चपक	प्रथम समयमें तज्ञवस्य हुणा जधन्य योगसे युक्त और जबन्य प्रदेशवस्य करनेवासा भी कोई सूच्म निगोद अपर्याप्त
मोहनीय कमें	सात कर्मोंका बन्धक, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशक्न्य करनेवाला कोई सम्यन्दिए व मिध्यादिष्ट संज्ञी पक्षेन्द्रिज्ञ पर्याक्ष	"
आयु कर्म	आट कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगवाला कोई सम्बग्- दृष्टि व सिप्यादा्टि वारों गतिका संज्ञी पर्याप्त जीव ।	धुल्लक भवके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें विद्यमान, जवन्य योगले बुक्त और जवन्य प्रदेशवन्य करनेवाला कोई सूध्म निगीद अप- वांस जीव

उत्तर प्रकृतियों में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उपशासक और चपक सच्मसाम्पराय जीव: निद्वा. प्रचला ब्रह नोक्षाय और तीर्थकर प्रकृतिका सम्यग्द्दष्टि जीवः अप्रत्याख्यानावरणचतष्कका असंयतसम्यग्द्दष्टि जीव. प्रत्याख्यानावरणचतष्कका देशसंयत जीव. संख्वलनचतुष्क और पुरुषवेदका उपशासक और चपक अनिवृत्तिकरण जीव. असातावेदनीय. मनुष्याय, देवाय, देवगति, वैक्रिविकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आह्रोपाह, वक्रवंभनाराच-संहमन, प्रशस्त विहायोगति, सभग, सस्वर और आदेयका सम्बन्दि और मिथ्यादि संज्ञी पर्वाप्त जीव: आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत जीव सथा शेष प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्र जीव उत्कृष्ट प्रदेशक्ष्य करता है । तथा नरकाय, देवाय और नरकगतिद्विकका असंज्ञी पञ्चीन्द्रय जीव: देवगतिचतच्छ और तीर्थक्रर प्रकृतिका असंयत्तसम्यग्द्रष्टि जीव: आहारकद्विकका अप्रमत्तसंवत जीव और शेप प्रकृतियांका तीन मोडॉर्म से प्रथम मोदेमें स्थित सुपम निगोद अपर्याप्त जीव जवन्य प्रदेशबन्ध करता है। मात्र तिर्यक्काव और मनुष्यायुका जधन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके समय कराना चाहिए । यहाँ यह सामान्यक्ष्पसे स्वामित्वका निर्देश किया है। जो अन्य विशेषताएँ हैं वे मूलसे जान लेनी चाहिए। मात्र जो उत्क्रष्ट योगसे यक्त है. और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके साथ कमसे कम प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी होता है। तथा जो जवस्य बोगसे यक्त है और जबस्य प्रदेशबस्थके साथ अधिकारे अधिक प्रकृतिसाँका बन्य कर रहा है वह जवन्य प्रदेशबन्यका स्वामी होता है। प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट और अधन्य प्रदेश-बन्धके समय इतनी विशेषता अवस्य जान छेनी चाहिए ।

कालप्रकर्मणा—इस अनुयोगद्वारमें ओष व आदेशसे मूख व उत्तर प्रकृतियोंके जवन्य और उत्कृष्ट प्रदेशवरथके काळका विचार किया गया है। उदाहरणार्थं ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशकच्य दशमें गुणस्थानमें होता है और वहाँ उत्कृष्ट योगका जवन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ हो समय है, इसकिए इसका १४ महावन्ध

जघन्य काल एक समय और उन्कष्ट काल दो समय कहा है। तथा इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धके तीन भक्त प्राप्त होते हैं --अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । अनादि-अनन्त भक्त अभव्योंके होता है, क्योंकि उनके द्वितीयादि गणस्थानींकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे वे सर्वदा अनुक्रष्ट प्रदेशबन्ध करते रहते हैं। अनादि सान्त भड़ जो केवल चपकश्रेणीपर आरोहण करके मोच जाते हैं उनके सम्भव है. क्योंकि उनके भनादिसे अनुस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध होने पर भी दसवें गुणस्थानमें उसका अन्त देखा जाता है । और साहि सान्त भक्न ऐसे जीवोंके होता है जिन्होंने उपशमश्रीणपर आरोहण करके अस्कृष्ट प्रदेशबन्ध किया है। यहाँ इस सादि-सान्त भड़का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्थपुद्रशल परिवर्तन प्रमाण है। जरकर प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, इसलिए तो यहाँ अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जधन्यकाल एक समय कहा है और उपशमश्रीण के आरोहणका एक जीवकी अपेका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुदराल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए यहाँ अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। यह सो जानावरणके उत्कर और अनत्कष्ट प्रदेशबन्धके कालका विचार है। इसके जघन्य और अजग्रन्य प्रदेशबन्धके कालका विचार इसप्रकार है-सच्म निगोद अपर्याप जीव भवके प्रथम समयमें इसका जघन्य प्रदेशबन्य करता है. इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्यकाल एक समय कम क्षुललकभवप्रहण प्रमाण है. क्योंकि उक्त जीव प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्य करके पर्यायके अन्ततक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता रहा और मरकर पुनः सुक्षम निगोद अपर्याप्त होकर भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध करने लगा यह सम्भव है। और इस अजयन्य प्रदेशबन्धका उत्कष्ट काल दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम तो असंख्यात लोक-प्रमाण कहा है सो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कोई जीव इतने कालतक सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त पर्योग्रमें न जाकर निरस्तर अज्ञावस्य प्रदेशवस्य करता रहे यह सरभव है। इसरे यह काल जराश्रीणेके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है सो यह योगस्थानोंकी मह्यतासे जानना चाहिए। ताल्पर्य यह है कि प्रथम उत्कर कालमें विवक्तित पर्यायके अन्तरकी मख्यता है और इसरे उत्कर कालमें विवक्तित योग-स्थानके अन्तरकी मुख्यता है। इस प्रकार यहाँ ओधसे ज्ञानावरणके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जयन्य और अज-क्षम्य प्रदेशवन्धके कालका विचार किया । अन्य मूल व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, जघन्य और अजधन्य प्रदेशबन्धके कालका विचार ओव और आदेशसे इसी प्रकार मलके अनुसार कर लेना चाहिए ।

अन्तरप्रक्षणा—इस अनुयोगद्वारमें भोय और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियों के उल्लादिक अन्तरास्क्रणा—इस अनुयोगद्वारमें भोय और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियों के उल्लादिक अन्तरासे भी सम्भव है और कुछ कम अपेयुद्दारण एरिवर्तन कालके अभ्यत्तर भो सम्भव है इसिल्य इस उल्लाद प्रदेशकन्यका अक्या क्या के स्वाचित्र का अपेयुद्दारण परिवर्तन कालके अभ्यत्तर भा सम्भव है इसिल्य इस उल्लाह प्रदेशकन्यका अक्या प्रदेशकन्यका अक्या अन्तर एक समय का है और उपयान्तमोहमें अन्तर्मुंहर्त कालक ज्ञानकरणका क्या नहीं होता, इसिल्य इसके अनुत्तर प्रदेशकन्यका अक्या अन्तर एक समय कहा है और उपयान्तमोहमें अन्तर्मुंहर्त कहा है। वहीं ताहमिल्य हो यह यह हो गये हैं। इस कारण तिर्पक्रमातिक अन्तरप्रक्रणाका अन्तरभा माने के अप अन्तरप्रक्रणाका बहुआग, सिन्वर्क्ष, नाना जीवोंकों अर्पक्षा प्रकृतिक्य, मानाभा, परिस्माण, क्षेत्र, स्वरंगन और काल्य वे अनुयोगद्वार वहीं उरक्ष्य होते। परन्तु उत्तर प्रकृतियोंके उत्तरह भीर ज्ञान्य प्रदेशकन्यके सिन्वर्क अन्तर काल, सिन्वर्क कीर ज्ञान अन्तर्भक्ष अनुयोगद्वार कार्य उपलब्ध होते। परन्तु उत्तर प्रकृतियोंके उत्तरह और ज्ञान्य प्रदेशकन्यके सिन्वर्क कार्य काल, सिन्वर्क कीर वाल वे अनुयोगद्वार व्यावत् उपलब्ध होते हैं। इसिल्य यहाँ उत्त अनुयोगद्वार व्यावत् उपलब्ध होते हैं। इसिल्य यहाँ उत्त अनुयोगद्वार व्यावत् उपलब्ध होते हैं। इसिल्य यहाँ उत्त अनुयोगद्वारांकां दिशाका ज्ञान कार्यन करिले लिए उत्तर अनुयोगद्वार व्यावत् उपलब्ध होते हैं। इसिल्य यहाँ उत्तर अनुयोगद्वारांकां दिश्चर प्रवाव हात कार्यन के ति उत्तर अनुयोगद्वार व्यावत् उपलब्ध होते हैं। इसिल्य यहाँ उत्तर अनुयोगद्वार व्यावत् इसिल्य व्यावत्व होते अनुयोगद्वार व्यावत्व होते हिंस सिल्य वित्य होते हैं।

सन्निकर्षे मक्पणा—सक्षिक्के हो भेद हैं—स्वस्थान सक्षिक्षे और प्रस्थान सक्षिक्षे । स्वस्थान सक्षिक्षेम प्रत्येक कर्मकी विवस्ति एक प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाको उसी कर्मकी अन्य प्रकृतिसंकि सिष्ठवर्षका विचार किया जाता है और प्रस्थान सिष्ठवर्षमें विवक्ति प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाली सब उक्त प्रकृतियोंके सिन्कवर्षका विचार किया जाता है। यहः वह प्रवृत्तकन्यका प्रकृत्या है अतः वहाँ उक्तकृत्य प्रकृतिकन्यको काल्ययसे स्वस्थान और प्रस्थान सिन्कवर्षके दो-दो भेद करके विचार किया गया है। उसमें भी पढ़के उन्कृत स्वस्थान सिक्कवर्षका विचार करके वादमें जयन्य वस्थान सिक्कवर्ष और जयन्य प्रस्थान सिक्कवर्ष की वादमें अपन्य वस्थान सिक्कवर्ष की वादमें अपन्य स्वस्था आसिनिकीधिक ज्ञानावरण, अविज्ञानावरण, अवश्वानावरण, अविज्ञानावरण, अविज्ञानावरण, अविज्ञानावरण, अविज्ञानावरण, अवश्वानावरण, अव

यहाँ उन्क्रप्ट सिक्कपेके अन्तर्मे सिक्कपेकी सिक्कि कुछ उदाहरण देते हुए सूल प्रकृतिविशेष, पिण्डप्रकृति क्रियेप और उत्तर प्रकृति विशेषका परिमाण आविलके अलब्यातर्वे भागप्रमाण बतलाकर पवा-इजमाण और अपवाहजमाण उपदेशके अनुसार इन तीन विशेषींके अल्पबहुत्वका निर्देश किया है।

भङ्गविचयप्रक्रपणा—उस अनुगोगद्दारमें ओघ और आरं, एसे सब मुल व उत्तर म्हातिबंधि उत्कृष्ट व जयस्य प्रदेशक्यके भद्रोंका नाना जीवींकी कपेषा विचार किया नाया है। उसमेंसे सूल्महृतियोंकी अपेषा भङ्गविचय प्रकरण नष्ट हो नाया है व इस हम रहले ही सूचित कर आजे हैं। ओपसे उत्तरहृतियोंकी अपेषा आङ्गविचय प्रकरण नष्ट हो नाया है वह हम रहले ही सूचित कर आजे हैं। ओपसे उत्तरहृतियोंकी अपेषा आङ्गविचय प्रहारोंकों अप्ता करने हुए सब प्रकृतियोंके उत्तरह कीर अनुत्तरह प्रदेशोंका क्या करनेवाले जीवोंके सामा जाननेकी सूचना की है। मात्र नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुगोंके उत्तरह भी अनुत्तरह प्रदेशोंका क्या करनेवाले जीवोंके आठ-आठ भड़ जाननेकी सूचना की है। कारो वह ओध्यरूपणा जिन मार्गणाओंमें सम्मव है उनमें ओधके अपन्य महत्त्रियको प्रारम्भ करते हुए नरकायु, मनुष्याय और देवायु वे तीन कायु, वीकिष्वरुद्ध, आहारकादिक और तार्थिकर इनके जयन्य और अजयस्य भङ्गविचयका माह्र उत्तरह अपित तार्थिकर इनके जयन्य और अजयस्य भङ्गविचयका मह्न उत्तरह प्रहारी जयस्य और अजयस्य भङ्गविचयका प्रारम्भ करते हुए नरकायु अद्यावच्या मह्न उत्तरह अपन्य कीर अजयस्य भङ्गविचयका मह्न उत्तरह कारो सामा जाननेकी सूचना की है। तथा तथा प्रकृतियों जयस्य और अजयस्य अद्यावच्या मह्न उत्तर्यक सामा जाननेकी सूचना की है। स्वा औप अपनेवस्तरणा है। यह वात्राव्या है। वह अपनेवस्तरणा है। यह वात्राव्या मार्थिक समान जाननेकी सूचना की है। सीर सीर्थ अपनेवस्तरणा है। यह अपनेवस्तरणा है। वह सीर्थ अपनेवस्तरणा है। यह वात्राव्याओं सिर्थ प्रवाद्या की हरें हिस्स है। हरें सिर्थ सीर्थ अपनेवस्तर हो विच्या है। हिस्स सीर्थ अपनेवस्तर हो सीर्थ अपनेवस्तर हो सामा जाननेकी सूचना की है। यह विज्ञ मार्थणाओं सामा जाननेकी सूचना की है और विच्य मार्याणाओं सिर्य हो यह सामा अपनेवस्तर हो सीर्थ सामा सामा जाननेकी सूचना की है। यह विज्ञ सामा अपनेवस्तर हो निर्म हिस्स हो है। सिर्य सीर्य स्वावयक्त निर्म हिस्स हिस्स हो सीर्य हो सामा जाननेकी सूचन हो है। यह विज्ञ सामा अपनेवस्तर हो निर्म हिस्स हो है। सह विच्य साम्य सीर्य हा सामा अपनेवस्तर हो निर्म हो सीर्य हो

भागाभागप्रक्षपणा— गृह प्रकृतियोंको अपेका भागाभागप्रक्षपणा भी नष्ट हो गई है। उत्तर
प्रकृतियोंको अपेका ओषसे भागाभागका निर्देश करते हुए तीन आयु, वैक्षिषिक खुइ और तांथेद्धर प्रकृतिका
उत्कृष्ट प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव इनका करने करने हुए तीन आयु, वैक्षिषिक खुइ और तांथेद्धर प्रकृतिका
उत्कृष्ट प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव असंस्थात बहुभागप्रमाण करताथे हैं। आहारकिष्ठका उत्कृष्ट प्रदेशकर्थ करने
वाले जीव संस्थातव समाप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव अनन्तव साणाप्रमाण अति अनुत्कृष्ट
प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण वतलाये हैं। आते जिन मार्गणाओंमें वह ओद्याक्षपण
प्रस्माव है उनमें ओवप्रक्यणाके समान जाननेको सूचना करके शेष मार्गणाओंमें जो विशेषा सम्मव है
उत्कृति किया है। जयस्य मार्गामाणका निर्देश करते हुए वतलाया है कि आहारकिष्ठिका भक्ष तो
उत्कृष्टके समान है और रोष प्रकृतियोंका जवन्य प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव असंस्थातव
क्रित्वाल प्रदेशकर्थ करनेवाले जीव असंस्थात बहुमार्गम्याण हैं। आदेशके सब मार्गणाओंमें सामाप्यसे
इसीमकार जाननेकी सूचना करके संस्थातसंस्थावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका मह लाहारकर्यारिक
समान आहारकर्यारिके
समान आहारकर्यारिके
समान आहारकर्यारिके
समान आवारकेकी सूचना करि है।

परिमाणप्ररूपणा—मूळ प्रकृतियांका अपेचा प्रतिपादन करनेवाळी वह प्ररूपणा भी नष्ट हो गई है। उत्तर प्रकृतियांका अपेचा ओवसे परिमाणका निर्देश करते हुए बतळाया है कि तीन आयु और वैक्रि १६ महाबन्ध

विक बहुका उक्कृष्ट और अञ्जूकृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव भसंक्यात हैं। आहारकहिक्का उत्कृष्ट और अञ्जूकृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। तीयहूँ प्रकृतिका उक्कृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं जीर अञ्जूकृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं जीर अञ्जूकृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव असंक्यात हैं जीर अञ्जूकृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव असंक्यात हैं। यह लोवमुक्तण्या जिन मार्गणालीं सम्मव है उनमें लोवके समान जाननेकी सूचवा करके रोप मार्गणालीं जहाँ जो किरोपता है उसका लक्ष्यति जीर तहरं लिए हिंदी लेवा है। अध्येष जबस्य परिमाणका निर्देश करते हुए वक्काया है कि तीन लाशु, नरकराति जीर तरकारवालुपूर्वीका जबस्य और अवस्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। देशवालिहिक, वैक्षिपेकहिक और तीयहर प्रकृत्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। हो देशवालिहिक, वैक्षिपेकहिक और तार्यक्रम्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। शहरकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। लाहरकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य हैं। स्वाप्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जबस्य और लक्ष्यत्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जबस्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। आहारकहिक्का जवस्य प्रदेशकम्य करनेवाले जिल्ला हैं। अहारकहिक्का जवस्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव संक्यात हैं। अहारक्यात हैं। अहारकहिक्का जवस्यत प्रदेशकम्य करनेवाले करायात हैं। अहारकहिक्का जवस्य प्रदेशकम्य करनेवाले जिल्ला हैं। अहारक्य प्रदेशकम्य करनेवाले जीव स्वत्य हैं। स्वत्य हैं स्वत हैं स्वत्य हैं स्वत्य हैं स्वत्य हैं स्वत्य हैं स्वत्य हैं स्वत्

चेत्रप्रकर्पण—मूल प्रकृतियोंकी यह प्रस्पणा भी तुटित है। भोपसे उत्तर प्रकृतियोंकी अपेषा निर्देश करते हुए वर्तवाया है कि तीन आधु, वैक्रियेक्टरक, आहासक्रीहक और तींच्छर प्रकृतिका उत्कृष्ट भीर अनुकृष्ट प्रदेशकर्य करनेवाले जीवोंका चेत्र कोक कसंस्थातक भागप्रमाण है और रोप प्रकृतिका उत्कृष्ट भीर अनुकृष्ट प्रदेशकर्य करनेवाले जीवोंका क्षेत्र कोक असंस्थातक भागप्रमाण है और रोप प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशकर्य करनेवाले जीवोंका चेत्र सर्वकोकप्रमाण है। आगे जित्र मार्गणाओं में यह ओवप्रकृत्यण सम्भव है उनमें ओवक समार्ग जाननेकी स्वचा करके रोप में अक्तार्य कर केश ती स्वच्छर प्रकृतिका जयस्य करतेवाले है कि भोष्य तीन अप्तु वैक्षिष्ठ कह, आहारकृष्टिक कीर ती स्वह्म प्रकृतिका जयस्य कार्य क्रिया है कि भोष्य तीन अप्तु वैक्षिष्ठ कह, आहारकृष्टिक कीर ती स्वच्छर प्रकृतिका जयस्य कार्य क्रिया क्ष्य क्रियेक्ट कर्मिक्ट करनेवाले जीवोंका चेत्र अच्छे असंस्थात्व भागप्रमाण है। तथा गोप प्रकृतियोंका जयस्य भीर अवधन्य प्रदेशकर्य करनेवाले जीवोंका चेत्र सर्वकोकप्रमाण है। यह प्रकृत्या भी जिन मार्गणाओं स्वस्था है उनमें ओषक्ष समान जाननेकी सूचना करके शेषमें उत्तका अलगसे विधान विधान है।

स्पर्येनप्रक्षणा—मूल प्रकृतियाँकी वह प्रक्षणा भी नष्ट हो गई है। भोषसे उत्तर प्रकृतियाँकी अपेचा निर्देश करते हुए वत्तराया है कि पाँच जानावरण, चार रहेगावरण, तातावेदगाँप, यार संकरण, पुरुष्येद, मृत्युप्पति, चार जाति, भीदारिकररीर अहाँपाइ, असम्प्राह्मायादिकासंहरन, मृत्युप्पति, प्रकृति , उत्तराह्मा कार्येद करतेवाले जीवाने लोकके असंक्षात्व मात्रप्रमाण क्षेत्रका स्पर्यन किया है। तथा इनका अनुकृष्ट प्रदेशकम्य करतेवाले जीवाने लोकके असंक्षात्व मात्रप्रमाण क्षेत्रका स्पर्यन किया है। तथा इनका अनुकृष्ट प्रदेशकम्य करतेवाले जीवांके सर्व लेकका स्पर्यन किया है। इसी प्रकार अन्य कृतियाँका अनुकृष्ट प्रदेशकम्य करतेवाले जीवांका स्पर्यन क्षित्र है। इसी प्रकार अन्य कृतियाँका उत्तरका अनुकृष्ट प्रदेशकम्य करतेवाले जीवांका स्पर्यन क्षात्र है। इसी प्रकार अन्य कृतियाँ का सार्व प्रकार अपनी मन्य योग्य प्रकृतियाँका आयर लेकर स्पर्यन कहा है। जबन्य स्पर्यनका पिर्देश करते हुए जो प्रकृतियाँ प्रकृतियाँ के प्रकार प्रकृतियाँका अपना करते विकार चार्तिका प्रकृतियाँ क्षात्र करते क्षात्र अलगा-अलग वत्रकाया है और तथा प्रकृतियाँका जबन्य और अवसम्य प्रदेशकम्य करतेवाले जीवांका स्पर्यन स्वत्रका करता है। केवल मृत्यायुक्त स्पर्यनमं कृत्व विदेशकाका निर्देश किया है। वहाँ मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार अपनी विचरणांक अनुवार क्षात्रका निर्देश किया है।

नाना जीवोंकी अपेवा काल-पुरु प्रकृतियोंको अपेका उत्कृष्ट कालप्रकृषण तो नष्ट हो गई है। मान अवन्यकाल प्रकृषणा उपकृष्य होती है। आठी सुज्यकृतियोंका जबन्य प्रदेशकन्य बोध्य सामार्थके सद्भावमें सुक्षा एकेन्त्रिय अपर्याध जीव करते हैं, इसलिए बाना जीवोंकी अपेखा हमके जवन्य और अजयन्य प्रदेशबन्यका काळ सर्वदा याचे जानेसे वह सर्वदा कहा है। इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी अपने अपने स्वामित्वके अनुसार काळका विचार किया है । उत्तर प्रकृतियोंकी अपेचा उत्कृष्ट कालका विचार करते हुए जिन प्रकृतियोंका उत्क्रम प्रदेशकरूव संख्यात जीव करते हैं उनकी अपेका उत्क्रह प्रदेशकर्यका जधन्य काल एक समय और उत्क्रष्ट काल संख्यात समय कहा है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। नरकाय, मनुष्याय और देवायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध असंख्यात जीव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कर काल आवलिके असंख्यात वें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुरक्षष्ट प्रदेशकम्थका एक जीवकी अपेचा जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है, इसलिए इसका नाना जीवोंकी अपेका जधन्य काल एक समय और उन्क्रष्ट काल पल्यके असंस्थातवें भागप्रभाग कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्त्र असंस्थात जीव और अनुत्कृष्ट प्रदेशकाथ अनस्त जीव करते हैं. इसिक्टर इनके उत्कृष्ट प्रदेशकाथका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवल्डिके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा कहा है । यह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओं में बन जाती है उनमें ओघके समान जानकेती अचना करके शेष मार्गणाओं में अलगसे कासका निर्देश किया है। जधन्य कासप्ररूपणाका चिटेश करते हुए तीन आयु, वैक्रियिकपटक, आहारकद्विक और तार्थक्र प्रकृतिके जवन्य और अजवन्य प्रदेश बन्धका जवन्य और उत्कृष्ट काल अपने अपने स्वामित्वके अनुसार बतला कर शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्यका काल सर्वदा कहा है. क्योंकि इनका जधन्य प्रदेशबन्ध सुच्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव करते हैं। तथा इनका अजधन्य प्रदेशबन्ध यथासम्भव एकेन्द्रियादि सब जीवींके सम्भव है। यह ओव्यक्रपणा जिन मार्गणाओंमें सम्भव है उनमें ओवके समान जाननेकी सचना करके शेषमें जहाँ जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है।

भावप्रकृपणा—सब प्रकृतियोंका बन्ध औरियक भावसे होता है, इसलिए यहाँ सब मूल और उत्तर प्रकृतियोंका जबन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका औटियक भाव कहा है।

अल्पवहुन्वप्रकृपणा—अवरवहुत्वके हो भेद हैं—स्वस्थान अवरवहुत्व और परस्थान अवरवहुत्व । सूल प्रकृतियाँमें स्वस्थान अववरवहुत्व सम्भव नहीं है, ह्यलिए हनका जबन्य और उत्कृष्ट होनों प्रकारका परस्थान प्रदेश अस्पवहुत्व हो कहा है । उत्तर प्रकृतियाँको स्वस्थान और परस्थान होनों प्रकारका परस्थान प्रदेश अस्पवहुत्व हो कहा है । उत्तर प्रकृतियाँको स्वस्थान अस्पवहुत्व सम्भव है, इसिएए प्रयोक कर्मकी अवान्तर प्रकृतियाँको स्वस्थान अस्पवहुत्व वन जाता है । और सब कर्मोंको अवान्तर प्रकृतियाँको एक पंकिम त्वन पर उनमें परस्थान अस्पवहुत्व मी बन जाता है । यह प्रदेशवन्धका प्रकरण है और प्रस्थान अस्पवहुत्व कर्मका स्वस्थान स्वस्थान अस्पवहुत्व मी बन जाता है । यह प्रदेशवन्धका प्रकरण है और प्रस्थन होत्यांको प्रकार विकार स्वस्थान स्वस्यान स्वस्थान स्वस्

१५ महाबन्ध

निर्देश प्रत्यके प्रारम्भमें भागहार प्ररूपणांके समय बतला हो आने हैं, हसकिए उसे प्यानमें रखकर और स्वाप्तिसको प्यानमें रखकर हसकी बोजना करता चाहिए। क्योंके वाति-स्वाति तथा वाति क्योंके देश-वाति और सर्ववाति होनेसे किसी कर्मको कम और किसी कर्मको अधिक प्रदेश मिलते हैं हसे भी इस प्रकल्पमें प्यान रखना चाहिए।

भजगारबन्ध

इस प्रकरणमें अवनार पर उपलवण है। इससे अवनार, अवरावर, अवस्थित और अवकृष्य इन वारोंका कोच होता है। अनन्तर पिछले समयमें अवर प्रदेशींका बन्य करने क्याले समयमें अधिक प्रदेशींका बन्ध करना यह अवनारक्य है। अनन्तर पिछले समयमें अधिक प्रदेशींका कन्य करने वर्तमान समयमें कमा महेरोंका बन्य करना यह अवरावर बन्य है। अनन्तर पिछले समयमें जितने प्रदेशींका बन्य करने कसा हैने सामयमें उतने ही प्रदेशींका बन्य करना यह अवस्थित बन्य है और अवन्यके बाद बन्य करना यह अवक्रमक्य है। यहाँ इसका तेरह अनुवोधाइरिके आव्ययसे कथन किया गया है। वे तेरह अनुवोधाहार वे हैं—स्सुक्तीर्वना, स्वामिल, काल, अन्तर, नाना जोवोंका अपेचा महाविषय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्वर्शन, काल, अन्तर, भाव और अवरवहुल।

बहाँ आठ मूल मक्कतियाँकी अवेचा नाना जीवोंकी अवेचा मक्कतियद प्रकरणका प्रारामके और अन्तके कुछ अंदाको क्षेत्रकर येथ अंग नक हो नाया है। कारण कि वर्रोका एक ठावएज यारु गया है इसी प्रकार ताव्यक्रके सीन पत्र गल जानेसे उत्तर प्रकृतियांकी अवेचा अन्तर प्रकरणकाका अन्तक। कुछ भाग, नाना जीवोंकी अवेचा मक्कतियच और भागामाय ये तीन प्रकृत्य भी नट हो गये हैं।

समुन्हीतेनामें भोच और आदेशसे मूल और उत्तर म्हृतियोंका अपेचा पूर्वोक्त भुजनार आदि चारों परोंसिसे किसके कीन सम्मव हैं इस बातका निर्देश किया गया है। स्वामित्वमें ओव और आदेशसे उनका स्वामी बतलाया है। काल्यकरणणों उनके कालका और अन्तर प्रकरणांमें अन्तरका विचार किया गया है। इसी प्रकार को मो सी तित प्रकरणका जो नाम है उत्तरके अनुसार भोच और आदेशसे विचार किया गया है। इसी प्रकार को मो सी तित प्रकरणका जो नाम है उत्तरके अनुसार भोच और अर्था में प्रकार के उपरेशों मा सार्वे मूल प्रकृतियोंको अपेचा आंचसे अवस्थित उरहे कालका निर्देश करते हुए हो प्रकार के उपरेशके अनुसार अपके अर्थ किया है—एक प्रवाहन्त्रंत उपरेशके अनुसार समझ सार्व अर्थ अर्थ क्रिया है। अर्थ उत्तरके काल्य क्षा प्रवाह समय और अन्य उपरेशके अनुसार समझ स्वाह समय अर्थ अर्थ अर्थ क्षा है। अर्थ उत्तरके काल्य है। अर्थ उत्तरके काल्य है। अर्थ उत्तरके अर्थ काल प्रवाह समय अर्थ अर्थ अर्थ काल प्रवाह समय अर्थ अर्थ अर्थ काल प्रवाह समय अर्थ अर्थ अर्थ काल प्रवेश के अनुसार प्याह समय सार्व अर्थ अन्य उपरेश के अर्युसार प्रवृह्ध समय चलकाया है।

पद्निचेप

 प्रकृतियोंको उत्कृष्ट हृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका विचार किया गया है। तथा जयन्य समुत्योतेना, खबन्य स्वासित्व और जबन्य अवस्यद्वत्वर्से ओच और आदेशसे मृक और उत्तर प्रकृतियोंकी जबन्य हृद्धि, जबन्य हृति और जबन्य अवस्थानका विचार किया गया है।

यहाँ एक ताइपत्रके गरू जानेसे मूलप्रकृतियोंको अपेषा स्वामित्यके सन्तका बहुआग और अस्प-सहुत्व तथा हृद्धि अनुदांगहारके अस्पसहुत्वके अन्तक अंग्रको होइकर रोष सम प्रकृत नष्ट हो गये हैं । इसीप्रकार उत्तर प्रकृतियोंकी अपेषा उत्कृष्ट स्वामित्यका निर्देश करते हुए आभिनिवोधिकज्ञानी, मुठज्ञानी और अविश्वानी इन तीन आगोलाओंको प्रकृत्या अन्यमंत्र ताइपत्र मृत्रित निर्देश स्थाना हा स्वाम्य हिन्द स्वामा ताइपत्रकी यहाँपर है—[क्रमागतताडपत्रस्वातानुकियः । अक्रम्युक्तमन्यं समुग्रकस्पते ।] अर्थात् क्रमागत ताइपत्रकी यहाँपर अनुप्रकृतिय है। अक्रम्युक अन्य ताइपत्र उपकृत्य हो रहा है। बैसे प्रकृत्यकी सहाति के जाती है, इसकिए यह कह सकता कृति है कि क्रमाङ्कके अन्यत्यको स्वित करनेके किए यहाँ स्वमा दी गई है या वह सुचना देनेका अन्य कोई कारण है।

यहाँ समुकीर्तनामें ओघ और आदेशसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेषा किसके उत्कृष्ट वृद्धि आदि और जयन्य वृद्धि आदि सम्भव हैं इस बातका निर्देश किया गया है। तथा स्वामित्वमें उनका स्वामित्व और अत्यबद्धत्वमें अल्पबद्धत्व बतलाया गया है।

वृद्धि

पहले पदिनक्षिपमें उन्हृष्ट वृद्धि आदि और जयन्य वृद्धि आदि प्दोंके आश्रयसे विचार कर आये हैं। यहाँ इस अनुयोगगद्वार्से उन्हृष्ट और जयन्य मेर्ड न करके अपने अवान्तर मेरोंकी अपेड से वृद्धि और हानि जितने प्रकारकों हैं उनके आश्रयसे तथा अवस्थित और अवक्तप्यपदके आश्रयसे ओघ और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियांका साहोपाइ तरह हैं— स्मुक्तांतेना, स्वामित्व, काल, अन्तर, वानाजीवांकों अपेखा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, माव और अवस्वहृत्व।

वृद्धिपद उपल्कण है। इससे वृद्धि, हानि, अवस्थित और अवकथ्य इन सबका म्रहण होता है। इन चारांके अवान्तर भेद बारह हैं। यथा अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागवृद्धि, असंस्थातभागवृद्धि, असंस्थातभागविद्धिक्षित्विद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्धिक्यातभागविद्य

समुत्कीर्तनामें मूळ व उत्तर प्रकृतियोंके कहाँ कितने पद सम्मव हैं यह बतलाया गया है। स्वामित्वमें मूळ व उत्तर प्रकृतियोंके किन पदोंका कहाँ कौन स्वामी है यह बतलाया गया है। इसी प्रकार आगे भी जिस प्रकरणका जो नाम है उसके अनुसार विचार किया गया है।

यह तो हम पहले हो स्पित कर आये हैं कि मूल प्रकृतियोंको अपेचा वृद्धि-अनुयोगद्वारका कथन करनेवाला प्रकरण ताइपत्रके गल जानेसे प्रायः सबका सब नष्ट हो गया है, उत्तर प्रकृतियोंका विवेचन करनेवाला ही यह प्रकरण उपलब्ध होता है।

अध्यवसानसमुदाहार

अध्ययसानसमुदाहारके दो भेद हैं—प्रमाणातुगम और अस्पबहुत्व । प्रमाणातुगममें वोगस्थानों और प्रदेशक्यस्थानोंके प्रमाणका निर्देश करते हुए बतकाया है कि जितने बोगस्थान है उनसे ज्ञानावरण कर्मके प्रदेशक्यस्थान संक्यातवें मागप्रमाण अधिक हैं । कारणका निर्देश करते हुए बतकाया है कि आठ २० महाबन्ध

जीवसम्रदाहार

इस अनुयोगद्वारके भी दो भेद हैं—प्रमाणातुगम और अल्पवहुल । प्रमाणातुगममें पहले चौदह जीव समासोके आश्रवसे जवन्य और उल्ह्रूट योगस्थानोके अल्पवहुलकी प्ररूपणा करके वादमें उन्हीं चौदह जीव समासोके आश्रवसे जवन्य और उल्ह्रुट प्रदेशवन्य स्थानोके अल्पवहुलका कथन किया गया है।

अल्पबहुत्वके जघन्य, उन्क्रष्ट और जबन्योन्क्रस्य वे तीन भेर करके भोष और आदेशमे सब मूळ व उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा इन प्रकरणोंमें की गई है।

विषय-सूची

सङ्गलाचरण	1	जधन्य काल	38-84
प्रदेशबन्धके दो भेदोंका नाम निर्देश	9	अन्तरप्ररूपणा	84-85
मूल प्रकृति प्रदेशबन्ध	१-८७	भन्तरके दो भेद	84
भागाभागसमुदाहार	9-2	उल्बन्ध अन्तर (बुटिते)	84-82
बौबीस अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	ą.	नाना जीवोंकी अपेचा जघम्य कार	8.8
स्थानप्ररूपणा	३-१०	अन्तरप्ररूपणा	प्रकादश
स्थानप्ररूपणाके दो भेद	ą	अन्तरके दो भेद	५०
योगस्थानप्ररूपणा	३-१०	उक्कुष्ट अन्तर	40
योग-अस्पबहुत्व	₹-8	जघन्य अन्तर	41
प्रदेश-अल्पबहुत्व	8	भावप्ररूपणा	49
योगस्था रप्ररूपणाके दस भेद	ષ	भावके दो भेद	49
अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा	4	उत्कृष्ट भाव	43
वर्गणाप्ररूपमा	ષ	जबन्य भाव	49
स्पर्धकप्ररूपणा .	Ę	अल्पबहुत्वप्ररूपणा	४२-४३
अन्तर्प्र रूपणा	Ę	अस्पबहुत्वके दो भेद	५२
स्थानप्ररूपणा	9	उत्कृष्ट अस्पबहुत्व	48
अनन्तरोपनिधा	•	जघन्य अस्पबहुत्व	45-48
परम्परोपनिधा	5	भुजगारबन्ध	30-£X
समयप्ररूपणा	ŧ	अर्थपद	4ફ
वृद्धिप्ररूपणा	€- 1 0	भुजगारके १ ३ अनुयोगद्वारोंकी स् चना	પર
अस्पबहुत्व	90	समुकीर्तना	પર્-પ્રષ
प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा	१०	स्वामित्व	48-44
सर्व-नोसर्व प्रदेशबन्धप्ररूपणा	१०-११	कारु	مؤ مؤ- وراه
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धप्ररूपणा	११	अन्तर	५७-६५
जघन्य-अजघन्य प्रदेशबन्धप्ररूपणा	१२	नाना जीवोंकी अपेचा भङ्गविचय	६५-६६
साद्यादि प्रदेशबन्धप्रकृपणा	१२-१३	भागाभाग	६६-६७
स्वामित्वप्ररूपणा	१४-२८	परिमाण	६७-६६
स्वामित्वके दो भेद	18	क्षेत्र	68-80
उत्कृष्ट स्वामित्व	18-55	स्पर्शन	\$0-90
जधन्य स्वामित्व	२२-२८	काल	७३-७५
कालप्रकृपणा	२८-४५	अन्सर	७६-७७
काछके दो भेद	२=	भाव	99
उक्तप्र काल	२८-३४	अस्पबहुत्व	95-98
The second secon			

र बचन्य अन्तर, संत्रकर्ष, नाना बीबोकी अरेबा भङ्गविचव, मागाभाग, परिमाण, चेत्र, सर्शन और उक्तय काठ भी त्रुटित।

पदनिक्षेप	७९-दर	उत्कृष्ट स्वामित्व	£2-99 3
पदनिक्षेपके तीन भेद	30	बचम्य स्वामित्व	114-158
समुत्कीतंना	3.0	काळप्ररूपणा	१३४
समुद्धार्तनाके दो भेद	30	कासके दो भेद	358
उस्कृष्ट समुर्कार्तना	30	उस्कृष्ट काल (बुटितं)	358-348
जघन्य समुत्कीर्तना	98	अन्तरप्ररूपणा	१४४-१७७
स्वामित्व	50-53	जघन्य भन्तर	148-100
स्वामित्वके दो भेद	Ξ.	सिन्नकर्ष प्ररूपणा	१७=
उत्कृष्ट स्वामित्व (ब्रुटिते)	50-53	सक्रिकर्षके दो भेद	105
बृद्धिबन्ध	दर-द१	स्वस्थान सक्रिकर्षके दो भेद	१७८
अस्पबद्दत्व (बुटित)	E2-E3	उत्कृष्ट स्वस्थान स न्निक र्ष	102-160
अध्यवसानसमुदाहार	=3	जचम्य स्वस्थान सक्तिकर्प	980-500
अध्यवसानसमुदाहारके दो भेद	= 1	परस्थान सन्निकर्पके दो भेद	200
प्रमाणानुगम	53	उत्कृष्ट परस्थान सक्तिकर्प	२०७-३०६
अस्पबहुत्वानुगम	5 1	जघन्य परस्थान सक्तिकर्प	३०७-३५०
जीवसमुदाहार	ದರಿ-ದಡಿ	भक्कविचयप्ररूपणा	३४०-३४३
जीवप्रमाणानुगम	28	भङ्गविचयके दो भेद	३्५०
अस्पबहुत्वानुगम	28-20	उत्कृष्ट भद्गविचय	३५०-३५२
उत्तरप्रकृतिप्रदेशवन्ध	८७-३६८	जघम्य भङ्गविषय	३५२-३५३
भागाभागसमुदाहार	೯७-೯१	भागाभागप्ररूपणा	३५४-३४६
अ र्थपद	58	मागाभागके दो भेद	રૂપષ્ઠ
२४ अनुयोगद्वारीकी सूचना	58	उत्कृष्ट भागामाग	३५४-३५५
स्थानप्ररूपणा	60	जबन्य भागाभाग	३५५-३५६
सर्व-नोसर्व प्रदेशबन्ध आदि प्ररूपणा	83-03	परिमाणप्ररूपणा	३५६-३६६
साद्यादिप्रदेशबन्धप्ररूपणा	દર	परिमाणके दो भेद	३५६
स्वामित्वप्ररूपणा	६२-१३४	उत्कृष्ट परिमाण	३५६-३६२
स्वामित्वके दो भेद			

वबन्य स्वामित और अल्पबहुत तथा इदिक्यसम्बन्धी अल्पबहुतके कुछ अंग्रको छोड़कर ग्रेप अनुगोगद्वार भी मुटित।
 बबन्य काड, उक्कर अन्तर व बबन्य अन्तर इ प्रारम्भिक अंग्र भी मुटित।
 मन्तर्मे, बहुत अंग्र मुटित, देवो पृ०१८२

सिरि-भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महार्वधो

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आहरियाणं । णमो उवज्ज्ञायाणं णमो लोए सैंज्यसाहणं॥

 यो सो पदेसबंघो सो दुविधी—मुरुपगदिपदेसबंघो चैव उत्तरपगदि-पदेसबंघो चैव।

१ मूलपयडिपदेसबंधो

२. एचो मूलपगदिपदेसवेष पुट्यं गमणीयो मागामागसमुदाहारो । अट्टिवर-वंधगस्स आउगआगो थोवो । णामा-गोदेसु भागो विसेसाधियो । णाणावरण-दंसणा-वरण-अंतराहगाणं भागो विसेसाधियो । मोहणीयभागो विसेसाधियो । वेदणीयभागो विसेसाधियो । केण कारणेण आउगआगो थोवो १ अट्टसु कम्मपगदीसु आउगे हिदिबंघो थोवो । एदेण कारणेण आउगआगो थोवो । सेसाणं वेदणीयवजाणं कम्माणं यस्स दोहा हिदी तस्स भागो बहुगो । वेदणीयस्स पुण अष्णं कारणं । यदि वेदणीयं ण भवे तदो

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और छोकमें सर्व साधुओंको नमस्कार हो।

१. प्रदेशबन्ध दो प्रकारका है-मृखप्रकृतिप्रदेशबन्ध और उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध ।

१ मूलप्रकृतिप्रदेशबन्ध

२. यहाँसे मूलप्रकृतिप्रदेशक्यमें भागाभागसपुराहारका सर्व प्रथम विचार करते हैं। वह इस प्रकार है—आठ प्रकार कर्मी का बन्ध करतेवाले जीवके आयुक्तमंका भाग सबसे त्योक है। इससे नाम और गोत्रकर्म का भाग विशेष जिल्ह है। इससे मानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

श्रृंका-आयुकर्मको स्तोक भाग क्यों मिछता है ?

समाधान—क्योंकि आठ कर्मों में आयुकर्मका स्थितिबन्ध स्तोक है, इससे आयुकर्मको स्तोक भाग मिळता है।

वेदनीयके सिंबा शेष कर्मों में जिसकी स्थिति अधिक है उसको बहुत भाग सिलता है। परन्तु वेदनीयको अधिक भाग मिलनेका अन्य कारण है। यदि वेदनीय कर्म न हो तो सब कर्म

ता॰ प्रतौ आउगमाबो (गो) इति पाठः। २. ता॰प्रतौ ऋ।उगमाबो (गो) आ॰ प्रतौ आउगमाबो इति पाठः।

सञ्बकम्माणि वि जीवस्स ण समत्या सुहं वा दुक्सं वा उप्पादेदुं'। एदेण कारणेण वेदणीए मामो बहुनो । एदेण कारणेण सञ्बकम्माणं उवस्तिःं ।

- सत्तविधवंधगस्य वि णामा-गोदेसु मागो थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराह्माणं भागो विसे० । मोहणीए मागो विसे० । वेदणीए मागो विसे० ।
- छव्विधवंधगस्स वि णामा-गोदेसु मागो थोचो । णाणाव०-दंसणा०-अंतराइगार्ण मागो विसे० । वेदणीए मागो विसे० ।

जीवको सुख या दुःख उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। इस कारण वेदनीयको सबसे बहुत भाग मिलता है। तथा इसी कारण से सब कर्मों के ऊपर वेदनीयका भागाभाग प्राप्त होता है।

 सात प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाले जीवके भी नाम और गोत्र कर्मका भाग स्तोक है। इससे झानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है और इससे वेदनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

 छह प्रकारके कर्मों का बन्च करनेवाळे जीवके भी नाम और गोत्रकर्मका भाग सीक है। इससे झानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका भाग विशेष अधिक है और इससे वेदनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

विशेषार्थ---गणस्थान भेदसे बन्ध चार प्रकारका होता है---आठ प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक बन्ध, छह प्रकृतिक बन्ध और एकप्रकृतिक बन्ध । एकप्रकृतिक बन्ध उपशान्तमोह आदि तीन गुणस्थानोंमें होता है। किन्तु जब एकप्रकृतिक बन्ध होता है तब बटवारेका प्रदन ही नहीं चठता, इसलिए मुलमें इसका उल्लेख नहीं किया है। छह प्रकृतिक बन्ध सुदमसाम्पराय गुणस्थानमें होता है। तथा सात प्रकृतिक बन्ध प्रथमादि नौ गुणस्थानोंमें और आठ प्रकृतिक बन्ध प्रथमादि सात गुणस्थानोंमें आयबन्धके काल में होता है । इसलिए पिछले इन तीन प्रकार के बन्धों में से अपने-अपने योग्य स्थानों में जब जो बन्ध होता है तब बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्म प्रदेशोंका विभाग किस कमसे होता है यह कारणपूर्वक यहां बतलाया गया है। आठ कमों का जितना स्थितिबन्ध होता है उनमें आयुक्रमंका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है. क्योंकि इसका अधन्य स्थितिबन्ध अन्तर्महर्त और उत्क्रष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर है । इसलिए इसमें निषक-रचना सबसे अल्प है। यही कारण है कि इसे बन्धके समय सबसे अल्प भाग मिलता है। नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है, इसलिए इन दोनों कर्मी को समान भाग मिलकर भी आयुकर्मके भागसे बहुत मिलता है। झानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर है, इसलिए इन तीन कमों को परस्पर समान भाग मिलकर भी नाम और गोत्रकमंके भागसे बहुत मिलता है । बद्यपि वेदनीय कर्मका स्थिति-बन्ध भी तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है तथापि सुख-दु:खके निमित्तसे इसकी निर्जार सर्वाधिक होती है, अतः इसे मोहनीय कर्मसे भी अधिक द्रव्य मिलता है। मोहनीय कर्मका बत्कार स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, अतः इसे ज्ञानावरणादिके द्रव्यसे वहत द्रव्य मिछता है। तात्पर्य यह है कि वेदनीय कमके सिवा जिस कमके अपने अपने स्थितिबन्धके अनुसार जितने निषेक होते हैं उसी हिसाबसे उस कर्मको द्रव्य मिलता है। सात्र यह विवक्षा बेहनीय कर्मपर लागू नहीं होती, इसका कारण पहले दे ही आये हैं।

१. ता॰ प्रतौ उप्यावेदु॰से इति पाठः । २. ता॰प्रतौ स्रवस्ट्विं इति पाठः ।

चदु वीसअणियोगहाराणि

५. एदेण अदृषदेण तत्य इमाणि चदुवीसं अणियोगदाराणि णादृव्वाणि भवंति । तं बहा—दाणपरूवणा सञ्चवंघो णोसञ्चवंघो उक्तस्सवंघो अणुक्तस्सवंघो जदृष्णवंघो अजहण्णवंघो एवं याव अप्पाबदुगे चि । श्रुजगारवंघो 'पद्णिक्खेओ विश्ववंघो अञ्चवसाणसञ्चदाद्वारो जीवसञ्चदाद्वारो चि ।

हाणपरूवणा

६. हाणपरूवणदाए तत्य इमाणि दुवे अणियोगदाराणि—योगहाणपरूवणा परेसवंधपरूवणा चेदि। योगहाणपरूवणदाए सन्वत्योवा सुद्दुमस्स अपञ्जत्तयस्स जहण्णमो जोगो। बादरस्स अपञ्जत्तयस्स जहण्णमो जोगो। बादरस्स अपञ्जत्तयस्स जहण्णमो योगो असंखेजगुणो। बेहं ०-तेहं ०-चहुरिं०-पॅचिंदि०-असण्णि-सण्णिअपञ्जत्तयस्स जहण्णगो योगो असंखेजगुणो। सुद्दुम-एहंदियअपञ्ज० उक्क० योगो असंखेजगुणो। बादरण्ट्रंदियअपञ्ज० उक्क० योगो असंखेजगुणो। बादरण्ट्रंदियअपञ्ज० उक्क० योगो असंखेजगुणो। बादरण्ट्रंदियअपञ्ज० उक्क० योगो असंखेजगुणो। सुद्दुमण्ट्रंदियअपञ्ज० उक्क० असं०गुणो। बादरण्ट्रंदियअपञ्ज० उक्क० असं०गुणो।

चौनीस अनुयोगद्वार

५. इस अर्थपदके अनुसार यहां ये चींबीस अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—स्थानप्ररूपणा, सर्वचन, नोसर्वक्न्य, उत्कृष्ट कन्य, अनुकृष्ट बन्य, जघन्य कन्य और अवधन्य बन्यसे केकर अल्पबृह्त तक। तथा भुगगारबन्य, पदनिक्षेप, वृद्धिकन्य, अध्यवसानसमुदाहार और जीव-समुदाहार।

विश्वेषार्थ — यहाँ चौबीस अनुयोगद्वारोंका निर्देश करते समय प्रारम्भके सात और अन्तका एक गिनावा है। मध्यके क्षेत्र ये हैं — सादिबन्ध, अनादिबन्ध; धुवबन्ध, अध्यवन्ध स्वाम्तिव, एक जीवकी अपेक्षा काला, अन्तर, सक्रिकर, नाना जीवोंकी अपेक्षा अक्षुत्रिव्य, भागाभाग, पिरमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काला, अन्तर स्विकर्ण, नाना जीवोंकी अपेक्षा अक्षुत्रिव्यक्ष भागाभाग, पिरमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काला, अन्तर स्विक्ष मात्र मात्री अन्य स्विकर, प्रदेशवन्धक विचार कर पुनः उसका भुजगारबन्ध, पद्गिक्षेत्र, दृद्धि, अध्यवसानसपुराहार और जीवसपुराहार इन द्वारा और इनके अवान्तर अनुयोगद्वारोंके आअयसे विचार किया गया है।

स्थानप्ररूपणा

६. स्थानप्ररूपणामें ये दो अनुयोगदार होते हैं—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशवन्त्रप्ररूपणा । योगस्थानप्ररूपणामें सुक्स अपयोग्न जीवके ज्ञष्य योग सबसे लोक है। इससे बाद अपयोग्न जीवके ज्ञष्य योग सबसे लोक है। इससे बाद अपयोग्न जीवके ज्ञष्य योग अपयोग्न जीवके ज्ञष्य अपयोग्न जीवके ज्ञष्य अपयोग्न जीवके ज्ञष्य योग उत्तरित्र य असंबी अपयोग्न जीवके ज्ञष्य योग उत्तरीत्र असंब्यात-गुणा है। इससे सुद्ध एकेन्द्रिय अपयोग्न जीवके उत्तरुष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे सुद्ध एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ज्ञष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे सुद्ध एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ज्ञष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे सुद्ध पर्याप्त जीवके ज्ञष्य योग असंख्यात-गुणा है। इससे सुद्ध पर्याप्त जीवके ज्ञष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे सुद्ध एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ज्ञष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे द्वार्प्य पर्याप्त जीवके ज्ञष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे द्वार्प्य पर्याप्त जीवके उत्तरुष्ट योग असंख्यात-गुणा है। इससे द्वार्प्य प्राप्त जीवके उत्तरुष्ट योग असंख्यात्व प्राप्त जीवक प्राप्त जीवक जीवक प्राप्त जीवक प्राप्त जीवक प्राप्त प्राप्त जीवक प्राप्त जीवक प्राप्त जीवक प्राप्त जीवक प्राप्त के प्राप्त जीवक प्राप्त

१. ता॰ प्रती सुबागारबंधी इति पाठः ।

बैहं - नेहं - जह रिं - पर्चि - असामा साम्गाअपअत्तयस्स उक्कः असं ग्राणो । तस्सैव पजावपस्स बहु - योगो असं ग्राणो । तस्सैव पजा - उक्कः असं ग्राणो । एवमेकेकस्स जीवस्स योगगुणगारो पलिटोवमस्स असंस्वेजदिभागो ।

७. पदेसअप्पाबहुगे चि । सन्बत्थोवा सुदुम०अपञ्ज० जहण्ययं पदेसम्मं। बादर०-अपञ्ज० जह० पदे० असं०गु० । वेह'०-वेह'०-वहुर्र०-पंचि०असण्यि -सण्यि अपञ्ज० जह० पदे० असं०गु० । एवं यथा योगञ्जपाबहुगं तथा णेदव्वं । णवरि विसेसो एवभेक्केकस्स पदेसग्रणगारो पन्निदो० असंखेजिदभागो ।

एवं अप्याबहुगं समर्च ।

अपर्योत, त्रीन्द्रिय अपर्योत, चतुरिन्द्रिय अपर्योत, पञ्चोन्द्रिय असंझो अपर्योत और पञ्चोन्द्रिय संझी अपर्योत जीवके उत्कृष्ट योग उत्तरीचर असंख्यातगुणा है। इससे इन्हीं पर्यात जीवोंके अपन्य योग उत्तरीचर असंख्यातगुणा है। इससे इन्हीं पर्यात जीवोंके बत्कष्ट योग उत्तरीचर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार यहां एक-एक जीवके योगका गुणकार पत्यके असंख्यातके आगुणकार प्रायके असंख्यातके आगुणकार प्रायके

विशेषार्थ सन, वचन और कायका आलम्बन ठेकर जीवमें जो आत्मप्रदेशपरिष्पद हप शिंक उत्यन्न होती है उसे योग बहुते हैं। यह योग आलम्बनके भेदसे तीन प्रकारका है-मनोयोग, वचनयोग और काययोग। यह सामान्य उच्च्यपर्याप्त सुद्ध एकेन्द्रिय जीवसे ठेकर सयोगिकेवली तक सब ससारी तीवोंके उपत्रक्ष होता है। उसमें भी सुद्ध एकेन्द्रिय उच्च्यपर्याप्त जीवके यह सबसे जधन्य होता है और संज्ञी पञ्चन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट होता है। बीच में जीवसमासके भेदसे अधन्य और उत्कृष्ट योग किस कमसे होता है यह मृलमें बतलाया ही है।

७. प्रदेशअल्यबहुत्बका िनचार करनेपर सुदम एकेन्द्रिय अपयोप्त जीवके जपन्य प्रदेशाप्त सबसे तीक हैं। इतसे बादर एकेन्द्रिय अपयोप्त जीवके जपन्य प्रदेशाप्त असंख्यातगुणे हैं। इतसे हिन्द्रिय अपयोप्त, जीन्द्रिय अपयोप्त, अपयोप्त, जीन्द्रिय अपयोप्त असे अपयोप्त और पक्केन्द्रिय अपयोप्त जीवके जपन्य प्रदेशाप्त असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार आगे योग अल्यबहुत्वके समान यह अल्यबहुत्व आनाना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि एक-एक जीवके प्रदेशगुणकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ — पहले योगअल्पबहुत्व का कथन कर आये हैं। प्रदेशअल्पबहुत्व उसीके समान है। यहां प्रदेशअल्पबहुत्व उसीके समान है। यहां प्रदेशअल्पबहुत्व उसीके समान है। यहां प्रदेशअल्पबहुत्व उसीके त्यान है। सबसे अध्यय योग सुदम एकेन्द्रिय लञ्ज्यपयोगकके होता है, अवत्य इस योगसं इसी जोबके सबसे अध्यय प्रदेशक्य होता है। इससे बाइए एकेन्द्रिय लञ्ज्यपयोगकके ज्ञान्य योग असंख्यातपुणा होता है, इसलिए सूदम एकेन्द्रिय लञ्ज्यपयोगकके ज्ञान्य योग असंख्यातपुणा होता है, इसलिए सूदम एकेन्द्रिय लञ्ज्यपयोगकके ज्ञाने कमें परमाणुओंका बन्ध होता है। पहले योग अल्पबहुत्व वत्रजाते समय असंख्यातगृणों असंख्यात एका अर्थ पल्योपमका असंख्यातबां भाग जिल्या गया है यह कह आये हैं। वेसे ही इस अल्पबहुत्व में भी असंख्यात पृक्षों असंख्यात पृक्ष अर्थ एल्योपमका असंख्यातबां भाग जिल्या गया है यह कह आये हैं। वेसे ही इस अल्पबहुत्व में भी असंख्यातपुणा प्रदेशबन्ध होता है ऐसा यहाँ प्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

योगद्वाणपरूवणा

८. योगहाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणियोगहाराणि-अविभागपिलच्छेद-परूवणा वम्माणापरूवणा फह्यपरूवणा अंतरपरूवणा ठाणपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा समयपरूवणा विद्वपरूवणा अप्यावहुगै ति ।

९. अविभागपिलिच्छेद्रपरूणदाए एकमेक्सिंह जीवपदेसे केविहिया अविभागपिलच्छेदा । एविहिया अविभागपिलच्छेदा । एविहिया अविभागपिलच्छेदा ।

१०. वग्गाणपरूवणदाए असंखेङ्जा होगा योगजविभागपहिन्छेदा एया वग्गाणा भवंदि'। एवं असंखेङाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेङादिभागभेत्तीओ।

योगस्थानप्ररूपका

८. बोगस्थानप्ररूपणामें चे दस अञ्जवोगद्वार ज्ञातन्य हैं—अविभागप्रतिच्छेद्रप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिष्ठा, परम्यरोपनिष्ठा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

 अविभागप्रतिच्छेदग्ररूपणामें जीवके एक एक प्रदेशमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ? असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । इतने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ।

विशेषार्थ — बुद्धिद्वारा शक्तिका छेद करने पर सबसे जमन्य शक्त्यंत्रको वृद्धिका नाम प्रतिच्छेद संजा है। यह बृद्धि अविभाग्य होती है, अतः इसे अविभाग्यतिकछेद कहते हैं। प्रकृतमें योगशंकि विवक्षित है। जीवके प्रत्येक प्रदेशमें इस सोमाणिक देखने पर बह असंख्यान लोकप्रमाण प्रतिच्छेदों से तुक योगशंकिक विक्र होता है। यदापि यह योगग्राक्ति किसी जीवश्रेरामें जम्य होती है और किसी जीवश्रेरामें उक्त्य पर अविभागप्रतिच्छेदों को अपेक्षा विचार करने पर वह असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेदों को छिये हुए होकर भी जपन्यसे उक्त्यकों असंख्यातगुणे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। उदाहणार्थ —एक छुक्त बस्त लीजियं। उत्यक्त किसी एक अवयवसे कम छुक्त होती है और किसीमें अभिक । जिस प्रकार उस वस्त होता है जीर किसीमें अभिक । जिस प्रकार उस वस्त में छुक्त होता है जीर किसीमें अभिक । जिस प्रकार उस वस्त में छुक्त होता है उसी प्रकार जीवक प्रदेशोंमें भी बोगशांकिक तारतम्य दिलाई देता है। इससे विद्युत होता है कि इस तारतम्यक कोई कारण होना चाहिए। यहाँ तारतम्य दिलाई देता है। इससे विद्युत होता है कि इस तारतम्यक कोई कारण होना चाहिए। असे तरस्त होती है आगे इसी वातका विचार किया जाता है। इस अविभागशंतिकछेदों के कससे वर्गणा केसे उस्त होती है आगे इसी वातका विचार किया जाता है।

 वर्गणाप्रह्मणाको अपेक्षा यांगके असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद मिलकर एक काणा होती है। इस प्रकार असंख्यात वर्गणाएँ होती हैं, क्योंकि ये जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं।

विशेषार्थ — पहले हम प्रत्येक प्रदेशगत योगके अविभागप्रतिच्छेहों का विचार कर आये हैं। उत्तरोत्तर बृद्धिरूप ये अविभागप्रतिच्छेद सभी जीव प्रदेशोंमें उपलब्ध होते हैं। कारण कि योग सब प्रदेशों में समान रूपसे नहीं उपलब्ध होता। उदाहरणार्थ दाहित हाथसे बजन उठाने पर इस हाथके प्रदेशों कितना अधिक सिक्या है देता है उतना खिलाब क्षेत्रेक प्रासके प्रदेशों नहीं हिता है उतना खिलाब क्षेत्रेक प्रासके प्रदेशों नहीं हिता है उतना खिलाब प्रतास क्षेत्र के प्रदेशों नहीं ततना खिलाब दिखाई देता है उतना खिलाब रहाश है प्रतास क्षेत्र के प्रतास के प्रतास क्षेत्र क्षेत्र के प्रतास के प्रतास क्षेत्र के प्रतास के प्रतास के प्रतास के प्रतास क्षेत्र के प्

११. फह्यपरूवणदाए असंखेआओ बन्मकाओ वेडीए असंखेआदिमाममेत्रीओ एयं फह्यं मनदि । एवं असंखेआणि फह्याणि सेडीए असंखेआदिमाममेत्राणि ।

१२. अंतरपहराणदाए एक्केकस्स फह्यस्स केवडियं अंतरं ? असंखेआ लोगा अंतरं । एवडियं अंतरं ।

हैं और इसी विचारके परिणामसक्त योगका निरूपण अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, सर्पक और योगस्थान इत्यादि अविकारों द्वारा किया जाता है। अविभागप्रतिच्छेदोंका विचार तो किया द्वारा है। अविभागप्रतिच्छेदोंका विचार तो किया दी है। दे जितने जीकपरेदोंमें समानरूपसे पाये जाते हैं उन जीव प्रदेशोंकी कर्यणा संक्षा है। पुन: इनसे आगेके जीवपरेदोंमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाया स्वित्ये इन जीकपरेदोंकी दूसरी वर्गणा कनती है। पुन: इनसे आगेके जीवपरेदोंमें दो अधिक अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं इसिंख्ये इन जीवपरेदोंकी तीसरी वर्गणा वनती है। इस प्रकार एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक अधिक्षा हमारी हमारी हमारी वर्गणाय वनती हैं। इस प्रकार क्षाया आगे वर्गणाय वनती हैं। इस प्रकार वर्गणाओंका विचार किया। आगे स्पर्धका विचार किया। आगे स्पर्धका विचार करते हैं—

११. सर्घकप्रस्पणाको अपेक्षा असंख्यात वर्गणाएँ, जो कि जगन्नेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होती हैं, सिखकर एक स्पर्यक होता हैं। इस प्रकार असंख्याब स्पर्यक होते हैं, क्योंकि ये जगन्नेणिके असंख्यातवें भागममाण होते हैं।

विश्वेषार्थ— पहें छे जगन्नेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणाओं का विचार कर आये हैं। उन सब वर्गणाओं का समुदाय प्रथम सर्थिक होता है। इसी प्रकार अन्य अन्य जगन्नेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणाओं का अन्य अन्य सर्थिक वनता है और वे सब सर्थिक भी मिलकर जगन्नेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार सर्थकों का विचार कर आगे हनके अन्यदाक विचार करते हैं—

१२. अन्तरप्ररूपणाकी अपेक्षा एक एक स्पर्धकके दीच कितना अन्तर होता है ? असंख्यात छोकप्रमाण अन्तर होता है। इतना अन्तर होता है।

विश्वेषार्थ — पहले इस जराश्रीणके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्य अन्य दर्गणाएँ मिलकर एक स्पर्यक वनता है यह बतला आये हैं। वहाँ इसने यह भी वतलाया है कि एक एक स्पर्यक मीतर वितनी वर्गणाएँ होती हैं उनमें प्रथम कर्गणासे लेकर अन्तिस वर्गणा तक प्रत्येक वर्गणामें एक एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता जाता है। उत्तरहरणांव प्रश्न स्पर्यक्रमें चार वर्गणाएँ हैं और प्रथम वर्गणाके जीवपरेशोंमें पान-पान अविभागप्रतिच्छेद पाने जाते हैं तो दूसरी वर्गणाके जीवपरेशोंमें छह-छह, तीसरी वर्गणाके जीवपरेशोंमें सात-सात और चीर्यो वर्गणाके जीवपरेशोंमें आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद पाने जाते हैं तो दूसरी जीव प्रश्नेमें आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद पाने जावेंगे। अब विचार इस बातका करना है कि क्वा जैसे प्रथम स्पर्यक्रकी प्रत्येक वर्गणामें एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाया जाता है उसी प्रकार प्रथम स्पर्यक्रकी अन्तिस वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद हो स्पर्यक्री प्रथम वर्गणामें एक अधिक हो अविभागप्रतिच्छेद हो स्पर्यक्री प्रथम वर्गणामें एक अधिक हो अविभागप्रतिच्छेद हो स्पर्यक्री प्रयास वर्गणामें प्रकार है और इसका अधिक हो एक एक एक स्पर्यक्री के हिम्स स्वत्यात स्वत्यात स्वत्यात स्वत्यात साम हिम्स क्ला पाने हैं हि एक एक स्पर्यक्रित हो के हमसाण अपतर है। इसका आहार बढ़ है कि अनन्तरपूर्व सर्वक्री अन्तिस वर्गणामें जितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं उनसे सर्वक्रात क्रोक्स प्रथम कर्गणामें स्वत्य के अधिक प्रयासक्री प्रयास वर्गणामें स्वत्य के अधिक प्रयासक्री प्रयास वर्गणामें स्वत्य के अधिक प्रयासक्री प्रयासक्री प्रयास वर्गणामें स्वत्य के अधिक प्रयासक्री प्रयास वर्गणामें स्वत्य के अधिक स्वत्यात क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत के अधिक प्रयासक्री प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका वर्गणाम स्वत्य स्वत्येत स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास का स्वत्येत स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास क्षेत्रका प्रयास क्षेत्रका स्वत्य स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास क्षेत्रका प्रयास वर्गणामें स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास का स्वत्येत स्वत्येत क्षेत्रका स्वत्येत क्षेत्रका प्रयास क्षेत्रका स्वत्येत स्वत

१. आ॰ प्रती असंखेजदिवमाणाओ इति पाठः ।

१३. ठाणपरुवणदाय असंखेजाणि फ्रस्याणि सेडीए असंखेजदिमाममेचाणि जङ्ण्ययं जोगद्वाणं मवदि । एवं असंखेजाणि योगद्वाणाणि सेडीए असंखेजदि-माममेचाणि ।

१४. अणंतरोतिणधार जहण्यजोमहाणे फह्याणि बोवाणि । विदिए योमहाणे फह्याणि विसेसाधियाणि । तदिए योमहाणे फह्याणि विसे० । एवं विसे० विसे० यात्र उक्तस्सए योगहाणे चि । विसेसो पुण अंगुलस्स असंखेजदिमाममेत्राणि फह्याणि ।

अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। वहाहरणार्थ प्रथम स्पषंककी अन्तिम वर्गणाके प्रत्येक प्रदेशमें आठ-भाठ अविभागप्रतिच्छेद हैं हसलिए बहाँ असंख्यात छोकका प्रमाण चार मानकर हतना अन्तर देकर द्वितीय स्पषंकको प्रथम वर्गणाके प्रत्येक प्रदेशमें तेरहन्तरह अविभागप्रतिच्छेद होंगे। इसी प्रकार आगे सब स्पषंकोंमें अत्यत्द देन्द्रेसर कालको वर्गणाओंके उक्त प्रकारसे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। आगे इन स्पर्थकोंके आधारसे स्थानकी व्यत्तिक से होती है यह बतछाते हैं—

१३. स्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा असंख्यात रूपर्षक, जो कि जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होते हैं, मिळकर जघन्य योगस्थान होता है। इस प्रकार असंख्यात योगस्थान होते हैं,

क्योंकि उनका प्रमाण जगश्रेणिके असंस्थातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ-पहले हम जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धकोंका निर्देश कर आये हैं। वे सब स्पर्धक मिलकर एक जघन्य योगस्थान होता है। यह सुक्ष्म निगोद स्रम्भ्यपर्याप्रक एक जीवसम्बन्धी योगस्थान है। इसी प्रकार अन्य अन्य जीवोंके सब प्रदेशोंमें रहनेवाळी योगशक्तिके आश्रयसे अन्य अन्य योगस्थानकी उत्पत्ति होती है। इस हिसावसे सब योगस्थानों की परिगणना करने पर वे जगश्रोणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। यहाँ प्रदन यह है कि जबकि एक एक जीवके आश्रयसे एक एक योगस्थान बनता है और जीव अनन्तानन्त हैं ऐसी अवस्थामें अनन्तानन्त योगस्थान होने चाहिए, न कि जगश्र णिके असंख्यातवें भागप्रमाण । समाधान यह है कि जीव अनन्तानन्त होकर भी योगस्थान जगश्र णिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं, क्योंकि एक जीवके जो योगस्थान होता है अन्य बहुतसे जीवोंके वही योगस्थान सम्भव है। उदाहरणस्वरूप साधारण बनस्पतिको छीजिये। साधारणवनस्पतिके एक-एक सरीरमें अनन्तानन्त निगोद जीव रहते हैं जिनके आहार और इवासोच्छास आदि समान होते हैं। वे एक साथ मरते हैं और एस साथ उत्पन्न होते हैं, अतः इन जीवोंके समान योगस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं आती। इसी प्रकार अन्य जीवोंके भी समान योगस्थानोंका प्राप्त होना सम्भव है, अतः जीवराशिके अनन्तानन्त होने पर भी योगस्थान सब मिळाकर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होते हैं यह सिद्ध होता है। अब आगे इन बोगस्थानोंमें समान स्पर्धक न होकर उत्तरोत्तर अधिक स्पर्धक होते हैं यह बतछाते हैं-

१४. अनन्तरीपनिषाकी अपेक्षा जघन्य वोगस्थानमें सर्वक सबसे योड़े होते हैं। इनसे दूसरे वोगस्थानमें सर्वक विशेष अधिक होते हैं। इनसे तीसरे वोगस्थानमें सर्वक विशेष अधिक होते हैं। इनसे तीसरे वोगस्थानमें सर्वक विशेष अधिक होते हैं। इस अकार उक्तुष्ट योगस्थानके प्राप्त होते तक वे उत्तरीत्तर विशेष अधिक विशेष अधिक होते हैं। यहाँ विशेषका प्रमाण अञ्चलके असंस्थातवें भागप्रमाण वर्षाके हैं।

विश्वेषार्थ —एक योगस्थानमें कुल स्पर्यक जगर्भणिक असंख्यावर्षे मागप्रमाण होते हैं यह हम पहले बतला आये हैं। इस हिसाबसे सब योगस्थानोंमें वे उतने-उतने ही होते होंगे यह शंका होती है, अवस्य इस शंकाका परिहार करनेके लिये यह अनन्तरोपनिष्या अनुयोगहार १५. परंपरोवणियाए जहण्याने योगद्दाणे फ्हानेहिंतो सेडीए असंखेजिदिभागं गंत्य दुगुणविद्वा । एवं दुगुण ० दुगुण ० यात्र उकस्सए योगद्दाणे ति । एयजोग-दुगुणविद्विद्दाणंतरं सेडीए असंखेजिदिभागो । णाणाजोगदुगुणविद्विद्दाणंतरं पिट्दोनमस्स असंखेजिदिभागो । णाणाजोगदुगुणविद्विदाणंतराणि 'योगाणि । एयजोगदुगुणविद्व-द्वाणंतरं असंखेजगुणं ।

आया है। इसमें बतलाया गया है कि सुक्त निगोद लब्ध्यपर्याप्तक अवके प्रथम समयमें होनेबाठ जयन्य योगस्थानमें जितने सर्घक होते हैं उनसे द्वितीय योगस्थानमें वे अंगुलके असंस्थातवें
माग अधिक होते हैं। आगे इसी कमसे संझी एक्केन्ट्रिय पर्याप्तक में प्राप्त होनेवाले योगस्थान तक
वे कसरोत्तर अधिक-अधिक होते जाते हैं। अब यह है कि उत्तर योगस्थान प्रिक्त अधिक अधिक कैसे होते जाते हैं। बात यह है कि जयन्य योगस्थानके प्रत्येक सर्घककी प्रत्येक
वर्गणामें जितने जीवप्रदेश होते हैं, उनसे द्वितीयादि योगस्थानोंके प्रत्येक सर्घककी प्रत्येक
वर्गणामें वे उत्तरोत्तर हीत-हीत होते हैं, वन्योंकि अधिक अधिक योगप्राक्तियाले जीवप्रदेशांका
उत्तरोत्तर न्यून-यून प्राप्त होन-होन होते हैं, वन्योंकि अधिक अधिक योगप्राक्तियाले जीवप्रदेशांका
उत्तरोत्तर न्यून-यून प्राप्त होना स्वाभाविक है और इसलिये प्रयमादि योगस्थानोंके सर्घकारें उत्तरीयानियान
इतियादि योगस्थानोंके सर्घकार उत्तरीयनियान
इतियादि योगस्थानोंके सर्घकारिक उत्तरीयनियान
इतियादि योगस्थानोंके सर्घकारिक उत्तरीयनियान
इतियादि योगस्थानोंके सर्घकारिक उत्तरीयनियान
इतियादि योगस्थानोंके सर्घकारिक उत्तरीयनियान

विजेषार्ध--पहले अनन्तरोपनिधामें यह बतलाया था कि ज्ञचन्य योगस्थानके स्पर्धकोंसे दुसरे योगस्थानमें तथा इसी प्रकार आगे-आगे सुच्यंगुरुके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धकोंकी वृद्धि होती जाती है। अब यहाँ इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि इस प्रकार एकसे दसरेमें, दसरेसे वीसरेमें और तीसरे आदिसे चौथे आदिमें स्पर्धकोंकी बृद्धि होती हुई वह जगश्रेणिके असंख्यावर्षे भागप्रमाण स्थान जाने पर दूनी हो जाती है। तात्पर्य यह है कि प्रथम योगस्थानमें जितने स्पर्धक होते हैं उनसे जगश्रेणिके असंस्थातवे भागप्रमाण योगस्थान आगे जाने पर वहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाळे योगस्थानमें वे दूने हो जाते हैं। पुनः यहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाले योगस्थानमें जितन स्पर्धक होते हैं उनसे जगश्रणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योग-स्थान जाने पर वहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाळे योगस्थानमें वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार उत्क्रष्ट बोगस्थानके प्राप्त होने तक यह दूने-दूने स्पर्धक होने का क्रम जान छेना चाहिये। इस प्रकार जहाँ जहाँ जाकर स्पर्धकोंकी दूनी-दूनी शृद्धि हुई ऐसे स्थानोंका यहि योग किया जाय तो वे पन्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होते हैं। ये नानाद्विगुणवृद्धिस्थान हैं और यह तो बतला ही आये हैं कि जचन्य योगस्थानमें जितने स्पर्धक हैं उनसे जगश्रणिके असंस्थातनें भागप्रमाण योगस्थान आनेपर वहाँ जो योगस्थान प्राप्त होता है उसमें दूने स्पर्धक होते हैं। ये एक्योगद्विगण-विद्यस्थान हैं। इसिक्टिए एक योगद्विगुणवृद्धिस्थान जगश्रणिके असंस्थातव भागप्रमाण होते हैं यह सिद्ध ही है। अस्तव नानाद्विगुणवृद्धिस्थानोंका अन्तर पल्योपमके असल्यातवें भागप्रभाण होनेसे वह बोदा है और एक बोगद्विगुणपृद्धिरूप दो योगस्थानोंके मध्य योगस्थानोंका यदि अन्तर अर्थात व्यवधान लिया जाय तो वह जगभणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है।

१६. समयपरूवणदाए बदुसमङ्गाणि जोगङ्गाणाणि सेढीए अर्सखेळदिमाग-मेचाणि । पंचसमङ्गाणि जोगङ्गाणाणि सेढीए अर्सखेळदिमागमेचाणि । एवं छस्सम० सचसम० अङ्कसम० । पुणरपि सचसम० छस्सम० पंचसम० बदुसम० । उवर्रि तिसम० विसमङ्गाणि जोगङ्गाणाणि सेढीए अर्सखेळदिमागमेचाणि ।

१७. वष्ट्रिपरुवणदाए अस्यि असंखेजमागवड्डि-हाणी संखेजमागवड्डि-हाणी संखेजराणवड्डि-हाणी असंखेजराणवड्डि-हाणी। तिष्णि वड्डि-हाणी केविचर्र

भतप्त यह कहा है कि नानाहिरागृणवृद्धिस्थानान्तर योदा है बौर एक्योगहिरागृणवृद्धिस्थानान्तर उससे असंख्यातरागा है, क्योंकि एक पत्योपमर्मे जितने समय होते हैं उससे जगश्रीणके आफाश प्रदेश असंख्यातराणे होते हैं।

१६. समयप्ररूपणाकी अपेक्षा चार समयवाळे योगस्थान सराव्येणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं। वस समयवाळे योगस्थान जगलेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार छह, सात और आठ समयवाळे तथा पुनः सात समयवाळे, छह समयवाळे, पांच समयवाळे, चार समयवाळे और इनसे उपरके तीन समयवाळे तथा हो समयवाळे योगस्थान अख्या-अख्या जगलेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

विद्रोषार्थ--ये पहले जो जगश्रीणके असंस्थातमें भागप्रमाण योगस्थान बतसाये हैं चनमें से सबसे जधन्य योगस्थानसे छेकर जगश्रेणिके बसंस्थासवें भागप्रमाण योगस्थान चार समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पांच समय की स्थितिवाले हैं। उनसे आगे जगश्रीणके असंस्थातवें भागप्रमाण योगस्थान छह समयकी स्थितिवाछे हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान सात समयकी स्थितिवाछे हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान आठ समयकी स्थितिबाछे हैं। पुनः उनसे आगे उतने ही योगस्थान सात समयकी स्थितिवाछे हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान छह समयकी स्थितिवाछे हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान पाँच समयकी स्थितिबाठे हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान चार समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान तीन समय की स्थितिवाले हैं और उनसे आगे **उ**तने ही योगस्थान दो समयकी स्थितिबाड़े हैं । इन योगस्थानोंका यह उत्कृष्ट अवस्थितिकास कहा है। जघन्य अवस्थितिकाल सबका एक समय है। यहां चार आदि समयकी अवस्थितिवाले सब योगस्थान यद्यपि जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहे हैं फिर भी उनमें आठ समयवाले योगस्थान सबसे थोडे हैं। इनसे दोनों ओरके सात समयवाळे योगस्थान परस्परमें समान होते इए भी असंख्यातराणे हैं। इनसे दोनों पाइवंके छह समयवाछे योगस्थान परस्परमें समान होते हुए भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों पाइवंके पाँच समयवाळे योगस्थान परस्परमें समान होते हुए भी असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों पाइबंके चार समयवाळे योगस्थान परस्पर में समान होते हुए भी असंस्थातराणे हैं। इनसे तीन समयवाछे योगस्थान असंस्थातराणे हैं। इनसे दो समय-बाळे योगस्थान असंस्थातगुणे हैं। ये तीन समयबाळे और दो समयबाळे योगस्थान बवसध्यके ऊपर ही होते हैं, नीचे नहीं होते। इस प्रकार समयप्ररूपणा करनेके बाद अब वृद्धिप्ररूपणा करते हैं।

१७. वृद्धिमरूपणाकी अपेक्षा असंस्थातमागवृद्धि और असंस्थातमागवृत्ति है, संस्थात-भागवृद्धि और संस्थातमागवृत्ति है, संस्थातगुणवृद्धि और संस्थातगुणवृत्ति है तथा असंस्थात-गुणवृद्धि और असंस्थातगुणवृत्ति है। वृत्तमें से तीन वृद्धियों और तीन वृत्तियोंका कितना कास्र कालादो होदि ? जहण्येव एमसमयं, उक्त० आवलि० असंखेल ०। असंखेलगुण विद्विन्हाणी केविचरं कालादो होदि ? जहण्येण एगसमयं, उक्त० अंतोग्रहृष्टं।

१८. जप्पाबर्षे चि सम्बत्योवाणि अइसमइनाणि योगहाणाणि । दोस्र वि पासेस् सचसमइनाणि जोगहाणाणि दो वितृद्धाणि असंखेळगुणाणि । दोस्र वि पासेस् इस्समइ० दो वि तु० असं०गु० । दोस्र विपासेस् पंचसमइ० दो वि तु० असं०गु० । दोस्र विपासेस चदुसमइनाणि जोगहाणाणि दो वि तु० असं०गु० । उवर्रि तिसमइनाणि० असंखेळगुणाणि । विस० जोग० असं०गु० ।

एवं जोगद्वाणपरूवणा समत्ता पदेसबंधद्वाणपरूवणा

१९. पदेसबंघडाणपरूवणदाए याणि चेव जोगडाणाणि ताणि चेव पदेसबंध-हाणाणि। णचरि पदेसबंघडाणाणि पगदिविसेसेण विसेसाधियाणि।

एवं पदेसबंधहाणपरूवणा समत्ता ।

सन्व-णोसन्वबंधपरूवणा

२०. यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुविधो णिइसो-अोषे०

है ? जचन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काल आविलिके असंख्यातवे भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृत्तिका कितना काळ है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्गृहुर्त है।

विशेषार्थ — यहाँपर बृद्धि और हानिका विचार किया गया है। योगवर्ग असंख्यान होनेसे यहाँ चार बृद्धि और चार हानि ही सम्भव हैं। विवक्षित योगस्यानमें एक जीव है उसके जितनी बृद्धि या हानि होकर उसे जो योगस्थान प्राप्त होता है वहाँ वह बृद्धि या हानि होती है। इसी प्रकार सब योगस्थानों में बृद्धि और हानिका विचार कर लेना चाहिये।

१८. अस्पबहुत्बकी अपेक्षा आठ समयवाळे योगस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे दोनों ही पाइबोंमें सात समयबाळे योगस्थान दोनों ही तुल्ब होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पाइबों में सात समयबाळे योगस्थान दोनों ही तुल्ब होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पाइबों में छह समयबाळे योगस्थान परस्परमें समान होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पाइबों में बाँच समयबाळे योगस्थान दोनों ही समान होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पाइबें आगोंमें बार समयबाळे योगस्थान परस्परमें समान होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पाइबें आगोंमें बार समयबाळे योगस्थान परस्परमें समान होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे उत्तर तीन समयबाळ योगस्थान असंस्थातगुणे हैं। इनसे उत्तर तीन समयबाळ योगस्थान असंस्थातगुणे हैं। इनसे प्रतर्भ होना हो हो प्रतर्भ समान होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे प्रतर्भ होना होने प्रतर्भ होना होने समयबाळ योगस्थान असंस्थातगुणे हैं।

प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा

१९. प्रदेशबन्धप्ररूपणाकी अपेक्षा जो योगस्थान हैं वे ही प्रदेशबन्धस्थान हैं। इतनी विशेषता है कि प्रदेशबन्धस्थान प्रकृतिविशेषकी अपेक्षा विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार प्रदेशबन्धस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

सर्व-नोसर्वप्रदेशवन्धप्र रूपणा

२०. जो सर्ववन्य और नोसर्ववन्य है उसका वह निरुष्त है-ओप और आदेश। बोध

आदे । ओपेण णाणावरणीयस्स पदेसवंधी कि सञ्चवंधी जोसन्ववंधी ? सञ्चवंधी वा णोसन्ववंधी वा । सञ्चाणि पदेसवंधंताणि बंधमाणस्स सञ्चवंधी । तद्णं वंधमाणस्स णोसन्ववंधी । एवं सत्तरणं कम्माणं । णिरएसु मोहाउगं और्ष । सेसाणं णोसन्ववंधी । एवं याव अणाहारग चि णेदञ्जं ।

उक्तस्स-अणक्तस्मपदेसबंधपरूवणा

२१. यो सो उकस्सवंघो अणुकस्सवं घो णाम तस्स इमो दुवि० णि०-ओघे० आदे० । ओघे० णाणावरण० कि उकस्सवंघो अणुकस्सवंघो ? उकस्सवंघो वा अणुकस्सवंघो वा । सन्त्रकस्सपदेसं वंघमाणस्स उकस्सवंघो । तद्णं वंघमाणस्स अणुकस्सवंघो । एवं सत्तर्णा० । णिरयेसु मोहाउगं ओघं । सेसाणं अणुकस्सवंघो । एवं याव अणाहारग चि णेदन्वं ।

से झानावरणीय कर्मका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है ? सर्वबन्ध भी है और नोसर्वबन्ध भी है। सब प्रदेशोको बॉबनेवालेके सर्वबन्ध होताहै और उनसे न्यून प्रदेशोंका बॉबनेवाले जीवके नोसर्वबन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। नरकगतिमें मोहनीय और आयुकर्मका भक्क ओपके समान है। तथा शेष कर्मोंका वहाँ नोसर्वबन्ध है। इसी प्रकार कमाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विश्वेषार्थ — इन दोनों मिळे हुए अधिकारों में प्रदेशोंकी अपेक्षा सर्वकर्य और नोसर्व-बन्यका विचार ओय और आदेशसे किया गया है। ओयसे विचार करते समय ज्ञानावरणादि आठों कमीं का सर्वकर्य और नोसर्वकर्य यह दोनों ही प्रकारका बन्य वतलाया गया है। इसका तार्त्य यह है कि अपने आपने योग्य उन्छुष्ट योगके होनेपर जब ज्ञानावरणादि कमींके उन्छुष्ट प्रदेशोंका बन्य होनोर नोसर्वकर्य कहलाता है। मार्गणाओंमें मात्र नरक्यालिकी अपेक्षा विचार किया है और शेष मार्गणाओंमें इसी प्रकारसे जानने मरका संके किया है। नरक्यातिमें मोट-नीय और आयुक्तमंका प्रदेशकन्य अपेषके समान सम्भव होनेसे वहां इन दो कमों का तो ओषके समान सर्वकर्य और नोसर्वकर्य कहा है तथा शेष कमीं का नोसर्वकर्य वतलाया है, क्योंकि ओपसे इन छह क्योंमें सबसे अधिक प्रदेशोंका बन्य अश्वस्त्रकार्ण और होता है, जो दोनों काण्यों नरक्रमें सम्भव नहीं है। इसके अधिरक्ष अन्य विज्ञानी वार्तिस्व सम्भव होता है, जो दोनों काण्यों नरक्रमें सम्भव नहीं है। इसके अधिरक अन्य विज्ञानी विज्ञान कर्योंका बन्य सम्भव हो उनका सर्वकर्य और नोसर्वकर्य यससम्भव जानना चाहिए यह उक्त कर्यकर्यका तार्यर है।

उत्क्रष्ट-अनुत्कष्टप्रदेशबन्धप्रहूपणा

२१. जो उन्छट्टम्प और अनुक्तृष्टम्प है इसका यह निर्देश है—ओषनिर्देश और आदेश निर्देश। ओपसे झानाइएण इनेका क्या उक्तृष्टम्प होता है या अनुक्तृष्टम्प होता है श क्युक्तृष्टम्प होता है श क्युक्तृष्टम्प होता है श हिता है। इसी होता है और अनुक्तृष्टम्प भी होता है। इसी होता है और अनेक्षेत्रम्प होता है कीर करते न्यून प्रदेशोंको वॉधनेवालेके अनुक्तृष्टम्प होता है। इसी प्रकार सातों कर्मों के विषयमें जानना चाहिए। नारिक्योंमें मोहनीय और बायुक्नेका मंग शोकके स्थान है। वसा वहाँ होय कर्मों का अनुक्तृष्टम्प होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

जहण्ण-अजहण्णपदेसर्वधपरूवणा

२२. यो सो जहण्णबंघी अजहण्णबंघी णाम' तस्स हमी दुवि० णिहेसी-जीषे० आदे० | ओषे० णाणावर० किं० जहण्णबंघी अजहण्णबंघी ? जहण्णबंघी वा अजहण्ण-बंघी वा । सन्वजहण्णयं पदेसमां बंघमाणस्स जहण्णबंघी । तदुविर बंघमाणस्स अजहण्ण-बंघी । एवं सत्तरणं कम्माणं । णिरएसु ओधं पहुब अजहण्णबंघी । एवं याव अणाहारग ति णेदच्वं ।

सादि-अणादि-धुव-अद्भवपदेसवंधपरूवणा

२३. यो सो सादियवंषो अणादियवंषो धुववंषो अद्भुववंषो णाम तस्स इमो दुवि ० णि०-ओषे० आदे० । ओषे० छण्णं कम्माणं उक्तस-जहण्ण-अजहण्णपदेसवंषो किं सादियवंषो०४ ? सादिय-अद्धुववंषो । अणुकस्सपदेसवंषो किं सादि०४ ?

विशेषार्थ—हन दोनों अनुयोगद्वारों में पूरा स्पष्टीकरण सर्ववन्ध और नोसर्ववन्ध अनु-योगद्वारोंके विवेषनके समय जिस प्रकार कर आये हैं उसी प्रकार कर लेना चाहिये। जिस प्रकार सर्ववन्धसे उन्क्राहरूपसे बंधे हुए सब प्रदेश विवक्षित हैं उसी प्रकार उन्क्रप्टवन्धसे भी उन्क्रप्ट केंचे हुए प्रदेश विवक्षित हैं और जिस प्रकार नोसर्ववन्धमें न्यून बंधे हुए प्रदेश विवक्षित हैं उसी प्रकार अनुक्रप्ट बन्धमें भी न्यून बंधे हुए प्रदेश विवक्षित हैं। इनमें केवल अन्तर इतना है कि उन्क्रप्टवन्धमें समुदायकी मुख्यता है और सर्ववन्ध अवयवप्रधान है।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशबन्धप्ररूपणा

२२. जो जघन्यबन्ध और अजपन्यबन्ध है उसका यह निर्देश है—जोघ और आरेरा। ओघसे झानाबरणकर्मका क्या जघन्यबन्ध होता है या अजघन्यबन्ध होता है जघन्यबन्ध मी होता है और अञ्चयन्यवन्ध मी होता है। सबसे जघन्य प्रदेशोंको बॉधनेवालेके अञ्चयन्य होता है और उनसे अधिक प्रदेशोंको बॉधनेवालेके अञ्चयन्य बन्ध होता है और उनसे अधिक प्रदेशोंको बॉधनेवालेके अञ्चयन्य बन्ध होता है। इसी प्रकार होग सात कर्मोंकी अपेक्षासे जानना चाहिए। स्कीम ओपकी अपेक्षा अज्ञयन्यबन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणावक जानना चाहिये।

विशेषार्थ — नोसवबन्धसे जधन्यबन्धमें क्या अन्तर है इसका स्पष्टीकरण अनन्तर पूर्व कहे गये विशेषार्थसे हो जाता है। यहाँ एक विशेष वात यह कहनी है कि यहाँ नरकोंमें अजपन्यबन्ध क्यों है इसका खुळासा 'ओयं पहुव' इस पहहारा किया है। इस आधारसे सब मार्गणाओंमें कहाँ ओपकी अपेक्षा जधन्यबन्ध संभव है और कहाँ अजपन्यबन्ध संभव है

इसका खुळासा कर छेना चाहिये।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशवन्धप्रह्रपणा

२३. जो सादिबन्ध, अतादिबन्ध, धुवबन्ध और अधुववन्ध है उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओषसे छह कर्मोका उत्कृष्टप्रदेशवन्ध, जपन्यप्रदेशवन्ध और अजपन्यप्रदेशवन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या धुवबन्ध है या व्या अधुवबन्ध है ? सादिबन्ध है और अधुवबन्ध है। अनुकृष्टप्रदेशबन्ध क्या सादिबन्ध है,

१. ता॰ व्रती जङ्गणवंधी णाम इति पाठः ।

सादियबंबो वा जणादियबंघो वा धुबबंबो वा अद्भुबबंघो वा । मोहाउमाणं उक्क० अणु०-जह०-अजह०पदेसबंघो किं सादि०४१ सादिय-अद्भुववंघो । एवं ओघर्मगो अचक्खु०-सवसि० । णवरि सवसि० धुवं वज्ज० । सेसाणं उक्क०-अणु०-जह०-अजह०-पदेसबंघो सादिय-अद्भुवबंघो ।

क्या अनादिकन्य है, क्या ध्रुवकन्य है या क्या अध्रुवकन्य है ? सादिकन्य है, अनादि-कन्य है, ध्रुवक्य है और अध्रुवक्य है। मोहनीय और आयुक्किश एक्ट्रप्रदेशक्य, अयुक्तकृप्रदेशक्य, जयन्य प्रदेशक्य और अजयन्यप्रदेशक्य क्या सादिक्य है, क्या अनादिकन्य है, क्या ध्रुवक्य है या क्या क्युप्रवक्य है? सादिक्य है और अध्रुवकन्य है। इसी प्रकार ओपके समान अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवॉके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवॉके ध्रुवमंग नहीं होता। शेष सब मागणाओंमें उक्तकृप्रदेशन्य कन्य, अयुक्तकृप्रदेशकन्य, जयन्यप्रदेशकन्य और अजयन्यप्रदेशकन्य सादि और अध्रुव हो प्रकासका होता है।

विशेषार्थ--यहाँ मोहनीय और आयुक्मके सिवा शेष छह कर्मी का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध महमसाम्पराय गणस्थानमें होनेसे इसके पहले अनादिकालसे इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता रहता है, इसल्जिये तो इन छह कर्मीका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनादि है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होने पर जब पुनः वह जीव गिर कर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगता है तब वह सादि है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धमे प्रव और अधव ये भेद भव्य और अभव्यकी अपेक्षासे हैं। यही कारण है कि इन छह कर्मी का अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदिके भेदसे चारों प्रकारका बतलाया है। इनका उत्क्रष्ट प्रदेशवन्य सदमसाम्पराय गुणस्थानमें होता है, इसलिये वह सादि और अभव यह दो प्रकारका है यह स्पष्ट ही है। अब रहे जघन्य और अजधन्यबन्ध सी इनका जघन्यबन्ध सहम एकेन्द्रिय अपर्याप्तके भवके प्रथम समयमें सम्भव है और इसके बाद अज्ञधन्यबन्ध होता है। यतः इस पर्यायका प्राप्त होना पुन पुनः संभव है, अवः ये दोनों बन्ध सादि और अभ व इस प्रकार दो प्रकारके ही कहे हैं। मोहनीय और आयुके उत्क्रष्ट आदि चारों प्रकारके बन्ध सादि और अध्नव ही हैं। कारण कि आयुकर्म तो अध्नवबन्धी है ही, क्योंकि उसका बन्ध विवक्षित भवके प्रथम त्रिभागमें या उसके बाद द्वितीयादि त्रिभागोंमें होता है। यदि वहाँ भी न हो तो अन्तमें अन्तर्मुहर्त आयु शेष रहने पर होता है इसकिए इसके वत्कृष्ट आदि चारों सादि और अधुव हैं यह स्पष्ट ही **है**। रहा मोहनीय कर्म सो इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है और जधन्य प्रदेशबन्ध सुध्म एकेन्द्रिय सकस्य-पर्याप्तकके भवके प्रथम समयमें होता है। यतः इन दोनों प्रकारके बन्धोंका पुनः पुनः प्राप्त होना संभव है और इनके बाद कमशः अनुत्कृष्ट और अजयन्य प्रदेशबन्धोंका भी पूनः पुनः प्राप्त होना संभव है अतः ये चारां प्रकारके बन्ध सादि और अधव ये तो प्रकारके कहे हैं। अक्षदर्शन और भव्यमार्गणा सक्ससांपरायके आगे तक भी संभव हैं, अतः इनमें ओघप्रक्रपणा अविकल घटित हो जानेसे इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है। मात्र भन्य मार्गणामें प्रव भंग संभव नहीं है। शेष सब मार्गणाएँ बदलती रहती हैं अतः उनमें सब कमों के उत्कृष्टांद् चारोंके सादि और अध्रव ये दो ही भंग कहे हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिन मार्गणाओं में जितने कर्मोंका बन्ध संभव हो तथा ओप या आदेशसे उत्कृष्ट, अनुतकृष्ट, जघन्य और अजघन्य वन्ध संभव हो उसी अपेक्षासे ये भंग घटित करने चाहिए।

सामित्तपरूक्णा

२४. सामित्तं दुविधं-ज्ञहण्णयं उक्षस्सयं च । उक्षस्सए पगदं । दुवि०-अोषे० आदे० । ओषे० छण्णं कम्माणं उक्षस्सपदेसवंधो कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा छिव्यथंधयस्स उक्षस्सजोगिस्स । मोह० उक्क०पदे०वं० कस्स ? अण्णा० चदुगदियस्स पंचिदियस्स सण्णि० मिच्छादिष्टिस्स वा सम्मादिष्टिस्स वा उक्षस्सजोगिस्स उक्कस्सए पदेसवंधे वद्दमाणगस्स । आउगस्स उक्क० पदे०वं० कस्स ? अण्णा० चदुग० पंचि० सण्णि० मिच्छादिष्टि० वा सम्मादिष्टि० वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० अट्ट-विधवंधास्स उक्कस्सजोगिस्स । एवं ओधभंगो कायजोगि-सोमक०-अचक्सु०-भवसि०-आवाग्य वि।

२५. णिरएसु सच्चणं क० उक्क० पदेसवं० कस्स ? अण्ण० मिच्छा० वा सम्मा० वा सव्वाहि पञ्जनीहि पञ्जनग० उक्कस्सजोगिस्स सत्तविधवंधगस्स । आउ० उक्क० पदेसवं० कस्स ? अण्ण० सम्मा० वा मिच्छा० वा सव्वाहि पञ्ज० अद्विविध० उक्क० पदे०वं०। एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि सत्तमाए आउ० मिच्छा० अद्विविध-वंधग० उक्क० ।

स्वामित्वप्ररूपणा

२%. स्वामित्व दो प्रकारका है—जपन्य और जकुष्ट। उक्कष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—जीपनिर्देश और आरेदानिर्देश। ओचसे छह कर्मों के उक्कष्ट प्रदेशप्रत्यका स्वामी कीन है? जो अन्यतर उरसामक वा अपक छह प्रकारक कर्मा का बत्य कर सहा है और उक्कष्ट योगावाजा है वह उक्त छह कर्मों के उक्कष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो चारा गतिका पद्मीत्रिय संक्षी मिक्क्याहिए सा मिक्क्याहिए उक्कष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो चारा गतिका पद्मीत्रिय संक्षी मिक्क्याहिए उक्कष्ट योगावाजा है और उक्कृष्ट प्रदेशवन्यक कर रहा है वह उक्त सात कर्मों के उक्कृष्ट प्रदेश वन्यका स्वामी है। आयुक्तमंक उक्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो चारों गतिका पद्मीत्रिय संक्षी मिक्क्याहिए या सम्यव्यक्षित्र अपेक स्वयं प्रताम के क्षित्र है। आयुक्तमंक उक्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो चारों गतिका पद्मीत्रिय संक्षी मिक्क्याहिए या सम्यव्यक्षित्र अपेक स्वयं प्रताम के जो आयुक्तमंक उक्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। अप्य प्रकार के कर्मों के वन्य कर रहा है और उक्कृष्ट योगावाला है वह अन्यतर जीव आयुक्तमंक उक्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इस प्रकार ओपके समान काययोगावाले, लोमकपायवाले, अच्युक्तनंवाले, अव्युक्तनंवाले, अव्युक्तिक जीविक जाना चाहिये।

२५. नारिकवाम सात कर्मों के उक्तृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? अन्यतर मिथ्या-दृष्टि वा सम्बन्धि जीव जो सब पर्योप्तियोंसे पर्याप्त है, उक्कृष्ट योगवाला है और सात प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है वह उक्त सात कर्मों के उक्तृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। आयुक्तमेंके व्यक्तुष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी बीन है ? अन्यतर सिच्यादृष्टि या सम्बन्धि जीव जो सब पर्या-प्रिवांसे पर्याप्त है, रिकृष्ट योगवाला है और आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है वह आयुक्तमेंक एक्तृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विदेषता है कि सातवीं पृथिवीमें आठ कर्मों का बन्ध करनेवाला सिच्यादृष्टि जीव आयु-कर्मका एकष्ट प्रदेशवन्य करता है। २६. तिरिक्खेस सत्तरणं कम्माणं उक्त० प०दे०व ० कस्स ? अण्या० पंचि० सिष्णास्स सञ्चाहि पजाचीहि पजा० सम्मा० वा सिच्छा० वा सत्तविषयंथ० उक्क० जोगि० उक्क०पदे०। आउ० उ०पदे० कस्स०? अष्या० पंचि० सिष्णा० सच्चाहि पजा० मिच्छा० वा सम्मादिष्टि० वा अष्ट्रविषयं ० उक्क०जो० उक्क० पदे^२०। एवं पंचि०तिरि०३।

२७. पॅविं तिरि अपज । सचणं क । उक्क । कस्स । ? अण्ण शिष्णास्स सच-विधवं घ । उन्जो । उन्पदे । वं । वह । अाउ । उन्पदे । कस्स ? अण्ण शिष्णास्स अङ्कविधवं । उक्क । जो । उक्क ^र पदे । । एवं सत्वजयज्ञचाणं एहंदि । विगिर्ले । पंच-कायाणं च अप्यप्पणो परियोयं गादच्वं । बादरे बादरे चि ण माणिदच्वं । सुदुमे सुदुमें चि ण माणिदच्वं । पञ्जचे पञ्जचगे चि ण भाणिदच्वं । अपञ्जचने अपञ्जचग चि ण माणिदच्वं ।

२८. मणुसेसु छण्णं कम्माणं ओघं। मोह० उक्क०सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्तविघ० उक्क०जोगि० उक्क०पदे०। एवं आउ०। णवरि अहविघवं०। एवं

२६. तिर्विश्वीं सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्थक। स्वामी कीन है ? अन्यतर पश्चिन्द्रय संवी जीव जो सब पर्वाप्तियोंसे पर्वाप्त है, सम्बन्दिष्ट है या मिच्यादृष्टि है, सात प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है और उद्देश योगवाजा है वह उक कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्थक। स्वामी है। आयुक्ताके उद्देश पर्वेशवन्थक। स्वामी कीन है ? जो अन्यतर पश्चिन्द्रिय संबी जीव सब पर्वाप्तियोंसे पर्वाप्त है सम्बन्धदृष्टि या सम्बन्दृष्टि है, आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाजा है वह आयुक्तमंक उत्कृष्ट प्रदेशवन्थक। स्वामी है। इसी प्रकार पश्चिन्द्रय त्येश्वाप्तिक जानना चाडिये।

२७. पञ्चीन्त्रयिविश्व अपयोग्रिकोंमें सात कर्मों के उन्कृष्ट प्रदेशवन्ध्रका खामी कीन है ? जो अन्यवर संब्री जीव सात प्रकारके कर्मों का बन्य कर रहा है, उन्कृष्ट योगावाला है और उन्कृष्ट प्रदेशवन्यस्य अवस्थित है वह उन्न कर्मों के उन्नष्ट प्रदेशवन्यका स्वासी है। आयुक्तमेंके उन्कृष्ट प्रदेशवन्यका खामी कीन है ? जो अन्यवर संब्री जीव आठ प्रकारक कर्मोंका बन्य कर रहा है, उन्कृष्ट योगावाला है और उन्कृष्ट प्रदेशवन्यमें अवस्थित है वह आयुक्तमेंके उन्कृष्ट प्रदेशवन्यका खामी है। इसी प्रकार सब अपयोग्न तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पॉच स्थावरक्षायिक जीवोंके अपने अपने योगके अयुसार जानना चाहिए। किन्तु वादरांका स्वामित्व वतवाते समय वादर ऐसा नहीं कह्ना चाहिए। सूर्योंका स्वामित्व बतवाते समय प्रदास ऐसा नहीं कह्ना चाहिए। प्रयोग्न केवा स्वामित्व स्थावरक्षायिक क्षत्रों कह्मा खामित्व बतवाते समय अपयोग्न ऐसा नहीं कहना चाहिए।

२८. मतुष्योंने छह कर्मों का भंग ओक्के समान है। मोहनीबके उत्क्रष्ट प्रदेशक्त्यका स्वामी कीन है ? जो अस्पगरिष्ट या मिस्यारीष्ट जीव सात प्रकारक कर्मों का वन्य कर रहा है, जरकुष्ट मोगा। का है और उत्कृष्ट प्रदेशक्त्यका करकुष्ट मोगा। का है और उत्कृष्ट प्रदेशक्त्यका स्वामी है। इसी प्रकार आकुक्तमके उत्कृष्ट प्रदेशक्त्यका स्वामी जीना वाहिए। इत्तरी विशेषता

१. ता॰ प्रती॰ सम्मादिहि॰ मचहिरकंष० उ॰ पदे॰ इति पाटः । २. ता॰ प्रतीउक्क० उक्क० इति पाटः । ३. ता॰ प्रतीपञचन पञ्चमा इति पाटः ।

मणुसपजच-मणुसिणीसु ।

२९. देवार्ण णिरयसंगो याद उत्तरिसमेवजा' ति । अणुदिस यात्र सम्बद्ध ति एवं । णवरि सस्मादिष्ट्रिस्स सत्तविधवं० उक्त०जो० उक्त०वदे०वं० । आउ० उक्त०पदे० अद्वविध० उक्त० ।

२०. पैचिंदिः छण्णं कः ओधं। मोहः उक्कःपदेः कः ? अण्णः चदुः गदियः सिष्णास्त मिच्छाः वा सम्माः वा सत्तविधवंधगः उक्कः। एवं आउः।

णवरि अद्वविध० उक्त०। एवं पंचिंदियपञ्जन०।

२१. तस॰२ छण्णं क॰ ओषा सेसं पंचिदियमंगी। णवरि अष्ण॰ चदु-गदिय॰ पंचि॰ सप्णि॰ मिच्छा॰ वा सम्मा॰ वा सचविषयं॰ उक्क॰। एवं आउ०। णवरि अक्कृतिय॰ उक्क॰।

३२. पंचमण ०-तिष्णिवचि० छण्णं क० बोधं। मोह० उ० बण्णा० चटु-गदि० सम्मा० वा सिच्छा० वा सचविचवं उक्क०। एवं आउ० णवरि अहविघ० है कि यह आउ प्रकारके क्यों का बन्च करनेवाला होता है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यितियोंके ज्ञानना चाहिए।

२९. देवोंमें उपरिम मैंबेयक तक नारिकवींके समान जानना चाहिए। अनुदिशींसे छेकर सर्वांभीसिदनक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विद्येवना है कि नो सम्बग्दरिय सात प्रकारक कर्मों का क्या कर रहा है, उक्तस्य योगवाजा है और उक्तष्ट प्रदेशक्यों अवस्थित है वह सात कर्मों के उक्तष्ट प्रदेशकप्यका स्वामी है। तथा जो आठ प्रकारके कर्मोंका क्या कर रहा है, बक्तुष्ट योगवाजा है और उक्तष्ट प्रदेशक्यों अवस्थित है वह आयुक्ताके उक्तप्रस्

प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३०. पक्कंट्रियों में छह कमें का भक्त ओपके समान है। मोहनीयकमंद्रे कहरूट प्रदेश-बन्धका समामी कीन हैं। जो अन्यवार चारों गतियों का संब्री मिय्याद्राटिया सम्यव्हांट जीव सात प्रकारके कमें का बन्ध कर रहा है और उक्तर योगवाला है वह मोहनीयकमंत्रे उक्तर प्रदेशक्यका समामी जाना चाहिए। प्रदेशक्यका समामी है। इसी प्रकार आयुक्तमंत्रे उक्तर प्रदेशक्यका समामी जाना चाहिए। इतनी विशेषण है कि जो आठ प्रकारके कमीज क्या कर रहा है, उक्तरट योगवाला है और उक्तरट प्रदेशक्य कर रहा है वह आयुक्तमंत्रे उक्तरट प्रदेशक्यका स्वामी है। इसी प्रकार प्रक्रीन्त्रप्रथान जोकि जोना चाहिए।

4१. अस और असपबीत जीवों से छह कर्मीका भंग ओवके समान है। शेव दो कर्मों का भंग एक्केंट्रियों के समान है। इतनी विश्लेषता है कि जो अन्यवार चारों गतियोंका एक्केंट्रिय संबंधित प्रसाद के स्वार्ध के स्वार्ध कर कर रहा है और उन्हें इति संबध्ध कर प्रसाद के स्वार्ध कर रहा है और उन्हें इति प्रसाद कर रहा है और उन्हें इति प्रसाद कर रहा है की अंध्याप आपकों के उन्हें इति प्रसाद कर रहा है जो आया अस्थित कर कर रहा है जो आया अस्थित कर कर रहा है और उन्हें इति प्रसाद कर रहा है उन स्वार्ध कर रहा है इति उन स्वार्ध कर रहा है उन स्वर

३२. वॉचों मनोयोगी और तीन बचनयोगी जीवोंमें छह कमें का भंग ओयके समान है। मोहनीयके उन्कृष्ट प्रदेशवरूपका खामी कीन है ? जो अन्यवर चारों गतियोंका सम्यवरृष्टि या निस्वारृष्टि जीव सात प्रकारके कमीं का बन्य कर रहा है और उन्कृष्ट प्रदेशकरूमें अवस्थित

ता॰ प्रतौ उवस्मि केवजा इति पाठः।

उद्भः । दोवनिखोगी० वसपजनभंगो ।

- ३२. ओरालि॰ छण्णं क॰ ओघं। मोहाउगस्स उक्क॰ पदे॰ क॰ १ अण्णं विरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सण्णि॰ मिच्छा॰ वा सम्मा॰ वा सन्वविष्यं॰ उक्क॰ । णवरि आउ॰ अद्वविष्यं॰। ओरालि॰ मि॰ सन्तर्णां क॰ उक्क॰ पदे॰ क॰ १ अण्णं विरिक्ख॰ मणुस॰ सण्णि॰ मिच्छा॰ वा सम्मा॰ वा सन्वविष्यं॰ उक्क॰ से काले सरीरपञ्जिन गाहिदि नि। आउ॰ उक्क॰ क॰ १ दुगदि॰ तिरिक्ख॰ मणुस॰ मिच्छा॰ अद्वविष्यं॰ उक्क॰।
- ३४. बेउ० सत्तर्णां क० उक्क० पदे० क० ? अष्णा० देव० णेरह० सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्त्रविधवं० उक्क० । एवं आउ० । णविर अहविष० उक्क० । वेउव्वि०मि० सत्तर्णां क० उक्क० पदे० क० ? अण्णा० देव० णेरह० सम्मा० वा मिच्छा० वा से काले सरीरपञ्जतिं जाहिदि ति सत्त्रविध० उक्क० ।
- ३५. आहारका० सत्तर्णां क० उ० पदे० क० ? अण्ण० सत्तविघ० उक्क० । एवं है वह मोहनीय कर्मके उक्कष्ट प्रदेशनथ्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तमेके उक्कष्ट प्रदेशनय्य का स्वामी जानता चाहिए। इतनी विकोषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा

का स्वामा जानना चाहिए। इतना विशेषता है ।कं जा आठ प्रकारक कमा का बन्ध कर रहा है और उक्तुष्ट प्रदेशनन्थमें अवस्थित है वह आयुक्तरके उक्तुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। वो बचनयोगी जीवींका भंग अपयोगकोंके समान है।

औदारिककाययोगी जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। मोहनीय और आय-

- र २. जादारिक कायवागी जावाम छह कमाका मंग आपक समान है। महिनाय बार आपु कमके उत्तक प्रदेशनय्वका संवामी कीन है ? जो अन्यवर विश्वक और मतुष्य संक्षी सिण्याहिय या सम्यग्दिष्ट जीव सात प्रकार के कमी का न है । जो अन्यवर विश्वक और मतुष्य संक्षी स्वव्याहिय या सम्यग्दिष्ट जीव सात प्रकार के कमी का व्यवस्थत है वह उत्तक्ष्य प्रदेशन्यका स्वामी है। इतनी विश्वेषता है कि आठ प्रकार के कमी का व्यवस्थत विश्वक और सतुष्य संक्षी सात अकार के कमी के उत्तक्ष्य और मतुष्य संक्षी मिण्याहिए या सम्यग्दिष्ट जीव सात प्रकार के कमी के वन्य कर रहा है, उत्तकृष्ट प्रदेशन्यक्ष अवस्थित है और अन्यतर समयमें अदिश्य स्वामी कोन है ? जो दो गतिका विश्वक स्वामी कोन है । जो दो गतिका विश्वक स्वामी कोन है ? जो दो गतिका विश्वक स्वामी कोन है । अपुक्रमंक उत्तक प्रदेशन्यक्ष स्वामी है।
- ३१. बैकियिककाययोगवाले जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर देव और नारकी सम्यन्दृष्टि या मिल्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रवेशवन्यमें अवस्थित है वह उक्त कर्मों के उत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तमेंके उत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मों का वन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रवेशवन्यमें अवस्थित है वह आयुक्तमेंके उत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी है। वैकियिकस्थिकस्थितीयो जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर देव और नारकी सम्यन्दिष्ट या मिल्याइक जीव वतनन्तर समयम इरोरपर्यापिको प्रकृष्ट अवशेषत्र है आत प्रकारक कर्मों के अत्कृष्ट प्रवेशवन्यका स्वामी है।
 - २५. आहारककाययोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन

आउ० । णवरि अद्दिष्यः उक्तः । एवं आदारमिः । णवरि से काले सरीरपजीषं गाहिदि चि उक्तः । कम्मद्रः सत्तर्णं कः उ०पदेः कः ? अण्णः चरुगदियः पंचिंः सण्णिः मिच्छाः सम्माः सचविषः उक्तः ।

३६. इत्यि०-पुत्सि० सच्चणं क० उ० पदे० क० ? अष्ण० तिगदि० सम्पि० मिच्छा० वा० सम्मा० वा सच्चिय० उक्क० । णवुंसमे सच्चणं कम्माणं उक्क० पदे० क० ? सम्मा० मिच्छा० तिगदि० सम्पि० सच्चियवं० उ० । एवं० आउ० । णविर अद्विय० । अवगदवे० छण्णं क० ओषं । मोह० उ० पदे० कस्स ? अण्ण० अणियद्वि० सच्चिय० उक्क० ।

३७. कोध-माण-माया० सत्त्रणं क० उक्क० पदे० क० १ अण्य० चदुगदिय० पंचिं० सर्ष्यि० सम्मा० मिच्छा० सन्वाहि पञ्ज० सत्त्रविध० उक्क०। एवं आउ०।

है ? जो अन्यतर जीव सात कमें का बन्ध कर रहा है और उत्तर प्रेश्चवन्धमें अवस्थित है वह सात मकारके कमों के उत्तरुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तके उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तके उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार करा है और उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आहारफिमककायपोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विश्लेषता है कि जो तदनन्तर समयमें सरीरपर्यामि महण करनेवाजा है और उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका अवस्थित है वह उत्तर कर समयमें सरीरपर्यामि महण करनेवाजा है और उत्तर प्रवास का स्वामी है। कामिणकायपोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी है। कामिणकायपोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है? जो अन्यतर चार गतिका प्रकारक प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है? जो अन्यतर चार गतिका प्रकारक प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है? जो अन्यतर चार गतिका प्रकारक प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है? जो अन्यतर चार गतिका प्रकारक प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है कि स्वाप्त क्ष्य कर रहा है और उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यको अवस्थित है वह उत्तर क्ष्यों का उत्तरुष्ट कर्मों का उत्तर करा गतिका प्रकारक क्ष्यों का स्वाप्त क्षा क्ष्य कर रहा है और उत्तरुष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी है।

३६. सीचेंदी और पुरुषवेंदी जीवांमें सात प्रकारके कमों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर तीन गतिका संब्धी मिय्याहाँट या सम्बन्दांट जीव सात प्रकारके कमों का वन्य कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यमें अवस्थित है वह उक्त कमों के उरहेट प्रदेशवन्यका स्वामी है। नपुंसकवेंद्री जीवांमें सात प्रकारके कमों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका सामी कीन है ? जो सम्बन्धवेद्री जीवांमें अवस्थित है वह उक्त कमों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार हम तीनों वेदवाले जीवोंमे आयुक्तमेंक अक्ष्य प्रदेशवन्यका स्वामी जानना चाहिये। इतनी विद्येषता है कि वह आठ प्रकारके कमों का वन्य करनेवाला होता है। अपगावदेदी जीवोंमें छह प्रकारके कमों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका होता है। अपगावदेदी जीवोंमें छह प्रकारके कमों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी ओपके समात है। मोहनीय कमेंक उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर अविश्वतिकरण जीव सात प्रकारके कमों का वन्य कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका वस कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका वस हमा कीन है ? जो अन्यतर अविश्वतिकरण जीव सात प्रकारके क्षाने वस कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका वस हमा कीन है ? को अन्यतर अविश्वतिकरण जीव सात फ्रकारके क्षाने वस कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है।

३७. कोच, मान और मावाकपाय बाले जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी कींत है ? जो अन्यतर चार गतिका पश्चेन्द्रिय संझी सस्मतरिक या सिप्यादिक बीच वस्त पर्धाप्तियोंसे पर्धाप्त है, सात प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रवेशवन्धमें अवस्थित है वह एक कर्मों के उत्कृष्ट प्रशेशवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तमेंके प्रकृष्ट प्रवेशवन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जी

णवरि अद्वविध० उक्क० ।

३८. मदि-सुद-विमंग०-अन्भवसि०-मिच्छा० सत्तर्णा० क० उक्क० पदे० क० १ अण्ण० चदुगदि० सिण्यास्स सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णविर अद्वविध० उक्क० । आभिषि०-सुद-ओधि० छण्णं क० ओधं । मोह० उ० पदे० क० १ अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क० । एवं ओधिदं०-सम्मा०-सुहग० । मणपञ्ज० छण्णं० ओघं । मोह० उ० पदे० क³० १ अण्ण० सत्तविध० उक्क० । एवं संजदा० ।

३९. सामाइ०-छेदो० सत्तर्ष्णां क० अष्ण० सत्तविष० उक्क०। एवं आउ०। णवरि अद्वविष० उक्क०। एवं परिहार०। एवं चेव संजदासंजदा०। णवरि दुगदियस्स।

आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्रमेंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३८. मत्बज्ञानी, श्रताज्ञानी, विभंगज्ञानी, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात प्रकारके कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका संझी जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त कर्मोंके उरकृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उरकृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कमोंका बन्ध कर रहा है और उसकृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्रमंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आभिनिबोधिक-हानी, श्रतहानी और अवधिहानी जीवोंमें छह प्रकारके कमोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके सँमान है । मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है १ जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है वह मोहनीय कर्मके उत्कव्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयकर्मके उत्कव्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कमौंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्तमंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यन्द्रष्टि और क्षायिकसम्यन्द्रष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययहानी जीवोंमें छह कर्मीका भंग ओघके समान है। मोहनीयके धरकुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उस्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह मोहनीय कर्मके चरकुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कमीका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयक्रमें के जलाव्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये।

३९. सामायिकसंयत और छेदीपस्थापनासंयत जीवोंमें सात कर्मों के उन्हास्ट प्रदेशनम्बका स्वामी कीन है? जो अन्यतर जीव सात प्रकारके कर्मों का वन्य कर रहा है और उन्हास्ट प्रदेश-बन्धमें अवस्थित है वह उन्हास्त्र के उन्हाद प्रदेशनम्बका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तमें व्हास्त्र प्रवासन है वह उन्हासने अवस्थात है वह उन्हासने प्रवासन वाहिए। हतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मों का नम्य कर रहा है और उन्हास्त्र प्रदेशनम्बन अवस्थित है वह आयुक्तमें अन्हास्त्र हमाने अवस्थात है वह आयुक्तमें अन्हास्त्र प्रदेशनम्बन स्वामी है। इसी प्रकार परिहारविद्युद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। स्वास इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संवतासंयतींमें रो

१. ता॰प्रती उ० प॰ उद्ध० इति पाठः ।

४०. किष्ण०-णील०-काउ० सत्तरणं क० उक्क० पदे० क० ? अष्ण० तिगदि० पंचिं क सिष्ण० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णविर अद्विविध उक्क०। तेउ०-पम्म० सत्तरणं क० उक्क० पदे० क० ? अष्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णविर अद्वविध० उक्क०।

४१. वेदगे सत्तरणां क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० चटगदि० सत्तवि० उक्क० I

गतिका जीव उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी होता है। सहसमास्परायिकसंवतीं में छह कर्मोंका अंग जोषके समान है। अस्वेत जीवां में सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो अन्यतर जार गतिका पक्षोंन्द्रय संही सन्यन्दिष्ट या सिय्वाहिष्ट जीव सव पर्वाशियों से पाते हैं. सात प्रकारके कर्मोंका क्या कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयु कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयु कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी जानना जाहिष्ट । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्य कर रहा है और उत्कृष्ट भदेशवन्यका स्वामी है। चुकुस्तावनों क्षेत्रस्य है यह आयुक्तमंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। चुकुस्तावनों जीवोंमें प्रस्पर्योत्त्रकांके समान भंग है।

४०. इ.च्य, नीळ और कापोत छेइयावाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतिका पद्धोन्द्रय संज्ञी सम्यग्हिष्ट या मिथ्याहिष्ट जीव सात प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त सात कर्मोंके उत्क्रव्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयकर्मके उत्क्रव्ट प्रदेशवन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्तमंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। पीत और पदालेक्यावाले जीवोंमें सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतिका सम्यन्द्रिया सिथ्याद्रव्य जीव सात प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उस्क्रद्र प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी है। इसी प्रकार आयकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्रमके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। शुक्छक्केश्यामं छह कर्मीके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओधके समान है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है? जो तीन गतिका सम्बन्द्रविद्व वा मिथ्याद्वीच्ट जीव सात प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उसकटर प्रकेशबन्धमें अवस्थित है वह मोहनीय कमके उस्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयक्रमक अकुष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी जागना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उरकृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्रमके उरकृष्ट प्रवेशवन्त्रका स्वासी है ।

४१. बेद्कसम्पन्तवमं सात कर्मोके उत्कष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कौन है। वो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मों का बन्ध कर रहा है और उत्कुट प्रदेशवन्त्रमं एवं आउ०। णविर अहिविध० उक्क०। उवसम० छण्णं क० उ० प० क०? सुद्भुमसं० उवसाम० छिव्धि० उक्क०। मोह० उक्क० बदुगदि० सत्तविध० उक्क०। सासणे सत्तर्णा क० उक्क० पदे० क०? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णविर अहिविध० उ०। सम्मामि० सत्तर्णा क० उ० पदे० क०? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क०।

४२. सण्णीसु छण्णं क॰ ओघं। मोह॰ उक्क॰ चदुगदि॰ सम्मा॰ मिच्छा॰ प सत्तविघ॰ उक्क॰। एवं आउ॰। णवरि अद्वविघ॰ उक्क॰। असण्णीसु सत्तर्ण्णं क॰ उक्क॰ पदे॰ क॰ ? अण्ण॰ पंचिं॰ सच्वाहि पज्ज॰ सत्तविघ॰ उक्क॰। एवं आउ॰।

अवस्थित है वह उक्त सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयुक्रमंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मी का बन्ध कर रहा है और उन्छष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्तमें उन्छुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। उपशमसम्यक्तवर्मे छह कर्मों के उन्छुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन हैं ? जो सुस्मसाम्पराय उपशामक जीव छह प्रकार के कर्मों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त छह कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मोहनीय-कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मी का बन्ध कर रहा है और उस्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह मोहनीय कर्मके उस्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। सासादनसम्यवत्वमें सात प्रकारके कर्मीके व्यक्तव्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कमों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उरक्कव्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुक्तमंके रहकुष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। सम्याग्मिथ्यात्वमें सात कर्मोंके एरकुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मीका बन्ध कर रहा है और उत्क्राप्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त सात कर्मोंके उत्क्राप्ट प्रकेश-बन्धकास्वासी है।

पर. संज्ञी जीवोंमं छह कर्मोंका भंग भोषके समान है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो वार गांविका सम्माग्यन्तिय मा स्वयान्तिय वा सात प्रकार कर्मोंका वन्य कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यमं अवस्थित है वह मोहनीय कर्मके एक्ट्रप्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयुक्तिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी हो। इसी प्रकार आयुक्तिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी हो। इसी आपता वाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मों का वन्य कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यकों अवस्थित है वह आयुक्ति के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यकों स्वामी है। अत्यान स्वामी है। अत्यान प्रवेशिक्य जीव सव पर्याप्तियों से पर्याप्त है, सात प्रकारके कर्मों का वन्य कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यकों अवस्थित है वह उक्त सात कर्मोंके बक्त्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयु आयुक्तिके स्वकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आयु आयुक्तिके स्वकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य कर कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यकों अवस्थित है वह आयुक्तिके स्वकृष्ट

ता॰प्रती कृष्विध॰ मोह॰ इति पाठः । २. आ॰प्रती सम्मामि॰ मिष्का॰ इति पाठः ।

णवरि अहविध० उक्त० । अणाहार० कम्महयभंगी ।

एवं उकस्ससामित्तं समत्तं ।

४२. जहण्णए पगदं । दुवि०—जोघे० आदे० । ओघे० सत्त ष्णं क० जहण्णजो पदेसवंधो कस्त ? अण्ण० सुद्वमणिगोदजीवअपअत्तयस्स पढमसमयतन्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स जहण्णपदेसवंधो वङ्गाणस्स' । आउगस्स जहण्णपदेसवंधो कस्स? अण्ण० सुद्वमणिगोदअपअत्तयस्स खुद्दाभवम्गहणतिदयतिभागेण पढमसमयआउगवंध-माणयस्स जहण्णजोगिस्स जह० पदे० रं० वङ्ग० । एवं ओघभंगो तिग्विस्वोधं एद्दि०-वणण्किद्-णियोद्द-कायजोगि-णवुंस०-कोघादि०४-मदि-सुद०-असंज०-अत्तवस्तु०-किण्ण०-गीठ०-काउ०-भवसि०-अन्भवसि०-भिन्छा०-असण्णि-आहारग ति ।

४४. आदेसेण णिरएसु सत्तर्णं क० ज०प०क०? अण्ण० अस्णिपच्छा-गदस्स पढमसम्यतन्भवत्यस्स जहण्णजोगिस्स। आउ० ज०प०क०? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० घोलमाणजहण्णजोगिस्स। एवं पढमाए पुढवीए देव०-भवण०-बाण०। छसु हेद्विमासु सत्तर्णां क० ज०प०क०? अण्ण० मिच्छा०पढमसम्य-

प्रदेशदम्बका स्वामी है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए। इस प्रकार उस्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

४२. जसन्यका प्रकरण है। उसको अपेखा निर्देश दो प्रकारका है—ओच और आरेश। अधिसे सात कर्मों के जमन्य प्रदेशकरका स्वामां की है? जो अन्यतर सुद्धम निर्माद जीव क्षयप्रीत है, प्रथम समयमें तद्वत्वय हुआ है, जमन्य योगावाला है और जमन्य प्रदेशकर्यों अवस्थित है वह उक्त सात कर्मों के जमन्य प्रदेशकर्यों अवस्थित है वह उक्त सात कर्मों के जमन्य प्रदेशकर्यों निर्माद अपर्योग्न जीव खुक्क प्रवमहणके त्रतीव जिलाकों प्रथम समयमें आयुक्त कर रहा है, जपन्य योगावाला है और जमन्य प्रदेशकर्यों अवस्थित है वह उन्हें कर रहा है, जमन्य योगावाला है और जमन्य प्रदेशकर्यों अवस्थित है वह आयुक्तके जमन्य प्रदेशकर्यका स्वामी है। इसी प्रकार सामान त्रियंक्त, फ्लेन्ट्रिय, वनस्परिकार सामान त्रियंक्त, फ्लेन्ट्रिय, वनस्परिकारिक, निर्माद, काम्यवानी, अप्रतानी, अप्रसंपत, अवस्थाती, अप्रतानी, अपर्यानी, अपरामानी, असंपत, अपर्यानी, अप्रतानी, अपरामानी, असंपत, अपरामानी, असंवा, अप्रसामानी, असंवा, अपरामानी, असंवा, असंवा

४४. आर् शर्त नार्राक्योंमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशक्यका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव अर्द्राक्ष्योंमेंसे आकर नार्रकों हुआ है, प्रथम समयवर्ती व्रद्भक्ष है और जपन्य योगावाला है वह कक सात कर्मों के जपन्य प्रदेशक्यका सामी है। अपूछमंक जपन्य प्रावशक्य अर्थाक्ष सामी कौन है ? अन्यतर सम्यक्षित और मिथ्याहर्ष्टि पोक्सान जपन्य योगावाल जीव सायुक्सेंक जपन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम प्रविवीम तथा सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंक जानना चाहिये। द्वितीयादि नीचेंकों छह प्रविविद्यों से सात क्योंके जपन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? अन्यतर सम्याहर्ष्ट, प्रथम समयमें तब्दवस्थ दुआ और जपन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? अन्यतर सम्याहर्ष्ट, प्रथम समयमें तब्दवस्थ दुआ और जपन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। आपूर्

१. ता॰ प्रती पदेसबंबी [घ] माजबस्स इति पाठः । २. घा॰ प्रती बाउरास्स पदेसबंबी इति पाठः ।

बस्भवत्यस्स ज्ञहण्यजोगिस्स । आउ० णिरयोघं । णवरि सत्तमाए आउ० मिच्छादि० ।

४५. पंचिदियतिस्किस् सत्ताष्णं कः वः पः कः? अण्याः असिष्णः अपञ्जः पढमसमयतन्मवत्यस्स बहण्णजोगिस्स । आउः वः पः कः? अण्याः असिष्णः अपञः खुद्दाभः तिद्यतिमामे बहुमाणस्स बहुण्णजोगिस्स । एवं पञ्जत्वोणिणीस् । णविर आउः असिष्णः घोटमाणयस्स बहः। पंचिदिः तिरिः अपञ्जः सत्त्रणं कः वः पः कः? अण्याः असिष्णः पढमसमयतन्भवत्यस्स बहुण्णजोगिस्स । आउः वः कः शः असिष्णः खुद्दाभः तदियतिभागे बहुः जहुण्णजोः ।

४६, मणुसेसु सत्तर्णं क० ज० प० क० १ अष्ण० असण्णिपच्छानदस्स पढमसमयतन्मवत्त्वस्त जहण्णजोगिस्स । आउ० ज० प० क० १ अण्ण० खुद्दाभव० १ तदियतिमागपढमसमए वट्ट० जहण्णजोगि०। एवं मणुसपजन-मणुसिषीसु । णवरि आउ० अष्ण० घोडमाणजहण्णजोगिस्स । मणुसअपज० मणुसोयं ।

४७. जोदिसि॰ विदियपुढिविभंगो। सोधम्मीसाण याव उनिस्मिगेवजा चि कर्मका सङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सातवी पृथिबीमें आयुक्तोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी मिध्याटष्टि नारकी होता है।

84. पञ्चीन्द्रय तिर्वेश्वांमें सात कर्मीके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? जो अन्य-तर असंक्षी जीव अपयोग है, प्रथम समयवर्ती तद्गवस्य है और जघन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। आयुक्तमंके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर असंक्षी जीव अपयोग है, खुल्लक्षमबद्दणके तीसरे जिमानमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है वह आयुक्तमंके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चीन्द्रय तियंश्व पयोग और पञ्चीन्द्रय तियंश्व योगिनी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहाँ आयुक्तमंके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी असंक्षी घोटमान योगवाला और जघन्य प्रदेशक्यक करतेवाला जीव होता है। पञ्चीन्द्रय तियंश्व अपयोग्निकोंमें सात कर्मीके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंक्षी जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य है और जघन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मीके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। आयुक्तमंके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कौन है ? जो असंक्षी जीव श्रुञ्जक मवग्रहणके हतीय त्रिमानमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है वह अयुक्तमंके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है।

४६. मतुष्योंमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कौन है ? जो अन्यवर असंक्रियोंमें से आकर मतुष्य हुआ है, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य है और जधन्य दोगखाळा है बहु उक्त मात कर्मों के जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? जो अन्यवर क्षुट्रक भवनदणके तृतीय त्रिभागक प्रथम समयमें स्थित है और जधन्य योगवाला है वह आयुक्रमंके जधन्य प्रदेशबन्यका स्वामी है। इसी प्रकार मतुष्य-पर्याप्त और मतुष्यिन्योंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वहाँ आयुक्रमंके जधन्य प्रदेशबन्यका स्वामी अन्यवर प्रोताना जधन्य योगवाळा मतुष्य होता है। मतुष्य अपर्याप्तकोंमें सामान्य मतुष्यक्षेत्र समान मझ है।

४०. ज्योतिषी देवांमें दूसरी पृथिवीके समान भक्त है। सौधम और ऐशान कल्पसे

^{1.} ता॰प्रतौ प॰ खुड्रामव॰ इति पाठः ।

सचार्णा कः जः पदेः कः ? अणाः सम्माः मिच्छाः पढमसमयतस्मन्यस्यः जक्ष्णजीगिस्सः । आउः णिरयमंगो । अणुदिस यात्र सच्यङ्ग सि सचार्णा कः जः पः कः ? अण्याः पढमसमयतस्मनस्यः जङ्ग्णजोगिस्सः । आउः सम्मादिः ।

४८. बादरएइंदिय॰ एइंदियभंगो। णवरि अपजि॰ पहम० तन्मव॰ जह॰ जोगि॰। एवं आउ॰। णवरि खुद्दाभव॰ तदियतिमा॰ पहमसम॰ बहु॰ जह॰ जोगि॰। एवं अपजल्पसु। पजलेसु सत्तव्यं कः ज॰ प॰ कः १ अप्ण॰ पदम० तन्भव॰ जह॰ जोगि॰। आउ॰ जह॰ घोडमाणजह॰ जो॰। एवं सव्ववादराणं। सुदुमएइंदि॰ सत्तव्यं कः ज॰ प॰ कः १ अप्ण॰ अपजि॰। एवं सव्ववादराणं। सुदुमएवंदि॰ सत्तव्यं कः ज॰ प॰ कः १ अप्ण॰ अपजि॰। एवं सुदुमअप॰। सुदुम्भजि॰। आउ॰ जह॰ जोगि॰। अउ॰ जह॰ जोगि॰। एवं सव्वसुद्दमाणं। विश्विद्धियाणं अपजत्त्वयमंगो। णवरि

छकर उपरिम मैंचेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशवन्यका खामी कीन है? जो अन्यवर सम्बन्धि और मिण्याइष्टि देव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य है और जयन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मोंके प्रदेशवन्यका खामी है। आयुक्तमंका भक्न सामान्य नारक्रियोंके समान है। वी अनुविश्वासे छेकर सर्वाधीसिद्ध तकके देवोंमें सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशवन्यका खामी कीन है ? जो अन्यवर प्रथम समयवर्ती नद्भवस्य है और जयन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आयुक्तमंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी सम्माद्धि है वह इक्त सात सम्माद्धि है ।

४८. बादर एकेन्द्रियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि जी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीव है वह सात कर्मी के जमन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मका भक्न है। इतनी विशेषता है कि श्वरुतक भवप्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें विद्यमान और जघन्य योगवाला उक्त जीव आयुक्तमके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। पर्वाप्तकोंमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर प्रथम समय-बर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुक्मके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जधन्य योगवाला उक्त जीव है। इसी प्रकार सब बादरोंके जानना चाहिये। सुद्तम एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अपर्याप्त जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जधन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मों के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। आयुक्तमके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी क्षुलक भवप्रहणके ठुतीय त्रिभागके प्रथम समयवर्ती और जघन्य योगवाला जीव है। इसी प्रकार सुरूम अपर्याप्तकों जानना चाहिये। सुरूम पर्याप्तकों से सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्त्रका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सुरम पर्याप्त जीव प्रथम समयवर्ती सद्भवस्य है और जघन्य योगवाला है वह सात कमों के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। आयुक्रमेंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोटमान जघन्य योगवाला उक्त जीव है। इसी प्रकार सब सदम जीवांके जानना चाहिये। विक्रुडेन्ट्रियोंमें अपर्याप्तकोंके समान मञ्ज है। पञ्जचएसु सत्तर्णां कः ज॰ प॰ कः ? अष्णः पदमन्तम्बन्धः जहन्बोगिः । आउ॰ जह॰ घोडमाणजहन्जोगिः । पंचि०३ पंचिदियतिस्मिन्धमंगो ।

४९, तस० सत्तर्णं क० ज० प० क० १ अण्ण० बीहंदि०अप० पहम०-तब्सव० जह०जो० । आउ० ज० प० क० १ अण्ण० बीहंदि०अप० खुद्दास० तदियतिमा० पढमसम० जह०जोगि० । एवं तसअपअ० । तसपअ० सत्तर्णं क० ज० प० क० १ अण्ण० बीहंदि० पढम० ग्रब्सव० जह०जोगि० । आउ० जह० घोडमाणजह०जो० । पंचर्णं कायाणं पहंदियमंगो ।

५०. पंचमणव-तिष्णिवचिव अद्दर्णां कव जव पव कव ? अण्णव चहुमहिक सम्माव मिच्छाव घोडमाव अद्दिष्यव जहुवजोगिव। दोवचिव अद्दर्णां कव अव पव कव ? अण्यव वीहंदिव घोडव अद्दिष्यव जहुवजोगिव।

५१. ओरालियका० सचर्णां क० ज० प० क० १ सुहुमणिगोदस्स पढमसमय-पजत्त्वयस्स जह०जोगि०। आउ० ज० प० क० १ अष्ण० सुहुमणिगोद०' घोडमा०

इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो प्रथम समयवती तद्भवस्थ और जधन्य योगवाला है वह उक्त कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आयुक्तमें जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी घोटमान जघन्य योगवाला जीव है। पश्चीन्द्रप विकम पश्चीन्द्रविशेष्ट्रांके समान मझ है।

89. त्रसकायिकांमें सात कमोंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर हीन्द्रिय अपयोप्त जीव प्रथम समयवती तद्भवस्य है और जायन्य योगवाला है वह कस सात कमों के जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आयुक्तमंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। जायुक्तमंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो अन्यतर होन्द्रिय अपयोग्त जीव खुल्कक भवमहणके तृतीय विभागके प्रथम समयवती है और जायन्य योगवाला है वह आयुक्तमंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार त्रस अपयोगकांमें जानना चाहिए। त्रस पर्योग्तकोंमें सात कमोंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? जो अन्यतर होन्द्रिय जीव प्रथम समयवती तद्भवस्थ और जायन्य योगवाला है वह उक्त सात कमोंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी हो। आयुक्तमंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी हो। आयुक्तमंके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी हो। आयुक्तमंक जायन्य योगवाला जीव है। वीचां कायवालांका मक्त एकेन्द्रियोंके समान है।

५०. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवाँमें आठों कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर बार गतिका सम्यन्दिष्ट और मिण्यादिष्ट आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध फरनेवाला और घोटमान जघन्य योगवाला जीव है वह एक आठ प्रकारके कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो वचनयोगवाले जीवाँमें आठों कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? अन्यतर आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और घोटमान जघन्य योगवाला डीन्द्रिय जीव उक्त आठों कर्मों के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है।

५२. औदारिककाययोगी जीबोंमें सात कर्मीके जमन्य प्रदेशबन्यका स्वामी कीन है ? जो सूर्व्य निगोदिया जीब प्रथम समयवरी पर्याप्त और जमन्य योगवाला है वह एक सात कर्मीके जमन्य प्रदेशबन्यका स्वामी है। आयुक्तिके उपन्य प्रदेशबन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर सुद्ध्य निगोदिया जीब घोटमान जमन्य योगवाला है वह आयुक्तिके जमन्य प्रदेशबन्यका स्वामी है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीबोंमें सात कर्मीके जमन्य प्रदेशबन्यका

१. ता० प्रतौ भाउ० ज० सुहुमणिगोद० इति पाठः ।

जह॰को॰ ! ओरालि॰मि॰ सचर्णां क॰ ज॰ प॰ क॰ ? अण्ण॰ सुहुमणियोद॰ पढमस॰नक्भव॰ जह॰को॰ ! आउ॰ ज॰ प॰ क॰ ? अण्ण॰ सुहुमएईदि॰-अपजचार्मगो !

५२. बेउव्वियका० सत्तर्ण्यां क० ज० प० क० ? अण्णा० देव० पेतह० सम्मा० मिच्छा० पदमसमयसरीरपञ्जत्तीए पञ्जत्त्वदस्स जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्णा० देव० पोरह० सम्मा० मिच्छा० घोडमाणजह०जो० । वेउव्वियमि० सत्तर्ण्यां क० ज० प० क० ? अण्णा० देव० पोरह० अस्ण्यिपच्छागदस्स पदम०तन्भवस्थ० जह०जो० ।

५२. बाहारका० अद्दृष्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० पढससमयसरीर-पजनीए पजनगदस्स अद्विषि जह०जोिमि०। आहारिमि० अदृष्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० अद्विषि० पढमसमयआहारयम्स ज०जोिमि०। क्रमह० सत्तर्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० सुद्दुमणिगोदजीवस्स पढमसमयविग्गहगदीए' बद्दु० जह०-जोिमि०। एवं अणाहार्०।

५४. इस्थि-पुरिसेसु सत्तर्ष्णं क० ज० ए० क० १ अष्ण० अस्राष्णि० पहुम०-तन्त्रयक जह०जो० । आउ० ज० पदे० क० १ अस्राष्णि० घोडमा०ज०जो० । अव-स्वामी कीन है १ जो अन्यवर सुस्म निर्मादिया जीव प्रथम समयवर्डी तहत्वथ्य और जपन्य योगवाला है वह सात कमीके जपन्य प्रदेशकपका स्वामी है। आयुक्रमंके जपन्य प्रदेश-वन्यका स्वामी कीन है १ अन्यवर जीव है जिसका मंग सुद्धा एकेट्टिय अपवाहकों समान है।

पर. जैकिषिककाययोगी जोबोंमें सात कर्मोंके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी कीन है? प्रथम समयमें शरीर पर्योक्ति पर्योग हुआ और जपन्य योगवाळा अन्यतर सम्यम्हिष्ठ और निस्वाहिष्ट देव और तारकी जीव उक्त सात कर्मोंके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी है। आयुक्तके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी है। आयुक्तके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी कीन है? पोटमान जपन्य वोगवाळा सम्यन्ति और मिर्प्यक्रिक अन्यतर देव और नारकी जीव आयुक्तके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिएकिपिकाम्बक्ति योगियों सात कर्मीके जपन्य प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिएकिपिकाम्बक्ति व्याप्त प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिएकिपिकाम्बक्ति क्याप्त प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिएकिपिकाम्बक्ति व्याप्त प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिएकिपिकाम्बक्ति क्याप्त प्रदेशवन्यका खामी है। धेकिपिकामें क्याप्त प्रदेशवन्यका खामी है।

भी आहारककाययोगी जीवोंमें आठों कमों के जमन्य प्रदेशबन्यका स्वामी कीत है ? जो अन्यतर प्रथम समयमें रारीर पर्योमिस पर्योग हुआ और आठ प्रकारके जमन्य योगवाला है वह उक्त आठों कमोंके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। आहारकिमकाययोगी जीवोंमें आठों कमों के जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है ? जो अन्यतर आठ प्रकारके कमोंके अचन कर रहा है, प्रथम समयमें आहारक हुआ है और जमन्य योगमें विद्यामा है वह आठों कमों के जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कमों के जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीत है ? जो स्ट्रस निगोदिया जीव प्रथम समयवस्ती विग्रहगतिमें विद्यामा है और जमन्य योगवाला है वह चक्त सात कमोंके जयन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार अनाहारकोंमें जानना चाहिए।

48. स्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कमों के जयन्य प्रदेशक्त्यका लामी कीन है ? जो अन्यतर असंझी जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जयन्य योगवास्त है वह क्क सात

आ॰प्रतौ पडमविमाइगदीए इति पाठः ।

गद्द सत्तर्ष्यां क ज व पदे क ? अष्ण घोडमा व्यवह व्यो । एवं सुहुमसं छष्णं क ।

'४५. बिमंगे अहुष्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० चढुगदि० घोडमाणज०-जो० अहुविघवं० । आभिणि-सुद-ओधि० सत्तष्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० चढुगदि० पढम०तम्भव० जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अष्ण० चढुग० घोडमा० अहुविघ० ज०जो० । एवं ओधिदं०सम्मा०-चढुग०-वेदग० । णविर वेदगे दुगदि० । मणपज० अहुष्णं क० ज० प० क० ? अष्ण० घोडमा० अहुविघ० जह०जो० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-यरिहार०-संजदासंजद० ।

५६. चक्सु क्र सत्तर्णां कर जरु पर करु ? अष्ण व्यदुरिं पदम व्यस्थन क्याव जरुजोर जहरुपदेर्गं वहूरु । आउरु जरुपर करु ? अष्णरु चतुरिं पोडमारु-जहरुजोरु ।

कर्मों के जपन्य प्रदेशबन्धका खामी है। आयुक्सके जबन्य प्रदेशबन्धका खामी कीन है ? जो असंबी घोटमान जबन्य योगबाला है वह आयुक्सके जबन्य प्रदेशबन्धका खामी है। अपगतदेदी जीवों में सात कर्मों के जबन्य प्रदेशबन्धका खामी कीन है ? जो अन्यतर अपगत-वेदी जीव घोटमान जबन्य योगबाला है वह उक्त सात कर्मों के जबन्य प्रदेशबन्धका खामी है। इसी प्रकार सूक्तसाम्पराय संयत जोवों में छह कर्मों के जबन्य प्रदेशबन्धका खामित्य जानना चाहिये।

प्त. विभक्कानी जीवोंमें आठों कर्मों के जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर वारों गतिका विश्वक्कानी जीव घोटमान जघन्य योगवाळा और आठ प्रकारके कर्मोंका जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आभिनिवोधिकक्कानी, शुत्रवानो और अविध्वानो जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आभिनिवोधिकक्कानी, शुत्रवानो और अविध्वानो जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर चारो गतियोंका जीव प्रथम समयवती तद्भवस्य और जघन्य योगवाळा है वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। ब्राह्मके क्रिक्ट कर्मोंका वन्य करतेवाळा है क्षेत्र धिक्राम जघन्य योगवाळा है वह आयुक्रमंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिद्वानी, सम्प्रगहींह, श्राधिकसम्प्रगहींह और वेदकसम्प्रगहींह जीवोंमें हो गतियोंके जीव ज्ञाच्य प्रदेशवन्यक स्वामी है। हमी प्रकार अवधिद्वानी, सम्प्रगहींह, श्राधिकसम्प्रगहींह जीवोंमें हो गतियोंके जीव ज्ञाच्य प्रदेशकन्यक स्वामी है। हमें प्रकार कर्मोंका जाना जावाळा कर्मोंके ज्ञाचन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर लाठ प्रकारके कर्मोंका बन्य करतेवाळा और घोटमान जधन्य योगवाळा जीव है वह आठों कर्मोंके ज्ञाचन्य प्रदेशवन्यका सामी है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदीपस्थापनासंयत, परिहार्रवद्युद्धसंयत और संयतासंयत तीवाके जानना चाहिए।

५६. चक्षुदरांनी जीवांमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन हैं ? जो अन्यतर चतुर्तिद्वय जीव प्रथम समयवती तद्भवस्थ है, जघन्य योगवाला है और जघन्य प्रदेशवन्यमें अविश्वत है वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आयुक्तके जघन्य प्रदेश-बन्यका स्वामी कीन हैं ? जो अन्यतर चतुर्तिन्त्रय जीव घोटमान जघन्य योगवाछा है वह आयु-कर्मके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी हैं।

१. आ॰प्रती बोडमा॰ तस्मव॰ जद्द०जो॰ इति पाठः।

५७. तेउ-एम्सामं सत्तव्यं कृ जि ए कि ? अण्णा देवस्त वा सणुसस्त वा पढम ०तन्मव ॰ जन्जो । आउ ॰ ज॰ ए ॰ क॰ ? अण्णा ॰ तिगदि ॰ अङ्कविष ॰ षोड ॰ जन्जो ॰ । सुकाए एम्ममंगो ।

५८. उबसम० सत्तर्णं क० च० प० क० १ पहमसमयदेवस्स ब०बो०। सासणे सत्तर्णं क० ज० प० क० १ अण्य० तिगदि० पहम०तन्भव। जह०जी० बङ्का। आउ० घोडमा०ज०जो०। सम्मामि० सत्तर्णं क० ज० प० क० १ अण्य० बङ्का० घोडमा० ज०जो०।

५९. सण्णीसु सत्तर्णाकः जन्यः कः १ अण्यः सण्णिः सिच्छाः पटमः तक्सवत्यः बहन्जोः । आउ० जन्यः कः १ अण्यः सुद्दाभः तदियपटशसमए वक्षः जन्जोगिस्सः।

एवं सामित्तं समत्तं ।

कालपरूवणा

६०. कालं दुविधं-जहण्णयं उकस्सयं च । उकस्सए पगदं । दुवि०--ओषे०

५७. पीत और पदाछेरवामें सात कमों के जघन्य प्रदेशबन्धका खामी कीन हैं? जो अन्यतर देव और मतुष्य प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है वह उक्त सात कमों के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी हैं। आयुक्तमंक जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन हैं? जो अन्यवर तीन योगवाला है वह आठ प्रकारक कमों का नन्य कर रहा है और घोटमान जचन्य प्राप्त हैं। बुह लेरवामें पद्म लेरवामें पद्म लेरवामें पद्म लेरवामें की स्वाम प्रकार के कमों हैं। बुह लेरवामें पद्म लेरवामें प्रमान भक्त हैं।

५८. उपशासस्यक्तमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका खासो कीन है ? जो अन्यवह प्रथम समयवरी देव जघन्य योगवाला है वह सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वासा है। साधादतसम्यक्टि जीवोंसे सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका हमानी कीन है ? जो अन्यवह तीन गतियोंका जीव प्रथम समयवरी तद्भवस्य और जघन्य योगमें विद्याना है वह उक्क सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वासी है। आयुक्रमेंक जघन्य प्रदेशक्यका स्वासी घोटमान जघन्य योगवाळां जीव है। सम्याध्यादाष्टि जीवोंसे सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वासी घोटमान जघन्य योगवाळां जीव है। सम्याध्यादाष्टि जीवोंसे सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वासी कीन है ? जो अन्यवह चारों गतियोंका जीव घोटमान जघन्य योगमे अवस्थित है वह सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका स्वामों है।

५९. संब्रियोंमें सात कर्मों के जमन्य प्रदेशवन्यका खामी कीन है ? जो अन्यतर संब्री सिच्यादृष्टि जीव प्रथम समयवर्षी तद्वस्थ्य और जमन्य योगवाला है वह उक्त सात कर्मों के जमन्य प्रदेशवन्यका खामी है। आयुक्तमंके जमन्य प्रदेशवन्यका खामी कान है ? जो अन्यतर जीव क्षुल्वक भवप्रदणके द्वरीय भागके प्रथम समयमें विद्यमान है और जमन्य योगवाला है वह आयुक्तमंक जमन्य प्रदेशवन्यका खामी है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

कालप्ररूपणा

६०. काल दो प्रकारका है---जधन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो

१. ता॰का॰प्रत्योः अष्ण॰ कस्त्रिष्यः इति याउः।

आदे । ओघेण छण्णं कम्माणं उक्क पदेसवंघो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयस०, उक्क वेसमयं । अणुक तिण्य भंगा । यो सो सादियो सपजनसिदो तस्स हमो णिदेसो—ज० ए०, उ० अद्योग्गल० । मोह० उक्क पदेस० केव० ? ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अर्णतकालं असंस्वे०पोग्ग० । आउ० उ० ज० ए०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं आउ० याव अणाहारग चि सरिसो कालो । णवरि आहार०मि० उ० ए० ।

प्रकारका है—आप और आदेश। ओयसे छह कर्मों के उक्कष्ट प्रदेशवन्यका कितना काळ है ? जयन्य काळ एक समय है और उक्कष्ट काल दो समय है। अनुक्कष्ट प्रदेशवन्यके तीन भड़्न हैं। उनमें से जो सादि-सान्त भड़्न है उसका यह निर्देश है—जयन्य काळ एक समय है और उक्कष्ट काल कुछ कम अधंपुद्र छपरिवर्तनप्रमाण है। मोहतीय कर्मके उक्कष्ट प्रदेशवन्यका कितना काळ है? जयन्य काळ एक समय है और उक्कष्ट काळ वा समय है। अधुक्कष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्कष्ट काळ अनन्त काळ है जो असंस्थात पुद्रल परिवर्तनप्रमाण है। आयुक्सेंक उक्कष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्कष्ट काल दो समय है। अयुक्क्ष्य प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उक्कष्ट काल अन्तर्सहुत है। आयुक्सेंका अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार सहस्र काळ है। इतनी विशेषता है कि आहारक्सिशकाययोगी जीवोंमें उक्कष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य और

विजेषार्थ-सर्व कर्मा का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट योगके सद्भावमें होता है और उत्कृष्ट योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसिक्ये यहाँ ओघसे आठों कर्मों के उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्क्रप्ट काल दो समय कहा है। यह सम्भव है कि अनुत्कृष्ट योग एक समय तक हो और अनुत्कृष्ट योगके सद्भावमें उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध सम्भव नहीं, इसलिए ओघसे आठों कमी के अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। अब शेप रहा आठों कमींके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-मोहनीय और आयुकर्मके सिवा छह कर्मीका उत्क्रह प्रदेशबन्ध उपरासश्रेणिमें या क्षप्रकश्रेणिमें होता है, अन्यत्र इनका अनत्क्रष्ट्र प्रदेशबन्ध ही होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालकी अपेक्षा तीन भक्क सम्भव हैं-अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त भङ्ग अभव्योंके होता है। अनादि-सान्त भक्त जो भन्य एक बार उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके सुक्तिके पात्र होते हैं उनके होता है और साहि-सान्त भक्क उन भव्योंके होता है जो एकाधिक बार उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। यह तो हम पूर्वमें ही स्पष्टीकरण कर आये हैं कि इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य काल एक समय है। इसका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम अर्घपुद्रलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है सो उसका कारण यह है कि किसी जीवने अर्घपुद्रळपरिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध किया और मध्यमें वह अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता रहा, इसलिये अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण प्राप्त हो जाता है। मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी जीव करता है और संब्रोका उरकृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्त्रका उरकृष्ट काल अनन्त काल कहा है। आयुकर्मका बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है, इसिस्चे इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उर्धष्ट काल अन्तर्सृहूर्त कहा है। आयुकर्सका सब मार्गणाओं सं ओघके समान ही काल है यह स्पष्ट हो है। मात्र आहारकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

^{1.} ता॰ प्रती मोइ॰ पर्दे० इति पाठः ।

६१. णिरएसु सच्चणं क० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु०^५ ज० ए०, उ० तेचीसंसा०। एवं सचसु पुढवीसु अप्पप्पणो हिंदीओ भाणिदव्याओ।

६२. तिरिक्खेष्ठ सचर्णां क० उक्कं औषं । अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालमसंखे०। एवं तिरिक्खोपमंगो णवुंस०-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्तु ०-मव०अक्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि ति । णविर अचक्तु ०-मविर छण्णं क० ओषं ।
पंचिदियतिरिक्ख०२ सचर्णां क० उक्कं ओषं । अणु० ज० ए०, उ० तिष्णिपित०
पुष्य०। पंचि० तिरि०अपज्ञ० अष्टणां क० उ० ज० ए०, उ० वेसम०ै। अणु० ज०
ए०, उ० अंतो०। एवं सब्बअपज्जनाणं तसाणं थावराणं सब्बसुहुमपज्रचगाणं च ।
मणुस०३ पंचि०तिरि०भंगो।

जो अनन्तर समयमें रारीरपर्याप्तिको पूर्ण करेगा उसके होता है, इसलिये इसके आयुक्रमेंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय कहा है।

६१. नारिक्योंमें सात कमींके उत्कृष्ट प्रदेशक्यका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशक्यका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार साती दुषियोंमें जानना चाहिये। मात्र अनुत्कृष्टका उत्कृष्ट काळ अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितियमाण कहना चाहिए।

देश तथ्बों में सात कर्मी के उत्कृष्ट प्रदेशक्यका काल ओपके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशक्यका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त कालप्रमाण है जो असंख्यात पुत्त । सार्यवर्तक करायन काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त कालप्रमाण है जो असंख्यात पुत्त । सार्यवर्तिक क्षात्र है । इसी प्रकार सामान्य तिवर्ष्ट्रीक समान ने सुन्त करीते, भरवाता नाहिये। असंबत, अचकुद्दरीनी, भरव्य, अभव्य, सिप्याइष्टि और असंबी जीवों में जानाना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अचकुद्दरीनी और भरव्य जीवों में छह कर्मी के अनुत्कृष्ट प्रदेशक्यका काल ओपके समान है। पद्मितृय तिर्यक्षित्रक सा कर्मिक उत्कृष्ट प्रदेशक्यका काल आपके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशक्यका जम्म काल एक समय है और उन्कृष्ट काल पूर्वकारिय अपयोगकार्म आठा कर्मी उत्कृष्ट प्रदेशक्यका जमव्य काल एक समय है। पद्मितृय तिर्यक्ष अपयोगकार्म आठा कर्मी उत्कृष्ट प्रदेशक्यका जमव्य काल एक समय है। अनुतकृष्ट प्रदेशक्यका जमव्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तपुर्वृत है। इसी प्रकार क्सा और स्थावर स्व अपयोगकार्म के स्था सब अपयोगकार्म के स्था सब अपयोगकार्म के स्था सब अपयोगकार्म के स्था सब स्वस्य पर्योगकार्म जाना चाहिए। मनुष्विकर्म पक्मितृयतिर्विक्षों के समान सक्क है।

विशेषार्थ — यहाँ सब मागंगाओं में सात कसेंकि उत्कृष्ट प्रदेशकरथका जयन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुरुष्ट प्रदेशकरथका जयन्य काल जित प्रकार ओपसे घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार से घटित कर लेना वाहिय । आगे भी तब हाल इसी प्रकार घटित कर लेना वाहिय । आगे भी तब हाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र अनुरुष्ट प्रदेशकरथका उत्कृष्ट लाल सा मागंगाओं से अलग अलग है सो व्यव काल भी जहाँ जो कार्याखाँत हो उसके अनुसार घटित कर लेना चाहिए। हाँ जिन मागंगाओं का काल अर्घपुद्दालवर्गवर्गतिस अधिक है और उनमें उपझमलेंगि व क्षप्रकर्मणिकी प्राप्ति सम्मव है उनमें इन कमीं के अनुरुष्ट प्रदेशकरथका उत्कृष्ट काल ओपके समान जाननेकी सुचना को है। कारण सम्ह है।

रे. क्षा॰ प्रती वेसम॰, अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेसम॰, अणु॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती ज॰ ए॰ बेसम॰ इति पाठः।

- ६३. देवेसु सचर्णं कम्माणं उक्तः ओषं! अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ तेचीसं सा॰। एवं सन्वदेवाणं अप्यप्यणो हिंदीओ षोदन्वाओ।
- ६४. एप्रंदि० सचण्णं क० उक्क० ओषं । अणु० ज.० ए०, उ० असंखे जो होगा । बादरे अंगुल० असं० । बादरपञ्ज० संखे आणि वाससहस्साणि । एवं वणफ्कदि० । सन्वसुहुमाणं सचण्णं क० उक्क० ओषं । अणु० ज० ए०, उ० सेहीए असंखे० । विगलिंदि० सचण्णं क० उक्क० ओषं । अणु० ज० ए०, उ० संखे आणि वाससह० । एवं पञ्जचा० । पंचिं०-तस०२ सचण्णं क० उक्क० ओषं । अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसहस्साणि पुञ्चको द्विपु० वेसागरोवमसह० पुच्चको द्विपुष० । पञ्जचे सागरोवमसदपुषचं वेसागरोवमसहस्साणि ।
 - ६५. प्रदृ०-आउ०-तेउ०-बाउ-बणफादि-णियोद्० सत्तर्ण्णं क० उ० ओघं।
- ६३. देवोंमें सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल भोषके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जमन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। मात्र इनमें अनुतकृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण जानना चाहिए।
- ६४. एकेन्द्रियोंमें सात कमीं के उक्तृष्ट प्रदेशवन्यका काल ओषके समान है। अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्तृष्ट काल असंस्थात लोकप्रमाण है। वादर पर्यक्षिकों संस्थात हजार वर्ष है। वादरों में अङ्कुल के असंस्थातवें भागप्रमाण है। वादर पर्यक्षिकों संस्थात हजार वर्ष है। इसी प्रकार वन्स्यतिकायिक जीवों में जानना चाहिए। सब सूक्त जीवों में सात कमीं के उक्तृष्ट प्रदेशवन्यका काल ओपके समान है। अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उस्तृष्ट काल जामजीण के असंस्थातवें भागप्रमाण है। विक्रिटेट्सवों में सात कमीं के उक्तृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उस्तृष्ट काल ओपके समान है। अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उस्तृष्ट काल स्थापित कार्यक्रियों चानना चाहिए। पञ्चित्त्रयुक्त और अस्त्रियात इसार वर्ष है। इसी प्रकार इनके पर्योक्षकों ज्ञानना चाहिए। पञ्चित्त्रयुक्त और अस्त्रियात कार्यकाल एक समय है और उस्तृष्ट काल आयन्त्र काल एक समय है और उस्तृष्ट काल पञ्चित्त्रयों स्थाप है। अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उस्तृष्ट काल पञ्चित्त्रयों पृष्के प्रदेशवन्यका अभिष्ठ से ह्यार सागर है। तथा पञ्चित्त्रय पर्याक्षि से सी सागर पुष्टक्ष्य प्रमाण कीर प्रसप्योक्षकों से ह कार सागर है। तथा पञ्चित्त्रय पर्याक्षकों से सी सागर पुष्टक्ष्य प्रमाण और प्रसप्योक्षकों से ह कार सागर है।
- विशेषार्थ—यहाँ जिसकी जो कायस्थिति है उसके अनुसार अनुन्कष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल कहा है। सात एकेन्द्रियों उत्कृष्ट प्रदेशवन्य बादर एकेन्द्रियों होता है और बादर एकेन्द्रियों अनुक्कृष्ट अन्तर असंस्थात कोकप्रमाण है, इसलिए एकेन्द्रियों अनुक्कृष्ट अदेशवन्यका स्कृष्ट काल असंस्थात कोकप्रमाण कहा है, क्योंकि जो एकेन्द्रिय असंस्थात कोकप्रमाण काल तक सुन्म एकेन्द्रिय होक्कर रहते हैं उनके इतने काल तक एकेन्द्रिय सामान्यकी अपेक्षा नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जो उत्कृष्ट काल जामिले अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जो उत्कृष्ट काल जामिलेक असंस्थातके मामप्रमाण कहा है सो इसका कारण योगस्थानके अवान्तर भेद हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।
- ६५. पृथिषीकायिक, जलकायिक, अप्रिकायिक, वागुकायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ ओपके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका

अषु० ज॰ ए०, उ० असंखेजा लोगा। एदेसि बादराणं कम्मडिदी तेसि बादर-पजनाणं संखेजाणि वाससहस्साणि। पत्तेयसरी० बादरपुढविमंगो।

६६. पंचमणव्यंचवचिव-वेदान्वव-आहारव-कोधादिवध अहणां कव उक्कव अणुव अपजनसंगो । कायजोगिव तिरिक्खोधं । ओरालिव सत्तर्ण्यं कव उक्कव ओधं । अणुव जव एव, उव बादीसंवस्ससहस्साणि देखणाणि । ओरालिव्सिस्सव-वेदन्विव-मिस्सव्आहारमिव सत्तर्णां कव उव जव एव, उव एव । अणुव जव उव अंतोव । कम्महव-अणाहारव सत्तर्णां कव उव जव उव एव । अणुव जव एव, उव तिणिसव ।

६७. इत्थि०-पुरिस० सत्तर्ण्य क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० पलिदोवमसदपुघ० सागरोवमसदपुघ०। अवगद० सत्तर्ण्य क० उक्क० ओघं। अणु०

जबन्य काछ एक समय है ओर उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादरोंमें कर्म-स्थितिप्रमाण है और उनके बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। तथा प्रत्येकशरोर जीवांका भक्त बादर प्रथिवोकायिक जीवांके समान है।

विशेषार्थ — यहाँ पृथिवीकायिक आदिमें सात कमों के अनुरुष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल जैसे एकेन्द्रियों के पटित करके बतला आये हैं उस अकारसे घटित कर लेना चाहिए। तथा बादर पर्याप्त निगोद जीवां में अनुरुष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष बादर प्रिविक्त शिक्ष पर्याप्त जीवां के समान कहा है सो यह सामान्य कथन है। विशेष इतना है कि बादर पर्याप्त निगोद जीवों को उत्कृष्ट कायस्थित अन्तसुद्दर्त जानना चाहिए। होष कथन सुगम है।

६६. पाँच मनोयोगी, पाँच यचनयोगी, बैकियिकहाययोगी, आहारककाययोगी और कोषादि चार कपायवाळे जीवोमें आठ कर्मों के उक्तस्ट और अनुकुष्ट प्रदेशक्तमका काळ अपयीतकाँ समान है। काययोगी जीवोमें सामान्य तिर्वक्षांके समान मह है। ओदारिक-काययोगी जीवोमें सामान्य तिर्वक्षांके समान है। अनुराहर प्रदेशक्तपका काळ ओपके समान है। अनुराहर प्रदेशक्तपका काळ ओपके समान है। अनुराहर प्रदेशक्तपका काय अपने काल एक समय है और उत्हार काल कुछ कम वाईस हजार वर्षमाण है। ओदारिकिमिन्नकाययोगी, वीकांम सात कर्मोंके उत्हार प्रदेशक्तपका जपन्य काळ एक समय है और उत्हार काळ एक समय है। अनुराहर प्रदेशक्तपका जपन्य और उत्हार काळ प्रताहर काळ प्रदेशक्तपका जपन्य और उत्हार काळ प्रताहर काळ प्रदेशक्तपका जपन्य कोर उत्हार काळ प्रदेशक्तपका जपन्य कोर उत्हार काळ प्रताहर काळ प्रदेशक्तपका जपन्य कोर उत्हार काळ प्रदेशक्तपका जपन्य काळ प्रदेशक्तपका जपन्यकाल एक समय है अनुराहर प्रदेशक्तपका जपन्यकाल एक समय है आहे उत्हार काळ विशेषक समय है।

विशेषार्थ — औदारिकमिश्र आदि तीन मिश्रकाययोगीम झरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके खान्त्य समयमें ब्लक्ट प्रदेशनन्य होता है इसक्तिए इनमें सात कर्मों के व्लक्ट प्रदेशनन्यका जानन्य और उत्क्रिट काल एक समय कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवों में खल्ह प्रदेशनन्य संब्री जीव हितीय बमाइके समय करते हैं, क्योंकि इनके इसी समय उत्कृष्ट अर्थान्य से इसक्तिए इस कि समय करा है। से क्योंकि व्लक्ट प्रदेशनन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। से कथन त्यह हैं है।

६७. स्रोवेदी और पुरुपवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका काछ ओघके समान है। अनुरुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काल कमसे सी

१. सान्मती रु० ज॰ उ० । प्रणु॰ इति पाटः ।

ज॰ ए०, उ० अंतो०'। एवं सुहुमसंप०-सम्मामि०।

६८. विमंगे सत्तर्णं के उक्कः ओषं । अणुः व एरः, उ॰ तेतीसं देखः । आभिणि-सुद-ओषि सत्तर्णं कः उक्कः ओषं । अणुः जः एः, उ० छाविहेः सादिः । एवं ओषिदं -सम्माः । मणपञ्जः सत्तर्णं कः उक्कः ओषं । अणुः जः एः, उ० पुष्यकोडी देः । एवं संजः-सामाः छेदोः -परिहारः -संजदासंजः । चक्कुः तसपञ्जत्तमंगो ।

६९. छण्णं लेस्साणं सत्तर्णां क० उ० ज० ए०, उ० **बेसम०। अणु० ज०** ए०, उ० तेत्तीसं सत्तारस सत्तसाग० वे अद्दारस तेत्तीसं साग०^र सादि०।

७०. खड्म० सत्तप्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं सादि०। वेदम० सत्तप्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० एय०, उ० छावडि०-सा०। उनसम० सत्तप्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० अती०। सासपे सत्तप्णं क० उ० ज० ए०, उ० वेसम०। अणु० ज० ए०, उ० छावल्हिगाओ।

परन्पप्थवत्त्वप्रमाण और सौ सागरप्थवत्त्वप्रमाण है। अपगतवेदी जीवांमें सात कर्मीके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ शोधके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुते है। इसी प्रकार सूदमसाम्परायसंयत और सम्यग्मिय्याद्यष्टि जीवांमें जानना चाहिए।

६८. विमङ्गलानी जीवोंमें सात कर्मोंके उन्कृष्ट प्रदेशवन्यका काल ओपके समान है। अतुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तेलीस समार है। आतुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका औपके समान है। अतुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ आपके समान है। अतुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ उन्यासठ सागर है। अतुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ छवासठ सागर है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यन्दिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। सनः-पर्यययक्षानी जीवोंमें सात कर्मोंके उन्कृष्ट प्रदेशवन्यका काल ओचके समान है। अतुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम एक पूर्वकोदिमाण है। इसी प्रकार संयत, सामायिकस्वयंत, क्षेद्रांस्थापनासंयत, परिहारविद्युद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिय। स्वुद्धाराती जीवोंमें त्रसप्यात जीवोंके समान मङ्ग है।

६९. छह लेखाओं में सात कर्मों के वत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जयन्य काळ एक समय है और वत्कृष्ट काल रो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जयन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक हो

सागर, साधिक अठारह सागर और साधिक तेतीस सागर है।

७०. क्षायिकसम्यान्द्रिष्ट जीवॉर्मे सात कर्मों के उक्तुष्ट प्रदेशबन्यका काछ ओषके समान है। अनुकाट प्रदेशबन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्तुष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। वेतृकसम्यान्द्रिष्ट जीवॉर्मे सात कर्मों के उक्तुष्ट प्रदेशबन्यका काल ओषके समान है। अनुस्ट प्रदेशबन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्तुष्ट काल छ्यासठ सागर है। उत्तरसम्यन्त्रिष्ट जीवॉर्मे सात कर्मों के उक्तुष्ट प्रदेशबन्यका काल ओषके समान है। अनुकाट प्रदेशबन्यका काल ओषके समान है। अनुकाट प्रदेशबन्यका काल अपने समा है। अनुकाट प्रदेशबन्यका कान अपने समा है। अनुकाट प्रदेशबन्यका अपन्य काल एक समय है और उक्तुष्ट काल हो समय जीवॉर्मे सात कर्मों के उक्तुष्ट प्रदेशबन्यका जयन्य काल एक समय है और उक्तुष्ट काल दो समय

१, ता॰प्रतौ अणु॰ ज॰ उ॰ ए॰ अंदो॰ इति पाठः । २. भा॰प्रतौ अहारस साग॰ इति पाठ:।

सण्णी० पंचिदियपञ्जभगो । असणी० त्रिस्निक्षोघं । आहार० सत्तर्ण्णं क०उ० कोघं । अणु० ज० रु०, उ० अंगुल० असं०े ।

एवं उकस्सकालं समत्तं^र

७१. जहण्णाए पगर्द। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तर्ण्ण कर जहरु पदे० कैवचिरं० ? ज० उ० ए०। अज० ज० खुदा० समऊ०, उ० असंखेजा लोगा। अथवा सेदीए असंखेजदिमागो। आउ० ज० पदे० केवचिरं० ? ज० उ० ए०। अज॰ जहण्या० अंतो०।

७२. णिरएसुसचर्णां कः जिपदेः जिउ एः। अजः जिरस्स-सद्दः समऊः, उः तेचीसंः। आउः जः जः एः, उः चचारिसः। अजः जः

है। अनुतकृष्ट प्रदेशबन्धका जपन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ छह आविद्यमाण है। संबी जीवोंमें पञ्चित्रव पत्रीम जीवोंके समान भङ्ग है। असंबी जोवोंसे सामान्य विश्वोंके समान भङ्ग है। आहारक जीवोंसे सात कमेंकि उन्कृष्ट प्रदेशबन्धका काळ ओचके समान है। अनुतक्ष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ अङ्गुळके असंज्यातवें मागप्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

७१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघ से सात कमोंके जघन्य प्रदेशवन्यका कितना काल है? जघन्य और उत्क्रप्ट काल एक समय है। अज्ञायन प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय कम श्रुत्वक भवप्रहण प्रमाण है और उत्क्रप्ट काल असंख्यात कोकप्रमाण है। आयुक्रमके जघन्य प्रदेशवन्यका कितना काल है? जघन्य और उत्क्रप्ट काल एक समय है। अज्ञयन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उत्क्रप्ट काल एक समय है। अज्ञयन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उत्क्रप्ट काल प्रकर्म काल कर्म क्षेत्र क्षेत्र कर्म क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र विकास क्षेत्र क्

विशेषार्थ — स्थ्म निगोद अपर्याप्त जीवके तद्भवस्य होने के प्रथम समयमें सात कर्मोंका जायन्य प्रदेशवन्य होता है, इसिलए इसका जायन्य और उन्कृष्ट काल एक समय कहा है। तया जायन्य प्रदेशवन्यका खुल्लक भवमें से एक समय कम करने पर अजयन्य प्रदेशवन्यका खुल्लक भवमें से एक समय कम करने पर अजयन्य प्रदेशवन्यका अस्ट्रालक क्षा का अस्याप्त प्राप्त प्राप्त होने से वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा सुरम एकेन्द्रिय अपर्याप्तका उन्कृष्ट काल असंस्थात लोकप्रमाण होने यहाँ अजयन्य प्रदेशवन्य वहाँ अजयन्य प्रदेशवन्य वहाँ अजयन्य प्रदेशवन्य वहाँ काल कहा करिन स्वरूपक स्वरूपक काल कित्यस्य में तथा स्वरूपक करा है सो जान कर इसकी संगति विद्वानी चाहिये। साधारण्यः योगके भेद जाअणिक असंस्थानवे सागामण होनेसे इस अपेक्षासे यह काल कहा है ऐसा जान पढ़ना है। आयुकर्मका जपन्य प्रदेशवन्य खुल्कक भवके हतीय विभागके प्रथम समयमें होता है, इसिलए इसका जपन्य आंट उस्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा आयुकर्मका वस्य अन्तर्मुहते काल तक होता है, अतः इसके अजयन्य प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य अपर अप्रवस्य और उस्कृष्ट काल अन्तर्मुहते काल तक होता है, अतः इसके अजयन्य प्रदेशवन्यक जपन्य और उस्कृष्ट काल अन्तर्मुहते काल तक होता है, अतः इसके अजयन्य प्रदेशवन्य जपन अपर वस्त्र वस्त्र काल अपन विश्व स्वरूपक वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र प्रदेशवन्य अपन वस्त्र प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य जपन वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त वस्त वस्त वस्त वस्त्र वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त वस्त वस

७२. नारिक्योंमें सात कर्मों के जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष प्रमाण है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। आयुक्तमें के जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है

ता॰प्रती अंगु॰ (१) अर्स इति पाठः । २. ता॰प्रती एवं उक्क्स्सकाक्षं समत्तं इति पाठे नास्ति ।

ए०, उ० अंतो०। एवं सत्तसु पुढवीसु । सत्तष्णं क० बढमाए ज० ज० उ० ए० । अज० [ज०] दसवस्ससह० समऊ०, उक० सागरोवम० । विदियाए० ज० ज० उ० ए० । अज० ज० सागरो०', उक० तिष्णि साग० । एवं गोदच्वं ।

७३, तिरिक्खोघो एइंदि०-णार्नुस०-मदि०-सुद०-अस्तंज०-अचक्खु०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि० ओधमंगो । णवरि णवंस० अब० ब० ए० ।

और उत्कृष्ट काल बार समय है। अजघन्य प्रदेशक्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सुहते है। इसी प्रकार सातों प्रधिवयोंमें आयुक्तमंका काळ जानना चाहिये। पहली प्रधिवीमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशक्यका जघन्य काळ एक समय क्षा दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काळ एक सागर प्रमाण है। दूसरी प्रधिवों में जघन्य प्रदेशक्यका जघन्य और उत्कृष्ट काळ एक सागर प्रमाण है। उत्तरी प्रधिवों में जघन्य प्रदेशक्यका जघन्य अतेर उत्कृष्ट काळ पक सागर प्रमाण है। अजघन्य प्रदेशक्यका जघन्य काल एक सागरप्रमाण है और उत्कृष्ट काळ तीन सागर है। उत्तरी प्रकार आपेकी प्रधिविधों के जाना चाहिये।

विशेषार्थ-असंभीके मर कर नरकमें उरपन्न होनेके प्रथम समयमें सात कर्मी का जघन्य प्रदेशवन्ध होता है, अतः यहाँ सात कर्मों के जघन्य प्रदेशवन्धका प्रयन्य और एतक काल एक समय कहा है। तथा जघन्य भवस्थितिमेंसे इस एक समयके कम कर देने पर अजयन्य प्रदेशवन्यका लचन्य काल प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है और इनके अजयन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। आयुक्तमंका सघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है और इसका जघन्य काल एक समय और उरक्रह काल चार समय है, इसलिये आयकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका यह काळ उक्त प्रमाण कहा है। यह सम्मव है कि आयुक्रमका अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध एक समय तक होकर दूसरे समयमें घोछमान जघन्य योगके प्राप्त होतेसे जघन्य प्रदेशबन्ध होने लगे, इसलिये इसके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काळ एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काळ अन्तर्सुहुर्व है यह स्पष्ट ही है। आयुक्तमंके काछका विचार साता प्रथिवियोंमें इसी प्रकार कर लेना चाहिये। मात्र प्रत्येक प्रशिवीमें सात कर्मों के जधन्य और अजधन्य प्रदेशबन्धका जो काल है उसे अपनी अपनी जधन्य और उत्क्रह अवस्थितिको व स्वामित्त्रको वैस्रकर घटित कर छेना चाहिये। तास्पर्य यह है कि प्रत्येक प्रथिवीमे इन कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और उत्दृष्ट काळ तो एक समय ही प्राप्त होता है. क्योंकि सर्वत्र भवत्रहणके प्रथम समयमें ही जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। तथा अज्ञचन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम जघन्य भवस्थिति प्रमाण प्राप्त होता है। क्योंकि सर्वत्र जधन्य प्रदेशबन्धका एक समय काल कम कर देने पर यह काल शेष बचता है और उत्कृष्ट काळ सर्वत्र अपनी अपनी उत्कृष्ट भवस्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यहाँ प्रसंगसे इस बातका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस जिस मार्गणामें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशवन्ध घोटमान जघन्य योगसे होता है वहाँ उसका नारिकयोंके समान ही काल घटित कर देना चाहिये । कोई विशेषता न होनेसे इम आगे उसका स्पष्टीकरण नहीं करेंगे ।

७२. सामान्य तिर्वञ्च, एकेन्द्रिय, नपुंसकवेदी, मत्यझानी, श्रुताझानी, व्यसंयत, अचसु-दर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंझी जीवोंमें ओघके समान भक्क है। इतनी विशेषता के कि नपंसकवेदी जीवोंमें अजधन्य प्रदेशनन्यका जघन्य काल एक समय है।

विश्लेषार्थ--- यहाँ पर जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओधके समान काल घटित

१. आ० प्रती उ० ए० । सामरो० इति पाठः ।

७४. पॅविं विहि॰ सच्चां कः जः जः उः एः। अजः जः सुद्दाः
समऊमं, उकः' तिष्णि परिः पुष्नकोडिपुः। आउः ओषं। पॅविं विदिश्यन्तनोषिणीसु सच्चां कः जः जः उः एः। अजः जः अतोः, उः तिष्णि परिः
पुष्नकोडिपुः। आउः णिरयोषं। पंचिं विदिश्यप्रजः सच्चां कः जः जः उः
एः। अजः जः खुद्दामः समऊणं, उकः अतोः। आउः ओषं। एवं सञ्जयप्रजचगाणं
तसाणं थावराणं च।

७५. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि सत्तर्णा क० अज० ज० ए० । देवाणं णिरयभंगो । एवं सन्वदेवाणं अप्पपणो जहण्णुकस्सद्विदी णेदन्या ।

हो जानेसे बह ओषके समान कहा है। मात्र नपुंसकवेदका उपशमश्रीणमें जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, अतः इसमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय कहा है।

७%. पञ्चीन्त्रय तिर्वेञ्चांमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्थका जधन्य और उत्हृष्ट काल एक समय है। अजधन्य प्रदेशवन्धकां जघन्य काळ एक समय कम छुल्लक भवनहरूप्रमाण है और उत्हृष्ट काल पूर्वकोट्टिश्यक्त अधिक तीन पत्रय है। आगुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चीन्त्रयतिर्वञ्चपयाम और पञ्चीन्त्रयतिर्वञ्चपयाम और पञ्चीन्त्रयतिर्वञ्चपयाम काल प्रत्यान्यका जधन्य और कह्य काल एक समय है। अजधन्य प्रदेशनन्यका जधन्य और कह्य काल प्रवेशिटिश्यक्त अधिक तीन पत्रय है। आगुकर्मका अभ्य सामान्य नार्रिकर्यों समान है। एक्चीन्त्रयतिर्वञ्चभवपयाम जोग्य काल एक समय है। अजधन्य प्रदेशकर्यका जपन्य और उत्हृष्ट काळ एक समय है। अजधन्य प्रदेशकर्यका जपन्य काळ एक समय कम छुल्छक भवाइ प्रवेशिकर्य अधिकर्य प्रदेशकर्यका जपन्य अधिकर्य काल एक समय कम छुल्छक भवाइ प्रवेशिकर्य काल प्रवेशिकर्य अधिकर्य प्रदेशकर्य अधिकर्य और अध्यक्ष के और क्षाय है। अजधन्य प्रदेशकर्यका जपन्य काळ एक समय कम छुल्छक अपन्यर्थहर्त है। आगुकर्मका मङ्ग ओपके समान है। इसी प्रकार कम और समावर सम्ब अपर्यामकृष्टि वाचना चाहिये।

बिशेषार्थ — पश्चेन्द्रिय तिर्यक्ष और इनके अपर्याप्तकों आयुक्तर्यका जयन्य प्रदेशवन्य कोषके समान क्षुष्तक भवके तीसरे त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका भङ्ग कोषके समान कहा है। तथा शेष हो प्रकारके पश्चोन्त्रय तिर्यक्षोंमें आयुक्तर्मका जयन्य प्रदेश-वन्य नार्रकर्योके समान योटमान जयन्य योगसे होता है, इसलिये यहाँ इसका भङ्ग सामान्य नार्राकर्योके समान कहा है। शेष कथन समान है।

७५. मतुष्यित्रकमें पञ्चित्रियतिरञ्जीके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मीके अजधन्य प्रदेशबन्यका जधन्य काळ एक समय है। देवोंमें नार्राक्योंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब देवोंके अपनी अपनी जधन्य और उद्घष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ — मनुष्यत्रिकमें अन्य सब काळ पञ्चोन्त्रिय तिर्वेश्वत्रिकके समान है यह स्पष्ट ही है। केवळ सात कमों के अजधन्य प्रदेशकन्यके जधन्य काळमें फरक है। बात यह है कि मनुष्यत्रिकमें अपरामक्षेणिकी प्राप्ति सम्मय है और उपरामक्षेणिमें इनके सात कमों का अजधन्य प्रदेशकन्य एक समय तक मी हो सकता है क्योंकि जो उक्त मनुष्य उपरामक्षेणिसे उतरते समय एक समय तक सी हो सकता है क्योंकि जो उक्त मनुष्य उपरामक्षेणिसे उतरते समय एक समय कि सात कमों का वन्य कर दूसरे समयमें मरकर देव हो जाता है उसके इनका एक समय के खिये अजधनन्य प्रदेशकन्य देला जाता है। देवोंमें अन्य सब काळ जिस प्रकार तारिकयोंमें घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार पटित कर छेना चाहिये। मात्र

ता॰आ॰प्रत्योः समक्रयां । प्यं बाद्रवगप्कदि० बाव्यवगप्कदिपक्रक्त० वक्क० इति पाठः

७६. एर्ट्रिव सुदुमं च अड्डणां का जोपमंगी। बादरव सत्ताणां का जाव जाव एव। अजाव जाव सुद्धामव समझणं, उव अंगुलव असंखेव। आउव ओषं। बादरपायाव सत्ताणां का जाव वाव उव एव। अजाव [जाव] अंतोव [समझणंव], उव संखेआणि वाससहव। आउव णिरयमंगी। एवं वादरवाणकदि-वादरवाणकदि-पायाव । सल्बसुदुमपायाव सत्ताणां का जाव ओषं। अजाव जाव अंतोव समझव, उव अंबोव। आउव णिरयमंगी।

अजपन्य प्रदेशवन्यका काल अपनी अपनी जघन्य और उक्कष्ट भवस्थितिको ध्यान में रख कर कहना चाहिये।

७६. एकेन्द्रियों में और सुद्म जीवों में आठ कर्मों का भङ्ग ओपके समान है। बादरों में सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य प्रदेशबन्धका जघन्य का स्वरूपक्रमाण है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलक भन महणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलक भन महणप्रमाण है। आउ कर्मका भंग ओपके समान है वादर पर्याप्तकां में सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्ध का जघन्य करि उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य प्रदेशबन्ध का जघन्य काल एक समय कम अन्तर्याहुर्त है और उत्कृष्ट काल संस्थात हजार वर्ष है। आयु कर्मका भंग सामः ज्य नार्राक्वां के समान है। इसीप्रकार वादर वनस्पतिकायिक और वादर वनस्पतिकायिक जीर वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवों में जानना चाहिये। सब सुक्ष्म पर्याप्त जीवों में सात कर्मों के जचन्य प्रदेशबन्धका जचन्य काल एक समय कम अन्तर्सहुर्त है। आयुक्रमका अचन्य काल एक समय कम अन्तर्सहुर्त है। आयुक्रमका भक्न नार्राक्वां समान है।

विद्रोबार्ध :--यहाँ एकेन्द्रिय और सक्ष्म जीवांमे सात कर्मा के जघन्य और अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है। बादरों में सात कर्मी का जघन्य प्रदेशवन्य भवके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय कहा है। तथा इस एक समयको क्षल्छक भवमेंसे कम कर देते पर अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य काल एक समय कम अल्लक भवग्रहण प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और बादरोंकी कायस्थिति अङ्गळके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे सात कर्मों के अजधन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इनके आयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध ओघके समान क्षल्लक भवप्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसिंखये इसका भङ्ग ओघके समान कहा है। बादर पर्याप्रकोंमें भी सात कर्मी का जघन्य प्रदेशवन्य भवके प्रथम समयमें होता है, इसल्यिये इसका जघन्य और क्षत्कप्र काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको कम कर देने पर अजधन्य प्रदेशबन्धका जबन्य काल एक समय कम अन्तर्मुहर्त कहा है और इनकी कार्यास्थित संख्यात हजार वर्षप्रमाण होनेसे अजघन्य प्रदेशबन्धका उरहुष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध नारकियोंके समान घोटमान जघन्य योगसे होनेके कारण यहाँ इसका भंग नारकियोंके समान कहा है। बादर वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंका सक्क बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान होनेसे यह भङ्ग उक्त प्रमाण कहा है। सब सक्ष्म पूर्वीप्र जीवोंमें सात कर्मों का जघन्य प्रदेशबन्ध ओघके समान प्राप्त होनेसे

ता॰प्रती सत्तण्यां क॰ ज॰ द॰ इति पाठः ।

৩৩. विगर्लिदि० सत्तर्णा क० ज० ज० उ० ए०। अज॰ ज० खुइाम० समऊ०। पजात्ते' ज० ज० उ० ए०। अज० ज० अंतो० [समऊ०], उ० संखेजाणि वाससङ्ग । आउ० पंचिं०तिरिक्खटगरंगो ।

७८. पंचि॰-तस॰ सचर्णां के॰ ज॰ ज॰ उ॰ ए॰। अज॰ ज॰ खुदाम॰ समऊ॰, उ॰ अणुक्तस्सभंगी। पज्जतेसु ज॰ ए॰, अज॰ ज॰ अंतो॰, उ॰ अणुक्तस-मंगी। आज॰ पंचि॰तिरि॰मंगी।

७९, पुढ़ - आउ - नेउ - नाउ - नणफिदि-णियोद सुहुमपुढ़ । एवं आउ - नेउ - हसका काळ ओषके समान कहा है। तथा इस एक समयको अन्तर्महुत्वेंसेसे कम कर हेने पर यहाँ अजयन्य प्रदेशकरफा जयन्य काळ एक समय कम अन्तर्महुत्वेंप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और इनकी कार्याध्यति अन्तर्मुहुतेंप्रमाण होनेसे अजयन्य प्रदेशकरफा उत्कर काळ अन्तर्महुतेंप्रमाण कहा है।

७०. विकलेन्द्रियोमें सात कमीं के जयन्य प्रदेशकरथका जयन्य और उन्हरूष्ट काल एक समय है। अजबन्य प्रदेशकरथका जन्म काल एक समय कम अल्लेक भवमहणप्रमाण है। इनके पर्याप्तकरों जयन्य प्रदेशकरथका जयन्य और उन्हरूप ठलाठ एक समय है। जजन्म प्रदेशकरथका जयन्यकाल अन्तर्मुद्ध है और उन्हरूप काल दोनोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। तथा इन दोनोंमें आयुक्तमंत्र भंग पंचीन्द्रपतिर्ध्वाद्धिक समान है।

विशेषार्थ विकलिन्द्रयों और इनके पर्यापकों में भवग्रहणके प्रथम समयमें सात कभीं का जपन्य प्रदेशवन्य होता है, इसिल्ये उसका जपन्य और उस्कृष्ट काल एक समय कहा है, तथा इस एक समयकों अपनी अपनी जपन्य भनिवासिसे कम कर हेन पर इसके अजपन्य प्रदेशवन्यकों जपन्य काल होता है, इसिल्ये वह एक समय कम क्षुत्रक भवग्रहण-प्रभाण और एक समय कम अन्तर्श्वर्त प्रमाण कहा है। तथा इन दोनोंको कार्यास्थात संस्थात हाता वर्षप्रमाण होनेसे इनके अजपन्य प्रदेशवन्यका जरुष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। आयुक्तमें जपन्य और अजपन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और उसकृष्ट काल स्वामित्रकों से देशते हुए विकलेन्द्रियों पञ्चिन्द्रियविषक्षीं समान और विकलिन्द्रिय पर्याप्तकोंमें पञ्चिन्द्रिय विषक्ष पर्याप्तकों समान प्राप्त होने यह उनके समान कहा है।

७८. पञ्चीन्द्रय और अस जीवोमे सात कर्मों के जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और वस्कृष्ट काळ एक समय है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय कर श्रुक्त भवप्रहणप्रमाण है और उक्तृष्ट कालां का असे अज वन्य प्रदेश हैं। या जीवोमें सात कर्मों के अज वन्य प्रदेश वस्त्रका जयन्य और उक्तृष्ट काळ एक समय है। या उपल्या का अस्त्रका जयन्य और उक्तृष्ट काळ एक समय है। अज वन्य अरेर वस्त्रका जयन्य काळ अस्तर्म अप्ति काळ अस्तर्म अप्ति काळ अस्तर्म अप्ति काळ अस्तर्म के अस्त

विश्वार्थ — इन जीवां के भी भवप्रकृणके प्रथम समयमें सात कमीका जयन्य प्रदेशवन्य होता है इसिक्य इसका जयन्य और उर्देष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको जयन्य भविश्वितिसे कम कर देन पर इनके अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय कम सुझक भवप्रकृणप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इसका उद्देशवन्यक के अवाक्ष्यक स्वाप्त होनेसे वह स्वस्थ हो है। इसीप्रकार इनके पर्योग्नकों काळ पटित कर लेना चाहिए। होय कथन सुगम है।

७९. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक,

१. ता॰प्रती समऊ० । भ्र[प]जते इति पाठः ।

बाड०-वणफादि-णिगोद० सत्तवणं क० ज० ज० उ० ए० । अज० ज० खुहाभ० समऊणं, उ० सेढीए असंखे० । आउ० ओधं । एदेसिं बादराणं सत्तव्यां क० ज० ए० । अज० ज० खुहाभ० समऊणं, उक० कम्महिदी० । तेसिं पज्जा० सत्तव्यां क० ज० ए० । अज० ज० अंतो०, उक० संखेजाणि बाससहस्साणि । आउ० तिरिक्सभंगो । बादर-पनेग० वादरपुटविभंगो ।

८०. पंचमण०-पंचवचि० अहणां क० ज० ज० ए०, उ० चचारि सम०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। कायजोगि० सत्तर्णां क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उक० असंखेजा लोगा। आउ० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

निगोद जीव, सूहम पृथिवोकायिक, सूहम जल्बन्यिक, सूहम अम्तिकायिक, सूहम बायुकायिक, सूहम बनस्पतिकायिक, सूहम निगोद जीवॉमें सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय के खुक्क भवमहणप्रमाण है शे आयुक्त मंत्रा अव्यवस्थार हे अत्र उत्कृष्ट काल एक समय के खुक्क भवमहणप्रमाण है शे आयुक्त मंत्रा भक्ष असे असंख्याववें भागप्रमाण है। आयुक्त मंत्रा भक्ष को प्रकृत समय है। इनके वाद्रांमें सात कर्मों के जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय क्या खुक्क भवमहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल कर्मीस्पतिप्रमाण है। उत्तके पर्योग्नकोमें सात कर्मों के जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काल प्रकृत्यक्त जयन्य और उत्कृष्ट काल कर्मास्पतिप्रमाण है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काल अन्तर्यप्रदेश क्या स्वर्थ है और उत्कृष्ट काल संस्थात हजार वर्ष है। आयुक्त प्रदेशवन्यका जयन्य काल अन्तर्यप्रदेश है और उत्कृष्ट काल संस्थात हजार वर्ष है। आयुक्त प्रदेशवन्य भन्न विषयेक्ष समान है। बायुक्त प्रदेशवन्य वर्ष समय विषयों के समान है। बायुक्त प्रदेशविक्त प्रवाद प्रदेशविक्त विषयों है समान है।

विश्लेषार्थ—काळका खुळासा पहळे जिस प्रकार कर आये हैं उसे ध्यानमें रखकर यहाँ भी कर छेना चाहिये। मात्र बादर पर्योतनिगोदोंका उन्क्रप्ट काल अन्तर्महर्त जानना चाहिए।

८०. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें आठ कर्मों के जघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सहर्त है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यको जघन्य काल एक समय है। आयुक्तमें जघन्य काल एक समय है। आयुक्तमें जघन्य काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है। अजघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सहर्त है।

विश्वेषार्थ — यहाँ पर पाँच मनोघोगी और पाँच वचनयोगी जीवों में आठकमों का जयन्य प्रदेशवन्य पोटमान जयन्य योगसे होता है, अतः इनके जयन्य प्रदेशवन्य का जयन्य काल एक समय और व्ह्ह्य काल वार समय कहा है। तथा इन योगों का जयन्य काल एक समय और क्ह्य काल अन्तर्युहुर्त होनेसे यहाँ आठाँ कर्मों के अजयन्य प्रदेशकन्यका जयन्य काल एक समय और जट्ट काल अन्तर्युहुर्त कहा है। कायगाम मात कर्मों का जयन्य प्रदेश कम्य सुरु मिना कर्मों का जयन्य प्रदेश कम्य सुरु मिना कर्मों का जयन्य प्रदेश क्या हुए समय और जट्ट काल अन्तर्युहुर्त कहा है। कायगाम में हो समय है है। क्या जयन्य प्रदेश क्या सुरु मिना क्या है। हम स्वाविश्व इनके जयन्य प्रदेश काल एक समय कहा है। तथा जिसके मरणके जयन्य प्रदेश काल एक समय कहा है। तथा जिसके मरणके

१. ता०आ॰प्रत्योः कम्मद्विदी० अंगुज्ज० असं० तेसि इति पाठः ।

८१. ओसाठि० सत्तर्ण्यं क० ज० ए०। जज० ज० ए०, उ० बाबीस बाससङ्घ । आउ० फिरपमंगो । जोरा०मि० अपज्ज०भंगो । णवरि जज० ज० सहाम० निसमऊणं ।

्टर. वेडिव्यय-आहार॰ सत्तर्णां क॰ ज॰ ए॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ अंतो॰। अथवाज॰ ज॰ ए॰, उ॰ चत्तारि स॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ अंतो॰। वेडिव्ययका॰ आउ॰ देवोधं। आहार॰ आउ॰ जह॰ ए॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ अंतो॰। वेडिव्यि॰सि॰ सत्तर्णां क॰ ज॰ ए॰। अज॰ ज॰ उ॰

समय काययोग हुआ है और दूसरे समयमें जो सुइस तिगोद अपयौत होकर जपन्य योगसे सात कर्मों का जपन्य प्रदेशकन्य करते लगा है उसके काययोगमें एक समय तक सात कर्मोंका अजयन्य प्रदेशकन्य होता है, इसलिए इसका जपन्य काल एक समय कहा है और इसका कलाइ काल क्रमंक्यात लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही हैं। श्रेष कथन सुगम है।

८१. औदारिककायवोगी जीवोमें सात कमें के जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और उक्कष्ट काल एक समय है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उद्देश काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। आवुक्तिका भंग नारिकयोंके समान है। अदिशिक्षकायोगी जोवोंमें अपयोगकांके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि इनमें अक्षयान प्रदेशकरणका जयन्य काल तीन समय कम श्रृष्टक भयमद्गाप्तमाण है।

८२. वैकविककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जमन्य प्रदेश-वन्यका जपन्य और उन्नष्ट काळ एक समय है। अजमन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काळ एक समय है और उन्नष्ट काळ जन-ताहुंत है। अथवा जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काळ चार समय है। अजमन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काळ जन-ताहुंद्र है। वैकिविककाययोगी जीवों में आयुक्तका भक्त सामान्य देवोंके समान है। आहारककाययोगी जीवोंमें आयुक्तका अपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काळ पन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काळ जन-ताहुंद्र है। वैकिविकमित्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के अपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य समय है और उन्नष्ट काल जन-ताहुंद्र है। वैकिविकमित्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काल जन-ताहुंद्र है। वैकिविकमित्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य प्रदेशवन्यका जपन्य प्रदेशवन्यका प्यावका प्रदेशवन्यका प्यावका प्रदेशवन्यका प्रदेशवन्यका प्रदेशवन्यका प्रदेशवन्यका प्रदेशव

१. ता॰बा॰प्रत्योः वाससङ्० ज॰ बाद० इति पाटः ।

अंतो०। एवं आहारमि० सत्तर्ण्यं कः। आउ० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। कम्मइ० सत्तर्ण्यं कः० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० तिष्णि स०। एवं अणाहार०।

८३. इत्थि०-पुरिस० सत्तरणां क० ज० ए०। अज० ज० ए० पुरिस०

जघन्य और उन्ह्रेष्ट काल अन्तर्मेहुर्त है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भक्क जानना चाहिये। आयु कर्मके जघन्य प्रदेशक्यका जघन्य और उन्ह्रेष्ट काल एक समय है। अज्ञयन्य प्रदेशक्यका जघन्य काल एक समय है और उन्ह्रेष्ट काल अन्तर्मेहुर्त है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशक्यका जघन्य और उन्ह्रेष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशक्यका जघन्य काल एक समय है और उन्ह्रेष्ट काल तीन समय है। इसीप्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विद्रोबार्ध-वैक्रियिक और आहारक काययोगमें सात कर्मी का जघन्य प्रदेशबन्ध शरीर पर्याप्रिसे पर्याप्र होनेके प्रथम समयमें होता है. इसलिए यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्क्रष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मृहर्त होनेसे यहाँ इनके अजयन्य प्रदेशबन्धका जयन्य काळ एक समय और जत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त कहा है । यहाँ विकल्परूपसे इन योगोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेश-बन्धका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। सो घोटमान नघन्य योगसे भी जघन्य प्रदेशवन्य सम्भव है यह मानकर यह काल कहा है। इस अपेक्षासे भी अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त बन जाता है। वैक्रियिककाययोगमें आयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध सामान्य देवोंके समान घोटमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इसमें आयुकर्मका भङ्ग सामान्य देवांके समान कहा है। आहारककाययोगमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशवन्ध शरीर पर्याप्तिके प्रथम समयमे सम्भव है, इसल्यि इसके जघन्य प्रदेशकन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्महत्ते सम्भव होनेसे इसमें आयुक्रमंके अजयन्य प्रदेशवन्थका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त कहा है। वैकिथिकमिश्रकाययोगमें सात कर्मीका जघन्य प्रदेशवन्ध भवप्रहणके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्सृहर्त है, इसिछये इसमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगमें वैकियिक-मिश्रकाययोगके समान काल घाटत हो जाता है, इसलिये आहारकमिश्रमें सात कर्मोंके जधन्य और अजधन्य प्रदेशबन्धका काल वैकियिकमिश्रके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र आहारकामश्रमें आयुक्मका बन्ध भी सम्भव है इसलिये उसका काल अखगसे कहा है। कार्राणकाययोगमें सात कर्मीका जघन्य प्रदेशबन्ध सक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवके प्रथम विभव्नमें होता है, इसिंखये इसका जधन्य और उत्कृष्ट कोल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इसलिये इसमें सात कर्मों के अज्ञाधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। आहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान व्यवस्था रहनेसे उनमें सब भक्न कार्मणकाययोगियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

८२. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और

अंदो०, उ० अणुक्र०भंगो। आउ० देवभंगो। अवगद० सत्तर्णं क० ज०ए०, उ० चचारिस०। अज० ज०ए०, उ० अंदो०।

८४. कोबादि० ४ सचण्णं क० ज०ए०। अज० ज०ए०, उ०अंती। इवंबाउ०।

८५. विभंग सत्तरणं क॰ ज॰ ज॰ ए॰, उ॰ चत्तास्सि॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ तैंचीसं॰ दे॰। आउ॰ देवमंगो । आभिणिसुद-ओधि॰ सत्तरणं क॰ ज॰ ए॰।

क्कान्न काळ एक समय है। अजयन्य प्रदेशकन्यका जयन्य काल क्रीवेदमें एक समय और पुरुषवेदमें अन्तर्भुतुर्ते है तथा उत्कृष्ट काळका मङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। आयुक्रमेका मङ्ग देवाँके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशकन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काल बार समय है। अजयन्य प्रदेशकन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काळ अन्तर्भुत्व है।

बिहोबार्थ—इस दोमां वेदांमं न्सात कर्मों का जपन्य प्रदेशकर्य इत वेदवाळ असं झी जीवांके सवसहणके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इसका जपन्य जोर उत्तुष्ट काल एक समय बहा है। तथा क्षीवेदका जपन्य काल एक समय कीर पुरुषवेदका जपन्य काल एक समय कर्ता हुए त्यावेदका जपन्य काल अत्तर्भपुर्व होने इनमें इनके अजयन्य प्रदेशकर्यक जपन्य काल क्रमसे एक समय जीर अन्तर्भुद्ध होने इनमें इनके अजयन्य प्रदेशकर्यक जत्रष्ट काल्डा मङ्ग अनुतरुष्ट प्रदेशकर्यक जत्रष्ट काल्डा मङ्ग अनुतरुष्ट प्रदेशकर्यक जत्रप्ट काल्डा मङ्ग अनुतरुष्ट प्रदेशकर्यक जत्रप्ट वाल्डा हो। इसमें आयुक्तमका जपन्य प्रदेशकर्य वेदां समान विभाव की है। अप्यातवेदी जीवांमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशकर्य घोटमात अपन्य की हो। है, इसलिए इसमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशकर्य घोटमात अपन्य वोगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशकर्य घोटमात अपन्य वोगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशकर्यक घोटमात अपन्य वोगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंक जपन्य प्रदेशकर्यक जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा बन्य करनेवाल अयानवेदका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक जपन्य एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक प्रचार एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक जपन्य एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने हाने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक प्रचार एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने हाने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने हाने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने हाने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्यक एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्ध होने होने इसमें अजपन्य प्रदेशकर्य प्रवास होने होने समय स्वास होने होने स्वास समय स्वस्य स्वास होने होने स्वस्य स्वस्य समय स्वस्य स्वस

८४. कोघादि चार कषायवाळे जीबीमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य और उत्क्रष्ट काळ एक समय है। अजधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काळ अन्तर्मुहते है। आयुक्तमेका भङ्ग इसीप्रकार जानना चाहिये।

बिशेषार्थ — कोधादि चार कषायों में ओषके समान भव प्रहणके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशवन्य होना है, इसलिये इसका जघन्य और उत्क्रष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्क्रष्ट काल अन्तसुहृतं होनेसे इनमें सात कर्मों के जञ्चचन्य परेशवन्यका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तसुहृतं हानेसे इनमें सात कर्मों के अञ्चन्य परेशवन्यका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तसुहृतं कहा है। बहां आयुक्तमंका भङ्ग इसी प्रकार जाननेकी सूचना को है सो इसका यह तात्यवे हैं कि जिस प्रकार यहाँ सात कर्मों के जघन्य और अञ्चष्य प्रदेशवन्यका काल कहा है उसी प्रकार आयुक्तमंके जघन्य और अजयन्य परेशवन्यका काल प्राप्त होता है। कारण स्पष्ट है।

८५. विभक्तकानी जीवॉर्म सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवस्थका जधन्य काल एक समय है और उन्हेष्ट काळ चार समय है। अजधन्य प्रदेशवस्थका जधन्य काल एक समय है और उन्हेष्ट कुछ कम तेतीस सागर है। आयुक्मका भङ्ग देवांके समान है। आभिनिवोधिकज्ञानी, अत-क्षाती और जवविज्ञानी वावॉर्मे सात कर्मोंके अधन्य प्रदेशवस्थका जधन्य और वन्केष्ट काळ

अंज॰ ज॰ अंतो॰, उ॰ छावट्टि॰ सादि॰ । आउ॰ देवभंगो । एवं श्रोघिदं॰सम्मा॰-खद्ग॰-वेदग॰ । णवरि खद्ग॰-वेदग॰ अज॰ अणुक्र॰मंगो ।

८६. मणप० सत्तर्ष्णं कः ज॰ ज॰ ए॰, उ॰ चत्तारि स॰। अज॰ ज॰ ए॰, उ॰ पुञ्चकोडी दे॰। आउ॰ देवभंगो। एवं संजद-सामाइ॰-छेदो॰-मरिहार॰-संजदासंजद॰। सुदूससं॰ अवगद० भंगो। चक्सु॰ तसपज्जत्तर्भगो।

एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त है और उरक्रष्ट काल साथिक छयासर सागर है। आयुक्संका सङ्ग हैबाँके समान है। इसी प्रकार अवधिदरानी, सम्बन्दित, क्षायिकसायम्दर्शि और वेदस्तरमय्दर्शि जांबॉर्म जानना चाहिए। इतनी विशेषना है कि झायिक-सम्यादर्शि और वेदस्वसम्यद्ध जांबॉर्म अजघन्य प्रदेशवय्यका भंग अनुक्टपके समान है।

८६. मतःपर्ययक्षाती जीवोंमें सात कर्मीके जघन्य प्रदेशवन्थका जघन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ चार समय है। अजघन्य प्रदेशवन्थका जघन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। आयुक्तमंका भङ्ग देवाके समान है। इसी प्रकार संयत, सामाविकसंयत, क्षेरी एस्थापनासंयत, परिहारविक्य द्विसंयत और संवतासंयत जीवोंमें जाना चाहिए। सूक्तसाम्यरायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान मंग है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें असपगते जीवों से समान मङ्ग है। जिक्ष समान स्वाप्त के स्वाप्त स्वाप्त के स्वाप्त स्

विशेषार्थ— मन-पर्यवहानी जीवों सं सात कर्मों का जबन्य प्रदेशवन्य घोटमान जबन्य योगसे होता है, इसंबंबर इसमें सात कर्मों के जबन्य प्रदेशवन्यका जबन्य काल एक समय और उन्होंट काल जार समय कहा है। तथा दो बार जबन्य प्रदेशवन्यके मध्यों एक समयके लिए अजबन्य प्रदेशवन्य हो यह सम्भय है और मन-पर्यवहानका उन्हेंट काल कुछ क्रम एक पूर्व-क्रांट्रमाण है, इसंलिए यहां सात कर्मों के अजबन्य प्रदेशवन्यका जन्मन्य काल एक समय बीर उन्होंट काल कुछ कम एक पूर्वकारियमाण कहा है। यहां अगुक्तका सन्न देश समान है बहु स्पष्ट हो है। यहां संयत आदि अन्य

१. आ॰प्रती मंगो । मणुस॰ सचन्त्रं इति परः ।

८७. किष्ण-पील काऊ० सत्तर्णं क० ब०ए०। अञ्च० ज० अंतो, उक्क० तेत्तीसं-सत्तारस-सत्तसाग० सादि०। आउ० ओषं। तेउ-पम्माणं सत्तर्णं क० ब०ए०। अञ्च० ज० अंतो०, उ० वे-अद्वारससाग० सादि०। आउ० देवमंगो। सुकार सत्तर्णं क० ज० ए०। अञ्च० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०। आउ० देवमंगो।

८८. उबसम० सत्तष्णं क० ज० ए०। अज० जहण्णुक० अंतो०। सासणे सत्तष्णं क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० छावलिगा०। आउ० देवमंगो। सम्मामि० मणजोगिभंगो।

जीवोंके समान कालपरूपणा वन जाती है, इसलिए उनका कथन मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान

जानने की सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

८७. कुणा, नील और कापीत लेश्यामें सात कर्मीके जघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल अन्तमृंहते हैं और उन्नष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल अन्तमृंहते हैं और उन्नष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और अक्ष अध्यक्त समाग है। यीत और पद्मालंश्यम सात कर्मीके जघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उन्नष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य काल अन्तर्मृहते है और उन्नष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। आयुक्तंक मङ्ग देवांक समाग है। अच्छान्य अर्थरवान्यका जघन्य काल अन्तर्मृहते है और उन्नष्ट काल प्रदेशवन्यका जघन्य काल अन्तर्मृहते है और उन्नष्ट काल प्रदिश्च तेतीस सागर है। आयुकर्म-का अंगर वृद्धिके समान है।

बिरोषार्थ— छरों छेरयाओं में अपने अपने योग्य प्रथम समयवर्ती नद्भवस्य जीवके अचन्य प्रदेशक्त्य होता है, इसलिए इनमें सात कमों के जमन्य प्रदेशक्त्य होता है, इसलिए इनमें सात कमों के जमन्य प्रदेशक्त्य होता है, इसलिए इनमें सात कमों के अजयन्य प्रदेशक्त्य होता है, इसलिए इनमें सात कमी के अजयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य और उन्ह्रष्ट काल उक्त मागण कहा है। स्वामित्वको देखते हुए कुष्णादि तीन छेरयाओं आयुक्में का भङ्ग ओयके समान और पीत आदि तीन छेरयाओं में वह देखों के समान बन जानेसे उस प्रकार जानेने ही सूचना की है।

८८. उपश्चमसम्बन्दसं सात कर्मों के जपन्य प्रदेशक्यका जपन्य और उन्कृष्ट काछ एक समय है। अजपन्य प्रदेशक्यका जपन्य और उन्कृष्ट काल अन्तर्पहुद है। सासादनसम्बन्धसं सात कर्मों के जपन्य प्रदेशक्यका जपन्य और उन्कृष्ट काल एक समय है। अजपन्य प्रदेशक्यका जपन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल छह आवंद्यियमाण है। आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है। सम्बन्धियारिष्ठ जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ — उपरामसम्पक्तमें प्रथम समयवर्ती देवके और सासादत सम्यक्तमें प्रथम समयवर्ती तोन गतिके जीवके सात कर्मीका जधन्य प्रदेशकन्य होता है, इसिक्रये इनमें सात कर्मीके जधन्य प्रदेशकन्यका जधन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय कहा है। तथा इन दोनिका जधन्य और उत्कृष्ट को काळ है उसे ध्यानमें राक्कर तम्में जात कर्मों के अजधन्य प्रदेशकन्यका जधन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। सासादनमें आयुक्तमेका मङ्ग देवोके समाल

१. आ • प्रती अज • ज • ए०, उ० अंतो • इसि पाटः।

८९, सण्णी० सत्तर्णा क० ज० ए०। अज० ज० खुद्दाभ० समऊर्ण। उ० सागरोबमसदपुष्पण। आउ० ओषमंगो। आहार० सत्तर्ण्ण क० ज० ए०। अज० ब० ए०, उ० अंगुरु० असंखे०। आउ० जहण्णाजहण्णं ओर्ष।

एवं कालं समर्च ।

अंतरपरूवणा

९०. अंतरं दुविधं-जहष्णयं उकस्सयं च । उक्क पगदं । दुवि-०ओघे० ओदे० । ओघे० छण्णं क० उकस्सपदेसवंधंनरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० अद्वयोग्गल० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । मोह० उ० ज० ए०, उ० अणंत-

है यह स्पष्ट ही है। अपने स्वासित्वको देखते हुए सम्यग्मिष्यात्वमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग बन जाता है, इसलिये सम्यग्मिष्यात्वमें मनोयोगी जीवोंके समान कालप्ररूपणा जाननेकी सुचना की है।

८९. संब्री जीवोंमं सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवप्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल सी सागर प्रयक्तप्रमाण है। आधुक्तमंका भङ्क आंधके समान है। आधारकोंमें सात कर्मों के जधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अञ्चलके असं स्यातवें भागप्रमाण है। आयुक्रमंके जधन्य आर अजधन्य प्रदेशवन्धका काल ओषके समान है।

विशेषार्थ — इन दोनों मार्गाणाओं में भी यथायोग्य भव महणके प्रथम समयमें सात कमीं का जयन्य प्रदेशक्त्रय होता है, अतः इसका जयन्य और उन्क्रष्ट काल एक समय कहा है। सिंदायोग इस एक समयको अपनी जयन्य भवस्थितिमसे कम कर देने पर उनके अजयन्य प्रदेशक्त्रयका जयन्य काल एक समय कम कुक्क भवमहण्यमाण प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा उपरामलेणिमें जो आहारक एक समय तम सात कमीं के वन्धक होकर दूसरे समयमें मर कर अनाहारक हो जाते हैं उनकी अपेक्षा आहारकोंमे सात कमीं के अजयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य काल एक समय कहा है। वहाँ हतना विशेष समयका। चाहिये कि छह कमीं के अजयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य काल एक समय काने के अजयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य काल एक समय काने अजयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य काल एक समय काने के लिये उतरते समय एक समय काने के लिये उतरते समय एक समयके लिये अत्राप्त्य प्रदेशक्त्यका जयन्य काल एक समय काने के लिये उतरते समय एक समयके लिये अत्राप्त्य प्रदेशक्त्यका उत्रस्त्र काल एक समय काने के लिये उतरते समय एक समयके लिये अत्राप्त्य प्रदेशक्त्यका उत्रस्त्र काल एक समय काने के लिये उतरते समय एक समयके लिये अत्राप्त्य प्रदेशक्त्यका उत्रस्त्र काल एक समय काने के लिये उतरते समय एक समयके लिये अत्रप्ति काल प्रदेशक्त्यका उत्रस्त्र काल कराकर माण्य कालिका काल अव्यक्तित्रमाण है यह स्यष्ट हो है। तथा दोनोंम आयुक्मका मक्क काल अपर्या-अपना कालिका माण्य हो यह स्यष्ट हो है। तथा दोनोंम आयुक्मका मक्क काल अपर्या-अपना है यह स्यष्ट हो है। तथा दोनोंम आयुक्मका मक्क काल अपर्या-अपना है यह स्थान है यह स्थान है यह स्थान है वह भी स्था है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

९०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उन्कृष्ट । उन्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओघसे छड़ कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाछ कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्घपुद्रछ परिवर्तनप्रमाण है । कालमर्स० । अणु० च० ए०, उ० अंतो० । आरु० उ० च० ए०,उ० अर्णतका० अर्स० । अणु० ज० ए०,उ० तेत्तीसं० सादि० ।

९१. णिरएसु सत्तर्णां क० उ० ज० ए०, उ० तेतीसं दे०। अणु० ज० ए०, उ० बे० सम०। आउ० उ० अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देस्०। एवं सत्तसु

अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त है। मोहनीय कमेंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो अतंत्वसात पुट्ट एरियंतनप्रमाण है। अनुरुष्ट पृदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अत्तर अन्तर्सप्रदेश आधार कर्मक उत्कृष्ट अत्तर अन्तर्सप्रदेश आधार उत्कृष्ट अत्तर अन्तर्सप्रदेश आधार उत्कृष्ट अत्तर अन्तर्सप्रदेश अत्य है और उत्कृष्ट अत्तर अन्तर्सक्ष क्षेत्र अन्तर अन्तरक्ष प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अत्तर प्रदिवनिष्म माण है। अनुरुक्ष प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विज्ञेषार्थ--- छह कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उपशमश्रेणिमें भी होता है। वहां यह सम्भव है कि इनका उरक्रष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी हो और कुछ कम अर्धपुद्रल परिवर्तन प्रमाण कालके अन्तरसे भी हो । यही कारण है कि ओघसे इन कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्घपुद्रल परिवर्तनश्रमाण कहा है। तथा जो जीव उपशमश्रीणमे अनुतकृष्ट प्रदेशवन्य कर रहा है वह एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके पुनः अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगता है उसके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका एक समय प्रसाण अन्तर देखा जाता है और जो जीव डपशान्तमोहमें अन्त्रमहर्त कालतक अवन्यक होकर नीचे उतर कर छह कर्मीका पुनः बन्ध करता है उसके इन्के अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्त्महुर्त प्रमाण अन्तर काल देखा जाता है। यही कारण है कि यहां इन कर्मों के अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और संज्ञियोंके उस्कृष्ट अन्तरकालको देखते हुए अनन्त कालके अन्तर से भी हो सकता है, इसलिए यहां मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उरकृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आयुक्रमके खरकष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य और उरक्षष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण ले आना चाहिये। पहले छह कर्मों के अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य और उस्कृष्ट अन्तर घटित करके वतलाया ही है उसी प्रकार मोहनीयके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित कर छेना चाहिये। आयकर्मका अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य एक समयके अन्तरसे भी होता है और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी होता है, क्यांकि जो एक पूर्वकोटिकी आयुवाले तिर्यक्क और मनुष्य प्रथम त्रिभागमें भायकर्मका अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके और सरकर तेतीस सागरको आयुवाले नारकियों व देवीं-में बथासम्भव उत्पन्न होकर अन्तर्सहर्त काछ शेष रहने पर आयुक्तमका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करते हैं उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका साधिक तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है, इसिंखये आयुक्तमें अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरप्रमाण कहा है। यहां सरल होनेसे जघन्य अन्तर एक समयका खुछासा नहीं किया है।

९१. नार्राक्योंमें सात कर्मों के उन्क्रष्ट प्रदेशवन्यका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और करकृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुक्सिक उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना प्रमाण है। हसी प्रकार सार्यों

पुढवीसु अप्पच्नो ड्विटी माणिदन्वा ।

्र. तिरिक्केंस् सत्तरणं क० उ० ज० ए०, उ० अणंतका०। अणु० ज० ए०, उ० ते स्म०। आउ० उ० ओमं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि०। पंचिंदि०तिर०३ सत्तरणं क० उ० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुळ्कोटियु०। अणु० ज० ए०, उ० ते सम०। आउ० णाणाव०भंगो। अणु० ज० ए०, उ० ते तिरि० अपज्ज स्तरणं क० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० [वे सम०। आउ० उ० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०।

प्रथिवियांमें जानना चाहिए। मात्र सात कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कहते समय बहु कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये।

१२. तिर्वक्कों सात कर्मों के व्यक्तष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर अन्तर काल है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अन्तर काल है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अन्तर शोध के समान है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अन्तर शोध के समान है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अन्तर शोध के समान है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर साधिक तोन पर्त्य है। प्रकृतिकृत्य-तियक्कां त्रकां के व्यक्तष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर पूर्वकादिप्रयक्त अधिक तीन पत्य है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर सो समय है और व्यक्तष्ट अन्तर सो समय है। अनुक्तष्ट अन्तर क्ष्यक्त क्ष्यक्त अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर साधिक तीन पत्यप्रमाण है। प्रकृतिकृत्य तिर्वेक्ष अपयोग्नकों साथ कर्मों के व्यक्तष्ट अन्तर साधिक तीन पत्यप्रमाण है। प्रकृतिकृत्य तिर्वेक्ष अपयोग्नकों साथ कर्मों के व्यक्तष्ट अन्तर साधिक तीन पत्यप्रमाण है। प्रकृतिकृत्य तिर्वेक्ष अपयोग्नकों साथ कर्मों अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर अन्तर क्ष्यक्र है। अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर अन्तर क्ष्यक्ष के व्यक्तष्ट सीर अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय है और व्यक्तष्ट अन्तर अन्तरमुद्धतिकाण है।

विशेषार्थ — विर्णवासें सात कमों का उत्कृष्ट प्रदेशवन्य एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है, क्योंकि संज्ञी पञ्चीन्द्रयका उत्कृष्ट अत्याक सान्यकालप्रमाण है, इसकिए इनमें सात कमों के स्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्प्रट अन्तर अनन्तरकालप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्प्रट अन्तर अनन्तरकालप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर हो समय जिस प्रकार नारकियों यदित करके वत्वा आये हैं। वसी प्रकार वह अन्तर वहाँ और आये भी विटित कर केना वाहिये। अनेवसे आयुक्सेंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जो अन्तर कहा है वह बहाँ बन जाता है, इसिलये यह अन्तर कोषके समान

९३. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्स्वतियभंगो । शवरि सत्तर्णं क० अणु० ए०, उक्क० अंतो०। देवाणं णिरयभंगो। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो उक्कस्सद्विदी णेदन्वा ।] .

कालपरूवणा

'संसेद्धत्तस०,अणु०^{*} ज० ए०, उ० '

कहा है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी होता है और पूर्वकोटिकी आयुवाला जी तिर्यक्त प्रथम त्रिभागमें आगामी भवकी आयु बाँधकर उत्तम भोगमूमिमें उत्पन्न होता है और वहाँ छह महीना काल शेष रहने पर पुनः आयुवन्ध करता है उसके साधिक तीन पत्यके अन्तरसे भी अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देखा जाता है, इसल्बिये यहाँ आयुक्तमंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य कहा है। आयुक्रमंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका यह अन्तर पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी घटित हो जाता है, इस्लिये वह इसी प्रकार कहा है। इनकी उत्कृष्ट कार्यास्थित पूर्वकोटिपृथवस्य अधिक तीन पत्यप्रमाण है, इसिंछिये इतमें आठों कमींके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका उत्क्रष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, क्यांकि यहाँ अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें आठों कमी का उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध हो और मध्यमे न हो यह सम्भव है। इनमें आठा कर्मों के उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है यह स्पष्ट ही है। पंचेत्द्रिय तिर्यक्त अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहर्त है और इनमें आठा कर्मी का उत्क्रष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध यथायोग्य एक समयके अन्तरसे हो सकता है, इसल्यि इनमें आहों कर्मों के उत्क्रप्ट प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महर्त तथा आयकमके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर अन्तमृहत् कहा है। होष कथन स्पष्ट ही है।

९३. मन्त्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मों के अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त है। देवोंमें नार्राक्षयोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब देवामें जानना चाहिये। मात्र सान क्रमोंके बन्कष्ट प्रदेशवन्धको उरक्रष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उरक्रष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिए। विज्ञेषार्श्व-स्वामित्व और कार्यास्थितको देखते हुए मनुष्यत्रिकमें पश्चिन्द्रिय तिर्यञ्च-

त्रिकसे कोई विशेषता नहीं होनेसे यहाँ आठों कर्मीके उत्क्रुट और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य और उरहेष्ट अन्तर पद्धोन्द्रिय तिर्यक्कत्रिकके समान कहा है। मात्र मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे इनमें सान कर्मों के अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट अन्तर हो समयके स्थानमें अन्तर्महर्तप्रमाण वन जाता है, इसल्पिय इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके अन्तरका अलगसे उल्लेख किया है। देवोंमें सब कमोंके उत्क्रप्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व नारिकयोंके समान है, इसलिये इनमें आठा कमेंकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य और उत्क्रष्ट अन्तर नारिकयोंके समान कहा है। मात्र देवोंके अवान्तर भेदोंकी भवस्थिति अलग-अलग है, इसलिये इन भेदामें अन्तर कहते समय सात कर्मोंके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका उत्कार अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण जाननेकी अलगसे सूचना की है।

कालप्रस्पणा (नाना जीवांकी अपेक्षा)

संस्वात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जन्नन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट।

ता०प्रती अंतो० प्रणु० [अत्र ताडपत्र हयं विनष्टम्] **** संलेखसं० प्रणु०, आ०प्रतो संतो० अणु० ज॰ ए० उ॰ ·····संतेजस० अणु० इति पाठः।

९४. जहण्णए पगर्द । दुवि०-अभि० आहे॰ । ओमे॰ अहण्णं क० ज० अज० सम्बद्धा । एवं ओघसंगी सन्वज्ञणंतरासीणं सन्वप्ट्रंदि० पंचकायाणं च । णविर बादरपुट०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पचे०पज० ज० ज० ए०, उ० आवित् असं० । अज० सन्बद्धा । आउ० ज० अज॰ णिरयमंगी । वेउन्वियमि० सचण्णं क० ज० ज० ए०, उ० आवित्० असं० । अज० ज० अंतो०, उक्क० पित्रो० असंखे०। अवगद०- सुहुमसंप० उक्तस्समंगी । उवसम० सचण्णं क० ज० ज० ए०, उ० संखेजसम० । अज० ज० अंतो०, उक्क० पित्रो० असंखे० । एवं पिरमाणे असंखेजरासीणं तेर्ति ज० ए०, उ० आवित्व असंखे० । अज० अप्पप्पणो पगदिकालो कादञ्जो । स्वं संखेजरासीणं तेर्ति ज० ए०, उ० संखेजसम० । अज० अप्पप्पणो पगदिकालो कादञ्जो ।

एवं कालं सम्मत्तं ।

९४. जघन्य काळका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे आठ कमों के जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काळ सर्वदा है। इसी प्रकार ओघके समान सब अनन्तराशि, सब एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवों में जानना चाहिए। इतनी विकोपता है कि बादर प्रथि ीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त. बादर वायकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें जघन्य प्रदेश-बन्धका जचन्य काल एक समय है और उत्झ्ष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशवन्धका काल सर्वदा है। आयुक्रमके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल नारकियोंके समान है। बैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल आवित्तके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य काल अन्तर्महर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है। अपगतवेदी और सुद्रमसाम्परायसंयत जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है। उपशमसन्यक्स्वमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातव भाग-प्रमाण है। इसी प्रकार परिमाणमें जो असंख्यात राशियाँ हैं उनमें जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उस्कुष्ट काल आवलिके असंख्यातव मागप्रमाण है। अज्ञघन्य प्रदेशबन्धका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान करना चाहिये। इसी प्रकार जो संख्यात राशियाँ हैं उनमें जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काळ संख्यात समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान करना चाहिये।

विद्योषार्थ — ओघसे आठां कर्मोंका जपन्य प्रदेशबन्य सुरुम एकेन्द्रिय अपर्याप्त जोबके यथायोग्य समयमें योग्य सामग्रीके मिछने पर होता है। यतः एसे जीव निरन्तर पाये जाते हैं, यतः ओघसे जपन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वेदा कहा है। तथा ओघसे अजपन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है । तथा ओघसे अजपन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। सब अनन्त राशियोंमें, एकेन्द्रियों और पाँच स्पावस्कायिकोंमें इसी प्रकार करने स्वासित्यकों जान कर आठां कर्मोंके जपन्य और अजपन्य प्रदेशबन्धका स्ववदा काल छे आना चाहिये। बादर प्रयिवोकायिक पर्याप्त आदि पाँच कायिक जीवोंमें उनकी

ता॰प्रती सम्बद्धा (दा) इति पाटः । अग्रेऽपि क्वचिद्वमेव पाटः । २. ता॰प्रती संखेळारासी तेसिं इति पाटः ।

अंतरपरूवणा

९५. अंतरं ' दुवि०-जि० उ० । उ० पगदं । दुवि०-जोषे० ओदे० । ओषे० अष्टुण्णं क० उक्क० पदेसबंधंतरं केवचिरं कालदो होदि ? जह० ए०, उ० सेढीए असंखे० । अणु० णिख अंतरं । एवं एदेण^य बीजेण एसि सम्बद्धा तेसि णिखा अंतरं । एसि णोसम्बद्धा तेसि उक्क० ज० ए०, उ० सेढीए असं०। अणु० अष्टुण्णं पि क० अपपप्पणो पगदिअंतरं कादन्वं ।

ष्ट्यांच और स्वामित्वको देखकर सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काळ एक समय और उरकुष्ट काल आविद्धिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इतमें सात कर्मों के अजधन्य प्रदेशबन्धका काळ सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। आगे असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें कालका निर्देश किया है। उसमें नारिकयोंका समावेश है ही, अतः उसे ध्यानमें रखकर यहाँ बादर प्रधिवीकायिक पर्याप्त आदिमें आयकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालके जाननेकी सूचना की है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जो असंज्ञी मरकर नरकमें और देवोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। ऐसे जीव लगातार कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवित्तिके असंख्यातवं भाग-प्रमाण काळ तक ही उत्पन्न होते हैं. अतः इस योगमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अधन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातव भागप्रमाण कहा है। तथा इस योगका जघन्य काल अन्तर्महर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातव भागप्रमाण है, अत इसमें सात कर्मों के अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य और उरक्रष्ट काल कमसे उक्त कालप्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्तवमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उरक्रष्ट काल वैकियिकिमिश्र-काययोगके समान ही घटित कर लेना चाहिये। क्योंकि इन मार्गणाओंका काल समान है। किन्त उपशमसम्यवत्वके साथ मरकर देव होते हैं उनके ही इस सम्यवत्वमें सात कर्मीका जयन्य प्रदेशबन्ध होता है। ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक हो। मरकर उत्पन्न होते हैं। अतः इस सम्यक्त्वमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेश-बन्धका जघन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ संख्यात समय कहा है। शोप कथन स्पष्ट ही है ।

अन्तरप्ररूपणा

९५. अन्तर दो प्रकारका है—जमन्य और उत्कृष्ट! उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठ कर्मों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका अन्तरकाळ कितना है ? जमन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जाअंगिक असंख्यातवे भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अदेशवन्यका अन्तरकाळ नहीं है। इस प्रकार इस वीजयप्रके अनुतार जिनका काळ सर्वेदा है है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। तथा जिनका काळ सर्वेदा नहीं है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। तथा जिनका काळ सर्वेदा नहीं है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। तथा जिनका काळ सर्वेदा नहीं है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। तथा जिनका काळ सर्वेदा नहीं है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। तथा जिनका काळ सर्वेदा नहीं है उनमें अन्तरकाळ नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुतार करना चाहिए। अनुत्कृष्ट अन्तरके समान अन्तर करना चाहिए।

विश्वेषार्थ — सब योगस्थान जगर्भाणके असंस्थातवें भागप्रमाण हैं। यह सम्भव है कि नाना जीवोंके जो योग उन्ह्रष्ट प्रदेशवन्यमें निमिन है वह एक समयके अन्तरसे भी हो जावे और एक बार होकर पुन: कमसे सब योगस्थानोंके हो जानेके बाद होवे, इसलिए यहाँ सब कर्मोंके उन्ह्रष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उद्ध्य अन्तर जगर्भणिके असंस्थातवें

१. ता॰प्रतौ पगदिकाले कादम्बो । अंतरं इति पाठः । २. झा॰प्रतौ अंतरं । एदेण इति पाठः ।

९६. जह० पगर्द । दुवि०-ओषे० आदे० । ओषे० अदुष्णं क० ज० अज० णत्थि अंतर्र । एवं अणंतरासीणं असंखेजलोगरासीणं । सेसाणं उकस्समंगो ।

भावपरूवणा

९७. भार्व दुविधं — जह० उक० च । उक०पदे० पगर्द । दुवि०-ओषे॰ आदे० ।ओषे० अहण्णं क० उ० अशु०वंधग त्ति को भावो ? ओदरगो भावो एवं अणाहारग त्ति णेदच्वं ।

९८. जह॰ पगर्द । दुवि॰-ओषे॰ आदे॰ । ओषे॰ अड्डण्णं क॰ ज॰ अज॰-बंधग क्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग क्ति णेदव्वं ।

भागप्रमाण कहा है। जीवराशि अनन्त है, अतः सब क्रमों के अतुक्तृष्ट प्रदेशवन्ध्रमें अन्तर प्रवृत्ता सम्भव नहीं है, इसिलए यहाँ इसके अन्तरकालका निषेष किया है। आगे जिन मार्गणाओं का उक्तृष्ट और अनुकृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका काल सर्वेद्य है उनमें अन्तर घटित नहीं होता। किन्तु जिन जिन मार्गणाओं में सर्वेद्र काल नहीं है उनमें उक्तृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका अपन्य और उक्तृष्ट अन्तर औषके समान बन जाता है और अनुक्तृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका अन्तरकाल प्रकृतिवन्ध्रके अन्तरके समान प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ नरकार्य तालिय। इसमें उक्तृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका काल सर्वद्रा नहीं है, इस- किए इसमें उक्तृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका जयन्य और उक्तृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। तथा इसमें आयुक्तमंक सिवा शेष कर्मोंका सदा प्रकृतिवन्ध्र होता रहता है, अतः अनुरुकृष्ट भ्रदेशवन्ध्रका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। मात्र आयुक्तमंका सदा बन्ध्य नहीं होता, अतः प्रकृतिवन्ध्रकाल नहीं प्राप्त होता। मात्र आयुक्तमंका सदा बन्ध्य नहीं होता, अतः प्रकृतिवन्ध्रकाल अन्तरकाल कर्म स्वर्ष मार्गणा स्वर्थ भ्रद्या क्रम्यका जयन्य और उक्तृष्ट अन्तरकाल कर्म कात्रा विद्या वात्र होता। इसी प्रकृतिवन्ध्रकाल स्वर्ण क्रम्यकाल अपना वाहिए।

९६, जयन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश। ओपसे आठों कर्मोंके जयन्य और अजयन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार अनन्दराशि और असंख्यात लोकप्रमाण राशियों में जानना चाहिए। शेष राशियोंका सक्क उन्क्रप्रके समान है।

विशेषार्थ—स्वामित्वको देखते हुए वहां ओपसे और अनन्त संख्यावाडी व असंस्थात लोकप्रमाण संख्यावाडी मार्गणाओं में आठों कर्मों के जपन्य और अजपन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाड़ नहीं प्राप्त होनेसे उसका निषेप किया है। किन्तु स्वामित्व को देखते हुए शेष मार्गणाओं में अन्तरकाठ उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान बन जाता है, इसडिए इसे उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान जानने-की सूचना की है।

भावप्र रूपणा

९७. भाव दो प्रकारका है—जयन्य और उन्कष्ट । उन्क्षप्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—अोच और आदेश । ओचसे आठ कमें के उन्कष्ट और अनुक्कष्ट प्रदेशबन्धके बन्धक तीबोंका कौन-सा भाव है ? औदियिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक छे जाना चाहिए ।

९८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मों के जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका कौन-सा भाव है ? औदियक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए।

^{1.} आ ॰ प्रतीभावे । एवं इति पाठः ।

अपाबहुगपरूवणा

९९. अप्पासहुगं दुवि०—[जह० उक्क०। उक्क पगर्द। दुवि०—]। अभेषे० आदे०। ओषे० सव्वत्थोवा आउ० उक्क० पदे०वंथो। मोह० उ०पदे० विसे०। णामा-गोदाणं उ० प०वं० दो वि तु० विसे०। णामाव०-दंसणा०-अंतरा० उ० तिण्णि वि० विसे०। वेदणी० उ० विसे०। एवं ओघमंगो मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण०-पंचवि०-कापजोगि०-ओरालि-अवग०-लोभक०-आभिण-सुर-पोषणा०-मणपाअ०-संज०-वस्सुदं०-अवस्सुदं०-अोधिदं०-सुक्क०-अवस्मि-ए-सदग०-उतसम०-एणि०-आहारग चि। सेसाणं णिरयादीणं याव अणाहारग वि सव्वत्योवा आउ० उ० पदे०वंथो। णामा-गोद० दो वि० तु०विसे०। णाणा०दसणा०-अंतरा०उ० तिण्णि वित्तु० विसे०। गोह० विसे०। वेदणीपं विसे०।

१००. जह० प्रग्नः। हुनि०—ओपे० आदे०। ओपे० सन्वत्योवा णामा-गोदा० ज० प०नं०। णाणा०-दंसणा०-अंतरा० ज० तिष्णि वि तु० विसे०। मोह० ज० विसे०। वेदणी० ज० विसे०। आउ० ज० असंस्वेजगु०। एवं ओघभंगो सन्वाणं याव अणाहारग चि।णवरि पंचमण पंचवन्नि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

९९. अलपबहुत्व दो प्रकारका है—जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—औप और आदेश । ओपसे आयुक्रमंका उत्कृष्ट प्रदेशन्य सबसे स्तीक है । सो सीहनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशन्य देशने सीहनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशन्य दोनों ही तुत्व होकर विशेष अधिक है । ब्रानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशन्य दोनों ही तुत्व होकर विशेष अधिक है । इस त्रकार ओपके समान समुज्यत्रिक, प्रकारिक्यांद्रक, सर्वाहक, प्रकारिक्यांद्रक, प्रविचारकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशन्य विशेष अधिक है । इस त्रकार ओपके समान समुज्यत्रिक, प्रकारों अभ्यत्वदेश, अधिक्यायवाले, आधीर्मित्यांपिक्वानों, मुत्तवानों, अवध्यायों, अधीर्मित्यांपिक्वानों, मुत्तवानों, अवध्यायों, अधीर्मित्यांपिक्वानों, मुत्तवानों, अवध्यायों, अप्तानित्यं प्रकार जीवांमें जानाना चाहिए। हो सन्तर्भाति आदिक्ष सम्यत्विच अप्तान्य स्त्रक्ष राम्यत्वाद्रक्ष सम्यत्विच स्त्रक्ष प्रकार अधिक्ष प्रदेशन्य होने उत्कृष्ट प्रदेशनय्य होनों ही परस्पर जुल्य होकर विशेष अधिक है । इससे ब्रामाय और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशनय्य होनों ही परस्पर जुल्य होकर विशेष अधिक है । इससे ब्रामाय कीर अधिक के जन्तरायकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशनय्य होनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है । इससे ब्रामाय अधिक है । इससे माना और गोत्रकर्मक अधिक उत्कृष्ट प्रदेशनय्य होने ही स्तरस्व होने विशेष अधिक है । इससे माना अधिक होने कि उत्कृष्ट प्रदेशनय्य होने ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है । इससे माना अधिक ब्राम्य अधिक है । इससे माना अधिक ही । इससे माना अधिक होने हमसे माहनोक्कर्मक उत्कृष्ट प्रदेशनय्य विशेष अधिक है । इससे माना अधिक विशेष अधिक है । इससे माना विशेष अधिक है । इससे माना अधिक विशेष अधिक है । इससे माना विशेष अधिक है । इससे माना विशेष अधिक है । इससे माना विशेष अधिक है । इससे विशेष अधिक है । इससे माना विशेष विशे

(२०. जप्तयका प्रकरण है निर्देश दो प्रकारका है—ओप ओर आहेश। ओपसे नाम और गोकमोके जपन्य प्रदेशक्य सबसे स्तोक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दशनावरण और अन्त-रायके जपन्य प्रदेशक्य सबसे रावेक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दशनावरण और अन्त-रायके जपन्य प्रदेशक्य किया है। इससे मोहनापकर्मका जपन्य प्रदेशक्य किया कि है। इससे अनुकर्मका जपन्य प्रदेशक्य किया किया किया है। इससे आयुक्तमका जपन्य प्रदेशक्य क्या असे समान अनाहारक पर्यन्त सब मार्गणाओं जानाना चाहिये। इतनी विद्योषता है कि पांची मनोयोगी पाँचों क्या क्या हो किया किया है। अस्त प्रदेशक्य क्या स्वात स्वात क्या स्वा

मणपञ्ज०-संज॰-सामाइ॰-छेदो-परिहार०-संजदासंज॰ सन्वरथोना आउ० जह॰। णामा-गोद० ज० विसे०। णाणा०-दंसणा०-अंतरा० ज० विसे०। मोह० ज० विसे०। वेदणी० ज० विसे०।

एवं चदुवीसमणियोगहाराणि समत्ताणि । भुजगारबंधो

१०१. एतो झुजगारचंघे चि तत्य इमं अहपदं-जो एण्णि पदेसम्गं वंधदि अणंतरोसकाविदविदिकंते समए अप्पदरादो बहुदरं वंधदि ति एसो झुजगारवंधो णाम । अप्पदरादे कि तत्य इमं अहुपदं-यो एण्णि पदेसम्गं वंधदि अणंतरउस्सकाविदविदिकंते समए बहुदरादो अप्पदरं वंधदि ति एसो अप्पदरवंधो णाम । अविदिवंधो ति तत्य इमं अहुपदं-एण्डि पदेसम्गं वंधदि अणंतरउस्सकाविदविदिकंते समए तत्त्यं तत्यं इमं अहुपदं-पण्डि पदेसम्गं वंधदि अपिट्रवंधो णाम । अवन्यव्यंधे ति तत्य इमं अहुपदं-अवंधादो वंधदि ति एसो अवन्यव्यंधो णाम । अवन्यव्यंधे ति तत्य इमाणि तस्य अण्योगादाराणि—सम्बद्धित्त्वा याव अप्यावहुरो ति ।

समुक्कित्तणा

१०२. समुक्षित्तणदाए दुवि-श्रोषे० आदे०। ओषे० अदृष्णं क० अत्यि भ्रज्ञ० अप्प० अवद्रि० अवत्तव्वषंष्रा। य । एवं मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंच

आयुक्तमैका जघन्य प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक है। इससे नाम और गोत्रकर्मके जघन्य प्रदेशबन्ध दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायक्रमेके जघन्य प्रदेशबन्ध तीनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्थ विशेष अधिक हैं। इससे बेदनीयकर्मका जघन्य प्रदेश-बन्ध विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार चीवोस अनुयोगद्वार समाप्त हुए। भ्रजगारबन्ध

१०१. यहाँसे अुजगारकथका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपर है—जो इस समय प्रदेशाय बाँघता है वह अनत्वर अपकर्षित ज्यतिकात्त समयमें बाँचे गये अल्पवरसे बहुतरको बीधता है वह अज्ञतारकथ है। अल्पतरका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपर है—जो इस समय प्रदेशाय बाँधता है वह अन्तर उस्तर्धित व्यविकात समयमें बाँचे गये बहुतरसे अल्पतरको बाँचता है यह अल्पतरकथ है। अविश्वत है अविश्वत है अविश्वत है अविश्वत है अविश्वत है यह अल्पतरकथ है। अविश्वत है। अविश्वत है यह अल्पतरकथ है। अविश्वत है । इस अल्पयरक यह यह अल्पतरकथ है। इस अर्थपरक अल्पवह व तक।

सप्रस्कोर्तना

१०२. समुरकीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—ओष और आदेश। ओषसे आठ कर्मोंके भुजगार, अस्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इस प्रकार मण-पंचविष-कायजोभि-जोरालि॰-अवगद॰-आभिण-सुद-जोघि॰-मणपअ॰-संजद चक्सु॰-अवक्सु॰-ओघिदं॰-सुकले॰-भवसि॰-सम्मादि॰-खइग॰-उवसम॰-सिण्ण-आहारग ति। वेउन्वियमि॰-आहारमि॰-कम्मद्र॰-अणाहारएसु सत्तर्णां क॰ अत्यि श्रुज॰ एगमेव पदं। सेसाणं णिरयादीणं याव असण्णि त्ति सत्तर्णां क॰ अत्यि श्रुज॰ अप्प॰ अवदि॰। आउ॰ ओपं।

एवं सम्रक्षित्रणा समता। सामित्ताणुगमो

१०३. सामिचाणुगंमेण दुवि—ओघेँ० आदे०। ओघेँ० सचर्ण्णं क० ग्रुजः अप्पः अविदः । अप्रेषः सचर्ण्णं क० ग्रुजः अप्पः अविदः । अप्रः विदः । अप्रः विदः । अप्रः विदः । अप्रः विदः । अप्रः अविदः अप्रः अविदः । अप्रः अविदः अप्रः अविदः । अप्रः अविदः । अप्रः अविदः । अप्रः विदः । अप्रः । अप्रः विदः । अप्रः । अप्रः विदः । अप्रः । अप्रः विदः । अप्रः । अप्रः विदः । अप्रः विदः

मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रयद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, अपरातवेदी, आर्मिनवोधिकहानी, धुतकाती, अवधिहानी, मनःपर्ययहानी, संयत, चुसुर्द्वानी, अचक्रदर्शानी, अवधिदरांनी, हुहुकेदमावाठे, भव्य, सम्यग्रदृष्ट,
ह्यानिकसम्यव्दिठ, चयझसम्बन्ध्यद्व, संह्यों और आहारक त्रोवोंमें ज्ञानना चाहिये। व किविक्त स्मिक्तसम्यव्दिठ, चयझसम्बन्ध्यदृष्ट, संह्यों और आहारक त्रोवोंमें ज्ञानना चाहिये। व किविक्त सिश्रकाययोगी, आहारकसिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका एकमात्र सुजगार पद है। होप नरकातिसे छेकर असंह्यी तककी मार्गणाओंमें सात कर्मों के सुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद्के बन्धक जीव हैं। आयुक्रमेका मङ्ग ओषडे समान है।

१०३. स्वामिरवानुगमकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—औप और आदेश । ओषसे सात कर्मों के सुवगार, अप्लयंत और अविध्वयद्वक वन्यक कीन हैं ? अन्यतर तीव हन तीन पत्रों का वन्यक है । अवक्तप्रवादक वन्यक कीन हैं ? अन्यतर तिव हो अवुक्रमंके सुजगार, अव्यवस्व कीन हैं । अयुक्रमंके सुजगार, अव्यवस्व कीर सर्विष्यती तथा प्रथम समयवर्ती देव अवक्तप्रयप्दका वन्यक हैं । आयुक्रमंके सुजगार, अव्यवस्य और अवस्थितप्रका वन्यक कीन हैं ? अन्यतर जीव कक्त पदीका वन्यक हैं । अवक्तप्रयप्दका वन्यक कीन हैं ? प्रथम समयवर्ग आपेक्ष का वन्य कर तेवां ला वन्यक की हों ? प्रथम समयवर्ग आवुक्रमंक वन्य कर तेवां ला वन्यक हों ! इस प्रकार पंचेत्रियदिक, त्रसिक्ष, काययोगी, लोमक्यायवाके महत्त्रती, सुक्र अवयाको, अव्यवस्व , सम्यव्यक्ति , स्विधिकस्यन्यत्वेद, उपकासम्यग्यत्वेद, संब्वी और आहारक जीवांमें जानना वाहिये । समुख्यत्रिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनवांगी, औदारिक्ष काययोगी, मन्यपंख्यानी, संयव और अपातवदेरी जीवांमें सात कर्मों के अवकत्वयपद्वक कायक होने हैं ? उपकासभिजीवं तिरुक्त प्रथम समयम हमका बन्य करनेवाल। अन्यवर सम्यक कीन है ? उपकासभिजीवं तिरुक्त प्रथम समयम हमका बन्य करनेवाल। अन्यवर सन्यक जीवां स्वी प्रविध्वात इनके अवकत्वयपद्वका वन्यक है । शेष प्रञ्च औषके समान है !

जोधं । सेसाणं णिरपादि यात्र अणाहारग ित्त सत्तरणं क० श्रुज०-जप्प०-जबट्टि० को होदि ? जण्ण ० । आउ० ओधं । वेडन्त्रियमि० सत्तरणं क० आहारमि० अङ्घणं क० कम्पद्द०-अणाहार० सत्तरणं क० श्रुज० को होदि ? जण्णदरो ।

एवं सामित्तं समर्च।

कालाणुगमो

१०४. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे आदे०। ओघे० सत्तर्ण्णं क० भ्रुज-अप्प० ज० ए०, उक० अंतो०। अवद्वि० पवाइअंतेण उवदेसेण ज० ए०, उ० एकारससमयं। अण्णोण पुण उवदेसेण ज० ए०, उ० पण्णारससमयं। अवच० एगसमयं। आउ० भ्रुज०-अप्प० जहण्णेण एग०, उ० अंतो०। अवद्वि० ज० एग०, उ० सत्तसमयं अवच० ज० [उ०] ए०।

शेष नारिक्योंसे ठेकर अनाहारक तककी सार्गणाओंसे सात कर्मों के सुजगार, अल्पतर और अविध्यतपुरका बन्धक कीन है ? अन्यतर जीव इनका बन्धक है। आयुकर्मका भक्क ओपके समान है। विकिथकोसअकाययोगी जीवोंसे सात कर्मोंके, आहारकिमअकाययोगी जीवोंसे साठ कर्मोंके, आहारकिमअकाययोगी जीवोंसे साठ कर्मों के तथा कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंसे साठ कर्मोंके सुजगारपुरका बन्धक जीव कीन है ? अन्यतर जीव बन्धक है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

काळानुगम

१०४. कालानुगमको अपेश्वा निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे सात कमों के मुजगार और अल्पतरपदका जयन्य काल एक समय है और रुरुष्ट काल अल्पतुंहर्त है । अवस्थितपदका चाळु उपदेशके अनुसार जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काळ यादाह समय है। अन्य उपदेशके अनुसार जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काळ पन्त्रह समय है। अन्य उपदेशके अनुसार जपन्य काल एक समय है । अल्प उपदेशके अनुसार जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। आयुक्तमें भुजगार और अल्पतप्रदक्त जमन्य काल एक समय है। अल्पत्यपदका जपन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ — ओपसे आठों कमों का अुजगार और अल्पतरपद एक समय तक होकर अन्य पद होने छगें यह भी सम्भव है और अन्यश्नुहर्त तक विविश्वत पद होकर अन्य पद होने छगें यह भी सम्भव है, क्यों कि असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहानि आदिका जम्य काल एक समय है और असंख्यातगुणशृद्धि तथा असंख्यातगुणशृनिका उत्तृष्ट काल अन्तर्शुहुर्त है। तथा इन कमोंका पिछले समयमें जितना बन्ध हुआ है अगले समयमें भी उतना ही बन्ध होकर आगो बन्धकी परिपाटी बदल जाय यह भी सम्भव है और बाल उपदेशके अनुसार अधिकसे अधिक स्वारह समय तक तथा अन्य उपदेशके अनुसार अधिकसे अधिक स्वारह समय तक तथा अन्य उपदेशके अनुसार अधिकसे अधिक स्वारह समय तक अगातार उतना हो बन्ध होता रहे वह भी सम्भव है, इसलिये सात कमोंके अवस्थित-पदका जमन्य काल एक समय और उद्दृष्ट काल न्यारह सा पन्नह समय तथा आयुक्कमेंक अवस्थात कान काल एक समय और उद्दृष्ट काल न्यारह सा पन्नह समय तथा आयुक्कमेंक अवस्थात कान काल एक समय और उद्दृष्ट काल न्यारह सा समय कहा है। यहाँ हुद्धि या हिने न होकर लगातार कितने काल तक उतना ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर विचार होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता है इसका विचार कर वता होता रहता है इसका विचार कर वता है वसका विचार कर वता है बन्ध होता रहता है इसका विचार कर वता है वसका विचार कर वता है इसका विचार कर विचार कर वता है इसका विचार कर वत

१०५. बेउल्बिकसि० सत्तक्ष्मं क० भ्रुज० ज० उ० अंतो० । एवं आहारसि० सत्तक्ष्मं क०। आउ० भ्रुज० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० ओवं।कम्मइ०-अवाहस० सत्तक्ष्मं क० भ्रुज० ज० ए०, उ० वेसम०।

१०६. सेसाणं णित्यादि याव असण्णि चि ओघं। णविर केसि च सत्तर्णं क० अवत्त० णित्य। अवगद० सत्तर्णं क० ओघं। णविर मोह० अवहि० ज० ए०, उ० सत्त समयं। एवं सुद्धम० छण्णं०। उवसम०-सम्मामि० सत्तर्णं क० अवहि० ज० एग०, कालका निर्देश किया है। सब कर्मों का अवक्तव्यवन्य एक समय तक होता है यह स्पष्ट ही है।

्रंभ. बैक्रियिकसिश्रकाययोगी जीवोंसे सात कर्मों के भुजगारपदका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्ते हैं। इसी प्रकार आहारकसिश्रकाययोगी जीवोंसे सात कर्मों के भुजगारपदका काल जानना चाहिये। आहारकिसिश्रकाययोगी जीवोंसे आयुक्तमें के भुजगारपदका जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त है। अवकत्यपदका भङ्ग ओषके समान है। कर्माणकाययोगी और अनाहारक जीवोंसे सात कर्मों के भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वो समय है।

विशेषार्थ-वैकियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्क्रष्ट काल अन्तर्भहर्त है और इनमें सात कर्मोंका एक भजगारपद होता है, इसलिये इनमें सात कर्मों के भजगारपदका जघन्य और उत्क्रष्ट काल अन्तर्महत कहा है। आहारकिमिश्र-काययोगमें आयक्रमका भी बन्ध होता है और यहाँ इनके दो पद सम्भव हैं-भूजगार और अवक्तव्य। यह सम्भव है कि इस योगके दो समय शेप रहने पर आयकर्मका बन्ध हो और यह भी सम्भव है कि अधिकसे अधिक अन्तर्महर्त काल शेष रहने पर आयकर्मका बन्ध हो। आयुकर्मका बन्ध कभी भी प्रारम्भ हो। जिस समयमे इसका बन्ध प्रारम्भ होता है उस समय नो अवक्तव्यपद होता है, अत अवक्तव्यपदका जधन्य और उस्कृष्ट काल एक समय कहा है। और द्वितीयादि समयोंमे भुजगारबन्ध होता है। यदि दो समय शेष रहने पर आयकर्मका बन्ध प्रारम्भ हुआ तो भूजगारका इस योगमें एक समय काल उपलब्ध होता है और अन्तर्महर्त पहलेसे बन्ध प्रारम्भ हुआ तो अन्तर्महर्त काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ आयक्रमके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय और उत्क्रप्त काल अन्तर्महर्त कहा है। कार्मणकाययोग और अनाहारकका जघन्य काल एक समय और सन्क्रम काल तीन समय है। जो एक विग्रहसे जन्म छेता है उसके तो भूजगारपद सम्भव नहीं है, क्योंकि विवक्षित मार्गणांके प्रथम समयसे द्वितीय समयमे जो अधिक बन्ध होता है उसकी भजगार संज्ञा है, इसलिये दो विष्रहसे जन्म छेनेवाछेके भुजगारका एक समय और तीन विभ्रष्टसे जन्म छेनेवालेके भूजगारके दो समय प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि इन दोनों मार्गणाओं में सात कर्मों के भुजगारपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है।

१०६. शेष नरकगतिसे छेकर असंबी तककी मार्गणाओंमें ओषके समान सङ्ग है। इतवी विशेषता है कि किन्हीं मार्गणाओंमें सात कर्मोंका अवकड्यपद नहीं है। अपगतवेदी अविशेषता है कि किन्हीं मार्गणाओंमें सात कर्मोंका भङ्ग अपके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें मोहनीय-क्रमेंक अवश्यक्त पत्र चाल पत्र समय है। इती उक्ति काछ सात समय है। इती अक्त उत्तर समय समय-क्ति अवश्यक्ति अक्त अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति अवश्यक्ति काल एक समय

उक्क० सत्तसमयं ।

अंतराणुगमो

१०७. अंतराणुगमेण दुवि०-ओषे० बादे० । ओषे० सत्तर्णा क० श्वल०-अप्प० बंधंतरंज० ए०,उ० अंतो० । अविद्व ज० ए०,उ० सेडीए असंखे० । अवत्त० ज० अंतो०, उ० उवड्डपोगगल० । आउ० श्वल०-अप्प० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सा० सादि० । अविद्वि० ज० ए०, उ० सेडीए असंखे० । अवत्त० अंतो०, उ० तेत्तीसं सा० सादि० ।

है और उत्कृष्ट काल सात समय है।

बिहोषार्थ—यहाँ नरकगितसे छेकर व्यसंही तककी होष मार्गणाओं में आठों कर्मों के जहाँ जितने पद सम्भव हूँ उनका भक्त ओषके समान प्राप्त होने में कोई वाचा नहीं आती, इसिछये वह ओषके समान कहा है। मात्र जित मार्गणाओं में उपराम्येणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है उनमें सात कर्मों का अवकञ्यपद नहीं होता, इसिलये उनमें सात कर्मों का अवकञ्यपद नहीं होता, इसिलये उनमें सात कर्मों का अवकञ्यपद नहीं होता, विश्व का का कहना चाहिये। तथा अप-गतवेदी ओवों में सात कर्मों का अब्द अवस्थत-पदको अवेदां कर्मों का अविश्व कर्मों के अविश्व उन्ह एक क्षा कर्मों का स्वाप्त होता है। इसिजये इनमें ओपसे इत्तर्गी विश्वेषता जाननी चाहिये। उसी प्रकार उपहासस्यस्थि और सम्बर्गिण्याहर्षि अवेदां सम्बर्गिण्याहर्षि अपेक्षा भी जाननी चाहिये। इसी प्रकार उपहासस्यस्थि और सम्बर्गिण्याहर्ष्टि जीवेदां सम्बर्गिण्याहर्ष्ट जीवेदां में स्वर्गिण क्षा क्ष्यित्व कर्मों के अविश्व विश्व क्षा स्वर्गिण क्षा क्ष्य क्ष्

अन्तरानगम

१०७. अन्तरातुनामकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे सात कमी के भुजगार और अल्पतरज्ञ्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उक्तष्ट अन्तर अल्पतर्युंह ते है। अवस्थितवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उक्तष्ट अन्तर जगाशीणके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यवन्यका जयन्य अन्तर अन्तर्युंहते हैं और उक्तष्ट अन्तर उपार्थपुंह त्यरिवर्तन्यमाण है। आयुक्तमंत्रे भुजगार और अल्पतरवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उक्तष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उक्तष्ट अन्तर जगाशीणके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यवन्यका जयन्य अन्तर अन्तर्युंहते हैं और उक्तष्ट अन्तर जगाशीणके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यवन्यका जयन्य अन्तर अन्तर्युंहते हैं और उक्तष्ट अन्तर साथिक तेतीस सागर है।

बिश्चोषार्थ सात कर्मों के भुजगार और अल्पतरबन्धका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्युहुं होनेसे यहाँ इनका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्यहुं है। इनके अवस्थितवन्यका कारणभूत योग एक समयके अन्तर्य में होता है और जगअंधिके असंख्यातव भागप्रमाण कालके अन्तरसे मी होता है अभीर जगअंधिके असंख्यातव भागप्रमाण कालके अन्तरसे मी होता है जाय अन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगअंधिक असंख्यातव मागप्रमाण कहा है। अणुक्कमें अवस्थितवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार पटित कर छेना चाहिये। सात कर्मोंक अवक्रयन्य अप्रमास्थीयों उत्तरे समय होता है और अहका जयन्य अन्तर अन्तर्यक्षित्र होती है और अल्क्ष्य अन्तर उपार्थपुद्रअपिवर्तन्प्रमाण होता है, इसिखये यह उक्तप्रमाण कहा है। आयुक्कमेंक भुजगार और अल्पतरपदका जपन्य अन्तर एक समय स्पष्ट हो है, क्वांकि इन पदांके योग्य योग एक समयके अन्तरसे हो सकता है और आयुक्कमेंक प्रकृष्ट अन्तर विश्व स्वाप्तर स्वाप्त स्वाप्त होती होता विश्व क्वांकि इन पदांके योग्य योग एक समयके अन्तरसे हो सकता है और आयुक्कमेंक प्रकृष्ट अन्तर होता स्वाप्त होता होता है इसिखये वहाँ इन पदांका उत्कृष्ट अन्तर स्वाप्त स्वाप्त होता स्वाप्त होता उत्कृष्ट अन्तर

१०८. णिरएसु सत्तर्णां क० भुज०-अप्प० ज० ए०, [उ० अंतो०। अवहि० ज० ए०,]उ० तेचोसं० देख० अंतेभुहत्तेण दोहि समएहि य । आउ० तिण्णि पदा० ज० ए०, उ० इम्मासं देखणं। अवत्त० ज० अंतो०, उ० इम्मासं देख०। एवं सध्यणिस्याणं अप्पप्पणो अंतरं णेटच्यं।

१०९. तिरिक्सेसु सत्तर्णं क० ओघं अवत्तव्यं वज्ञ । आउ० श्वन०-अप्प० ज० ए०, उ० तिष्णि पर्सि० सादि० । अवद्वि० ओघं । अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० तिष्णि पत्ति० सादि० । पंचि०तिरि०३ सत्तर्णां क० श्वज०-अप्प० ओघं । अवदि०

श्चाधिक तेतीस सागर कहा है। इसी प्रकार यहाँ आयुक्तमेंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये।

१०८. नारिक्यों में सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहते हैं। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक अन्तर्भृहते तथा दो समय कम तेतीस सागर है। आयुक्तमंके तीन पदींका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्भृहते है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सब नार्राक्ष्यों अपना-अपना अन्तर जानना चाहिये।

विशेषार्थ--- ओघसे सात कर्मीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त घटित कर छेना चाहिए। इनके अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय राष्ट्र ही है। तथा इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त और दो समय कम जो तेतीस सागर बतलाया है सो उसका कारण यह है कि उत्पन्न होते समय वैकियिकमिश्रकाययोगके रहते हए अवस्थित पद नहीं होता । उसके बाद शरीर पर्याप्तिके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें जो बन्ध हुआ बही उसके अगळे समयमे भी हुआ और मध्यमें इनका भुजगार और अल्पतर पद होता रहा। फिर मरण के समय पुनः अवस्थित पद हुआ। इस प्रकार दो समय अवस्थितके और प्रारम्भका अन्तर्महर्त काल तेतीस सागरमेंसे कम कर देने पर अवस्थितपदका एक एत्कृष्ट अन्तरकाल आता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ आयुक्रमेंके तीन पद एक समयके अन्तरसे हो सकते हैं और कुछ कम छह महीनाके अन्तरसे भी, इसलिए इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रह अन्तर कहा कम हाह महीना कहा है। इसी प्रकार इसके अवक्तव्यपदका उत्क्रष्ट अन्तर भी कहा कम छह महीना घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर जो अन्तर्महर्त कहा है सी इसका कारण यह है कि दो बार आयुकर्मके वन्धमें जधन्य अन्तर एक अन्तर्महर्त-श्रमाण प्राप्त हीता है। यह सामान्य नारिकयोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार हुआ। प्रत्येक प्रविवीमें इसी प्रकार अन्तरकास प्राप्त होता है। मात्र अवस्थित पत्का उत्कृष्ट अन्तर एक अन्तर्महर्त और दो समय कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जान लेना चाक्रिए। कारण स्पष्ट है ।

१०९. तिर्वेश्वॉमें सात कर्मोंका भङ्ग ओपके समान है। मात्र अवक्तव्यपदको छोड़कर यह अन्तरकाळ है। आधुकर्मके सुवागर और अरुगतरप्रका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। अवक्तियवपदका भङ्ग ओपके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्यहुत है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है। पत्र्विप्यतिर्वेश्वास्त्रम्य सात कर्मोंके सुवगार और अरुगतरपद्का भङ्ग ओपके समान है। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर **ब० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुन्तकोडिपुघर्सः। आउ० सुज०-अप्प०-अवत्त०** अवद्भिः गागावभंगो । पंचिंवतिरिक्खव्अपञ्जव भुज०-अप्प०-अवद्वि० ज० ए०, उ० अंतो०। आउ० तिष्णि प० अवसः ज ० उ० अंतो । एवं । सम्बयपञ्चनयाणं तसाणं श्रावराणं च सम्बसहम-पजनापञ्जनाणं च ।

११०. मणुस०३ सत्तरणं क० तिष्णि प० आउ० चत्तारियदा पंचि ०तिरि०मंगो । सत्तणां क० अवत्त० ज० अंतो०, उ० प्रव्यकोहिपुघ० ।

एक समय है और उरक्रष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त अधिक तीन पल्य है। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। तथा अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मों के भूजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर भन्तर्मुहुर्त है। आयुकर्मके तीन पदींका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्मुहूर्त है। इसी प्रकार अर्थात् पक्चेन्द्रियातर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान त्रस और स्थावर सब अपर्याप्त तथा सब सूदम पर्याप्त और अपर्याप्त जीवांमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-तिर्येख्वोंमें सात कर्मीका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, क्योंकि यह पर उपशमश्रीणसे गिरते समय होता है । शेष भद्ध ओघके समान है यह स्पष्ट हो है । यहाँ आय-कर्मका बन्धान्तर साधिक तीन पत्य है, इसलिए इसके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। इनका जघन्य अन्तर एक समय स्पष्ट ही है। ओघसे आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर जगश्रेणिक असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो यह अन्तर तिर्यक्कोंमें ही घटित होता है, अतः इसे ओघके समान जाननेकी सचना की है। तिर्यञ्जोंमें आयकर्मका दो बार बन्ध कम से कम अन्तर्महर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक साधिक तीन पत्यके अन्तरसे होता है, अतः यहाँ इसके अवक्तव्यपदका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चिन्द्रियतिर्यञ्चित्रिकमें इनकी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्बर पूर्वकोटिपुथक्तव अधिक तीन पत्य कहा है। आयुक्रमेंके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरण के समान कहनेका भी यही कारण है। पञ्चोन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकांकी कायस्थिति अन्तर्मृहर्त है और आयुक्तमंका दो बार बन्ध कम से कम अन्तर्मृहर्तके अन्तरसे होता है यह देखकर इनमें आठों कर्मों के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महर्त तथा आयुक्मके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। यहाँ अन्य सब अपर्याप्तकोंमें तथा सक्ष्म पर्याप्तकोंमें यह व्यवस्था बन जाती है इसिछए उनका भक्न पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकांके समान कहा है ।

११०. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके तीन पदोंका और आयुकर्मके चार पदोंका भड़ पद्मोन्द्रयतिर्यक्कांके समान है। तथा सात कर्मोंके अवक्तत्र्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त है

और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तवप्रमाण है।

विशेषार्थ-मनुष्यत्रिकको कायस्थिति आदि पञ्चीन्द्रयतिर्यञ्चीके समान है, इसिकए इबमें सात कर्मी के तीन पदोंका और आयुक्रमंके चार पदोंका भक्क प्रक्रोन्टियतिर्यक्कों के समान प्राप्त होनेसे वैसा कहा है। सात्र सनुष्यत्रिकमें सात कर्मीका अवक्तव्यपद भी होता है जो पद्धेन्द्रियविर्यञ्जामें नहीं होता, इसलिए इसका जघन्य और उत्क्रष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। उसमें जघन्य अन्तरकाल अन्तर्महर्य तो स्पष्ट ही है इसका हम पहले स्प्रधीकरण भी कर आये १११. देवाणं सत्तर्णं कः श्चन-अप्यः जः एगः, उः अंतोः । अवद्दिः जः एः, उः तेत्त्रीसंः देः । आउः शिरयभंगो । एवं सञ्बदेवाणं अप्पप्पणो अंतरं शेदच्यं ।

११२. एट्रंदिएस सत्तरणं क० ओवं। आउ० अवट्टि० ओवं। ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० बाबीसं० वाससहस्साणि सादि०। एवं सव्व-एट्रंदि०-विगलिदि०-पंचकायाणं अप्यप्यणो अंतरं णेदव्वं। णवरि अणंतद्वाणेसु असंबेजालोगदाणेस य सेटीए असंबेज्जिटिभागो काटव्वो।

हैं। उत्कृष्ट अन्तरकाल जो पूर्वकोटिपृथवन्त्रप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि मनुष्यत्रिककी उत्कृष्ट कार्यास्थांत जो पूर्वकोटिपृथवन्त्र अधिक तीन पत्य है उसमें से तीन पत्य इसिंख्य अखग कर दिये हैं, क्योंकि उसमें उपहामश्रीणको प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसके बाद जो कार्यास्थित होग रहती है उसके प्रारम्भों और अन्तमें उपहामश्रीणपत्र आरोहण कराकर उतारते समय इन कर्मोका अवकाञ्यवन्य करानेसे उक्त अन्तरकाळ प्राप्त होता है, इसिंख्य मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके एडिट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट अन्तरकाळ उक्तप्रमाण कहा है।

१११. देवांमं सात कमीके भुजगार और अल्पतरपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उक्कष्ट अन्तर अन्तर्गहुर्त है। अवाध्ययपदका अम्बय अन्तर एक समय है और उक्कष्ट अन्तर इक्क कम तैतीस सागर है। आयकर्मका भन्न नार्रक्वोंके समान है। इसी प्रकार सब देवांमें

अपना अपना अन्तर जानना चाहिए ।

बिशोषार्थ —जिस प्रकार ओपसे सात कर्मों के शुजगार और अल्पतरपद्का जफन्य अन्तर एक समय और उक्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त घटित करके बतका आये है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर ठेना वाहिए। वहाँ इन कर्मों को अबंधियतपद कम से कमा एक समय के अन्तरसे और अधिक सर ठेना वाहिए। वहाँ इन कर्मों को अबंधियतपद कम से कमा एक समय के अन्तरसे और अधिक क्ष कम तेतीस सागर के अन्तरसे हो सकता है, इसिक्ट इसका अपन्य अत्तर एक समय और बक्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवों में नारिक्वों के समान आयु-बन्धका नियम है, इसिक्ट इनमें आयुक्मेंका भङ्ग नार्षिक्यों के समान कहा है। देवों के अवान्तर भेदों में यह अन्तररूपणा इसी प्रकार है। मात्र सात कर्मों के अवस्थितपदका उक्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उक्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होनेसे उसकी सूचना अन्तर्गसे को है।

११२. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समात है। आयुक्मेंके अविध्यत पदका भङ्ग ओघके समात है। आयुक्मेंके मुजगार और अन्यतरपदका जपन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जपन्य अन्तर स्वार्द्ध है और सक्वत्य कर्मेंट आदिक वाईस इजार वर्ष है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, विकठीन्द्रिय और्त पॉच स्थायरकायिक जॉवोंमें अपना अपना अपना अपना अन्तर जानता चाहिए। इतनी विषेधता है कि जिनको कायिशित अनन्तकाल और असंख्यात छोकप्रमाण है उनमें आठों कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर जागशीणके असंख्यात आक्रमाण है उनमें आठों कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर जाशीणके असंख्यात आन-

प्रमाण करना चाहिए।

बिरोषार्थ — एकेन्द्रियों में सात कर्मोंका अवक्तव्यप्द नहीं है। शेष भङ्ग वा आयुक्रमेंके अवस्थितपदका भङ्ग ओपके समान है यह स्पष्ट ही है। अब शेष रहे आयुक्रमेंके तीन पद सो इनमेंसे भुजगार और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भादक प्रकृति एके अनेक बार पटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। तथा एकेन्द्रियों में आयुक्रमेंके प्रकृतिवन्धका अन्तर साधिक वाईस हजार वर्ष है, इसलिए वहाँ इन तीन पदाँका उक्तव्र अन्तर उक्तप्रमाण कहा है, क्योंकि मध्यके इतने कालतक आयुक्रमेंका बन्य संभव न होनेसे यह अन्तरकाळ बन जाता है। यहाँ एकेन्द्रियोंके अथान्यर भेद

११३. पंचि०-तस०२ सत्तण्णं क० भ्रज्ञ०-अप्प० ओघं। अवहि०-अवत्त० ओघं। जबरि कायद्विदी भाजिदक्वं। आउ० तिज्जिपदा ओघं। अबद्वि० णाणा०भंगो ।

११४. पंचमण०-पंचवचि० अहणां क० भ्रज०-अप्प०अवद्वि० ज० ए०. उक० अंतो । अवत्त ० णिथ अंतरं । एवं ओरालि ०-वेउव्वि ०-आहार ०-तिण्णिकसाय-सासण०-सम्मामि० । जबरि ओरालि० आउ० तिष्णि प० ज० ए०, उ० सत्तवाससह० सादि०। एवं अवत्त०। णवरि ज॰ अंतो०। ओरालि० सत्तण्णं क० अवद्वि० ज॰ ए०. उ० बाबीसं वाससह० दे० ।

आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें अपनी अपनी भवस्थिति और कायस्थितिको जानकर यह अन्तरकाल घटित करना चाहिए। सर्वत्र कुछ कम कायस्थितिप्रमाण तो आठों कर्मों के अवस्थितपदका उस्क्रष्ट अन्तर है और साधिक भवस्थितिप्रमाण आयुकर्मके होष तीन पढोंका उत्कृष्ट अन्तर है । मात्र जिनकी कायस्थिति अनन्तकाल और और असंख्यात लोकप्रमाण है उनमें अवस्थितपदका उत्क्रष्ट अन्तर कुछ कम कायस्थिति प्रमाण न प्राप्त होकर ओवके समान जगश्रीणके असंख्यातये भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। इसलिए इसका संकेत अलगसे किया है।

११३. पञ्चीन्द्रयद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके भजगार और अल्पतरपदका भक्न ओघके समान है। इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भक्न ओघके समान है। इतनी विशेषता है इनका उत्क्रष्ट अन्तर कायस्थितिश्रमाण कहना चाहिए। आयुकर्मके तीन पदोंका भक्क

ओघके समान है। तथा अवस्थितपदका भक्त झानावरण के समान है।

विद्रोबार्श-अग्रेयसे आठों कमों के अवस्थित पढका और सात कमों के अवक्तव्यपढका जो उत्क्रष्ट अन्तर कहा है वह इन मार्गणाओं में नहीं बनता, क्योंकि इन मार्गणाओं की काय-स्थिति उससे वहत कम है। इस अपवादको छोडकर शेष सब प्ररूपणा ओघके समान यहाँ भी घटित कर छेनी चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे उसका हम अलगसे स्पष्टीकरण नहीं कारहे हैं।

११४. पाँचों मनोयोगो और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आठों कर्मीके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महर्त है। अवक्तन्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, बैक्रियिककायोगी, आहारककाययोगी, तीनों कषायवाले, सासादनसम्यन्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवांमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगमें आयुक्रमके तीन प्रदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। इसी प्रकार इसके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्भहर्त है। तथा औदारिककाययोगमें सात कर्मीके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है।

विशेषार्थ---पाँच मनोयोगों और पाँच वचनयोगोंका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहर्त है, इसिछए इनमें आठों कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। पर इन योगोंका यह अन्तर्मुहूर्त काल इतना छोटा है जिससे इस कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणीपर आरोहण और अवरोहण तथा आयुक्रमेंका दो बार बन्ध सम्भव नहीं है, इसकिए इन योगों में आठों कर्मों के अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। यहाँ औदारिककाययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणायें १९५. कायजोमीसु सत्तर्णाक तिर्णिप प० ओघं। अवस०णस्थि अंतरं। आउ० एइंदियमंगो। ओरालियमि० अपजनमंगो। वेडव्यियमि० सत्तर्णाक ० आहारमि० अडुण्णाक ० कम्म०-अणाहार० स्तरणांक ० भ्रुज०णस्थि अंतरं। एत्ताणंएगपदं।

११६. इत्यि०-पुरिस०-गाउंस० सत्त्रणां क० दो पदा ओघं । अवद्वि० ज० ए०, उ० पिलदो०सदपुष० सागरो०सदपुष० सेडीए असंखे० । आउ० भ्रुज०- अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतोम्च०, उ० पणवण्णं पिल० सादि० वेतीसं सा० सादिरे० । अवद्वि० णाणा०मंगो । अवगद० सत्तरणां क० तिष्णि प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० णारिय अंतरं ।

गिनाई हैं इतमें यह अन्तरप्ररूपणा बन जाती है, इसिल्फ उसे इन योगों को अन्तरप्ररूपणा के समान जानने की सूचना की है। मात्र इसमें जो अपबाद हैं उनका अलगसे उस्लेख किया है। यथा—औदारिककाययोगका उस्तृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण होने से उसमें आयुक्त के चारों पर्दोका उस्तृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्षप्रमाण और सात कमिल प्रविच्या पर्वा उन्तृष्ट अन्तर साथिक सात वर्षप्रमाण प्राप्त होने से उसका अलगसे निर्देश किया है। शेष कयन सुगम है।

११५. काययोगी जीवों में सात कमों के तीन पर्शेका भक्त ओपके समान है। अवक्तव्य परका अन्तरकाळ नहीं है। आयुक्तेंका भक्त एकेन्द्रियों समान है। ओरारिकमिश्रकाययोगी जीवों में सात कमों के, आहारक- मिश्रकाययोगी जीवों में सात कमों के, आहारक- मिश्रकाययोगी जीवों में आठ कमों के और कामेणाकाययोगी व अनाहारक जीवों में सात कमों के अत्याप्तरकाळ नहीं है, क्वों कि इन मार्गणाकाययोगी क पर है।

विशेषार्थ — सात कर्मों के अवकाज्यपदका अन्तर उपअमभिणमें दो बार आरोहण-अवरोहण करनेसे होता है। किन्तु इतने काळतक काययोगका बना रहना सम्भव नहीं है, इसलिए इस योगमें अवकाज्यपदके अन्तरकाळका निषेध किया है। शेष कथन रगष्ट डी है।

११६. स्त्रोबेदी, पुरुपवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके दो पर्वोका भक्क जोघके समान है। अबसियतपदका जयन्य अन्तर एक समय है और जरुष्ट अन्तर क्रमसे सी पर्व्याप्रवस्त्यप्रमाण, सी सानार प्रथवस्त्रप्रमाण और जनाश्रीणके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयु- क्रमेंक प्रचारा और अल्पतर पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्रव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्सुद्धतें है और उरहृष्ट अन्तर साधिक पचवन पत्त्य और साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भक्क मानावरणके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मों के तीन पदांका जयन्य अन्तर एक समय है और उरहृष्ट अन्तर अन्तर्सुद्धते है। अवक्रव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। जिल्लेक्ट्रीपदका उरहृष्ट अन्तर अपनी अपनी जिल्लेक्ट्री

कायस्थितिको ध्यानमें रख कर कहा है। यद्यपि नपुंसकनेदकी कायस्थिति अनन्तकाक्रमणा है पर यह पहुंठ हो सूचित कर आये हैं कि जिनको कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण है उनमें सब कर्मों के अवस्थितपद्का उत्कृष्ट अन्तर उत्पाविधिक असंस्थातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। तथा तीनों वेदों में आयुक्कमें अवक्तव्यपद्का उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी साधिक अवस्थिति-प्रमाण कहा गया है। कारण स्पष्ट है। होष कथन सुगम है, क्योंकि उसका पहुंठे अनेक ब्राह्म स्पृष्टीकरण कर आये हैं।

आ० प्रती प्रदुष्णं क० प्रणाहार इति पाठः ।

११७. लोम० मोह०-आउ० अवत्त० पत्थि अंतरं। सेसाणं कोघमंगो।

१२८. मदि०-सुद०-असंज०-अन्भवसि०-मिच्छा०-[अ]सण्णि चि सत्तरणं क० तिण्णि प० आउ० चत्तारि पदा ओघमंगो । णवरि असण्णीसु आउ० श्रुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्ष० तिण्णं पि पुब्बकोडी सादि० । विभंगे अडुण्णं० क० णिरयोषं ।

११९. आभिण-सुद०-ओघि० सत्तष्णं क० श्वज-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवद्वि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०,उ० छावद्विसाग० सादि०। आउ० ओघं। णवरि अवद्वि० णाणा०भंगो। एवं ओघिद:०-सम्मादि०।

१२०. मणपज ० सत्तर्णा क० भ्रुज०-अप्प० ओघं। अविद्विज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुज्यकोडी दे०। आउ० तिष्णि प० ज० ए०,अवत्त '० ज० अंतो०, ११७. ळोभक्यायमें मोहनीय और आयुक्तमेंके अवक्तव्यायका अन्तरकाळ नहीं है।

शेष पर्वोका भन्न कोध कषायके समान है।

बिहोपार्थ — तोभकषायमें मोहनीयका अवक्तव्यपद भी सम्भव है। इतनी विशेषता बताताके किए इनमें अन्तर प्रहरणा श्रेष तीन कथायोंकी अन्तर प्रहरणासे अलग कही है। यहाँ लोभकपायके उदयमें दो बार वजहामभेणिकी प्राप्ति और दो बार आयुक्सेका बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका निषेष किया है। श्रेष कथन स्थाम है।

हैं ८. मरवंबानी, श्रुवाङ्गानी, असंबत, अभव्य, मिध्याद्दष्टि और असंब्री जीवोंमें सात कर्मों के तीन पदाँका और आयु कर्मके बार पदाँका भङ्ग ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि असंब्रियोंमें आयुक्तमेंके भुजगार और अस्पतर पदका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर अन्तर्सुहते हैं और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोदि है। विभक्तानी जीवोंमें आठाँ कर्मीका भङ्ग सामान्य नारिक्योंके समान है।

विरोषार्थ—असंत्रियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसछिए इन्सें आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवकत्यपहका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण

कहा है। शेष कथन सुगम है।

११९. आभिनियोधिक हानी, शुनक्कानी और अवधिक्कानी जीवोंमें सात कर्मों के भुवगार और अल्पतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृत है। अवस्थित-पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवकट्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहृत है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। आयुक्भेका भङ्ग ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग क्लानावरणके समान है। इसी प्रकार अवधिद्योंनी और सम्यन्दृष्टि जीवों में जानना वाहिए।

विशेषार्थ— इन तीन बानों का उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है, इसळिए इनमें सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका तथा आयुक्तमेंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक

छवासठ सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२०. मनायर्थयज्ञानी जीवोंमें सात कमीके सुजगार और अल्पतरपदका भक्क ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भुद्द है और रोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आयुक्रमेंके तीन पहोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भुद्दते है और वारों पदों का

१, ता०मा०प्रत्योः प्० उ० भवत्त इति पाठः ।

उ० पुष्चकोडितिभागं देख्वः। एवं संजद-सामाह०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०। सुद्रुमसं० अवगदवेदमंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। चक्खु० तसपजत्तमंगो। अचक्खु०-मवसि० ओषं।

१२१. छद्वेस्साणं सचण्णं क० भ्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ ज ए०, उ० तेचीसं सचारस-सच-वे-अद्दारस-बचीसं० सादि०। आउ० णिरयभंगो। णविर सुकाए [सचण्णं क०] अवच० णस्यि अंतरं।

१२२. खहग० सत्तर्णं क० भ्रुज०-अप्प० ज० [उ०] ओघं। अविहि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोष्णं पि तेत्तीसं० सादि०। आउ० तिष्णं पि ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोष्णं पि बत्तीसं० सादि०।

१२३, वेदग० सत्तण्यं क० दो पदा ओघं। अवद्रि० ज० ए०, उ०

क्टकुष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है । इस प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविद्युद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए। सूक्ष्म-साम्परायसंयत जीवोंमें अप्यतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। मात्र इनमे अवकाव्यपट्का अन्तरकाल नहीं है। चक्षदर्शनी जीवोंमें त्रसप्यात जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षद्रशैनी और भव्य जीवोंमें ओषके समान भङ्ग है।

बिहोषार्थ—मनःपर्ययक्षानका काल कुछ कम एक पूर्वकोटिन्रमाण है, इसिटिए उसमें सात कमीं के अवस्थित और अवकल्याप्तका उत्तष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण कहा है। इस झानमें आयुक्तमें का उत्तष्ट बन्धान्तर कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिमाग्रमाण है, इसिटिए इसमें आयुक्तमें के बारों पहाँका उत्तष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। श्रेष कथन सप्ट है।

१२१. छह छेरवाओं में सात कमोंके मुजगार और अल्पतर परका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुंहते है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हो और उत्कृष्ट अन्तर कमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सन्तर सागर, साधिक सन्तर सागर, साधिक सन्तर सागर, साधिक वर्ती सागर, साधिक आठरह सागर और साधिक वर्तीस सागर है। आयुक्तमंका भङ्ग नारिकरों के समान है। इतनी विशेषता है कि शुक्छछेरवरमें सात कमों के अवक्तव्यपदका अन्तर्सकाल नहीं है।

विश्वेषार्थ — छुन्तलेड्यामें दो बार उपरामकीणकी प्राप्ति सम्भव नहीं, क्योंकि नीचे आने पर ठेड्या बद्द जाती है, अतएव छुन्तलेड्यामें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकाल-का निपेष किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२२. क्षायिकसम्बन्धष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओपके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय हैं, अवस्थ्यपदका जघन्य अन्तर एक समय हैं, अवस्थ्यपदका जघन्य अन्तर क्ष्मिक रेतीस सागर हैं। आयुक्तिके तीन पदाँका जघन्य अन्तर एक समय है, अवस्थ्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्यक्षित हैं और उत्तर्यक्षित हैं और उत्तर्यक्षित हैं और उत्तर्यक्षित हों। साथिक वसीस सागर है।

विश्लेषार्थ — श्लायिकसम्यन्त्वका उरहृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इसक्रिये इसमें सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्हृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है।

१२३. वेदकसम्यम्हिष्ट जीवोंमें सात कर्मों के दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित

छारहिसा० दे० । आउ० आभिणि०भंगो । णवरि अविड० षाणा०भंगो । उनसम० मणजोगिमंगो ।

१२४. सण्णी पंचिंदियपजन्ममंगो । आहार० सत्तर्णा क० श्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवद्वि०-अवन्त० ज० ए० अंतो०, उ० अंगुल० असंखे० । आउ० ओषं । णवरि अवद्वि० सगद्विदी माणिदच्या ।

एवं अंतरंसमत्तं

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो ।

१२५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०-ओषे० आदे०।ओषे० सत्तर्णा क० भ्रज०-अप्प०-अविद्वि० णियमा अत्यि। सिया एदे य अवत्तमे य। सिया एदे य अवत्तमा य । आउ० भ्रुज०-अप्प०-अविद्वि०-अवत्त० णियमा अत्यि। एवं

पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छषासठ सागर है। आयुक्सेका भङ्ग आभिनियोधिक ज्ञानके समान हैं। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। उपहामसम्यन्द्रछि जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विश्लेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वका उक्कृष्ट काल छथासठ सागर है, परन्तु यहाँ अन्तर छाना है, इसिंकि यहाँ सात कमींके अवस्थितपदका उक्कृष्ट अन्तर कुछ कम छथासठ सागर कहा है। आयुक्तमंके अवस्थितपदका उक्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है यह कहनेका भी यही अभिप्राय है। उपरामसम्यक्तका उक्कृष्ट काळ अन्तमुहूर्त है, इसिंक्य इसमें मनोयोगके समान अन्तरकाळ प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है।

२२४. संज्ञी जीवोंमे पञ्जेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। आहारक जीवोंमें सात कमोंके भुजगार और अन्तरपरका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है। अवस्थित ओर अवक्तव्यपरका जयन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मृहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुळके क्संख्यात्व भागप्रमाण है। आयुक्तमंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपरका उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विह्येषार्थ—आहारक जीवकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंस्थातवें भागप्रमाण है, इस्रांकर यहाँ सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। आयुक्तमके अवस्थितपदका अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है इसके कहनेका भी यही तास्तर्य है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ। नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयातगम।

१२५. नाना जीवॉका आलन्बन लेकर भङ्गविषयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आध और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके सुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदवाले जीव नियमसे हैं। क्राचित् ये नाना जीव हैं और अवक्तव्यव्दाले एक जीव है। क्राचित् ये नाना जीव हैं। आयुक्तमेंके सुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अकक्तव्यपदवाले नाना जीव हैं। आयुक्तमेंके सुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अकक्तव्यपदवाले नाना जीव हैं।

१. ता॰ प्रती सगद्विदी॰ एवं इति पाढः।

कायकोगि-ओरालि०-अवस्सु०-भवसि०-आहारम नि । तिरिस्सोघं सव्वर्ण्डदिय-पंचका०-ओरा०मि०-णबुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिष्णिले०-मिच्छा०'-असुष्णि० ओषभंगो । णवरि सत्तर्ष्णं क० अवत्तव्यने० णत्यि । लोमे मोह० ओर्ष ।

१२६, णिरएसु सत्तर्णं क० ग्रुज०-अप्प० णियमा अस्थि । सिया एदे य अवहृद्दे य अविद्वि य । आउ० सब्वपदा भयणिजा । एवं सब्वणिरयाणं । एवं सब्वेसिं असंखेजरासीणं । णविर सत्तर्णां क० अवत्त० अस्थि । तेसिं ग्रुज०-अप्प० णियमा अस्थि । सेसपदा भयणिजा । मणुस०अपज०-आहार०-अवगद०-सहुमसं०-उवसम०- सासण०-सम्मामि०ै सब्वपदा भयणिज्जा । बादरपुट०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवण०-प्रेचणका णिरयमंगे । कम्मइ०-अणाहार० सत्तर्णं क० ग्रुज० णियमा अस्थि । वेउच्चित्रिक सत्तर्णं क० ग्रुज० णियमा अस्थि । वेउच्चित्रिक सत्तर्णं अहर्णं पि सिया ग्रुजगारंगे य सिया भ्रुजगारंगे य सिया

एवं भंगविचयं समर्च भागाभागाणगमो ।

१२७. भागामागं 3 दुवि०-ओषे० ओदे०। ओषे० सत्तरणां क० भुज०बं०

भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। सामान्य तिर्वश्च, सव एकेन्द्रिय, पाँच स्थावरकाय, औदारिकमिशकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार क्यायवाले, मन्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेदयावाले, मिथ्यादिष्ट जार असंज्ञी जीवोंमे ओषके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मों के अवक्तव्यपदवाले जीव नहीं है। मात्र लोभकपायमें मोहनीय कमका भङ्ग ओषके समान है।

्रेश्, नारिकयों में सात कर्मों के भुजगार और अल्पतर परवाछे जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये नाना जीव है और अवधियतप्दवाला एक जीव है। कदाचित् ये नाना जीव है जी। अवधियतप्दवाला एक जीव है। कदाचित् ये नाना जीव है जी। अधुक्रमंके सब पद भजनीय है। इस प्रकार सब नार्राक्षयों जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंस्थात संख्याबाछी राशियों में जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंस्थात संख्याबाछी राशियों में जानना चाहिए। सात्र इतनी विशेषता है कि जिनमें सात कर्मों का अवक्रव्यपद है उनमें भुजगार और अल्पतर-पदवाछे जीव नियमसे हैं आर हो पर भजनीय हैं। मुख्य अपयोग्न, आहारकाययोगी, अपरातबेदी, सुद्धमक्षाम्परायसंयत, उपश्चमसम्यग्रहिष्ट, सासादनसम्यग्रहिष्ट और सम्याग्नस्थाहिष्ट जीवों में सब पद भजनीय है। बात्र प्रधिवीकायिक पर्योग, बादर जलकायिकरयोग, बादर अस्तिकायिक पर्योग, वादर अस्तिकायिक पर्योग, वादर अस्तिकायिक पर्योग, वादर अस्तिकायकायोगी और अनाहारक जीवों से आहारकायोगी अस्ति हो से अहारकाययोगी और अनाहारक अध्येग आहारकाययोगी जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों का जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों का जीवों में सात कर्मों के और आहारकाययोगी जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों में जीवों के सात कर्मों के स्वत्य स्वत्य ने सात जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों कर सात जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों कर सात जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों कर सात जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों कर सात जीवों में सात कर्मों के और आहारकायों कर सात जीवों में सात कर्मों के सात कर सात जीवों में सात कर्मों के सात जीवों में सात कर्मों के सात कर सात जीवों में सात कर सात क

इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

१२७. भागामाग दो प्रकारका है-ओघ और आरेश । ओघसे सात कर्मीके भूजगारपदके

केव॰ १ दुमागो सादिरेगो। अप्प॰ दुमागो देख॰ । अवडि॰ असंखेजदिमागो। अवच॰ अर्णतमागो। एवं कापजोगि-ओरालि॰ अचक्खु॰ म्भवसि॰ आहारग चि। आउगं एवं चेव। अवच॰ असंखेजदिमागो। सेसाणं सन्वेसि असंखेजरासीणं ओघं। जवार केसि च अवच॰ अत्थि केसि च अवच॰ णित्व। एसि अवचन्वमाच्यि तेसि अवचन्वमाच्यि तेसि अवचन्वमाच्य तेसि विकासिक स्वचन्य अविकासिक स्वचन्य संखेजदिन मानो। एवं अद्वण्यं क०। एसि सच्चणं क० अवच॰ णास्य तेसि पि एसेव मंगो। वेउन्वि॰ मि॰ आहारमि॰ कम्मड॰ अणाहार॰ णास्य मामामागो।

एवं भागाभागं समत्तं परिमाणाणुगमो

१२८. परिमाणाणु० दुवि० - ओघे० ओदे०। ओघे० सत्ताव्यां क० भुज०-अप्प०-अवद्भि०वंधमा केत्रिया ? अणंता । अवत्त० के० ? संखेजा । आउ० अज०-अप्प०-अवद्भि०-अवंत्त ०बंध० के० १ अणंता । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-अचक्ख ०-भवसि ०-आहारग ति । तिरिक्खोघं एइं दिय-वणप्फदि-णियोद०-बन्धक जीव कितने हैं ? साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। अल्पतरपदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण है। अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अवक्रव्य-पदके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अनुक्ष-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। आयकर्मका भक्क इसी प्रकार है। मान्न यहाँपर अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवे भागप्रमाण हैं। शेष सब असंख्यात राशियोंका भक्त ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि किन्हींमें अवक्तव्यपद है और किन्हींमें नहीं है। जिनमें अवक्तव्यपद है उनमें अवक्तव्यपद अवस्थितपदके साथ कहना चाहिए। शेष अनन्त-राशियोमें ओवके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपद नहीं है। संख्यात राशियोंमें भी भूजगार और अल्पतरपदका मङ्ग ओघके समान है। अवस्थित और अवक्रव्य-पदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इस प्रकार आठों कर्मीका जानना चाहिए। जिनके सात कर्मीका अवक्तव्यपद नहीं है उनका भी यही भक्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्र-काययोगो, कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें भागाभाग नहीं है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाणानुगम

१२८. परिमाण दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे सात कर्मों के सुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके कम्पक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अवक्तवपदके वन्यक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । आयुक्रमंक सुजगार, अवस्थत तो आये अवक्तव्यपदके बन्यक जीव कितने हैं ? अल्पत हैं । इस प्रकार ओपके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अच्छुरुर्शनो, अच्य और आहारक जीवोंमें जानना चािहए । सामान्य तिर्वेक्क, एकेन्द्रिय,

ता॰ प्रती दुमागे देसू॰ इति पाठ:। २. ता॰ प्रती आहार [मिस्स॰ कम्मदृ॰ क्रणाहारग वि योदव्यं] परिमाणं दुवि॰, आ॰प्रती आहारमि॰ कम्मद् अणाहार॰ भंगो। एवं भागाआगं समयं। परिमाणाणु ॰दवि॰ इति पाठ:।

ओरास्तिः मि॰-णबुंस॰-कोघादि०४-मदि॰-सुद०-असंज्ञ॰-तिष्णिले॰-अन्मव॰ मिण्डा॰— असण्णि॰ ओघमंगो । णवरि सत्तर्णा क॰ अवत्त॰ णस्यि । कम्मइ॰-अणाहार॰ सत्तर्णा क॰ अर्णता ।

१२९, णिरएसु ' सन्वयदा असंखेजा। एवं सन्वणिरयाणं सन्वर्गिर्विदि०-तिरि०-सन्वजपज्ञत्तमाणं देवाणं याव सहस्तार ति सन्वविगर्लिदिय-पंचका०-वेउन्वि०-[बेउ०मि०] इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद ०-तेउ ०-पम्म०-वेदग०-सासण०-सम्मा०।

१३०. मणुसेसु सत्तण्यं क० धुज०-अप०-अविद्वि असंखेआ। अवज० संखेज्जा। आउ० सव्वपदा असंखेआ। एवं पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-आमिणि०-सुद्द०-ओघि०-चक्खु०-ओघिदं०-सम्मादि०-उवसम०-सण्णि ति। मणुस-पज्जत-मणुसिणीसु अद्दृण्यं क० संखेआ। एवं सव्वद्व०- आहार०°-आहारम०-अवगद-मणपज्ज०-संब०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुद्दमसं०। आणद् याव अवराइदा ति सत्तण्यं धुज०-अप्प०- अवद्वि० केति० १ असंखेआ। आउ० सव्वपदा संखेआ।

बनस्पतिकाधिक, निगोद, भीदारिकमिश्रकाययोगो, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाळे, सत्यक्काबी, श्रुताक्कानी, असंयत, तीन ठेडयावाळे, अभव्य, मिण्याहष्टिकोर असंबी जोवोंसे ओषके समान सक्कृ है। इतनी विरोषता है कि इनमें सान वर्मीका अवक्रव्यप्त नहीं है। कार्यणकाययोगी और अनाहारक डीवोंसे सात कर्मीके भुजताप्यदुके क्यक जीव अनन्त है।

१२९, नारिकयों में सब पदबाठे जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पद्भित्त्रिय तियेख, सब अपयाँग, देव, सहस्रार कल्पनक्के देव, सब विकछेन्द्रिय, पाँच स्थावर-काथिक, बैक्टियककाययोगी, खेकियककाययोगी, स्वीवेदी, पुरुषदेदी, विभङ्गलाती, संसासाय्य, पीत्रकेदयावाले, पद्मकेदयावाले, वेदकसम्यन्द्रांष्ट्र, सासादनसम्यन्द्रष्टि और सम्याम्मय्याष्टि ओवों साना वाहिए।

२२. मनुष्यों में सात कर्मों के सुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके वन्यक जीव असंस्थात हैं और अवकञ्यपदके वन्यक जीव संख्यात हैं। अधुक्रमेंक सब पहाँके वन्यक जीव असंस्थात हैं। इसी प्रकार पञ्जेंतृत्यद्विक, त्रसद्विक, पोंचों मनोयोगी, पोंचों वन्यत्योगी, आस्मितिवोधिक्वानी, अत्वानी, अवधिक्रानी, अत्वानी, अवधिक्रानी, अत्वानी, अवधिक्रानी, अवधिक्रानी, अत्वानी, अवधिक्रानी, अद्वानी, अवधिक्रानी, अद्वानी, अवधिक्रानी, अद्वानी, अद्वानी, अवधिक्रानी, अद्वानी, अद्वा

ता० प्रतो णिखाः । ' ' कम्माइ० अवाहार० सत्त्वव्यां कम्मावं अव्यता] । णिरयेसु इति पाटः ।
 आ० प्रती सन्वत्य बाहार - इति पाठः । ३. ता० प्रतो आखी० (३०) सम्बप् इति पाठः ।

एवं सुक्कले० खड्ग०। णवरि सत्त्रण्णं क० अवत्त० संखेज्जा। एवं परिमाणं सम्त्र^न

खेत्ताणुगमो

१३१. खेताणु० दुवि०—जोषे० आदे०। जोषे० सत्तर्ण्णं क० सुज०-अप्प०-अवि६० केविड खेते ? सन्वजोगे। अवत्त० लोग० असंखे०।आउ० सन्वपदा सन्वलो०। एवं ओघमंगो कायजोगि-ओरालि०-लोभका० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग ति। एवं चेव तिरिक्खोषं एहंदि०-सन्वसुदुम-युट०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्कदि-णियोद०-जोरालि०मि०- णवुंस०- कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिन्डा०-असण्णि ति। णविर सत्तर्णं क० अवत्तन्त्वं णस्ति।

और क्षायिकसम्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्रानुगम

१३१, क्षेत्रानुगमकी अपेशा निर्देश हो प्रशासका है—ओप और आदेश। ओपसे सात कमीक अजगार, अल्यादर और अवस्थित पहले बन्धक जीवीका क्षित्र है। यस खोक क्षेत्र है। उस काक क्षेत्र है। अत्यक्ति असंख्याद सामप्रमाण क्षेत्र है। अत्यक्ति से पर्दाके बन्धक जीवीका साक क्षेत्र है। उस माप्तमाण क्षेत्र है। अत्यक्ति से पर्दाके बन्धक जीवीका सब छोक क्षेत्र है। इस मकार ओपके समान, काययोगी, औदारिक-काययोगी, लोसकायवालींमें मोहनीयका, अवाकुरहोनी, भव्य और आहारक जीवीमें जानना पाहिए। तथा इसी प्रकास सामान्य तिर्यक्ष, एकेन्द्रिय, सब सुस्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अनिकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगीद, औद्दारिकिमकाययोगी, नुपुंककचेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यक्षानी, अुताझानी, असंयत, तीन लेस्यावाले, अभव्य, सिय्यादिष्ट और असंझी जोवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मीका अचकक्तयपुत नहीं है।

विशेषार्थ — ओपसे सात कर्मों के तीन पदवाले जीव सव लांकमें पाये जाते हैं, इसिंकए जनका सव लोक क्षेत्र कहा है। तथा इनके अवकत्व्यवदेक वे ही स्वामी हैं जो उपशमश्रीणसे उनते हैं या वहाँ मरकर देव हुए हैं। अतः ऐसे जीवोंका क्षेत्र लेकिक असंख्याववें भागममाण है। है, अतः सात कर्मों के अवकत्व्यवद्वाले जीबांका क्षेत्र लेकिक असंख्याववें भागममाण कहा है। आयुक्रमंके सव पद एकेन्द्रिय आदि सव जीबांके सम्भव हैं, इसिंक्ट ओपसे आयुक्रमंके सव पद बालांका क्षेत्र सवेलेकिमाण कहा है। वहाँ कायपोगी आदि जो मार्गणाएं गिनाई है उनमें यह ज्यावया वन जाती है इसिंक्ट जर्मों ओपके समान जानने की स्वना की है। सामान्य तिर्वश्च आदि अन्य जितनो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी ओपके समान जानने की स्वना की है। कारण सह है। सात्र उनमें सात्र अवकत्व्यवद्वा हो है। साप्त स्वना की स्वन

^{1.} ता॰ प्रतौ एवं परिमाखं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

१३२. बादरप्रदृंदि०-पजनापज०-बादरबाउअपज० सन्त णाँ क० श्वज०-जप्प०-अबद्दि० सञ्चलो० । आउ० चनारिप० लो० संखे० । बादरपुद्द०-आउ०-तेउ०-बादरबण०पने० तेसि चेव अपज० बादरबण०-बादरिणयोद० पजनापज० सन्तण्ये क० तिणिण प० सञ्चलो० । आउ० चनारिप० लोग० असंखे० । पंचण्णं बादर-पजनाणं पंचिं०निरि०अप०मंगो । सेसाणं संखेजासंखेजरासीणं लोग० असं० । कम्मइ०-अणाहार० श्वज० सञ्चलो० । बादरबाउ०पजन० सन्त्वणं क० तिण्णि पदा आउ० चनारिप० लो० संखेज्ज० ।

एवं खेत्तं समत्तं

१३२. बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपयीप्त और वादर वायुकायिक अपयोप्त जीवांमें सात कर्मों के सुजगार, अल्पतर और अवस्थित परके बन्यक जी गंका सव छोक्रमाण क्षेत्र है। आयुक्तमेंव बारां पर्दांके बन्यक जीवांका छोक्के असंस्थातवं भागप्रमाण क्षेत्र है। बादर प्रिवादिक, बादर जठकायिक, बादर अपिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रयोप्त क्षार वनस्पतिकायिक प्रयोप्त और उनके अपयोप्त, बादर वनस्पतिकायिक और वादर निगोद तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपयोप्त जीवांमें सात कर्मोंके तीन पर्दांके वन्यक जीवांका क्षेत्र वस्त कोक्टमाण है। आयुक्तमेंके वार्ता पर्दांके वन्यक जीवांका क्षेत्र ठीकके असंख्यातवं भागप्रमाण है। वादर पर्याप्तकंका भक्क पंचीत्र्य निर्वेक्ष अपयोप्तकंकि समान है। शेष सत्वात और असंख्यात राशियोंका क्षेत्र छोकके असंख्यातवं भागप्रमाण है। वादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवांमें सुजगार परके वन्यक जीवांका सव छोक क्षेत्र है। वादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवांमें सात कर्मोंके तीन पर्दां और आयुक्तमेंके वार पर्दोक्षेत्र वार्विक श्रित्र छोठके संस्थातवं भागप्रमाण है।

ता॰ प्रतौ बादरवाउ ""प॰ सच्चणां, घा० प्रतौ बादरवणकः सच्चणां इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ एवं खेरां समचं इति पाठो नास्ति ।

फोसणाणुगमो

१३३. फोसणाणु० दुवि०—जोषे० जादे०। जोषे अहण्णं क० सञ्चप० स्वेत्तमंगो।[प्वं]तिरिक्सोषं प्रंदि०-पंचका०-कायजोगि०-ओराहि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-सदि०-सुद०-असंज०-अचक्सु०-तिण्णिले०-अवस्वि०-अक्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-जणाहारग चि।

१२४. णेरहगेसु सत्तर्णं क० श्रुज०-अप्प०-अवट्टि० छच्चोह०। आउ० खेत्तभंगो। एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्यं। सव्यपंचि०तिरि० सत्तर्णां क० श्रुज०-अप्प०-अवट्टि० लो० असंखे० सव्यलो०। आउ० खेत्तमंगो। एवं मणुस-सब्ध-अपज्ञताणं तसाणं सव्यविगलिंदियाणं बादर-पुढ०-आउ०-तेउ०-बाउ०पज्ञत्ता० बादरपत्ते०पज्जताणं च। मणुसेसु अट्टण्णं क० अवत्त० खेत्त०। बादरबाउ०पज्जत्त०

क्षेत्र होनेसे इनमें यहाँ सम्भव सात कर्मों के भुजगार पदको अपेक्षा सब लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है।

स्पर्शनानुगम

१३३. सर्शानानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे आठों कर्मी के सब पदोंके बन्धक जीबोंका स्परान क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सामान्य विषेक्ष, एकेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, काययोगी, ओदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाय-योगी, नपुंसकदेदी, कोषादि चार कथायवाले, मस्यक्षानी अ ताक्षानी, असंयत, अपक्षुदुर्शनी, तीन लेडयावाले, मन्य, अमन्य, मिस्यादृष्टि, असंब्री, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विद्रोपार्थ — ओघसे सात कर्मों के अवक्तव्यपदके सिवा आठों कर्मों के सब पदों को अपेक्षा क्षेत्र सब लोकप्रसाण तथा सात कर्मों के अवक्तव्यपदकी अपेक्षा क्षेत्र छोकके असंख्यातवे सागप्रमाण बतला आये हैं वही यहाँ स्परांत भी प्राप्त होता है, अतः हसे क्षेत्रके समात जानतेकी सुचना की है। यहाँ सामान्य तिर्पक्ष आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं कर्मों भी हसी प्रकार जानना चाहिए ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि इनका स्पर्शन भी क्षेत्रके समान जानता चाहिए ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि इनका स्पर्शन भी क्षेत्रके समान जानता चाहिए।

१३४. नारिकवॉमें सात कर्मों के मुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवों ने तसनाली के कुछ कम छह वटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पात किया है। आयुक्तमंका भंग श्रेत्रके समान
है। इसो प्रकार सर्वत्र अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। सव पंतिन्द्र विविश्वों सात कर्मों के
भजगार अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवों लोकके असंस्थातव भागप्रमाण क्षेत्रका
और सब टोक्कप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्तमंका भक्त क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार
मनुष्य, सब अपवीत, त्रस अपवीत, सब विकटेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर आर्क्तमंत्रका भार बादर प्रदिक्तमत्तरिक
कायिक पर्याप्त जीवों में जानना चाहिए। मात्र मनुष्यों अठों कर्मों के अवक्तव्यपदका मक्त
श्रेत्रके समान है। तथा बादर वायुक्तायिक पर्याप्त जीवों सात कर्मों के तीव

१. ता॰ प्रती सन्वर्षचिं० सत्तरणी इति पाठः ।

सत्तरणां कः तिण्णि प० लोग० संखे० सञ्चलो०।

१३५. देवाणं सत्तर्णां क० तिष्णि प० अट्ट-णव० । आउ० चत्तारिप० अट्टचो० । एवं सट्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेद्व्वं । पंचि०-तस०२ सत्तर्णां क० स्वज०-अप्प०-अवट्वि० अट्टचो० सव्वजो० । अवत्त० खेत्तर्मगो । आउ० चत्तारिप० अट्टचो० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विमंग-चक्सु०-सण्णि ति । वेउ० सत्तर्णां क० तिष्णिप० अट्टनेस्ट्० । आउ० सव्वप० अट्टचो० ।

१३६. वेडव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवग०-मणपञ्ज० याव सुहुमसंप० खेत्तमंगो । आर्मिणि०-सुद-ओघि० सत्तर्ण्णं क० तिष्णिप० अद्वचो० । अवत्त० खेत्तमंगो ।

बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ यहाँ जितनी मार्गणाओं संस्थान कहा है उनमें यहाँ बात जाननी बाहिए कि उन मार्गणाओं का जो समुद्धातकी अपेक्षा स्पर्शन है वह सात कर्मों के पहोंकी अपेक्षा जानना चाहिए और जो स्वस्थान स्पर्शन है वह आयुक्तमंत्री अपेक्षा जानना चाहिए। स्पर्शनका उन्नेल मुक्तमंं किया ही है।

१२५. देवॉमें सात कर्मों के तीन पर्दों के बन्धक जीवॉन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह साग और कुछ कम नी बटे चौदह साग अत्रक स्वरंग किया है। आयुक्रमंके चारों पर्दांके बन्धक जीवॉने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह सागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवॉमें अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए। पर्छाट्ट प्रक्रिक और जराईक जीवॉमें सात कर्मों के भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवॉने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह साग और सब छोकप्रमाण क्षत्रका स्पर्शन किया है। अवकाल्य पदका भक्क क्षत्रके समान है। अयुक्रमंके चारों पर्दाके बन्धक जीवॉने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह सागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पीचॉ मनोवोगों, पीचॉ बन्तवोगों, क्षत्रिवी, पुरुषपेदी, विमङ्गलाली, चक्कसंक त्रां पर्दोंके बन्धक जीवॉने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह साग और कुछ कम तेरह बटे चौदह साग और कुछ कम तेरह बटे चौदह सागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुक्रमंक सब पर्दोंके बन्धक जीवॉने त्रसनालीके कुछ कम आठ वटे चौदह साग और कुछ कम तेरह बटे चौदह सागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — यहाँ सात कर्मों के सम्भव पदों की अपेक्षा स्पर्शन उन-उन मार्गणाओं का जो स्पर्शन है उतना है और आयुक्तमंका बन्ध विहारवस्त्रस्थानके समय भी सम्भव है, इसांख्य इसके सब पर्दों की अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चांबह राजुप्रमाण कहा है। अभो भी सब मार्गणाओं में विचार कर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर छेना चांहिए। यदि कहीं कोई विशेषता होगी तो मात्र उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

१६६. बैक्रिविकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी और मनप्यवेद्यानी केट सुरुम्रास्थ्याय संयत तक स्परांत क्षेत्रके समान है। आभिनि-बोधिस मनप्यवेद्यानी से कुक्क त्रामान है। आभिनि-बोधिस क्षेत्रके समान है। आभिनि-बोधिस क्षेत्रके समान है। आपिन क्षेत्रके समान है। आपिन क्षेत्रके सम्बक्त स्वाविक कुछ कम आठ वटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्रव्ययद्वे बन्धक जीवींका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। आयुक्सके सब पर्दोके वन्धक जीवींने जस्मानीके क्षक कम

१. आ॰प्रती तस ३ सत्तप्णं इति पाठः ।

आउ॰ सम्बप॰ अहचो॰।[एवं] ओघिदं॰सम्मा०-खहग०-बेदग॰सम्माभि॰। संबदासंज॰ सत्तरणं क॰ तिष्णिप॰ छच्चो॰।आउ॰ खेत्तरंगो। तेउ॰ देवोषं। पम्माए सहस्सारमंगो। सुकाए आणदमंगो।णवरि सत्तरणं क॰ अवत्त ॰ खेत्तरं॰। सासणे सत्तरणं क॰ तिष्णिप॰ अह-वारह॰।आउ॰ सन्वप॰ अहचो॰।

एवं फोसणं समत्तं '

कालाणुगमो

१३७. कालाणुगर्मण दुवि०–जोघे० आदे०। जोघे० [सचच्चं क० झुज० जप्प० अवद्वि० सव्वद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० संसेजसम०। आउ० सव्वपदा० सव्वद्धा। एवं कायजोगि-जोगालि०-अवस्कु०-भवसि०-आदाग्य ति। एवं चेव विरिक्सोधं एइंदि०-पंचकाय०-ओगालियमि०-णवुंस०-कोघादि४-मदि-सुद०-असंज०-तिपिखोठे। अवत्-भिच्छा०-असण्णि-अणाहाग्याति। णविर सत्तच्यं क० अवत्त० णस्यि। लोमे मोड० अवत्त० अस्यि।

आठ वटे चौद्द भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिद्दर्शनी, सम्यग्द्रिश, क्षायिक-सम्यग्द्रिश, वेदक्तम्यग्द्रिष्ट और सम्यग्नियाद्विष्ट जीवोंमें जानना चाहिये। संवतासंवत जीवोंमें सात कर्मों के तोन पट्ढोंक न्यन्य जीवोंने समाजांको कुछ कम कहा वटे चौद्द सागप्रमाण क्षेत्रका रक्षान किया है। आयुक्तमंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। पदालेश्यावाले जीवोंमें सद्दलार करूपके समान भङ्ग है। शुक्रलेश्यामें सामान भङ्ग है। पदालेश्यावाले जीवोंमें सद्दलार करूपके समान भङ्ग है। शुक्रलेश्यामें सात कर्मोंके अवकाट्य पदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। सावादनसम्यवस्वमें सात कर्मोंके तीन पदोके बन्यक जीवोंने असनालोके कुछ कम आठ वटे चौद्द भाग और कुछ कम बारह वटे चौद्द सागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन क्रिया है। आयुक्कांके सब पढ़ोंके क्ष्यक जीवोंने असनालोके कुछ कम आठ वटे चौद्द भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

इस प्रकार स्पर्धन समाप्त हुआ।

२३७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कमोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका काळ सबेदा है। अवक्रक्यपदका जपन्य काळ एक समय और उन्हर काळ संख्यात समय है। अगुके सब पदोंका काळ सबेदा है। इस प्रकार कोघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचळुदर्शनी, मज्य और आदारक जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामान्य तियंक्क, एकेन्द्रिय, पाँच स्वावरकायिक, औदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोघादि चार कवायवाले, मत्यक्कानी, श्रुताक्कानी, असंयत, तीन लेडपालों, अभन्य, मिम्याहर्षि, असंक्की और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विश्लेषता है कि सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है। मात्र लोभकवायमें मोहनीयका अवक्तव्यपद है।

विशेषार्थ — ओघसे सात कर्मों के भुजगार आदि तीन पद यथासम्भव एकेन्द्रिय आदि सब जीवों के सम्भव हैं, इसलिए इनका काळ सर्वदा कहा है और इनका अवक्तव्यपद उपशस-

वा॰प्रतौ प्वं फोसणं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

१३८. आदेसेण णेरहएस् सिचण्यं क० भ्रज०-अप्प० सन्बद्धा। अवहि ० ज० ए०, उ॰ आवत्ति॰ असं॰ । आउ॰ भुज्ञ॰-अप्प॰ ज॰ ए॰, उ॰ पत्तिदो॰ असं॰ । अवद्धि॰-अवसः जः पः ०. उ० आवितः असंः । एवं सन्वअसंखेजरासीणं । संखेजरासीणं पि तं चेव । णविक सत्तरणं क० अवदि०-अवत्त० ज०ए०. उ० संखेजसम० । आउ० भ्रज्ञ ०-अप्य ० ज ० ए०. त० अंतो० । अवदि ०-अवत्त ० ज ० ए०. त० संखेजसम० ।

श्रेणिसे उतरते समय सम्भव है, इसिलए इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। आयकर्मके सब पद एकेन्टिय आदि सब जीवोंके सम्भव होनेसे उनका भी काल सबंदा कहा है। यहाँ काययोगी आदिमें सोघप्रक पणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनका कथन ओघके समान जानने की सुनना की है। सामान्य तियंक्च आदिमें अन्य सब प्ररूपणा तो ओघके समान बन जाती है। मात्र इनमें सात कर्मीका अवक्तव्यपद नहीं होता। मात्र लोभकषाय मोहनीय कर्मकी अपेक्षा इसका अपवाद है।

१३८. भावेशसे नारिक्योंमें सात कम के भूजगार और अल्पतरपदका काल सर्वदा है। अबस्थितपदका जघन्य काळ एक समय है और उस्क्रप्ट काळ आवित्रके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुक्रमंके भूजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल पत्यके असंख्यातचे भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काळ एक समय है और उरकृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सब असंख्यात राशियोंमें जानना चाहिए । संख्यात राशियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि सात कमोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भहर्त है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जधन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ---नारिकयोंमें सात कर्मों के अजगार और अल्पतरपदका एक जीवकी अपेक्षा यद्यपि जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त कहा है फिर भी नाना जीवोंकी अपेक्षा ये पद सदा काल नियमसे पाये जाते हैं, इसलिए इनका काल सर्वदा कहा है। इनमें अवस्थितपदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ एक समय और उस्कृष्ट काल चाछ उपदेशके अनुसार ग्यारह समय ऋहा है। यदि नाना जीबोंकी अपेक्षा इस कालका विचार करते हैं तो षह कम से कम एक समय और अधिक से अधिक आवित्तिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसितये यहाँ सात कर्मों के अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय उत्कृष्ट काल आवित के असंख्यातवे भागप्रमाण कहा है। आयुक्मके सुजगार और अल्पतरपदका एक जीवकी अपेक्षा जधन्य काळ एक समय और उस्कृष्ट काल अन्तर्महर्त है। किन्तु आयुकर्मका सदा बन्ध नहीं होता, इसलिए नाना जीवांकी अपेक्षा इस कासका विचार करनेपर वह जघन्यरूपसे एक समय और उत्कृष्ट रूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि नाना जीव कमसे कम एक समयके लिए इन पदोंके धारक हां और दूसरे समयमें अन्य पदवाले हो जावें यह भी सम्भव है और निरन्तर क्रमसे नाना जीव यदि अन्तर्मुहर्त अन्तर्मुहर्त कालतक इन पदोंके साथ आयुवन्ध करें तो उस सब कालका जोड पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसल्किए यहाँ आयुक्सके एक पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल परुयके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। यहाँ आयुक्तमेके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काछ एक समय और

१. ता॰प्रती सम्बदा । हि (अवद्रि) ज॰ एग॰, आ॰ प्रती सम्बद्धा । अवदि० अवस॰ ज॰ ए॰ इति पाठः ।

१३९. बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बाछ०-यचे०पऊ ० पंचि० [तिरि०अप०मंगो । वेउव्वियमि० सत्तर्णां क० श्वनः] ज० अंतो'०, उ० पछि० असं० । आहार० अहण्णां श्वन०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवहि० आउ० अवस० ज० ए० ^र, उ० संखे० | आहारमि० सत्तर्णां क० श्वन्न ज० उ० अंतो० ^उ । आउ० दोपदा० आहारकावजीरित्यंगो ।

एवं कालं समत्तं⁸

उत्कृष्ट काळ आविलके असंस्थातवें भागप्रमाण है वह स्वष्ट ही है, क्योंकि नाना जीव संस्थात संस्थात समय तक अन्तरके विना यदि उक्त पदको प्राप्त होते हैं तो बह सब काळ आविलके असंस्थाववें भागप्रमाण ही होता है। असंस्थात संस्थावाली अन्य मार्गणाओंमें यह काळ हवी असंस्थाववें भागप्रमाण ही होता है। असंस्थात संस्थावाली अन्य मार्गणाओंमें यह काळ हवी इतका काल केविक समान कहना चाहिए। कारण स्वष्ट है। संस्थात संस्थावाली मार्गणाओंमें भी यह काळ इसी प्रकार कहना चाहिए। जो विशेषता है उसका अस्तासे निर्देश किया ही है।

१३९. बादर पृथिवीकायिकपयोप्त, बादर जलकायिक पर्योप्त, बादर अग्निकायिकपयोप्त, बादर बाजुकायिकपयोप्त और बादर प्रत्येक सनस्पत्तिकायिकपयोप्त जीवोंमें पञ्चिन्द्रियतिर्वञ्च अपयोप्तकींके समान भङ्ग है। बैक्तियिक्षाक्षकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके सुजगारपद्यः जायन्य काळ अन्तर्मुह्त है और उस्कृष्ट काळ पत्त्यके असंख्यातवें भागाप्रमाण है। आहारककाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके सुजगार और अल्यत्यपद्यका जायन्य काळ एक समय है और उस्कृष्ट काळ अन्तर्मुह्त है। अस्यत्यद्वका और आगुक्रमके अवक्षव्यपद्यका जायन्य काळ एक समय है और उसकृष्ट काळ संख्यात समय है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके सुजगार पदका जायन्य और उस्कृष्ट काळ अन्तर्मुह्त है। आयुक्रमके दो पदोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है।

विद्रोबार्य — पञ्चिन्त्रयतिर्वञ्च अपयोप्तकोमं आठां कर्मोक सम्मव पर्दोका जो काल प्राप्त होता है वही बादर प्रिविकाशिकरणोंग आदि जीवोमं बन जाता है, इसिलए यह काल पञ्चिन्त्रयतिर्वञ्च अपयोप्तकोक समान कहा है। वैकिष्यक्रिमण्डाययोगी जीवोमं सात कर्मोक सुमागरदका एक जीवकी अपेक्षा जपन्य और उन्हण्ट काल अन्तर्वष्ट्रते कह आये हैं। नाना जीव यदि एक साथ इस मागणाको प्राप्त हों और किर न प्राप्त हों तो नाना जीवोकी अपेक्षा भी इस मागणामें उक्त पदका अन्यर्श्वहुते वन जाता है। तथा लायाता अन्तर्युहुते अगतर तिरुक्त रूपसे यदि नाना जीव वैकिषिकमिणकाययोगी होने रहे ही कन्न्य काल पत्यक्के असंस्थातवे भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसिल्य वहाँ इस पदका जयन्य काल अन्तर्युहुते और उन्हण्ड काल पत्यके असंस्थातवे भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसिल्य इस योगमें अर्थों कर्मोंक अन्यरार और अन्यरार और अन्यरार और अन्यरार और अन्यरार केरि अन्यरार और अन्यरार विद्या अपन्य काल पत्य काल पत्य कर्मोंक अन्यरार केरि अन्यरार और अन्यरार केरि अन्यरार कारि क्षा होते हैं और के अन्यर्थवात समय इसिल्य कहा है। क्षांत्र केरिल इस योगके धारक जीव संस्थात होते हैं और के क्षांत्र स्थान स्थान होता होते हैं और के क्षांत्र स्थान स्थान स्थान स्थान स्थान होते हैं और के क्षांत्र स्थान स्थान स्थान स्थान होते हैं और केरिल अन्यरार स्थान स्थान स्थान होते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय सम्यरार हाते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय समय कर्मी इस्तान स्थान स्थान स्थान स्थान होते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय स्थान होते हैं आहार के आतार संस्थान समय सम्यरार होते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय सम्यरार स्थान सम्यरार अन्यरार संस्थान सम्यरार हाते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय स्थान स्थान सम्यरार स्थान समय स्थान समय स्थान होते हैं आहार केरा स्थान स्थान स्थान सम्यरार होते हैं और के क्षांत्र संस्थान समय सम्यरार स्थान स्थान

१. ता०आ । प्रत्योः पॅचिं । " अर्थ अंतो० इति पाटः । २. ता०म्यती अवच० (?) अर्थ प्रत्याक्षः । ३. आ ०प्रती अर्थ कार्यासमर्था इति पाटः । ४. ता०म्यती प्रयंकार्या समर्था इति पाटा । । स्वा आस्ति ।

अंतराणुगमो

१४०. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तरणं क० अज०-अप्प०-अविद्वि० णित्य अंतरं। अवन० ज० ए०, उ० वासपुघ०। आउ० चत्तारिपदा णित्य अंतरं। एवं ओघमंगो कायजोगि^{र्} औरालि०-अचक्खु०-सवसि०-आहारग ति णेदच्वं। एवं चेव तिरिक्सोधं एद्रंदिय०-पंचका०-ओरालि०मि०-णबुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अच्मव-मिच्छा०-असण्णि^र०-अणाहारग ति। णविर सच्चणं क० अवत्त० णत्यि अंतरं। लोभे मोह० अवत्त० अत्यि।

१५१. णिरएसु सचर्णां क० भ्रुज-अप्प० णत्थि अंतरं । अविधि० ज० ए०, उ० सेढीए असं० । आउ० भ्रुज०-अप्प०-अक्च० पगदिअंतरं । अविधि० ज० ए०,

पदका जमन्य और करह ष्ट काळ अन्तर्भुहुत कह आये हैं। अब यदि नाना जीव भी निरन्तर इस योगको प्राप्त हों तो उन सबके काळका योग भी अन्तर्भुहुते अधिक नहीं होगा, इसिकिए इस योगमें सात कमीं के भुजगारपदका जमन्य और उन्कृष्ट काळ अन्तर्भुहुते कहा है। आहारक- सिश्रकाययोगमें आयुक्तमें के भुजगार और अवक्तव्य ये दो पद होते हैं। इसका जमन्य और उन्कृष्ट काळ यहाँ आहारककाययोगों जोबों के समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

१४०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—लोघ और आदेश । लोघसे सात कमोंके भुजागार, अल्पतर और जबस्मियतपुका अन्तरकाळ नहीं हैं । अवक्तव्य पदका कमन्तर वर्षण्यक्तमाण है। आयुक्रमेके चारों परोंका अन्तरकाल ही है। हम प्रकार लोघके समान काययोगी, लोदारिककाययोगी, अपब्रुद्धांती, अव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामान्य विश्वेश्व, एकेन्द्रिय, पॉच स्थावरकायिक, लोदारिकाम काययोगी, नपुंसकचेदो, कोधादि चार कथायवाले, मत्यक्षाती, श्रुताक्षाती, असंवरत, तीन केदायावाले, असम्बर्ध, स्थावरकायिक, लोदारिकाम काययोगी, नपुंसकचेदो, कोधादि चार कथायवाले, मत्यक्षाती, श्रुताक्षाती, असंवरत, तीन केदयावाले, असम्बर्ध, स्थावरकायिक, अस्ति और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मीक अवक्रव्यपदका अन्तरकाल नहीं है तथा लोमकथायमें मोहनोचकमेका अवक्रव्यपद है।

विश्वेषार्थ — पहले ओपसे और ओषके अनुसार उक्त मार्गणाओं से कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं। यहाँ अन्तरका स्पष्टीकरण उसे ज्यानमें रखकर कर लेना चाहिए। उपहामलेणिका जावन्य अन्तर एक समय और उद्देश्च अन्तर वर्षप्रथनत्वप्रमाण होनेसे यहाँ सात कर्मों के अवकाल्यपदका जावन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथनत्वप्रमाण कहा है, हतना यहाँ विशेष स्पष्टीकरण समझ लेना चाहिए।

१४१. नारिक्योंमें सात कमोंके भुवागार और अल्पतरपदका अन्तरकात नहीं है। अवस्थितपदका जपन्य अन्तर एक समय है और एक्छड अन्तर जगभीणके असंख्यातवे भाग-प्रमाण है। आवृक्षमेंके भुवागार, अल्पतर और अवक्त्यपदका अन्तर काठ प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। अवस्थितपदका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्छट अन्तर जानशिकी

१. ता॰ प्रतीअंत॰ ·····[एवं ओथअंगो] कायजोगि इति पाठः। २. ता॰ प्रती अवस्थव॰ असम्मि इति पाठः।

उ० सेढीए असं०। एवं असंखेजरासीणं संखेजरासीणं। बादरपुट०'-ओउ०नीउ०-बाउ०-पचेय०पजच० पंचि०तिरि०अप०मंगो। बेउन्बि०मि० सचर्णां क० क्षज० ज० ए०, उ० बारससुद्दु०। एदेण सेसाणं पगदिञ्चतरं णेदव्यं याव सण्णि चि।

एवं अंतरं समसं^र ।

भावाणुगमो

१४२. भावाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० अद्रष्णं० युज०-अप्प०-अवद्वि०-अवन्तर्णंथगा ति की भावी ? ओदहगी भावी। एवं याव अणाहारग ति मेदन्वं।

असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार असंख्यात राशि और संख्यात राशिवोंमें जानना चाहिये। बादर प्रथिवीकायिक पर्योप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अधिकायिक पर्योप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चिन्द्रिय तियञ्ज वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चिन्द्रिय तियञ्ज अवस्य कार्याप्त के सामान भन्न है वैदिविकायिक प्रवाप्त वायुक्त विकास के प्रवाप्त प्रवाप्त प्रवाप्त कार्याप्त कार्य कार्याप्त कार्याप्त कार्य कार कार्य क

विशेषार्थ-नारिक्योंमें सात कर्मों का निरन्तर बन्ध होता रहता है किन्हींके अजगार-रूप और किन्हींके अल्पतररूप होता है, इसिक्कप यहाँ सात कर्मों के इन पदोंके अन्तरकालका निषेश किया है। अब रहा यहाँ इन कमेंका अवस्थितपद सो वह निरन्तर नहीं होता। कभी एक समयके अन्तरसे भी हो जाता है और कभी योगस्थानोंके कमसे जगन्न णिके असंख्यानवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे होता है, इसिंखये इसका जघन्य अन्तर एक समय और लक्ष अन्तर जगश्र णिके असंख्यातवे भागप्रमाण कहा है। आयुक्तमंके अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसके भूजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जैसा प्रकृतिबन्धमें अन्तर कहा है उस प्रकार घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि जब आयुकर्मका बन्ध होता है तभी ये पद होते हैं यहाँ अन्य जितनी असंख्यात और संख्यात संख्यावाळी मार्गणाएँ हैं उनमें उक्त विशेषताओं के साथ अन्तरप्ररूपणा जाननी चाहिये । बादर प्रथिवीकायिक पर्याप्र आदिमें पश्चीन्द्रय तिर्यक्क अपर्याप्तकोंके समान भक्न बन जानेसे इसकी अन्तरप्रकृपणा उनके समान जाननेकी सचना की है। वैक्रियकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय है और इस्क्रष्ट्र अन्तर बारह मुहते है, इसलिये इसमें सात कर्मों के भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर बारह महर्त कहा है। इसी प्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्तरकाल अन्य सब मार्गणाओंमें जानना चाहिये।

इस प्रकार अन्तरकाळ समाप्त हुआ।

मानानुगम

१४२. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश। ओघसे आठों कर्मों के भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्ययदेके बन्धक जीवांका कीन-सा भाव है ? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

मा॰ प्रती असंखेजरासीणं। बादरपुद॰ इति पाठः। २. ता॰प्रती एवं अंतरं समत्तं इति पाठः। मास्ति, आ०प्रती एवं अंतरं गेदब्वं इति पाठः।

अपाबहुआणुगमो

१४२, अप्पाबहुगं दुवि॰—जोघे॰ आदे॰। ओघे॰ सत्तर्णं क॰ सब्बत्धोवा अवत्त । अविहि॰ अणंतगु॰। अप्प॰ असं॰गु॰। श्वजः विसे॰। एवं कायजोगि-ओराजि॰-कोमक॰ मोह॰ अवक्सु ॰-मवसि॰-आहारग ति। एदेसि आउ॰ सब्बत्धोवा अविहि॰। अवत्त॰ असं॰गु॰। अप्प॰ अर्सं॰गु॰। श्वजः विसे॰।

१४४. णिरएसु सत्तर्णं क० सन्वत्योवा अविद्वि० । अप्य० असं०गु० । भुज० विसे० । आउ० ओवं । एवं सन्विणित्य-सन्वितिक्स्व०-सन्वअपज्ञ०-देवा याव 'सहस्सार ति एइंदि०-विगर्लिदि०-पंचका०-ओरालि०मि०-वेउन्वि०-इत्यि०-पुरिस०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-विगंग०-संज्ञादासंबद०-असंबद०-[पंचले०-अन्मवसि०-] वेदग^द०-सासण०-सम्मामि०-मिन्छा०-असण्णि ति ।

१४५. मणुसेसु सत्तर्णाकः सन्वत्योः अवत्तः । अवहिः असं०गु०^३ । अप्पः असं०गुः । भ्रुजः विसेः । आउः ओषं । एवं पंचिः नतसः २-पंचमणः पंचविः ।

अल्पबहुत्वानुगम

१४३. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे सात कर्मों के अबक्त व्य-पदके बन्यफ जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवध्यितपदके बन्यक जीव अन्तन्तुगृणे हैं। इनसे अक्षरतपदके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्यक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार काययोगी, ओदारिककाययोगी, मोहनीयकर्मकी अपेक्षा छोभक्षायवाले, अच्छुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवांमं जानता चाहिए। इनमें अयुक्तमें अवध्यितपदके बन्यक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इनसे अल्पतपदके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इनसे भुज-गारपदके बन्यक जीव विशेष अधिक हैं।

१४४. नारिकयों में सात कमों के अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अलगतरपदके बन्धक जीव विदेश अधिक हैं। आयुक्सका मङ्ग लोक समान हैं। इसी प्रकार पद वार्रकों, सब तर्वक्र सब अपवाँम, सामान्य देव, सहसार करनवक देव, एकेट्रिय, बिक्केट्रिय, पाँच स्वावस्थिक, वीदारिक मान्य देव, सहसार करनवक देव, एकेट्रिय, बिक्केट्रिय, पाँच स्वावस्थाक, वीदारिक मिश्रकाययोगी, वीक्रियककाययोगी, ओवंदी, पुरुषदेदी, न्युंसक देदी, कोघादि चार कथायवाले, मस्यकानी, अतुकाती, विश्वक्रकायोगी, संयतासंयत, असंयत, पाँच केद्रयावाले, असन्य, वेदक-सम्यन्दि, सामादनसम्यन्दि, सम्यन्दि, साम्यान्तिये।

(४५. मतुष्योंमं साव कर्मोंके अवष्ठव्यपदके वन्यक जीव सबसे स्तोक हैं। इतसे अव-स्थितपदके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इतसे अस्पतपदके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इतसे अुवागरपदके बन्यक जीव विशेष अधिक हैं। अगुक्तमंत्र। मङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार पश्चिन्दियहिक, उत्तरिक्ष, पाँची मनोयोगी, पाँची वचनयोगी, आमितिवोधिकश्चाली, अस

१. आ०मती व्यवज्ञ सम्बदेश बाव इति पाटः । २. ता०मती व्यसंज्ञः [खद्दग०] वेदग० बा० प्रती व्यसंज्युः वेदग० इति पाटः । ३. ता०मती सम्बत्यो० [व्यवज्ञ] अवद्वि० असं०यु०, ब्रा०मती सम्बत्यो० अवद्वि०, अवज्ञ० असं० गु० इति पाटः ।

आप्तिषि-सुद-ओधिणा०-चक्खु०-ओधिदं०-[तुक्क०-]सम्मा०-[खद्दग०] उनसम०-सण्णि चि । एवं मणुसपज्रच-मणुसिणीसु । णवरि संखेजं कादच्वं । एवं सच्वदेवाणं संखेजरासीणं । अवगद० सच्वत्यो० अवच० । अवडि० संखे०गु० । अप्प० संखे०गु० । अज० विसे० । एवं सुदुमसं० । अवच० णस्यि । एवं याव अणाहारग चि षोदच्वं ।

एवं श्वजगारवंधो समत्तो पदणिक्खेवे समुक्तित्तणा

१४६. एनो पद्गिक्स्वेन चित्रत्य इमाणि तिष्णि अणियोगहाराणि—सद्विक्षणा सामिचं अप्पानहुगे चि । सद्विक्त्वणा दुवि०-जा उ० । उ० प० । दुवि०-जोपे० प्रजादे० । ओपे० अङ्गणं क० अत्थि उक्कस्सिया बङ्गी उक्कस्सिया हाणी उक्कस्सय-मबद्वाणं । एवं याव अणाहारम चि णेद्वं । णवरि वेउ०मि०-अहारमि०-कम्मइ०-अणाहारम चि अत्य उ० वडी ।

१४७. जह० पगर्द। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० अहण्णं रू० अस्थि जह० बङ्की० जह० हाणी जह० अबहाणं। एवं याव अणाहारग चि णेदव्वं। णवरि वेउव्वि०मि०-आहारमि०-कम्मह०-अणाहारग० अस्यि जह० वही।

ज्ञानी, अवधिक्षानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, ह्युक्ळहेरयाबाळे, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपहासस्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार मनुख्यपर्योप्त और मनुख्यनियोंमें जानना चाहिए। इसनी विशेषता है कि यहाँ संख्यात करना चाहिए। इसी प्रकार होये स्वयं के स्वयं करना चाहिए। इसी प्रकार होये सब देव और संस्थात राशियोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें अवक्कयपदके क्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदके क्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इनसे अस्थातपदके क्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इनसे अस्थातपदके क्यक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सुद्धानाप्तपदके क्यक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सुद्धानाप्तपदके क्यक जीव विशेषता है कि इनमें अवक्कयपद नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार भुजगारबन्ध समाप्त हुआ। पद्निक्षेष सम्रत्कीर्तना

१४६. आगे पदिनक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पवहुत्व। समुत्कीर्तना हो प्रकारकी है—जधन्य और उन्क्रष्ट। उन्क्रष्टका प्रकरण है। निर्देश हो प्रकारका है—अध और आदेश। ओधसे आठां कर्मीको उन्क्रष्ट दृद्धि, उन्क्रष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी बिशेषता है कि वैकियिकमिमकवाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोमें उन्क्रष्ट कृदि है।

१४०. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश हो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैकियिकसिमकाययोगी, आहारकसिक-काययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवांमें जघन्य वृद्धि है।

इस प्रकार समुस्कीर्वना समाप्त हुई।

आश्यती समुद्धितवा दुवि० ओवे० इति पाठः। २. ता०प्रती भ्राहारमि० [कम्मह०]
 भ्राहारग ति, आश्मती भ्राहारमि० कम्मह० भ्राहारग ति इति पाठः।

१४८. सामित्राणुगमेण दुवि०—ज० उ० । उ० पग० । दुवि०—जोघे० आदे० । जोघे० छि० क०] उक्षस्सिया बड्डी कस्स ? यो सत्तविषवंषगो तप्पाओग्गजहण्णादो जोगदाणादो उक्सस्सयं जोगहाणं गदो [छिव्वध-] बंघगो जादो तस्स उक्क० बड्डी । उक्क० हाणो कस्स ' ? यो छिव्वध-बंघगो उक्षस्तजोगी मदो देवो जादो तदो तप्पाओग्ग-जहण्णए जोगहाणे पिंददो तस्स उ० हाणी । उक्क० अवहाणं कस्स ? यो छिव्वध-बंघ० उक्क० जोगी पिंदमम्मो तप्पाओग्ग-खहण्णए जोगहाणे पिंददो तदो सत्तविषवंधगो जादो तस्स उ० अवहाणं । उक्कस्तगादो जोगहाणे पिंद्रमम्मो यम्हि तप्पाओग्ग-जहण्णए जोगहाणे विदेदो तदो जोगहाणं बोवयरं । तप्पाओम्ग-जहण्णगादो जोग्हाणादो उक्कस्सयं जोगहाणं गच्छित् तं जोगहाणं असं०गु० । एद्मुकस्सयं मवहाण-साध्वणपदं ।

१४९. मोह० उक्क० वट्टी कस्स ? यो अद्विषयंध्यो तप्पाओगाजहण्णातादो जोगहाणादो उकस्सयं जोगहाणं गदो तदो सत्तविधयंध्यो जादो तस्स उक्क० वट्टी। उक्क० हाणी कस्स ? यो सत्तविधयंध्यो उक्करसजोगी मदो सुदुमणिगोदजीव-अपजनएसुँ उववण्णो तप्पाओग्याजहण्णए पदिदो तस्स उ० हाणी। उक्क० अवदाणं

१४८. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—जधन्य और उक्कष्ट । उक्कष्टका प्रकरण है ।
तिर्देश दो प्रकारका है—आप और आदेश । ओपसे छः कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी चीन
है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्य करनेवाजा जो जीव न तरायोग्य जपन्य योगस्थानसे उक्कष्ट
योगस्थानकी प्राप्त होकर छ प्रकारके कर्मोंका बन्यक हुआ है वह उक्कष्ट वृद्धिका स्वामी है ।
उक्कष्ट हानि का स्वामी कीन है ? जो छह प्रकारके कर्मोंका बन्य करनेवाजा उक्कष्ट योगस्थाज
जीव मरकर देव हुआ। अनत्तर तक्षायोग्य जपन्य योगस्थानमें गिरा वह उक्कष्ट होनिका
स्वामी है । उक्कष्ट अवस्थानका स्वामी कीन है ? जो छह प्रकारके कर्मोंका बन्य करतेवाजा
उक्कष्ट योगसे युक्त जीव प्रतिभन्त होकर तक्षायोग्य जपन्य योगस्थानमें गिरा। अनत्वर सात
प्रकारके कर्मोंका बन्य करने लगा वह उक्कष्ट अवस्थानका स्वामी है । उक्कुष्ट योगस्थानसे
प्रतिभन्त होकर जिस तात्रायोग्य जपन्य योगस्थानमें गिरा। उससे वह योगस्थान स्तीकतर है ।
तस्यायोग्य जपन्य योगस्थानसे उक्कष्ट योगस्थानको जाता है वह योगस्थान अर्सस्थानका सावणक सावणक सावणक उक्ष्य योगस्थानको जाता है वह योगस्थान अर्सस्थानका सावणक सावणक सावणक हो ।

१४९. मोहनीयकी उरकृष्ट वृद्धिका स्वामो कीन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्रायोग्य जपन्य योगस्थानसे उरकृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने उपा वह उरकृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उरकृष्ट हानिका स्वामी कीन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाडा उरकृष्ट योगसे युक्त जीव सरकर सम्सम्पतियोग अपचीप्त जीवोंमें उरस्प होकर तक्ष्रायोग्य जवन्य योगस्थानमें गिरा वह उरकृष्ट हानिका स्वामी है। उरकृष्ट अवस्थानका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोका बन्ध करता हुआ जो उरकृष्ट योगस्थानमें

कस्स ? जो सत्तविधर्षधमो उक्तस्सजोगी पहिमम्मो तप्पाओग्गजहण्णए जोगङ्गाचे पदिदो अष्ट्रविधर्षधमो जादो तस्स उक्त० अवद्गाणं ।

१५०. आउ० उक्क० वड्डी कस्स ? यो अड्डविषर्यधगो तप्पा०जहण्यादो जोगद्वाणादो उक्कस्सजोगद्वाणं गदो तस्स उ० वड्डी । उ० हाणी कस्स ? जो उक्क०-जोगी पडिभग्गो तप्पा०जहण्यए जोगद्वाणे पदिदो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उ० अवदाणं । एवं ओधर्मगो कायजोगि-लोमक०-अण्यस्यु०-मवसि०-आहारग ति ।

१५१. णिरएसु सत्तर्णं क० उ० वहीं कस्स १ यो अद्विविधंधगो तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगद्वाणादो उ० जोगद्वाणं गदो तदो सत्तविधंधगो जादो तस्स
उक० वही । उ० हाणी कस्स १ यो सत्तविधंधगो उक्क०जोगी पढिमग्गो
तप्पाओग्गावहण्ण जोगद्वाणे पदिदे अद्विविधंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी । तस्सैव
से काले उक्क० अवहाणं । आउ० ओपं। एवं सव्वणिरय-सव्वदेव-वेउन्विक-आहार०विभंग०-पितार०-संजदासंज०-सम्मामि०।

१५२. तिरिक्खेसु सत्तर्ण्णं उ० वड्डी कस्स १ यो अड्डविधवंषयो तप्पा०जड०-जोगहाणादो उ० जोगहाणं गदो तदो सत्तविधवंषयो जादो तस्स उ० बड्डी । उ०

बाळा जीव प्रतिभग्न होकर तथा तत्प्रायोग्य जयन्य योगस्थानमें गिरकर भाठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला हो गया वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

१५०. आयुकर्मकी उत्कृष्ट मृद्धिका स्वामी कीन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्यायोग्य जयन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट मृद्धिक का स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है ? जो उत्कृष्ट योगबाला जीव प्रतिभन्न होकर तथायोग्य जयन्य योगस्थानमें गिरा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके अनन्तर सम्वयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इस प्रकार ओषके समान काययोगी, लोमकवायो, अवस्थुवर्शनी, मन्य और आहारक जीवोंसें जानना चाहिए।

१५१. नारिकयों में सात कर्मोंकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कीन है १ आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला जो जीव तत्रायांम्य जयन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करने लगा वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है १ जो सात प्रकार के कर्मोंका वन्य करता हुआ उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिमन्न होकर क्रायोग्य जयन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। अधुकर्मका भङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब देव, वैक्रियककाययोगी, आधुरककाययोगी, व्याद्यक्रमें का स्वामी क्रियक्रकायोगी, परिहारविद्युद्धसंयत, संयतासंयत और सन्यग्निथ्यादृष्ट जीवोंमें जानना चाहिए।

१५२. तिर्यक्कोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्थायोग्य जपन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने छगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी

१. ता॰प्रती भाउ॰ वड्डी॰ इति पाठः ।

हाणी कस्स १ यो सत्तविषयंघगो उकस्सजोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपअत्तवस्सु उववण्णो तस्स उक् हाणी। उक्क० अबहाणं कस्स १ यो सत्तविषयंघगो उकस्सजोगी पित्रभगो तप्पाजोग्गजहण्णए जोगहाणे पिददो तदो अहविषयंघगो जादो तस्स उक्क० अबहाणं। [आउ० ओघं]। एवं तिरिक्खोघं णश्चंस०-कोघादि०३-मदि०-सुद०-असंज ०-तिण्णिले०-अञ्मव०-मिच्छा०-असण्णि ति। पंचिदि०तिरि०३ सत्त्रणं क० बिह्न-अबहाणं तिरिक्खोघं। हाणी कस्स १ यो अष्ण० सत्तविषयंघगोगो

अपाबहुगं

१५२.....संभवेण' जोरा०मि० सत्तर्णं क० जोघं। णवरि असंखेआ गुणहाणी उबरि असंखेआगुणवड्डी असंखेआगु०। आउ० ओघं। अवगद० सत्त्रणां क० सन्वत्यो० अविडि०। अवत्त० संखेआगु०। असंखेआभागवड्डि-हाणी दो वि त० संखेआगु०। संखेआभागवड्डि-हाणी दो वि तु० संखेआगु०। संखेआगुणवड्डि-हाणी दो वि त० संखेआगु०। असंखेआगुणहाणी संखेआगु०। असंखेआगुणवड्डी विसेसा०। एवं एदेण बीजेण

अल्पबहुत्व

१ १२ सम्ब होनेसे जोदारिकिमिश्रकाययोगियों सात कर्मोंका भंग ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिके उपर व्यसंख्यातगुणहि असंख्यातगुणि है। बाणुकर्मका मङ्ग ओपके समान है। अवगतपेदी जीवों सात कर्मोंके अवस्थित पदवाले जीव सख्यातगुण हैं। इतसे असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहिंद और असंख्यातमागृहिंद और संख्यातगुणे हैं। इतसे संख्यातमागृहिंद और संख्यातगुणे हैं। इतसे संख्यातमागृहिंद और संख्यातगुणहिंद और संख्यातगुणहिंद जीर संख्यातगुणहिंद अंदि संख्यातगुणहिंद जीर संख्यातगुणहिंद असंख्यातगुणहिंद के संख्यातगुणहिंद जीर संख्यातगुणहिंद जीर संख्यातगुणहिंद जीर संख्यातगुणहिंद जीर विशेष

ता॰प्रती -वंधगो [क्षत्र ताब्पन्नमेकं विनष्टम्] संमवेण, आ॰ प्रती वंधगो ः संमवेण इति पाठः ।

याव अणाहारग त्ति णेद्व्यं । एवं अष्याबहुगं समत्तं । एवं वड्डिवंघो समत्तो

अज्झवसाणसमुदाहारो पमाणाणगमो

१५४. अज्ज्ञवसाणसञ्चराहारे चि तत्य इमाणि दुवे अणियोगहाराणि-पमाध्याष्ट्रगमो अप्पावहुने चि । पमाणाणुगमेण णाणावरणीयस्स असंखेआणि पदेसवंघहाणाणि
जोगहाणेहिंतो संखेआदिमागुचराणि । अहृविषयंघनेण ताव सव्वाणि जोगहाणाणि
लद्धाणि । तदो सच्चिषयंघगस्स उक्तस्सगादो अहृविषयंघगस्स उक्तस्सगं सुद्धं । सुद्धसेसं यावदियो भागो अविहिनो जोगहाणं तदो सच्चिषयंघगेण विसेसो लद्धो । एवं
सच्चिषयंघगस्स ङिव्ययंघगेण उविषदा । एदेण कारणेण णाणावरणीयस्स असंखेआणि पदेसवंघहणाणि जोगहाणेहिंतो संखेआमागुचराणि । एवं सच्चणं कम्माणं ।

एवं पमाणाणुगमे ति समत्तं।

अपाबहुआणुगमो

१५५. अप्पाबहुर्गं०-सव्वत्थो० णाणावरणीयस्स जोगद्वाणाणि। पदेसबंघद्वाणाणि विसेसाधियाणि । एवं सत्तर्णां कम्माणं । आउगस्स जोगद्वाणाणि पदेसबंघद्वाणाणि सरिसाणि । एदेण कारणेण आउगस्स अप्पाबहुगं णत्थि ।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

अधिक हैं। इसप्रकार इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक अल्पबहुत्व छे जाना चाहिए।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ। अध्यवसानसमुदाहार प्रमाणानगम

१५४. अध्यवसानसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—
प्रमाणानुगम और अस्पबहुत्व । प्रमाणानुगमको अरेक्षा ज्ञानावरणीय कमके असंद्वात परेश्ववस्थ स्थान हैं तो ग्रेगमयानांके संब्धात्व हो ताथिक हैं। आठ प्रकारके कमें के सम्बक्त जीवने सब योगस्थान प्राप्त किये हैं। उससे सात प्रकारके बन्धकके उत्कृष्टसे आठ प्रकारके बन्धकका उत्कृष्ट ग्रुख है। तथा इस ग्रुख से सेष जितना भाग योगस्थानको प्राप्त हुआ है उससे सात प्रकारक कमों के बन्धकने विशेष प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार सात प्रकारके बन्धकका उत्कृष्ट मुख्य स्थान प्रवास का योगस्थान प्रकार का योगस्थान प्रकारको कमों के बन्धकने प्राप्त क्या है। इसी प्रकार सात कमों के असंख्यात प्रदेशकन्य-स्थान हैं जो योगस्थानों से संख्यातय है। इस कारणसे झानवरणीय कमके असंख्यात प्रदेशकन्य-स्थान हैं जो योगस्थानों संख्यातय सेश क्यों के स्थान प्रवास कमी के असंख्यात प्रदेशकन्य-स्थान हैं जो योगस्थानों संख्यातय सेश क्यों के स्थान प्रवास कमी के सिक्यात प्रदेशकन्य-स्थान हैं जो योगस्थानों से संख्यातय सेश क्यान प्रवास कमी के सिक्यात प्रदेशकन्य-स्थान हैं जो योगस्थानों से संख्यातय सेश स्थान हैं जो योगस्थानों से संख्यात सेश स्थान हैं जो योगस्थान स्थान है जो योगस्थान स्थान है जो स्थान स्थान है जो योगस्थान स्थान है जो स्थान स्थान स्थान है जो योगस्थान स्थान है जो स्थान स्थान है जो स्थान स्थान है जो स्थान स्थान है जो स्थान स्थान स्थान स्थान है जो स्थान स्थान स्थान स्थान स्थान है जो स्थान स

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम

१५५. अरुवबहुत्व—झानाबरणीय कर्मके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। इतसे प्रदेशबन्ध-स्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सात कर्मोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। आयुक्तमेके बोग-स्थान और प्रदेशबन्धस्थान समान हैं। इस कारण आयुक्तमें को अपेक्षा अरुवबहुत्व नहीं है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ

१. ता॰मतौ श्रदिक्ति। इति पाठः ।

जीवसमुदाहारो जीवपमाणाणुगमो

१५६. जीवसमुदाहारे नि तत्य इमाणि दुवे अणियोगहाराणि-जीवपमाणाणु-गमो अप्पाबहुगे नि । जीवपमाणाणुगमेण सम्बत्योवा सुहुमस्त अपजनयस्स जहण्णयं बदेसबंबहुणं । बादरस्स अपजनस्स जहण्णयं पदेसबंबहुणं संस्नेअगुणं । एवं यथायोगं सक्षा परोस्तरां फेटलं ।

एवं जीवपमाणाणुगमो समत्तो ।

अपाबहुगाणुगमो

१५७. अप्पाबहुगं तिविधं-बहण्यां उक्कस्सयं बहण्युक्कस्सयं वेदि । उक्कस्सय् पगदं—सम्बत्बोबा उक्कस्सपदेलबंघमा जोवा । अणुक्कस्सपदेलबंघमा जीवा अर्णतगुणा । एवं अर्णतरासीणं सन्वाणं । एवं असंखेक्षरासीणं पि । णवरि असंखेक्षगुणं कादन्वं । एवं संखेक्षरासीणं पि । णवरि संखेक्षगुणं कादन्वं । एवं याव अणाहारग नि णेदन्वं ।

१५८. जह० पगर्द०। अष्टुणं क० सच्वत्योव। जहण्णपदेसवंघगा जीवा। अजहण्णपदे० जीवा असं०गु०। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि संखेजरासीणं संसेजगणं कादव्वं।

जीवसमुदाहार जीवप्रमाणानुगम

(५६. जीवसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो अनुयंगद्वार होते हैं—जीवप्रमाणानु-गम और अरपवृद्धा । जीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा सुरुम अपर्योगकके जयन्य प्रदेशबन्धस्थान सबसे स्त्रोक है। उससे बादर अपर्याप्रकके जयन्य प्रदेशबन्धस्थान संख्यातगुणा है। इस प्रकार थोगके अनुसार प्रदेशाम जानना चाहिए।

इस प्रकार जीवप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम

१५७. अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उस्कृष्ट और जपन्योत्कृष्ट । उस्कृष्टका प्रकरण है । उस्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अनुस्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्य राशियोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंख्यात राशियोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगा करना चाहिए। वा इतने विशेषता है कि असंख्यातगा करना चाहिए। असे प्रकार असंख्यातगा वाहिए। इसने विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए। इसी प्रकार अनाह्य सागणातक जानना चाहिए।

१५८. अधन्यका प्रकरण है। आठ कर्मोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अजधन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात राशियोंमें संख्यातगुणा करना चाहिए।

१५९. जघन्य व्यक्तप्रका प्रकरण है। बाठ कर्मों के प्रदेशों के बन्यक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य प्रदेशों के बन्यक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुस्कृष्ट प्रदेशों के बन्धक तिरिक्खोर्च कायजोगि-ओरालि०-ओरा०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधारि०४-मदि०-सुद्द०-असंज०—अचक्खु ०-तिष्णिले०-मवसि०-अब्मवसि०-मिच्छा०-अस**ण्य-आहार`०-**अणाहारग ति ।

- १६०. णेरहएसु सत्त ष्णं क० सम्बत्यो० जह०पदे० जोवा । उक०पदे० जीवा असं०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । आउ० सम्बत्यो० उक्क०पदे० जीवा । जह०पदे० जीवा असं०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । एवं सम्बन्धियाणं देवाणं याव सहस्सार ति । आणद याव अवराहदा ति तं चेव । णविरि आउ० सम्बत्यो० उक्क०पदे० जीवा । जह०पदे० जीवा संखे०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा संखेअगु० ।
- १६१. मणुसेसु ओषं । णवरि असंखेजगुणं कादच्यं । एवं एइंदि०-विगलिदि०-पंचि०-तस०२-पंचका०-इत्थि-पुरिस०-सण्णि चि । एवं पंचि०तिरि०३ । मणुसपज्राच-मणुसिणीसु सत्तर्ण्णं क० ओषं । णवरि संखेजगुणं कादच्यं । मोहणी० सच्वत्थो० जह०-पदे० जीवा । उक०पदे० जीवा संखे०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा संखे०गु० ।
 - १६२. सञ्बजपजन० तसाणं थावराणं च णिरयमंगो। [सञ्बद्धसिद्धि०]

जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार ओषके श्रनुसार सामान्य विषेक्ष, काययोगी, औदारिक-काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, नपुंतकवेदी, क्रोषादि चार क्षायवाले, सप्यातानी, शुनाक्षानी, असंयत, अच्छुदरांनी, तीन छेरवावाले, भव्य, अभव्य, सिध्यादृष्टि, असंक्षी आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

- १६०. नारिक्योंमें सात कर्मोंके जयन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे चरुष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातागुणे हैं। उनसे अजयन्य अनुक्रष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातागुणे हैं। आयुक्केंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जपन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजयन्य-अनुक्रष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य देव और सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए। आवत कल्पसे क्रेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें वही भक्न है। उनसे जपन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगणे हैं। उनसे अजयन्य अनुरहृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।
- १११. मनुष्योंमें ओषके समान भङ्ग है। इतनी विशयता है कि असंख्यातगुणा करना बाहिए। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रय, प्रक्लेन्द्रयहिक, त्रसिद्धक, पाँच स्थावरकायिक, कोवेदी, पुरुषवेदी और संझी जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार प्रक्लेन्द्रियतिश्रिष्ठीक में जाना बाहिए। मनुष्यपर्यात और मनुष्यिनियोंमें सात कर्मों का मङ्ग ओषके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए। मोहनीय कर्मके जयन्य प्रदेशोंके बन्धक बीच सकसे स्ताक हैं। उनसे अजधन्य क्षत्रकड़ प्रदेशोंके क्षाव्यक्ष क्षत्रकड़ प्रदेशोंक क्षाव्यक्ष क्षत्रकड़ व्यवद्यक्ष क्षत्रकड़ क्षत्रस्था क्षत्रकड़ क्षत्रकड

१६२. त्रस और स्थावर आदि सब अपर्याप्तकोंमें नारिकयोंके समान सङ्ग है।

ता॰प्रती असम्मि चि बाहार इति पाठः ।

सम्बत्यो॰ रे सत्त्रच्यं क० बह०पदे० जीवा । उक०पदे० जीवा संखेअगु० । अजहण्य-मणु०पदे० कीवा संखेआगु० । आउ० आगदभंगो ।

१६३. पंचमणः-पंचवचिः अट्टणां कः सच्यत्योः उक्तरपदेः जीवा । जहरपदेः जीवा असंग्युः । अवस्थामणुः पदेः जीवा असंग्युः । [वेउच्यिः -] वेउच्यिः - विश्विः - विश्वः - विश्वः

१६४. विभंग० अहण्णं क० सच्वत्यो० उक्क०पदे० जीवा । जह०पदे० जीवा असं०गु० । अबहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । आभिण-सुदःश्रीषि० सप्तण्णं क० मणुसीयं । मोह० सच्वत्यो० ज०पदे० जीवा । उक्क०पदे० जीवा असं०गु० । अजहण्ण-मणु०पदे० जीवा असं०गु० । एवं श्रीषिदं० सुक्क०-सम्मा०-खहग०-उवसम० । णविर सर्वार्थाले हो। उत्तसे उत्कृष्ट अदेशांके बन्यक जीव संव्यावागुणे हों। उत्तसे अजयन्य-अजुत्कष्ट प्रदेशांके बन्यक जीव संव्यावागुणे हों। उत्तसे अजयन्य-अजुत्कष्ट प्रदेशांके बन्यक जीव संव्यावागुणे हो।

१६२, पाँचों मनोयोगी और पाँचों बचनयोगी जीबोंमें आठों कमींके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव सवसे सीक हैं। उनसे जयन्य प्रदेशोंके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। उनसे अजजजन अनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। विक्री अजजजन अनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। विक्री का अनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव अस्यान्त मुक्ति के अनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अहार का प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अहार कार्य अनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अहार कार्य अपनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अहार कार्य प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अहार कार्य प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। उनसे अच्य प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। उनसे अच्य प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इसी अच्या अपनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इसी अच्या प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इसी अच्या अपनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। अपनुकुष्ट प्रदेशोंके बन्यक जीव संस्थातगुणे हैं। इसी अच्या अपनुकुष्ट प्रदेशोंके वाला विष्य स्था अपनुकुष्ट प्रदेशोंके वाला विष्य स्था स्था संस्था स्था स्था संस्था स्था स्था संस्था स्था स्था स्था स्था संस्था सं

१६४. विभक्त्वानी जीवोंमें आठों कमों के जरुष्ट प्रदेशोंके वन्यक जीव सबसे स्तोक हैं। उतसे अपन्य प्रदेशोंके वन्यक जीव असंख्यातगुणे हैं। उतसे अवधन्य-अनुतक्रष्ट प्रदेशोंके वन्यक जीव असंख्यातगुणे हैं। आभिनंवोधिकार्यात्रा, कृतवानी और अविश्वानी जीवोंमें सात कर्मोंका भक्त सामान्य मनुष्योंके समान है। मोहनीयके जपन्य प्रदेशोंके वन्यक जीव सबसे स्तोक हैं। उतसे अवधन्य अनुतक्र प्रदेशोंके वन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। उतसे अवधन्य अनुतक्र प्रदेशोंके वन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। उतसे अवधन्य अनुतक्र प्रदेशोंके वन्यक जीव असंस्थातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधिक्र स्थापिकार्यात्राह्म अधिकार स्थापिकार्यात्राह्म अधिकार स्थापिकार्यात्राह्म स्थापिकार स

ता॰प्रतौ तताणं च णिरवभंगो सम्बत्यो॰ इति पाठः। २. ता॰प्रतौ जी॰ ज॰ असंगु॰ इति
पाठः। ३. ता॰प्रतौ आहार॰ ছাত্ত॰ ছাত্তण (?) सम्बत्यो॰ इति पाठः।

सुक्क-खद्दगः जाउ० जाणदर्मगो । छण्णं क० सम्बत्यो० उक्क०पदे० जीवा । जह०-पदे० जीवा संखे०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । संजदासंजदा देवमंगो । चक्खु० तसपञ्जच मंगो । सम्मामि० मणजोगिमंगो । एवं अप्पाबहुगं समर्च ।

एवं मृलपगदिपदेसवंधो समत्तो ।

२ उत्तरपगदिपदेसबंधो

१६५. एको उत्तरपादिपदेसकं पुट्यं गमणीयं भागाभागससुदाहारो । अहिषक् वंघगस्स यो णाणावरणीयस्स एको मायो आगदो चहुषा विरिको । आभिणिकोषिय-णाणावरणीयस्स एको भागो । एवं सुद०-ओधिणा०-मणपञ्ज० । तत्य यं तं पदेसग्यं सञ्ज्ञघादिएनं तदो एक्केक्स्स गाणावरणीयस्स सन्वचादीणं पदेसग्गस्स चहुमागो वि णादञ्जो । यो दंखणावरणीयस्स भागो आगदो सो तिथा विरिक्त । वक्सु-दंसणावरणीयस्स एको भागो । एवं अचक्सुदं०-ओषिदं० । तत्य यं तं पदेसग्यं सन्वचादिएनं तदो एक्केक्स्स दंसणावरणीयस्स सन्वचादिपदेसग्गस्स निमानो वि णादञ्जो । यदि णाम एदाओ चेव तिण्णि पगदीओ भवेजस्य सेसाओ छन्पगदीओ ण भवेजस्य तदो चक्सु०-अचक्सु०-ओषिदं० सन्वधादिपदेसग्गस्स तिभागमेचो भवे । तथा विषिणा

सम्यग्द्रष्टि जीवोंमें आयुक्तमेका मङ्ग आनतकलपके समान है। तथा छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक है। उनसे जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव संस्थातगुणे हैं। दनसे अज्ञप्य अनुतकृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंस्थातगुणे हैं। संयवासंयव जीवोंमें स्वांक समान भङ्ग है। स्वांवासंय जीवोंमें स्वांक समान भङ्ग है। सम्बानम्बाद्धि जीवोंमें मनोजेगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अल्पबहत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार मुलप्रकृतिप्रदेशबन्ध समाप्त हुआ।

२ उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध

१६५. आगे उत्तरमकृतिप्रदेशवन्यमं सर्वप्रयम भागाभागसमुदाहार जानने योग्य है—
आठ प्रकारके कर्मों का बन्य करतेवाले जीवको जो ह्वानावरणीय कर्मका एक भाग प्राप्त होकर
वार भागोंमें विभक्त हुआ है जनमें से आभिनिवोधिक ह्वानावरणीय कर्मका एक भाग है।
इसी प्रकार प्रतक्षानावरणीय, अविध्वानावरणीय और मनःपर्यवहानावरणीय कर्मों के विषयमें
जानना चाहिए। वहाँ पर जो प्रदेशाम सर्वपातिपनेको प्राप्त है उसमेंसे इन चारमेंसे एक एक
ह्वानावरणीयके छित्रे सर्वपातियों के प्रदेशामका शीधा भाग जानना चाहिए। जो दर्शनावरणीयको
भाग आया है वह तीन भागोंमें विभक्त हुआ है। उनमेंसे चक्रुवर्शनावरणीय कर्मको एक भाग
आशा है। इसी प्रकार अच्छुदर्शनावरणीय और अविध्वर्शनावरणीयके छित्र परक्ष्यक मात्र जानना
चाहिए। वहाँ जो प्रदेशाम सर्वपातिपनेको प्राप्त है उसमेंसे इन तीनमें एक-एक स्वाप्त जानना
चाहिए। वहाँ जो प्रदेशाम सर्वपातिपनेको प्राप्त है उसमेंसे इन तीनमें एक-एक एक्तावरणीयके
वित्रे सर्वपाति प्रदेशामका तीसरा भाग जानना चाहिय। यदि ये तीन प्रकृतियाँ ही हाँ, श्रेष
छह प्रकृतियाँ न हाँ तो चल्लुदर्शनावरण, अचल्लुदर्शनावरण और अवधिव्हानावरणके छित्र सर्ववाति प्रदेशामक तीसरा भाग होने किन्तु यथाविधि अवस्य छह प्रकृतियाँ में हैं। चल्लुदर्शनावरण, अचल्लुदर्शनावरण करिय प्रविद्वासायक तीसरा
वाति प्रदेशामक तीसरा भाग होने किन्तु यथाविधि अवस्य छह प्रकृतियाँ में हैं। चल्लुदर्शनावरणके तिसर्य

ळप्पमदीयो च अत्वि । चक्कु ०-अचक्कु -अधिदं० सन्वचादिपदेसग्गस्स तिभागो । एदं सच्चाहि छहि पगदीहि तार्सि च तिष्णं पगदीणं इतरार्सि छण्णं पगदीणं यं पदेसग्गं तं पदे-सग्गं तदेहो चेव मागो वादव्वो । यदेहो विणा वि छहि पगदीहि व हु ववभागो चि वादव्यो ।

१६६. जण्णदरवेदणीए एगो भागो जागदो सो समयपबद्धस अद्दमभागो चि णादच्चो । यो मोहणीयस्स भागो जागदो सो दुषा विरिक्षो-कसायवेदणीए एक्को भागो । यो कसायवेदणीए भागो जागदो सो चढुषा विरिक्षो-कोध-संजरुणाए एक्को भागो । यो कसायवेदणीए भागो जागदो सो चढुषा विरिक्षो-कोध-संजरुणाए एक्को भागो । एवं माणसंज - मायसंज - लोभसंज - । तत्थ यं तं पदेसमं संजरुणाए एक्को प्राप्त एक्को प्राप्त संजरुणाए कसायवेदणीयस्स सञ्चादिपदेसमास्स चढुमागो चि णादच्चो । यह हो एकिस्से संजरुणाए कसायवेदणीयस्स सञ्चादि-पदेसमास्स मागो तदेहो इतरासि वारसच्चं कसायाण मिच्छचस्स अद्वमाग-दुमाग-पंचमागो जायदेगो । यदच्चो । अण्णदरजाउने यो मागो जागदो, सो समयपबद्धस्स अद्वमाग-दुमाग-पंचमागो चि णादच्चो । अण्णदरजाउने यो मागो जागदो, सो समयपबद्धस्स अद्वमाग-दुमागो चि णादच्चो । अण्णदरजाउने यो मागो जागदो, सो समयपबद्धस्स अद्वममागो चि णादच्चो । चटुण्णं पि पगदीणं एक्को चेव मागो ।

१६७. चटुष्णं गदीणं एको चेव भागो। पंचर्णं जादीणं एको चेव भागो। पंचर्णं सरीराणं एको चेव भागो। एवं छस्संटाणाणं तिष्णिजंगोवंगाणं छस्संघडणाणं एको चेव भागो। वण्ण-रस-गंघ-पस्स-अगु०-उप०-पर-उस्सा०-आदाउओ०-णिमि०-

भाग मिलता है। यह सब छह प्रकृतियों के साथ उन तीन प्रकृतियों का तथा इतर छह प्रकृ-तियों का जो प्रदेशाम है उस प्रदेशामका उन प्रकृतियों के अनुसार ही भाग जानना चाहिये। छह प्रकृतियों के बिना जो भाग तीन प्रकृतियों को मिछता है वह नौ भाग नहीं है ऐसा यहाँ जानना चाहिये।

१६६. अन्यतर वेदनीयके िक्ये जो एक भाग आया है वह समयप्रवद्धका आठवाँ भाग है ऐसा जानता चाहिय । जो मोहनीयका भाग आया है वह दो मागोंमें विभक्त है— कपायवेदनीयके किये एक भाग और नोकपायवेदनीयके किये एक भाग और नोकपायवेदनीयके किये एक भाग आ के कपायवेदनीयके किये एक भाग । जो कपायवेदनीयके किये भाग आया है वह वार मागोंमें विभक्त होता है। कोप्संज्वकनके किए एक भाग । इसी प्रकार मानसंज्वलन, मायासंज्वकन और कोमसंज्वकनके लिये एक एक भाग । वहीं जो प्रदेशास सर्वपाविपनेको प्राप्त हुआ है कसमेंसे एक संज्वलन कपायके लिये प्राप्त हुए सर्वेचाविप प्रवेश कार माय होते हैं ऐसा वहाँ जानना चाहिये। एक संज्वकन कपायके किये सर्वपाविपनिक कार माय होते हैं ऐसा वहाँ जानना चाहिये। एक संज्वकन कपायके किये सर्वपाविपनिक माग जानना चाहिये। एक संज्वकन कपायके किये सर्वपाविपनिक माग जानना चाहिये। एक संज्वकन कपायके किये सर्वपाविपनिक माग जानना चाहिये। वारों हो आयुआंके किये एक ही भाग भागके आवेसेसे पाँचवाँ माग आनना चाहिये। चारों हो आयुआंके किये एक ही भाग मिक्ता है।

१६७. चारों गतियोंके क्रिये एक ही माग मिलता है। याँच जातियोंके क्रिये एक ही माग मिलता है। वाँच प्ररोरोंके क्रिये एक ही माग मिलता है। हमी प्रकार छह संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग और छह संस्थानके जिये एक एक भाग ही मिलता है। वर्ण, रस्थ, गत्थ, स्था, अगुरुक्यु, उपपात, परपात, उच्छान, आवर, ज्योत, निर्माण, तीम्बेंट्र और स्था साम

^{1.} आव्यती अद्वमाय पंचमारी कि पाटः।

तित्थयरणामा एवं पत्तेयं पत्तेयभागो । खुब्धं आणुपुव्वियाणं दोण्णं विदायगदीणं तसादितसयुगलाणं एकेको चेव भागो । यो अण्यदरगोदे भागो आगदो सो समय-पबद्धस्स अद्दमभागो ति णादव्वो । यो अण्यदरे अंतराह्रगे भागो आगदो सो समय-पबद्धस्स अद्दमभागे पंचमभागो ति णादव्वो ।

एवं मागाभागं समर्च

चदुवीसअणिओगहाराणि

यं सन्वघादिपर्च सगकम्मपदेसाणंतिमो भागो। आवरणाणं चदुघा तिघा च तत्थ पंचघा विग्ये। मोहे दुघा चदुदा पंचघा वा पि बज्जमाणीणं। वेदणीयाउगगोदे य बज्जमाणीणं भागो से।

१६८. एदेण अडपदेण तत्थ इमाणि चढुवीसमणियोगदाराणि—हुाणपरूवणा सन्त्रवंघो णोसन्त्रवंघो एवं मूलपगदीए तथा णेदच्चं ।

कमें इनमेंसे भरवेकके लिये इसी प्रकार एक एक भाग मिलता है। चार आतुपूर्वी, दो विद्यायो-गति और त्रसादि दस युगलेंके लिये एक एक ही भाग मिलता है। अन्यवर गोत्रकमेंके लिये जो भाग आया है वह समयप्रवद्धका आठवाँ भाग जानना चाहिये। जो अन्यवर अन्तरायके लिये भाग आया है वह समयप्रवद्धके आठवें भागका पौचवां भाग जानना चाहिये।

विशेषार्थ —यहां भाठों कर्मोको उत्तर प्रकृतिवों में प्रदेशवन्यके भागाभागका विचार किया गया है। गोम्मटसार कर्मकाण्डके प्रदेशवन्य प्रकरणमें इस भागाभागका विशेष विचार किया है, इसक्रिये इसे वहाँसे जान लेना चाहिये। यहाँ उसका बोजरूपसे विचार किया है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

चौबीस अनुयोगद्वार

जो अपने कमैग्रदेशांका अनन्तवाँ भाग सर्वचातिपनेको ग्राप्त है उत्तसे अतिरिक्त होष द्रव्य आवरण कर्मोमें चार और तीन प्रकारका है। अन्तरायकर्ममें पाँच प्रकारका है। मोहनीय कर्ममें बंधनेवाडी प्रकृतियांका दो प्रकारका, वार प्रकारका और पाँच अकारका है। जो वेदनीय, आयु और गांत्र कर्ममें भाग है वह बंधनेवाडी प्रकृतियांका है।

१६८. इस अर्थपदके अनुसार वहाँ ये चौबोस अनुयोगद्वार होते हैं—स्थानग्ररूपणा, सर्व-बन्ध और नोसर्ववन्य इत्यादि मृद्धप्रकृतिवन्धमें जिस्न प्रकार कहे हैं उस प्रकार जानने खाहिये—

विश्लेषार्थ — यहाँ किस कर्मको किस प्रकार से विभाग होकर हुन्य सिळता है इसहैबोज-पदका हो गायाओं हारा निर्देश किया है। ये तो गायार्थ उने क्लमंग्रकृतियों भी उचळका होती हैं। कन्का आश्य यह है कि प्रदेशक्यके हाने पर जो उन्य सिळता है उसका अनत्वस्तां भाग सर्वधाति हुन्य है और शेष चहुआग हेसपाति इन्य है। यहाँ देशपाति इन्य विश्वात्त हुन्य विश्वात्त हुन्य सिळाता है। सुख्यरूपस्पसे विचार किया है। तास्पर्य यह है कि ज्ञानावरणको जो देशचाति इन्य सिळता है वह चार भागोंमें विभक्त हो जाता है। जो क्रमसे आश्चित्वश्रोणावरण, जुरुबातावरण, अवधिज्ञानावरण, और मनःपर्यव्यक्षातावरणमें विभक्त हो जाता है। दर्शनावरणको जो इस्व मिलता है वह चक्षुर्शनावरण, अच्छा दर्शनावरण, और अवधिवृद्धनीवरण कर हो को तात

डाणपरूवणा

१६९. द्वाणपह्रवणा दुविधा—योगद्वाणपह्रवणा चेव पदेसवंधपह्रवणा चेव । एदाओ दो पह्रवणाओ मुलपगदिभंगो कादन्वो ।

सव्व-णोसव्वपदेसबंधआदिपरूवणा

१७०. यो सो सन्ववंघो णोसन्ववंघो उक्कः अणुकः जहः अजहः णाम एदे यथा मूलपगिदपदेसमंघो तथा कादन्यं। णविर एदेसि छण्णं पि गंघगाणं णिरएस् यो सो सन्ववंघो णोसन्ववंघो णाम तस्स इमो णिह सो-पंचणाः चतुदंसणाः सादावे ०-अट्टकः पुरिसः ०-दोगिद-पंचिं ०-तिष्णिसरीर-ष्टुंहसं०-ओरा अंगो ०-अप्यायस्थः ४-दोआणु ०-अजाः विद्यायस्थः ४-दोआणु ०-अजाः विद्यायस्थः ४-दोआणु ०-अजाः विद्यायस्थः ४-दोआणु ०-अजाः विद्यायस्थः ४-दोशादिकपुषाः एलिमि०-तित्यः ०-उप्यायस्थः १ सन्ववंघो णोसन्ववंघो। स्वाणं कि सन्ववंघो १ शिस्ववंघो णोसन्ववंघो। सन्ववाणि पदेसनेष इष्टाणाणि वंघमाणस्स सन्ववंघो। तृष्णं वंघमाणस्स णोसन्ववंघो। एदाओ चेव पगदीओ कि उक्कः अणु १ १ अणुकः वंघो। सेवाणं कि उक्कः अणु १ [उक्कस्स-

भागोंमें बट जाता है। अन्तराय कर्मका द्रव्य पाँच भागोंमें बँट जाता है। मोहनीयके द्रव्यके सुक्य हो भाग होते हैं —करायवेदनीय और नोक्शयवेदनीय। क्रायवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें और नोक्शयवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें और नोक्शयवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें अभे नोक्शयवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें व्यव्यक अनुसार विभक्त हो जाता है। वेदनीय, आयु और गोत्र इनके उत्तर भेटोंमेंसे एक कालमे एक एक प्रकृतिका ही बन्य होता है, इसिकेंश्वर का कार्यों को स्मात्र वेदन कार्यों को स्मात्र कार्यों के स्मात्र कार्यों के स्मात्र वेदन कार्यों के स्मात्र कार्यों के स्मात्र वेदन कार्यों के स्मात्र कार्यों के स्मात्र वेदन कार्यों कार्

स्थानप्ररूपणा

१६९. स्थानप्ररूपणा दो प्रकार की है—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशक्यस्थानप्ररूपणा । ये दो प्ररूपणाएँ मुलप्रकृतिबन्धके समान करनी चाहिए !

सर्ववन्थ-नोसर्वप्रदेशवन्ध आदि प्ररूपणा

१०० जो सर्ववन्य, नोसर्ववन्य, उत्कृष्टवन्य, अनुत्कृष्टवन्य, जयन्यवन्य और अज-यन्यवन्य है ये जैसे मुळ्अकृतिप्रदेशवन्यमें कहें हैं उत्प्रकार इनका विवेचन करना चाहिए। ह इतनी विशेचता है कि इन छहाँ वन्यकांमेंसे नारिक्योंमें जो सर्ववन्य और नोसर्ववन्य है उत्तका वह निर्देश है—चाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सानावेदनीय, आठ कष्पय, पुरुषवेद, दो गति, पञ्चिन्त्रयज्ञाति, तीन रारीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक्सरीरमाङ्गीपाङ्ग, अप्रसाल वर्णचलुक्क, दो आनुपूर्वी, ख्योत, दो बिहायोगति, त्रसावि चार, स्थिर आदि छह बुगाक, निर्माण, तीसङ्गर, ज्यागेत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका क्या सर्ववन्य है या नोसर्ववन्य है शिराचेवन्य है। श्रेष प्रकृतियांका क्या सर्ववन्य है या नोसर्ववन्य है। सर्ववन्य है और नोसर्ववन्य है। स्व प्रदेशवन्य स्थानोंका बन्य करनेवालेके सर्ववन्य होता है और उससे न्यूनका बन्य करनेवालेके नोसर्ववन्य होता है। इन्ही प्रकृतियांका कथा करकुष्टम्य होता है या अनुतकुष्टवन्य होता है। उत्कृतक्ष्य होता है। वंधी अणुकस्सर्वधी ।] सउकस्सयं पदेसस्य वंधमाणस्स उकस्सवंधी । तद्णं वंधमाणस्स अणुकस्सवंधी । णिरएसु सन्वपगदीणं किं जह० अजह० ? अजहण्णवंधी । णवरि तित्य० ज० अज० । एवं याव अणाहास्य चि धेदन्वं एदाणि अणियोगहाराणि ।

सादि-अणादि-ध्रव-अद्भववंधपरूवणा

१७१. यो सो सादि० अणादि० धुवर्ष०' अद्भुव शाम तस्स दुवि०— ओषे० आदे०। ओषे० पंचणा० छदंस०-बारसक०-मय-दु०-पंचंत० उ० जह० अजह० प०षं० किं सादि०४ १ सादि० अद्भुव०। अणु० किं सादि०४ १ सादि० अणादि० धुव०^द अदुवर्षो वा। सेसाणं पगदीणं उक्क० अणु० जह० अजह० किं सादि०४ १ सादि० अदुव०। एवं अचक्खु०-भवसि०। णवि भवसि० धुव० णरिख। सेसाणं णिरपादि याव अणाहारग नि सव्वपगदीणं सादि० अदुवर्षेषो।

और अनुरुष्ट्रप्रक्रम होता है। अपने उत्कृष्ट प्रदेशामका वन्य करनेबालेके उत्कृष्टबन्ध होता है। उससे न्यूनका बन्ध करनेवालेके अनुरुष्ट्रप्रक्रम होता है। नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका क्या जयन्यवन्ध होता है या अजबन्यवन्ध होता है। अजबन्य बन्ध होता है। इतनी विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका जयन्य बन्ध होता है और अजबन्यवन्ध होता है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणतक ये अनुयोगहार ले जाने चाहिए।

सादि-अनादि-भ्रव-अभ्रवप्रदेशवनधप्ररूपणा

१०१. जो सादिवन्य, अनादिवन्य, अवबन्य और अधुववन्य है उसका निर्देश दो प्रकारका है—भोघ और आदेश । ओपसे लॉज ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कथाय, भय, जुगुरसा और पाँच अनतायका टक्टछ, जयन्य और अजयन्य प्रदेशवन्य क्या सादि, अनादि, धृष या अधुव है ? सादि और अधुव है। अनुरक्षण्ट प्रदेशवन्य क्या सादि, अनादि, धृष या अधुव है ? सादि, अनादि, धृष को अधुव है । होष प्रकृतियोंका उक्छ्य, अनुरक्ष्य, जयन्य और अजन्य प्रदेशवन्य क्या सादि, अनादि, धृष या अधुव है ? सादि और अधुव है । सादि अत्रावि, अनादि, धृष या अधुव है ? सादि और अधुव है । सादि अत्रावि, अनादि, धृष या अधुव है ? सादि और अधुव है । सादि अत्रव अधुव है । सादि अत्रव अनाहारक तक राष सार्गणाओं सम प्रकृतियोंका सादि और अधुववन्य है ।

विशेषार्थ — गृटमें कही गई भुवविष्या पाँच ज्ञानावरण आदि महतियाँका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य होता है। इससे पहले उनका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य होता है। इससे पहले उनका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य होता है। इससिय होता है। इसिय पहले उत्कृष्ट प्रदेशवन्य होता है। इसिय पाँच उत्कृष्ट प्रदेशवन्य साथि है। तवा अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य साथि है। तवा भन्योंकी अपेक्षा वह अभुव है और अभन्यांकी अपेक्षा भृव है। इस प्रकार पाँच शाला-वरणादि महत्त्वांकी अपेक्षा अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य साथि है। कन्तु हमले उत्कृष्ट अपेक्षा अनुस्कृष्ट होती अपेक्षा वह अभुव है अपे अभन्यांकी अपेक्षा भृव होता है। किन्तु हमले उत्कृष्ट अपेक्षा अ

१. ता-मा०प्रत्योः सादि-अणु०-युवबं० इति पाटः । २. ता०प्रतो सादि० ४ अ बुव० इति पाटः ।

सामित्तपरूवणा

१७२. सामित्तं दुविघं-जह० उक० । उक० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओषे० पंचणा०-चढुर्दस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० उकस्सपदेसबंधो कस्स ? अणाद० सहमसंप० उक्सम॰ व खन्मस वा छन्निधबंधगस्स उक्क॰जोगि॰ उ कस्सपदेसवंघे वहु०। श्रीणगिद्धि०-३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-गवुंस०-णीचा० उक्क पदे बंघो कस्स ? अण्य चदगः पंचिं सण्यिः मिच्छाः सब्बाहि पक्तचीडि पञ्जनगदस्स सत्तविध० उक्त०जोगि० उ०पदे० वड०। णिहा-पयला-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-६० उक्क० प०वं कस्स ? अष्ण० चदुगदि० सम्मादि० सन्वाहि पजा० सत्त्विभाग् उक्तः जो० उक्तः पदे० वद्दः । असादाः उ० प०वं० कः १ अण्ण० चढ्ग० सण्णिस्स सम्मा० मिच्छा० सन्त्राहि पञ्ज० सत्त्रविघ० उक्क०जो उक्क०-पदे० नट्ट० । अपच्चक्साणा०४ उ० प०वं० क० १ अण्ण० चृद्ग० असंज० सम्मा० . सञ्जाहि पञ्ज० सत्त विध० उक्त०ज्ञो० उक्त० वद्र० । पच्चक्खाणा०४ उ०प० क० ? है। मात्र भन्यमार्गणामें पाँच ज्ञानावरणादिके अनुस्कृष्टपदका भ्रव भङ्ग नहीं बनता, क्योंकि भव्य होनेसे इनके सब प्रकारका बन्ध अध्रव ही होता है। शेष सब मार्गणाएँ कादाचित्क हैं, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि पद कादाचित्क होनेसे सादि और अध्व कहे हैं।

स्वामित्वप्ररूपणा

१७२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जधन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है---ओघ और भादेश । ओघसे पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उस्कृष्ट योगसे युक्त और उस्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर उपशामक और श्रपक सुक्ष्मसाम्पराधिक संयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। स्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीच-गोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियांसे पर्याप्त, सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्थका स्वामी है। निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, अरति, श्लोक, सय और जुराप्साके उस्क्रप्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशवन्त्रमं अवस्थित अन्यतर चार गतिका सम्यग्रहिष्ट जीव उक्त प्रकृतियोंके लहान्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। असाताबेदनीयके उत्हृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्वाप्तियांसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, उस्कृष्ट योगसे युक्त और क्षकुष्ट प्रदेशवन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका संज्ञी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव अवस्तावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका लामी कीन है ? सब पर्वाप्तियोंसे पर्वाप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, इस्कृष्ट बोगसे युक्त और उस्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्रहीष्ट

आ॰प्रती सुदुमसंप॰ प्रकाद॰ उक्सम॰ इति पाठ:। २. ता॰प्रती असादा॰ उ॰ [जो॰] इति पाठ:।

अण्ण - हुमदि - संबदासंबद - सचिष - उक्क - जो - उक्क - बहु - । कोषसंब - उ - व - कि - श अण्ण - अण्यिष्टि - उत्तरा - स्वस्य - मोहणीयस्य चदुविष - उक्क - जो - । एवं माण - माया - कोम - । णवि मोह - तिविष - दुविष - [एम] वंघगस्य उक्क - जो नि - । एवं पुरिस - । णविर मोह - पंचिवषयंष - उक्क - जो नि - । णिरयाउ - उ - प - वं - क - १ अण्ण - दुगदि - सिण्ण - सिच्छा - सच्वाहि प - उक्क - जो - । तिरिक्खाउ - उ - प - वं - क - १ अण्ण - स्वाहि प - अण्य - स्वाहि प - अण्य - स्वाहि प - अण्य - अष्टि - उक्क - जो नि - । मणुसाउ - उ - प - वं - क - १ अण्य - सम्मादि - सम्मादि

जीव अप्रत्याख्यानावरण चारके उत्रृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, पर ह योगसे यक्त और उत्क्रप्र प्रदेशवन्धमें वर्तमान अन्यतर हो गतिका संग्रतासंग्रत जीव प्रत्याख्यानावरण चारके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। क्रोधसंज्वलनके उत्क्रप्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? मोहतीय कर्मकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाळा और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर अति-वृत्तिकरण उपशामक और क्षपक जीव कोध संस्वलनके स्टब्ह प्रदेशवन्धका स्वामी है. इसी प्रकार मानः माया और लोभसंज्वलनकी अपेक्षा उत्क्रष्ट स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो भोहनीयको तीन प्रकृतियोंका, दो प्रकृतियोंका और एक प्रकृतिका बन्ध करता है और उत्कृष्ट योगसे युक्त है वह कमसे इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा उरकृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो मोहनीय कर्मकी पॉच प्रकृतियोका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगसे युक्त है बहु पुरुष-वेदके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। नरकायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्रियोसे पर्याप्र हुआ, आठ प्रकारके कर्मा का बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञो मिध्यादृष्टि जीव नरकायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्येख्वायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिध्यादृष्टि जीव तिर्यक्कायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिध्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवायके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाळा और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संक्षी मिध्या-दृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। नरकगति, नरकगत्वानु-पूर्वी, अप्रशस्त विद्यायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशवन्त्रका स्वामी कीन है ? सब पर्वाप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी अहाईस प्रकृतिबोंके साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला

१. ता॰प्रतौ अणियहि॰ । उच (व) सा॰ इति पाढः ।

तिरिक्स ०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हंड०-वष्ण०४-तिरिक्खाणु ०-अगु०-उप०-शानर ०-बादर ०-सहम ०-अपजा ०-पत्ते ०-साधार ०-अधिरादिपंच ०-णिमि० उ० प० वं० क० ? अण्य • दगदि • पंचि • सिण्य मिच्छा • सन्त्राहि पज • तेवीसदिणामाए सह सत्त्रविष • डक् • जोगिस्स । मणुस् • न्वदजादि-ओरालि • अंगो • असंपत्त • मणुसाणु • तस • प०वं० क० १ अण्या० दुगदि० पंचि० सण्या० मिच्छा० सन्वाहि पञ्ज० पणुनीसदि-णामाए सह सत्तविष् उक्कःजोगिः। देवगः-वेउव्विः समचदुः -वेउव्विःअंगोः-देवाणु ०-पसत्यवि०-समग-सस्सर-आदे० उ० पदे०वं० क० ? अण्ण ० दुगदि० पंचिं०-मिका प्रिस्तादि सम्मा सन्ताहि पञ्ज अदावीसदिणामाए सह सत्तविध उ०-को । आहार ०२ उ ० प ० वं० क ० १ अण्ण ० अप्पमत्त ० तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो०। चदुसंठा०-चदुसंघ० उ० प०वं० क०? अण्ण० चदुग० पंचिं० सण्णि० मिच्छा । सञ्जाहि पञा । एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध । उक्क जोगि । वजरिस । उ० प०वं० क० १ अण्या० चटरा० पंचिं० सण्या० मिच्छा० सम्मा० सञ्चाहि पञ्ज० एगणतीसदिणामाए सह सत्तविघ० उ०जो०। पर०-उस्सा०-पञ्ज०थिर०-सम० उ० और उत्कृष्ट योगसे युक्त दो गतिका संज्ञी पंचेन्द्रिय मिध्याद्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यक्रगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, हण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर, सूद्दम, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अश्थिर आदि पाँच और निर्माणके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेबाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका पद्मेन्द्रिय संजी मिध्याहिष्ट जीव उक्त प्रकृतियों के उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर आङ्गो-पाक, असम्प्राप्तास पाटिकासंहतन, मनुष्यगस्यानपूर्वी और त्रसके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी पत्तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उरम्ब योगसे यक्त अन्यतर हो गतिका प्रक्रोन्डिय संज्ञी सिथ्याष्ट्रिजीव उक्त प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिकशरीर आक्नोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके चत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियांसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मको अहाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट्र योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चोन्द्रय संज्ञी सिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मको तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उस्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव आहारकद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी कौन है। सब पर्याप्तियोंसे प्यीप हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवास्त और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पद्मोन्द्रिय संज्ञी सिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रश्तियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। वज्जर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मको उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चीन्द्रय संज्ञी भिष्यादृष्टि और सम्यन्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। परचात, उच्छास, पर्याप्त, प०बं० कः ? अष्णः तिगदि० पंचि० सिष्णः मिच्छाः सच्वाहि पक्षः षणुवीसदि-णामाए सह सत्त्वविच उ०जोः । आदाउज्जोः उ०प०वं० कः ? अष्णः तिमदि० पंचि० सिष्णः मिच्छाः सच्वाहि पक्षः छन्वीसदिणामाए सह सत्त्वविच उ०जोः । तित्यः उ०प०वं० कः ? अष्णः मणुसस्स सम्मादि० सच्वाहि पक्षः एगुणतोसदि-णामाए सह सत्त्विच ० उक्षः जोगिस्स ।

१७३. आदेसेण णेरहएसु पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-यंचंत० उ० प०वं० क० ? अण्णा० मिच्छा० सम्मा० सस्वाहि पञ्ज० सत्तविघ० उ०जो० । यीणकिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्यि०-णवंत०-णीचा० उ० प०वं० क० ? अण्णा० सिच्छा० सच्वाहि पञ्ज० सत्तविघ० उ०जो० । छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक० उ० प०वं० क० ? अण्णा० सम्मा० सच्वाहि पञ्ज० सत्तविघ० उ०जो० । विविक्खाउ० उ० प०वं० क० ? अण्णा० मिच्छा० सच्वाहि पञ्ज० अहुविघ० उ०जो० । एवं मणुसाउ० । णवरि सम्मा०

स्थिर और श्रुमके उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकमकी पद्मीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। जातन और उद्योगके उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। जातन और उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। जातन और उद्योगके उन्कृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उन्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका पद्म निद्रय संब्री प्रिस्थाहिष्ट जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंस पद्मीप्त डुआ, नामकर्मको उनतीस प्रकृतियोंके सम्बग्दर्शिष्ठ जीव तीर्थकर प्रकृतिके उन्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है।

१७३. आहेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि और सम्यम्हष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और उत्कृष्ट योगसे यक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। छह दर्शनावरण, बारह कथाय और सात नोकपायोंके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाळा और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर सम्यन्द्रष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के उस्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। तियं खायके प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तयोंसे पर्याप्त हमा, भाठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और उत्दृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव तिर्युख्यायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इसीप्रकार मनुष्यायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आठ कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट बोगसे यक्त अन्यतर सम्यगद्दष्टि और मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है।

सा॰ मा-प्रत्योः तदिव एवं चउत्थीप इति पाठः ।

मिच्छा० बहुविष० उ०जो० । तिरिस्त्व०-पंवसंग्रा०-पंवसंग्र०-तिरिस्त्वाणु०-अप्पतस्यवि०-द्मग-दुस्सर-अणादे० उ० प०वं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सञ्वाहि पञ्ज० एगुणतोसदिणामाए सह सचिवं उ०जो० । मणुस्र०-पंवि०-तिष्णिसरी०-समचदु०-ओरा०अंगो०-बजारि०-वण्ण०४ —मणुसाणु०-अगु०४-पसत्य०-तस०४-विराधिर-सुमासुम-सुम्मासुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि० उ० प०वं० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा०
सम्बाहि पञ्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सचिवं ० उ०जो० । उजो० उ० प०वं०
क० ? अण्ण० मिच्छा० सच्नाहि पञ्ज०तीसदिणामाए सह सचिवं उ०जो० । तित्य०
उ० प०वं० क० ? अण्ण० सम्मा० सब्बाहि पञ्ज० तीसदिणामाए सह सचिवं ० उ०जो० । तित्य०
उ० प०वं० क० ? अण्ण० सम्मा० तदिय० । चउत्यीए याव छिट्ट चि एवं वेव । णविरित्य० वज्ञ० । स्वमाए णिरयोपं । णविर मणुसगदि-मणुसाणु० उ०प०वं० क० ?
अण्ण० सम्मा० एगुणतीसदिणामाए सह सचिवं ७ उ०जो० । उचा० उ०प०वं० क० ?

१७४. तिरिक्खेस पंचणा० सादासाद० उच्चा०-पंचंत० उ० प०वं० क० १ अण्ण० तिर्धेकागतिः पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्येका गत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त बिहायोगति, दुभंग, दःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामो कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रप्ट योगसे यक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चिन्द्रिजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वऋष्भ-नाराच संहतन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आहेय, यश:कीतिं, अयश:कीतिं और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्योप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्हिष्ट और मिथ्याहिष्ट नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। उद्योतके एकास्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उस्कृष्ट योगसे यक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। तीर्थक्ररप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्पाप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सन्यग्दृष्टि नारकी तीर्थक्ररप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार पहली, दसरी और तीसरी प्रथिवोमें जानना चाहिए। इसी प्रकार चौथी पृथिवीसे छठवीं पृथिवी तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन प्रथिवियों में तीर्थकर प्रकृतिको छोडकर कहना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारिकयोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि मन्त्वाति, और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उरहृष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उरक्का योगसे यक्त अन्यतर सम्बन्दष्टि नारकी एक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। उद्यगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कुर्मीका बन्ध करनेवाला और स्टूब्ड योगसे युक्त अन्यतर सम्यन्द्रष्टि नारकी उक्तीत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१७४. तिर्यक्कांमें पाँच झानावरण, साताबेदनीय, असाताबेदनीय, उपगोत्र और पाँच

पंचिं क सिष्ण व सम्माव मिच्छाव सन्वाहि पञ्जव सत्त्विष व उव्योव । श्रीणिविद्धिदंड यो अपि । इदंसणाव-पुरिस व-छण्णोकव उव पव्यंवक १ अष्ण व सम्माव सन्वाहि पञ्जव सत्त्विष व उव्योव । अपन्यस्थाण श्रेषे । अहुक व उव पव्यंवक १ अष्ण व संस्थाव सत्त्विष व उव्योव । तिष्णं आउव उव पव्यंव क १ अष्ण व पंचिव सिष्ण व मिच्छा अहुविष व उव्योव । देवाउव उव पव्यंव क १ अष्ण व सम्मादि विस्का अहुविष व उव्योव । देवाउव उव पव्यंव क १ अष्ण व सम्मादि विस्का अहुविष व उव्योव । विषय सिष्का व स्वयंव स्वयंव व देवादि स्वयं विद्या व स्वयंव व स्वयंव स्ययंव स्वयंव स

१७५. पॅचिं ०तिरि०अपज्ञ० पंचणा०-णवदंसणा-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचत० उ०प० क०? अष्ण० सप्णि० सत्तविघ० उ०जो० । दोआउ० उ० प०वं० क०? अष्ण० स्राण्णि० अहविघ० उ०जो०। तिरिक्खगदि-दंडओ उ० प०वं० क०? अष्ण० सप्णि० तेवीसदिणामाप सह सत्तविघ०

अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त प्रकारके कर्मोंका नन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रकृतिया संत्री सम्यग्दृष्टि और कर्मोंका नन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रकृतिया संत्री सम्यग्दृष्टि और सिध्यादृष्टि तियञ्ज उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इस रानगृद्धिरण्डकका भङ्ग ओषके समान है। इस र्रागान्यायों प्रयोग कुत्रा सात्र प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला अंग उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यवाद सम्यग्दृष्टि तियञ्ज उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। अप्रत्यात्थातावरण चारका भंग ओषके समान है। आठ क्षायों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। अप्रत्यात्थातावरण चारका भंग ओषके समान है। आठ क्षायों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। तीन श्रापुओं उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। त्रापुओं उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। त्रापुओं उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। नारकगितदण्डक, तिर्वज्ञगितदण्डक, मनुष्यगितदण्डक और देवगितिदण्डक चार संख्यान और पांच संयनन का मङ्ग ओष्ठ समान है। आतप और उद्योतका भङ्ग स्वापीत्र स्वाप्त है। स्वाप्त और पराःकितिका भङ्ग मनुष्यगितिक समान है। आतप और उद्योतका भङ्ग स्वापीक समान है। श्राप्त और प्रदातिका भङ्ग स्वपित्र समान है। श्राप्त और प्रदातिका भङ्ग स्वपित्र समान है। स्वाप्त और प्रदातिका भङ्ग स्वपीत स्वपाति है। स्वाप्त और प्रदातिका भङ्ग स्वपीतिका सम्यान है। स्वापीतिका भङ्ग स्वपातिक समान है। आतप और उद्योतका भङ्ग स्वपीत्त स्वप्त हो। स्वापीतिका भङ्ग स्वपीतिका सम्यान है। स्वापीतिका भङ्ग स्वपीतिका सङ्ग स्वपीतिका सम्यान है। स्वापीतिका सङ्ग स्वपीतिका सम्यान है। स्वापीतिका स्वपीतिका सम्यान स्वापीतिका सम्यान है। स्वापीतिका सङ्ग स्वपीतिका सम्यान स्वापीतिका स्वापीतिका स्वापीतिका स्वापीतिका सम्यान हो। स्वापीतिका स्व

१७५. पञ्चिन्त्रिय तिर्पञ्च अपयोप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्याल, सोलद कपाय, नी नोकपाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका खामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगासे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशन्यका स्वामी है। दो आयुर्जोंके उत्कृष्ट प्रदेशनन्यका स्वामी होन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगासे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव दो आयुर्जोंके उत्कृष्ट योगासे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव दो आयुर्जोंके उत्कृष्ट प्रदेशनन्यका स्वामी है। विर्युक्कारितप्रकर्क उत्कृष्ट प्रदेशनन्यका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध

ता॰प्रती-सम्मामि॰ मिण्डा॰ इति पाठः । २. ता॰प्रती भण्ण॰ सण्णि॰ तेचीसदिणामाए आ॰प्रती भण्ण॰ तेचीसदिणामाए इति पाठः ।

उ०खो० मणुसगदि-चटुजादि-ओरासि०अंगोवंग-असंपत्त ०-मणुसाणु०-पर०-उस्सा०-तस०-पजा०-चिर-सम-जसगित्ति० उ०प०वं० क० १ अण्णदर० सण्णि० पश्रवीसदिवामाए सह सत्त विघ० उ०जो०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-समग-दोसर-जादे ० उ ० प ० वं ० ६० १ अण्या ० सम्या ० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध ० उ०-जी । दिविहा । उ ० पं ० वं ० क ० १ अण्य ० सम्य । अहावीसदिणामाए सह सच-विध॰ उ॰जो॰ ।] आदाउजो॰ ओघं। एवं सव्वअपजनगाणं तसाणं थावराणं च एडंदि०-विगर्लि०-पंचकायाणं च । जबरि अप्यप्यणो जादी कादच्या । एडंदिएस बादरपञ्जनगस्स नि बादरे पञ्जनगस्स नि सहमे पञ्जनगस्स नि विगलिंदिए पजनगस्स नि तस-पंचिदिएस सिष्ण नि माणिदव्या ।

१७६. मणुसेस णाणावरणदंडओ ओघं। सम्मादिद्विपाओग्गाणं पि ओघं। सेसाणं पंचिं वितिरिव्यंगो । जबरि सब्बासि मणुसी चि ज भाजिदव्वं ।

१७७. देवेस पंचणा०टंडओ शीणगि०दंडओ छटंम०दंडओ दोआउ०^२ तिरिक्ख ०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-इंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-बादर-पञ्ज ०-पत्ते ०-धिरादितिण्णियु ग०-दुभग०-अणा०-णिमिण०

करनेवाला और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त दण्डकके उर प्र प्रदेशवन्धका स्थामी है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासूपाटिकासंहनन, मनुष्य-गस्यातुपूर्वी, परघात, उच्छास, त्रस, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और यशःकीतिके उस्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उस्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोके उस्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वासी है। पाँच संस्थान, पाँच संहतन, सुभग, दो स्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सान प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्ह्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। दो विहायोगतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मी-का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे यक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका खामी है। आतप और उद्योतका भन्न ओघके समान है। इसी प्रकार अस और स्थावर सब अपर्याप्रकोंमें तथा एकेन्ट्रिय, विकलेन्ट्रिय और पाँच म्थाबरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी जाति ।करनी चाहिए। सात्र एकेन्द्रियोंसे बादर पर्याप्तक, बादरोंमें पर्याप्तक, सुद्दमोंमें पर्याप्तक, विकलेन्द्रियोंमें पर्याप्तक तथा त्रस और पद्धनिद्वयोंमें संबी जीव स्वामी है ऐसा कहना चाहिए।

१७६. मनुष्योंमें ज्ञानःवरणदण्डक ओघके समान है। सम्यन्द्रष्टिप्रायोग्य प्रकृतियोंका भक्त भी ओषके समान है। शेष प्रकृतियोंका भक्त पद्धन्तिय तिर्युखोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंका स्वामित्व कहते समय मनुष्य ऐसा नहीं कहना चाहिए ।

१७७. देवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डक, स्यानगृद्धिदण्डक, छह दर्शनावरणदण्डक और हो आयुओंका भक्क सामान्य नार्राक्योंके समान है। तिर्युख्यगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकश्ररीर,

तैजसरारीर, कामेणरारीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुळधुभतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माणके उत्क्रप्ट

१, भा॰ प्रती सेसाखं पि पंचिं विति कंगी इति पाठः । २, ता॰ प्रती दंडभी भाउ इति पाठः ।

प०वं० कः ? अष्ण० मिच्छा० सञ्चाहि पञ्ज० पणुवीसदिणामाए सह सचविष० उ०जो० । मणुस०-पंचि०-समचद्०-ओरा०अंगो०-बज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्यवि०-तस०-सुमग-सुस्सर-आदे० उ० प०वं० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० सम्बाहि पञ्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । चदसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्य०-दुस्सर० उ० प०वं० क० ? अण्ण० मिच्छा० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविष• उ॰जो॰। आदाउजो॰ उ॰ प॰बं॰ क॰ ? अण्ण॰ मिच्छादि॰ छन्त्रीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० णिरयभंगो । एवं भवण०-वाण०-जोदिसि० । णवरि तित्थ० वजा । सोधम्मीसाणे देवोघं । सणक मार याव सहस्सार ति णेरहगर्मगो । आणद याव णवगेवजा ति सहस्सारभंगो । णवरि तिरिक्ख०-उजो० वज । अणुदिस याव सन्वद्द ति पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-उचा०-पंचंत० उ० प०वं० क० ? अण्ण० सन्वाहि प० सत्तविध० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प०वं० क॰ ? अण्ण॰ अद्विघ॰ उ॰जो॰ । मणुस॰-पंचिंदि॰-तिष्णिसरीर०-समचदु०-ओरा०-अंगो०-वजरि०-वण्ण० ४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्यवि०-तसादि०४-थिरादितिणियु०-प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और उत्कब्ट योगसे यक्त अन्यतर मिथ्याहिष्ट देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी है। मनुष्यगति, प्रक्रेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-संस्थान, ओदारिक आङ्कोपाङ्क, वर्ष्णप्रभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेवके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रश्नियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे यक्त अन्यतर सम्यग्दिष्ट और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकमकी छन्दीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भन्न नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषा देवींमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिको छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए। सौधर्म और ऐशान कल्पमें सामान्य देवांके समान भक्त है। सनस्क्रमारसे छेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारिकयोंके समान भक्त है। आनत से लेकर नी प्रवेयक तकके देवोंमें सहस्रार कल्पके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि तिर्युक्तगतिदिक और उद्योतको छोडकर कहना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, बारह कवाय. सात नोकपाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियां के उरहुष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके उरहुष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव मनुष्यायुके उत्हृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चिन्द्रियजाति, तीन रारीर, समचतुरस्रसंस्थान, जीवारिक आक्रोपाक, वजार्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुरक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुळघूचतुरक, प्रशस्त सुमग-सुस्सर-आदेय-णिमिण० उक्कः पदे०वं० कः ? अण्याः सन्वाहि पञ्जः पञ्जरः एगुणतीसदिणामाए सह सत्त्रविघः ० उ०जो० । एवं तित्थकरणामाए पि । णवरि तीसदिणामाए सह सत्त्रविघः उ०जो० ।

१७८. पंचिं०२ ओघं । णवरि सप्णि चि भाणिदव्वा । तस-तसपजनगाणं ओघं । णवरि अप्णदरस्स पंचिंदिय चि सप्णि चि भाणिदव्वा ।

१७९, पंचमण-निष्णिवचि॰ ओघं। णविर सिष्ण ति पञ्जन ति ण भाणिदव्वं। विज्ञो०-असच॰मोस॰ ओघं। णविर पंचिं॰ सिष्ण ति भाणिदव्वं। कायजोगि॰ ओघं।

१८०. ओरालि० ओषं। णवरि दुगदि० तिरिक्ख० मणुस०। मणुसाउ० मिच्छादि० उ०जो०। मणुसगदिदंडए पर०-उस्सा०-पज०-थिरसुम० पणुनीसदि-णामाए सह सत्तविष० उ०जो०। चदुसंदा०-पंचसंघ० उ० प०वं० क० १ अण्ण० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविष० उ०जो०। ओरालियमि० पंचणा०-दोवेदणी०-उद्या०-पंचत० उ० प०वं० क० १ अण्ण० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सत्त-

विद्यायोगांत, त्रसादि चार, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके उन्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? सब पर्वाप्तियों से पर्वाप्त हुआ, नामकमकी बनतीस प्रकृतियों के साथ सात प्रकृति के मौंकी बन्ध करनेवारा के उन्कृष्ट थोगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियों के साथ सात प्रकृतियों के उन्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी है। इसी प्रकार तीयहरू नामकमके उन्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामित्व भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नामकमकी तीस प्रकृतियों के साथ सात प्रकारक कर्मोंका क्या करनेवाला और उन्कृष्ट योगसे युक्त उन्क देव तीर्यहरू प्रकृतिके उन्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी है।

१७८. पञ्चित्रविद्वकों ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संज्ञी ऐसा कहना चाहिए। त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अन्यतर पञ्चितिस्य संज्ञी खामी है ऐसा कहना चाहिए।

१७९, पाँच मनोयोगो और तीन वचनयोगी जीवांमें ओपके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संक्षी और पयोप्त ऐसा नहीं कहना चाहिए। वचनयोगी और असत्यसृणावचन-योगी, जीवोंमें ओपके समान भङ्ग है। इतनो विशेषता है कि संक्षी पंचेन्द्रिय कहना चाहिये। काययोगी जीवोंमें ओपके समान भङ्ग है।

१८०. औदारिककाययोगी जीवों में ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि विर्यञ्ज और मतुष्य इन दो गितयों के जीवों को खामी कहना चाहिये। मतुष्यायुक्ते उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट योगवाका मिध्यादिष्ट जोव स्वामी है। मतुष्यपतिदण्डक, परघात, रूक्क्ष्मास, पर्वास, स्थिर और द्युमके उत्कृष्ट मदेशवन्यका स्वामी कीन है? नामकर्मकी पर्वास प्रकृतियों के साथ सात प्रकारक कर्मों का वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? नामकर्मकी उनतीय प्रकृतियों के साथ सात प्रकारक कर्मों का वन्य स्वामी कीन है? नामकर्मकी उनतीय प्रकृतियों के स्वकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। वार संस्थान और उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। की इतियों के उत्वर्ण के स्वर्ण के स्

१. ता॰प्रतौ सम्मि ति म मामिद्व्यं इति पाठः ।

उत्दृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और एस्क्रप्र योगसे युक्त अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी सम्यन्दृष्टि और मिध्यादृष्टि जो कि अनन्तर समयमं शरीर पर्याप्ति पूर्ण करेगा वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका म्बामी कीन है ? अन्यतर संझी मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है। यहाँ आगेके विजेषण साजा-के समान जानने चाहिये। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंके उत्कटन प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? अन्यतर सम्यम्हष्टि जीव स्वामी है। शेष विशेषण ज्ञानावरणके समान हैं। दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त पद्म न्द्रिय संझी मिध्यादृष्टि जीव दो आयुओं के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, चार संस्थान और पाँच सहनत-दण्डकका भड़ औदारिककाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यशाकी निकी मन्त्यगतिदण्डकमें कहना चाहिये। आळाप तथा अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका सङ् नपंसकवेदके समान है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आक्रोपाड, देवगत्यानपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वासी कीन है ? नामकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और बल्बव योगसे यक्त अन्यतर तिर्यञ्ज और मनुष्य सम्यन्दृष्टि जो अनन्तर समयमें शरीरवर्याप्र को पूर्ण करेगा वह एक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकमकी छव्वीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कमोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चन्द्रिय संझी मिध्याहिस्ट जीब उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इससे आगे ज्ञानावरणके समान अक है। तीर्थकर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतिस्थित साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य सम्याहिट तीर्थकर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्थका स्वामी है। ऊपर झानावरणके समान भक्त है।

१. आ॰ प्रती क॰ १ पंचि॰ इति पाटः । २. ता॰आ॰प्रत्योः पसस्यवि॰ पंचि॰ सुभग इति पाटः ।

१८१. बेउब्बियका० पंचणा०-सादासाद०-उचा०-पंचंत० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देवस्स वा णेरहयस्स वा सम्मा० मिच्छा० सन्वाहि पञ्जचीहि० सचिविध उ०जो० । एवं बीणिमिद्धिदंडजो । जविर मिच्छा० भाणिदव्वं । छदंसणा०-बारसक०-सचणोक०दंडजो सम्मादि० भाणिदव्वं । तिरिक्खाउ० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देवस्स वा णेरहयस्स वा मिच्छादि० अहविध० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प० क० १ अण्ण० देव० णेरहयस्स वा सम्मा० मिच्छा० अहविध० उ०जो० । तिरिक्खादिदंडजो देवोघं । देवा० मिच्छा० । मणुसा०-पंचि०-समचदु०-जोरा० अंगो०-अजरि०-मणुसाणु०-पसत्यवि०-तस०-सिम्भा०-] सुस्सर-आदे० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देव० णेर० सम्मा० मिच्छा० एगुणतीसदिणामाए सह सचिविध० उ०जो० । जदसंठा०-पंचसंघ०-अप्सत्यवि०-दुस्सर० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देव० णेरठ० मिच्छा० इच्चोसदि० स्व सचविध० उ०जो० । आदा-उज्जो० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देव० णेरठ० मिच्छा० इच्चोसदि० सइ सचविध० उ०जो० । तिर्य० उ० प०वं० क० १ अण्ण० देव० णेरठ० सम्मा० तीसदि-

१८१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, साताबेदनीय; असाताबेदनीय, उबगोत्र और पाँच अन्तरायके उस्कृष्ट प्रदेशयन्थका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त सम्यग्हिष्ट और मध्याद्दक्टि अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशयन्थका स्वामी है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धिदण्डकके विषयमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनका उस्कृष्ट स्वामित्व मिथ्याद्दष्टिके कहना चाहिये। छह दर्शनावरण, बारह क्याय और सात नोकपाय वण्डकका उत्कृष्ट स्वामित्व सम्बन्द्दिके कहना चाहिये। तिर्युक्कायके उत्पत्त्व प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करतेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिध्या-हृष्टि देव और नारकी तिर्यक्कायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उक्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्बन्द्दि और मिथ्याद्ददि देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिवण्डकका भन्न सामान्य देवांके समान है। मिध्याहिन्द देव उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामी हैं यह उक्त कथनका तारवर्ष है। मनुष्यगति, पञ्जेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्कोपाङ्क, वज्रवभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्हरिट और मिध्याहरिट हेव और नारकी उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान, पाँच सहचन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियों के साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिष्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छट्डीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त हो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। तीर्थकर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और

णामाए सह सत्तविष ॰ उ०जो ॰ । एवं वेउव्वियमि ० । णवरि से काले सरीरपजत्ती गाडिटि ति ।

१८२. आहारका० पंचणा०-छदंसणा०-दोबेदणी०-चहुसंज०-सचणोक०-उषा०-पंचंत० उ० प०वं० क० ? अण्ण० सचिविष० उ०जो०। देवाउ० उ० क० ? अण्ण० अहविष० उ०जो०। देवग० अहावीसं पगदीओ उ० प० क० ? अण्ण० अहावीसं सह सचिविष० उ०जो०। तित्य०े उ० प०वं० क० ? अण्ण० एगुण० सह सचिविष० उ०जो०। एवं आहारमि०। णवरि से काले सरीरपजची गाहिदि चि। एवं आउगवं०।

१८३. कम्मइ० पंचणा०-साहासाद०-उच्चा०-पंचत० उ० प०वं० क० १ अण्ण० चदुग० सण्णि० मिच्छा० सम्मा० सचविष० उ०जो०। धीणगिद्धिदंडजो छदंसणा०दंडजो उ०प०वं० क० १ अण्ण० मिच्छा० सम्मादि० यथासं० चदुग०

ब्त्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यन्दृष्टि देव और नारकी वक्त प्रकृतिके व्ह्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार वैकियिकसिशकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्ति पूर्ण करेगा उसे उत्कृष्ट स्वामिस्व देना चाहिए।

१८२. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ह्वानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, चार संज्वजन, सात गोकषाय, ज्वागोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशनस्थका खामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मों का वस्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगासे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव तक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका खामी है। देवापुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। देवापित आहे अवस्यतर आहारककाययोगी जीव देवापुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। देवापित आहि अहाईस प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। देवापित आहि अहाईस प्रकृतियांके स्वकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। तेवापित आहि अहाईस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मी का वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव उक्त प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मी का वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी कीन है ? नातकमीकी उत्तरीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मी का वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीवों त्रीयहर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार आहारकि प्रकृत्य क्षेत्रवां के स्वास्त देना चाहिए। इसी प्रकार आहारकि प्रकृत्य के साथ के स्वासित देना चाहिए। इसी प्रकार आहुत्यके साथ के स्वासित्व देना चाहिए। इसी प्रकार आहुत्यक साथी कहना चाहिए।

१८२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उद्यागित्र और पाँच अन्वरायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मों का वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संझी मिच्याष्टिष्ट और सम्यग्रदृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। स्यानगृद्धिरण्डक और छह दर्शना-वरायरण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है। लयानगृद्धिरण्डक और छह दर्शना-वरायरण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? चार गतिक पञ्चानित्र्य संझी और उत्कृष्ट योगवाला कार्मणकाययोगी क्रमसे अन्यतर मिच्याष्टिंट जीव स्वाम-गृद्धिरणकके तथा सम्यग्रदृष्टि जीव छह दर्शनावरण व्यवकृष्ठ उत्कृष्ट प्रदेश-

१. आश्रती पंचेत्र एक बंग का ? सम्मान्य सचिवा उल्जो । विस्व इति पाटः।

पंचि॰ सिष्णि॰ उ॰जो॰ । तिरिक्खगदिदंडजो मणुसगदिदंडजो चदुसंठा॰ चदुसंघ॰दंडजो जोघं। णवरि अप्पसत्यवि॰-दुस्सरपिवद्द॰। वजरि॰ जोघं। देवगदिदंडजो
दुगदि॰ सम्मादि॰ उ॰जो॰। पर॰-उस्सा॰-धिर-सुम-जस॰ उ॰ प॰बं॰ क॰ १
अष्णः तिगदि॰ सिष्णि॰ मिच्छा॰ पणुबीसदि॰ सह सत्तविघ॰ उ॰ जो॰।
आदाउजो॰ उ॰ प॰बं॰ क॰ १ अष्णा॰ तिगदि॰ पंचि॰ सिष्णि॰ मिच्छा॰
छब्बोसदि॰ सह सत्तविघ॰ उ॰जो॰। तित्य॰ उ॰ प॰बं॰ क॰। अष्ण॰ मणुस॰
सम्मादि॰ एगुणतीसदि॰ सह सत्तविघ॰ उ॰जो॰।

१८४. इत्थि-पुरिसेस पंचणा०-सादासाद०-उचा०-पंचत० उ० प०वं० क० १ अण्याः तिग्रदिः सण्याः मिच्छाः सम्मादिः सत्तविधः उ॰जोः । शीणगिद्धिदंडओ निरादिः सर्णिः सिच्छादिः सत्तविधः उकःजोगिः। णिद्दा-पयला-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दु० उ० प० क० १ अण्ण० तिगदि० सम्मादि० सत्तविष० उ० जो०। चढुदंस० उ० प०बं० क०? अण्ण व दंसणावरणीयस्स चढुविघ० उ०जो०। अपचक्ता०४-पचक्ताणा०४-ओघं। चदुसंज० उ० प०वं० क० १ बन्धका स्वामी है। तिर्यक्रगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और चार संस्थान व चार संहतन दण्डकका भक्त ओषके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अप्रशस्तविद्वायोगित और दु:स्वर को प्रविष्ट करके उत्रुष्ट स्वामित्व कहना चाहिए। वज्रवंभनाराचसहननका भक्त ओघके समान है। देवगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? उत्हृद्ध योगवाला दो गतिका सम्यग्दृष्टि जीव देवगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। परघात, उच्छास, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उस्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उस्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी छन्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका पञ्चिन्द्रिय संक्रो मिथ्याद्दष्टि जीव एक दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मको उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कम का बन्ध करनेवाला और उरक्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य सम्यन्द्रष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उरकृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी है।

(८१. भ्रोवेदी और पुरुषवेदी जोबोंमें पाँच झानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, जबगोत्र और पाँच अन्तरावके उक्कृष्ट ग्रदेशबन्धका स्वामी कीन हैं ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्न करनेवाळा और उक्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संझी मिथ्याइंटि और सम्मन्दिए जीव उक्त प्रदेशिवांके उक्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संझी मिथ्याइंटि और सम्मन्दिए जीव उक्त प्रदेशवांके उक्कृष्ट योगदाळा तीन गतिका संझी सिम्याइंटि जीव हैं। तिहा, प्रमक्त, हास्स, पति, अरति, हांक, यव और जुगुरसाके उक्कृष्ट योगवाळा तीन गतिका संझी सिम्याइंटि जीव हैं। तिहा, प्रमक्त, हास्स, पति, अरति, हांक, यव और जुगुरसाके उक्कृष्ट योगक्ष जोने हैं। तिहा प्रकारके कर्मीका बन्य करनेवाळा और उक्कृष्ट योगके युक्त सात्री है। चार प्रकारके कर्मिक प्रमुख्य प्रदेशकरणका स्वामी है। चार प्रकारके कर्मुक्ट प्रदेशकरणका स्वामी कीन हैं। इरांनावरणीयकी चार प्रकृतिवींका बन्य करनेवाळा और उक्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतिकांकि उक्कृष्ट प्रदेशकरणका स्वामी है। अप्तावाक्षानावाल चक्कृष्ट अप्ते प्रकृत अप्ते प्रकारका स्वामी है। अप्तावाक्षानावाल चक्कृष्ट अप्ते प्रकार कर्माक स्वामी है। अप्तावाक्षानावाल चक्कृष्ट अप्ते प्रकृत अप्ते प्रदेशकरणका स्वामी है। अप्तावक्षानावाल चक्कृष्ट और प्रसावक्षानावाल चक्कृष्ट महिन्त स्वामी है। वार

अष्णः पमत्तः अप्यमतः सत्त्विषः उत्जोः । पुरिसः उत् पत्यं कः १ अष्णः अणियिष्टिः मोहः पंचविषः उत्जोः । आउत् ओषं । णिरयगिदिध्दं जो तिरिस्थाविदं जो मणुसगिदिदं जो देवगिदिदं जो आपं । चहुसंदाः च्युसंघः उत् पत्यं कः १ अष्णः तिगदिः सिष्णः मिच्छाः सत्त्विषः उत्जोः । आहारः २ ओषं । वसुरं उत्जोः । आहारः २ ओषं । वसुरं उत्जोः । आहारः २ ओषं । वस्ति उत्पत्तं कः १ अष्णः तिगदिः सम्मादिः मिच्छादिः एगुणतासिदः सह सत्त्विषः उत्योः । परः उस्साः प्यः विषः श्वः उत्याः उत्याः व पत्यं कः कः १ अष्णः तिगदिः पणुनीसिदिणामाए सह सत्त्विषः उत्जोः । आहाउओः उत्याः पत्यं कः १ अष्णः तिगदिः पणुनीसिदिणामाए सह सत्त्विषः उत्जोः । असः उत्याः पत्यं कः १ अष्णः नामाए एगविषः उत्जोः । तिर्थः उत्जोः । सतः उत्याः मणुसः एगुणतीसिदः सह सत्त्विषः उत्जोः । तिर्थः उत्याः सरः प्रणातिसिदः सह सत्त्विषः उत्जोः । तिर्थः उत्याः सरः सत्तिषः उत्जोः । सरः उत्याः सणुसः एगुणतिसिदः सह सत्त्विषः उत्जोः । तिर्थः उत्याः सरः सत्त्विषः उत्जोः ।

१८५. णबुंसगे सत्तर्णा क० इत्थिभंगो । णेरहगगदि-मणुसगदि-तिरिक्खगदि-दंडओ ओषं । देवगदिदंडओ च । पर०-उस्सा०-पञ्ज०-धिर-सम० दगदियस्स त्ति

संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उक्तर प्रदेश-बन्धका स्वामी है। पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है? मोहनीय कर्मकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर अतिवृत्तिकरण जीव पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भक्क ओघके समान है। नरकगतिचतुष्कदण्डक, तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और देवगतिदण्डकका भद्र ओघके समान है। चार संस्थान और चार संहतनके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिध्यादृष्टि जीव एक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। वक्षवभनाराचसंहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेबाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यन्दृष्टि और मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। परधात, उच्छास, पर्याप्त, स्थिर और शुभके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उरहुष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उरहुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मको हर्दित प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त हो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। यशकीतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है । नामकर्मकी एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर जीव यशःकीतिके उरक्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थक्कर प्रकृतिके उरकृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और दश्हान्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतिके एत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१८५. नपुंसकोंमें सात कर्मोका मङ्ग कविदी जीवोंके समान है । नरकगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और तिर्वञ्चगतिदण्डकका मङ्ग ओषके समान है। तथा देवगतिदण्डक ओषके समान है। परघात, उच्छास, पर्यात, स्विर और हुम इनके घत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी दो माणिदव्वं । आदाउज्जो० दुर्गादि० मिच्छा० । सेसं इत्थिमंगो । अवगद० सत्तर्ण्यं क० जोषमंगो ।

१८६. कोष०३ सत्त्रष्ण क० इत्थिमंगो । णवरि चदुगदियो ति भाणिदव्यं । कोषसंज० मोइ० चदुविष० माणे मोह० तिविष० मायाए दुविष० । सेसं ओष-मंगो । होमे० ओषं !

१८७. मदि०-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणीय-मिल्ळ०-सोलसक०णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० उ० प०वं० क० ? अण्ण० चदुगदि० पंचं० सिष्ण०
सम्बाहि पञ्ज० सचविष० उ०जो० । णिरय०-देवाउ० उ० प०वं० क० ? अण्ण०
दुगदि० सिष्ण० अद्विष० उ०जो० । तिरिक्स-मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण०
चदुगदि० पंचं० सिष्ण० अद्विष० उ०जो० । दोगदि०-वेउव्वि०-सम्बद्ध०-वेउव्वि०
अंगो०-दोञाणु०-दोविहा०-सुमग-दोसर-आदे० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि०
अद्वावीसदि० सह सचिष० उ०जो० । वजारि० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि०
पंचि० सिष्ण० एगुणतोसदि० सह सचविष० उ०जो० । सेसाणं पगदीणं ओघं । एवं
गतिके जीवको कह्ना चाहिए। आत्म और उद्योतके अकुष्ट प्रदेशवन्यवा स्वामी दो गतिक।
सम्प्याष्टिण्ड जीव है । शेष मङ्ग स्वीवेदी जीवोके समान है । अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका

१८६. क्रोघ आदि तीन कपायों में सात कमोंका भङ्ग क्षांवेदी जीवों के समात है। इतनी विशेषता है कि चार गतिका जीव स्वामी है ऐसा कहना चाहिए। तथा मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला क्रोध संववतलके, मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला मामसंव्यत्तनके ज्या मोहनीयकी दो प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला मायासंव्यत्तनके उत्कृत्य कर्म करनेवाला मायासंव्यत्तनके उत्कृत्य क्राय्यासंव्यत्तनके उत्कृत्य प्रत्येवय्यक्ष स्वामी है। श्रेष भङ्ग लोचके साना है। लोचकपायमं लोचके साना मक्ष है।

१८०. मत्यक्वानी और श्रुनाक्वानी जीवांमें पाँच क्वानावरण, नी दर्शनावरण, रो वेदनीय, मिम्यास्त, सोलह कषाय, नी नोक्वाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशक्यक स्वामी कीन है ? सव पर्वाप्तियों चे पर्वार हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करतेवाळा और वक्कुष्ट योगांचे कुक अन्वरत चार गतिका पंचिन्द्रय संझी जीव उक्त प्रकृतियों उत्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? आठ अ्वत्रत दो गतिका संझी जीव उक्त प्रकृतियों प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? आठ अ्वत्रत दो गतिका संझी जीव उक्त प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? आठ अच्यत हो गतिका संझी जीव उक्त प्रदेशक्यका स्वामी कीन है शिवाट प्रकृत्यक स्वामी है। तिर्वेद्धायु और सनुष्यायुक्त उत्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी कीन है शिवाट प्रकृत्यक संझा जीव उक्त हो आयुआंके उत्कृष्ट प्रदेशक्यका स्वामी है। दो गति, विकासिकार्यों सम्पन्नरूप्त संस्थान, वेदिक स्वाप्त सम्पन्नरूप्त संस्थान स्वाप्त कीन है श्री अपन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्वरत दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के स्वाप्त सात कारके कर्मोका वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्वरत दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के स्वाप्त सात कारके कर्मोका वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्वरत दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियों के स्वाप्त सात कीन है ? अटाईस प्रकृतियों के स्वाप्त स्वाप्त कर्मोक कर्मोक वन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्वरत वारा गतिका जीव स्वष्त अपनेवर कर्मोक क्यां करनेवर स्वर्यास स्वामी कीन है शिवा प्रकृत स्वर्यास स्वाप्त स्वर्यास कर्मोक वन्य करनेवाला अधि उत्कृत्य स्वर्यास स्वर्

अस्मव०-मिच्छा० । विभंग० मदि०भंगो । णवरि सण्णि ति ण शाणिदव्यं ।

१८८. आभिणि०-सुद०-अधि० पंचणा०-चहुर्दसणा०दंडओ ओधं। णिदा-पयला-असाद०-छण्णोक० उ० प० क० ? अण्ण० चहुगदि० सम्भा० सन्वाहि० सत्तविष० उ०जो०। अपबक्खा०४-पबक्खा०४-चहुर्सजल०-पुरिस० ओघमंगो। मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण० देव० णेरह० अहुविष० उ०जो०। देवाउ० उ० प० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० अहविष० उ०जो०। मणुसगदिपंचगस्स उ० प० क० ? अण्ण० देव० णेरह० एगुणतीसदि० सह सत्तविष० उ०जो०। देवगदि-पंचि०-सेऽन्वि०-सेजा०-क०-समचदु०-चेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अणु०४-पस्त्यवि०-तस०४-चिरादि-तिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० उ० प० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० अहावीसदि० सह सत्तविष० उ०जो०। णवरि जस्व ओघं। आहार०२-तित्व० औघं। एवं ओधिदं०-सम्मा०-सहग०-उवसम० । मणपञ्च०-संज०-सामा०-स्टेदो०-परिहार०-संजदासंज० ओधिभंगो। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्याओ। सुदुमसंप० ओघं।

जीवेंभिं जानना चाहिये। तथा विभङ्गज्ञानी जीवेंभिं मत्यज्ञानी जीवेंकि समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके स्वामित्वका कथन करते समय संज्ञा ऐसा नहीं कहना चाहिए।

१८८. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरणदण्डकका भक्क ओघके समान है। निद्वा, प्रचला, असातावेदनीय और छह नोकपायांके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्रहिष्ट जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्याना-बरणचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुके उस्कृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवायके उत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी कोन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट्र योगसे यक्त अन्यतर-तियंख्य और मन्द्य देवायके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। मन्द्यगतिपञ्चकके उत्क्रष्ट प्रदेश-बन्धका स्वाभी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध-का स्वामी है। देवगति, पक्केन्द्रियजाति, वैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतरख-संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायो-गति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुखर, आदेय और निर्माणके एत्क्रष्ट प्रदेशकन्य का स्थामी कीन है ? नामकर्मकी अटाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करते-बाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर तियंद्ध और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि यहाःकीर्तिका भक्क ओघके समान है। आहारकद्विक और तीर्थद्भरप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सन्यग्द्रध्टि, क्षाधिक-सम्बन्ध्वि और उपरामसम्बन्धवि जीवोंमें जानना चाहिए। मनःपर्वयज्ञानी, संयत, सामाविक-संबत, छेदोपस्थापनासंबत, परिहारविश दिसंबत और संबतासंबत जीवोंसे अवधिज्ञानी जीवोंके समान भक्क है । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । सुद्तासाम्पराध-संयत जीवोंमें ओचके समान भक्त है।

१८९. असंजदेसु पंचणा०पदमदंडओ चदुगदि० पंचि० सिष्ण० सम्मा० मिष्ठा० सचिष० उ०जो०। बीणगिद्धिदंडओ चदुगदि० पंचि० सिष्ण० मिष्ठा० सम्बाहि पञ्ज० उ०जो०। छदंस०दंडओ चदुगदि० सम्मादि० उ०जो०। सेसाणं पगदीणं ओर्थ। चस्सुदंस० तसपञ्जनभंगो। अचस्सु ० ओर्थ।

१९०. किष्ण-णील-काउ०पंचणा०-सादासाद०-उचा०-पंचंत० उ० प० क० १ अष्ण० तिगदि० सिष्ण० सम्मा० मिच्छा० सत्तविघ० उ०जो० । श्रीणगिद्धिदंडजो अष्ण० तिगदि० सिष्ण० मिच्छा० सत्तविघ० उ०जो० । छदंस०दंडजो तिगदि० सम्मा० सम्बाहि पञ्ज० सत्तविघ० उ०जो० । गिरयाउ० उ० प० क० १ अष्ण० दुगदि० सिष्ण० मिच्छा० अहविघ० उ०जो० । तिगस्त्वाउ० उ० प० क० १ अष्ण० तिगदि० सिष्ण० मिच्छा० सन्वाहि पञ्ज० अहविघवंघ० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प० क० १ अष्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० अहविघ० उ०जो० । वाउ० उ० प० क० १ अष्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० अहविघ० उ०जो० । विगयचन्दुदंडजो विग्निस्तादिवंडजो मणुसगिटिवंडजो वेनगिटिवंडजो संटाणवंडजो वजिरस्या

१९०. ऋष्ण, नोख और कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असानावेदनीय, उच्चगोत्र और पॉच अन्तरायके उरहुष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी सम्बन्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संब्री मिध्या-हर्ष्ट्र जीव है । छह दर्शनावरणदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्रहृष्टि जीव है। तरकायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते-वाळा और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है । तिर्यक्कायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिध्याहर्ष्ट जीव स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाटा और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्हष्टि जीव स्वामी है। देवायुके एक्ट्र प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोका बन्ध करनेवाळा और उत्कृष्ट बोगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दष्टि और मिस्था-दृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वासी है । नरकगतिचतुष्कदण्डक, निर्मेश्वयतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, देवगतिदण्डक, संस्थानदण्डक, वज्रवभनाराचसंहतनदण्डक और परचात व

दंडजो परघाद-उजीवदंडजो णवुंसगर्भगो । णवरि जस० थिरभंगो । तित्य जोघं ।

१९१. तेउ० पंचणा०-दोबेदणी०-उचा०-पंचंत० उ० प० क० ? अण्णा० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सचिवघ० उ०जो० । श्रीणमि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इस्थि० उ० प० क० ? अण्णा० तिगदि० मिच्छा० सचिवघ० उ०जो० । छदंस०-सचणोक० उ० प० क० ? अण्णा० तिगदि० सम्मा० सचिवघ० उ०जो० । अपच-क्खाण०४ तिगदि० असंजा० । पचक्चाण०४ तिगदि० उसंजा० । पचक्चाण०४ तिगदि० असंजा० । पचक्चाण०४ अण्या । चदुसंजा० उ० प० क० ? अण्णा० पमन० अप्मानक सचिवघ० उ०जो० । तिरिक्खाउ० उ० प० क० ? अण्णा० देवस्स मिच्छा० सचिवघ० उ०जो० । तिरिक्खाउ० उ० प० क० ? अण्णा० सेच्छा० अहविघ० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्णा० मिच्छा० सम्मा० अहविघ० उ०जो० । देवाउ० उ०प० क० ? अण्णा० दुगादि० सम्मा० अहविघ० उ०जो० । देवाउ० उ०प० क० ? अण्णा० दुगादि० सम्मा० अहविघ० उ०जो० । तिरिक्खगदिर्दडओ आदाउजो० सोघम्मभंगो । मणुस०-ओरा०-

उद्योत दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका भङ्ग स्थिर प्रकृतिके समान है। तीर्थं हुर प्रकृतिका भङ्ग ओषके समान है।

१६१, पीतलेक्यामें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यारम, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और स्त्रीवेदके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कोन है ? सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। छह दर्शना-बरण और सात नोकवायके उत्कष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उरक्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उरक्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके उरक्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी तीन गतिका असंयत सम्यन्द्रष्टि जीव है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका सङ्ग ओघके समान है। चार संज्यलन के उरकृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे यक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नपुंसकवेद और नीचगोत्रके व्हकूष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कमाँका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त हो प्रकृतियोंके उस्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और उत्क्रुष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्याद्दांहर देव तिर्यक्कायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे यक्त अन्यतर मिध्याहिष्ट और सम्यन्द्रष्टि जीव मनुष्यायके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवायके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यन्दृष्टि जीव देवायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यक्रागतिवण्डक और आतप उद्योतका अक सौधर्म कल्पके समान है। मनुष्यगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्धमनाराचसंहतन और

^{1.} ब्रा॰प्रती जबरि वश्जरिस॰ यिरभंगी इति पाठः।

अंगो०-बजरि०-मणुसाणु० उ० प० क० ? अष्णा० देव० सम्मा० मिच्छा० पराणतीसदि० सह समविष० उ०जो० । देवग० '-पंचि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०
अंगो०-देवाणु०-पसत्यवि०-तस-समग-सुरसर-आदे० उकस्स० प० कस्स ? अण्णा०
दुगदि० सम्मादिष्ठि० मिच्छादिष्ठि० अड्डावोसदि० सह सनविष० उ०जो० ।
आह्रार०-रितत्य० ओपं । चदुस्टेठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्य०-दुस्सर० उ० प०
क० ? अण्णा० देव० एगुणतीसदि० सह सनविष० उ०जो० । एवं पम्माए ।
णविर हत्यि०-णवंस०-णीचा० देवस्स मिच्छादिष्ठि० उ०जो० । तिरिक्ख-पंचारंठा०
पंचसंघ -०-तिरिक्खाणु०-अप्यत्य०-दुमग-दुस्सर-अणादे० देव० मिच्छा० एगुणतीसदि० सह सनविष० उ०जो० । मणुसगदिणामाए उ० प० क० ? अण्ण० देवस्स
सम्मा० मिच्छा० एगुणतीसदि० सह सन्विष० उ०जो० । देवग०-पंचिदि०-वेउव्वि०तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्व० अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्यवि०-तस०४थिरादितिण्णियु०-सुमग-सुरसर-आदे०-णिमि० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि०

मनुष्यगस्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोवे साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्हिष्ट और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवगति, प्रक्लेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, विक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके च्ह्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नाम-कर्मकी अट्राईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और उत्कृष योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका सम्यन्द्राध्य और मिध्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियांके उत्कार प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विक और तीर्थद्वर प्रश्तिका भङ्ग ओघके समान है चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दु:स्वरके उत्हब्द प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकमंकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव एक प्रकृतियोंके उरकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है । इसी प्रकार पद्म-लेइयामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी उत्कृष्ट योगवाला मिध्यादृष्टि देव है। तियेश्वगति, पाँच संस्थान पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुश्वर और अनादेयके उत्क्रष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी नामकमंकी उनतीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मीका वन्ध करनेवाछ। और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव है। मनुष्यगति नामकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकमकी उनतीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कमीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दाष्ट और मिथ्यादृष्टि देव मनुष्यगतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धक। स्वामी है। देवगति, पक्केन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-रवामा है। देवापा के महाराज्य का निर्माण के स्थान के स्थान की कि स्थान की स्थान की स्थान की स्थान की स्थान की स संस्थान, वीत्रांक आङ्गीपाइ, वर्णचतुष्क, देयगत्यातुर्वी, अगुरुव्युचतुष्क, प्रशस्त बिहायो गति, त्रसचतुष्क, स्थिर भादि तीन युगक, सुभग, सुखर, आदेय और निर्माणके क्रुष्ट प्रदेशः बन्धका स्वासी कीन है ? नामकर्सकी अट्टाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः उ०जो । णिमि० देवग॰ इति पाठः ।

२. ता॰प्रतौ तिरिक्त॰ पंचसंघ॰ इति पाढः।

सम्मा० मिच्छा० अद्वादीसदिणामाए सह सत्तविघ० उ०जो०। जाहार०२-तिस्थ० ओषं। उजो० देव० तीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०।

१९२. सुकाए पंचणा०-[चदु०-] दंसणा०दंडओ ओषं। थोणाग०३-सिच्छ० अर्णताणु०४ तिगदि० सिच्छा० सत्तविष० उ०ओ०। णिहा-पगला-छण्णोक० उ० प० क० १ अण्ण० तिगदि० सम्मा० सत्तविष० उ०ओ०। असाददंडओ तिगदि० सम्मा० सिच्छा० सत्तविष० उ०ओ०। अपबक्खाण०४-पश्चक्खाण०४-चदुसंज०प्रिस० ओषं। मणुसाउ० देवस्स सम्मा० मिच्छा० अह्विष० उ०ओ०। देवाउ० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० अह्विष० उ०ओ०। देवाउ० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० अह्विष० उ०ओ०। देवादि० सम्मा० मिच्छा० वा एगुणतीसदि० सह सत्तविष० उ०ओ०। देवगदि-पंचि०-वेउव्बि०-तेजहगादिदंडओ पम्माए भंगो।णविर जस० ओषं। आह्मर०२-तिरमण अोषं। पंचमंदा०-पंचमंष०-अपयत्य०-दमग-इस्स-अणादे० उ० प० क० १ अण्ण०

करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर हो गतिका सम्यन्दृष्टि और सिप्पादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। आहारकद्विक और तीर्थेङ्करफ्रकृतिका भङ्ग ओपके समान है। उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्य करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है।

१९२. शुक्क छेर्रयामें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरणदण्डक ओघके समान है। स्यान-गृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकार कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्तृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव है। निदा, प्रचला और छह नोकषायांके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कमोंका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यन्द्रष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। असातावेदनीयदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्क्रष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि और सम्यादृष्टि जीव है। अन्नत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्हृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे यक्त दो गतिका सम्यन्दृष्टि और मिध्यादृष्टि जीव है। मनुष्यगतिपञ्चकके उस्कृष्ट प्रदेश-बन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंसे साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यन्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। देवगति, पञ्चन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर और तैजसशरीर आदि दण्डकका भन्न पदालेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि बशःकीर्तिका भन्न ओषके समान है। आहारकद्विक और तीर्थट्टरप्रकृतिका सङ्ग ओषके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेश-बन्धको स्वामी कौन है ? अन्यतर सिध्याहर्ष्ट्र जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृत्र प्रदेशहरस्का

१. ता∘प्रतौ मणुसाउ० देवस्स० सम्मा० मिच्छा० अहविषट उ०जो√। मणुसगदिपंचग० इति पाठः।

मिच्छादि० आणदमंगो । इत्थि०-पुरिस०-णीचा० पम्मभंगो । भनसिद्धिया० ओषं ।

१९३ वेदने पंचणा०-छदंस०-सादासाद०-सचणोक०-उचा०-पंचंत० उ० प० क० १ अण्ण० चदुगदि० सचविघ० उ०जो० । अपचक्खाण०४-पचक्खाण०४ ओषं^ग। चदुसंज० पमच० अप्पमच० सचविघ० उ०जो० । सेसा० ओषिमंगो । जस० थिरमंगो ।

१९४, सासण० छण्णं क० चहुगदि० उ०बो० । दो आउ० चहुग० अहुविघ० उ०बो० । देवाउ० दुगदि० अहुविघ० उ०बो०। दोगदि०-ओरा०-चहुसंटा०-ओरा०-अंगो०-पंच संव०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे० क० १ अप्ण० चहुग० ऊगजीसदि० सह सत्तविघ० उ०बो० । देवग०-पंचि०-वेउ०-तेबा०-क०-समचहु०-बेउ०अंगो०-चण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-जस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० उ० प० क० १ अप्ण०-हुगदि० अहावीसदि० सह सत्तविघ०

स्वामी है जिसका भङ्ग आनतकल्पके समान है। स्वीवेद, पुरुषवेद और नीचगोत्रका भङ्ग पद्मछेदयाके समान है। भट्योमें ओषके समान भङ्ग है।

१९३. वेदकसम्बन्धि जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असाता-वेदनीय, सात नोकाया, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उस्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? सात प्रकारके कर्मोका वन्य करनेवाला और उरकृष्ट योगसे युक्त अन्यतर वार गांतका जीव उक्त प्रकृतियोंके वस्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। अत्ररयाख्यानावरणज्ञ और प्रत्यक्यानावरण चतुष्कका भङ्ग ओषके समान है। चार संज्वलनके उरकृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और उस्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अग्र मत्त संयत जीव है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। यक्षा-कीर्तिका भङ्ग स्विराफ्निकिके समान है।

१६४. सासादनसम्बन्धि जीवोंमें छह कर्मों के च्ह्नप्ट प्रदेशवन्थक। स्वामी च्ह्नप्ट योगवाला चार गितका जीव है। दो आयुकों के च्ह्नप्ट प्रदेशवन्धक। स्वामी आठ प्रकारके कर्मों का वन्य करनेवाला और उह्नप्ट योगसे युक्त वार गितका जीव है। देवाबुके व्हन्नप्ट प्रदेशवन्धक। स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंक। वन्य करनेवाला और उह्नप्ट योगसे युक्त दो गितका जीव है। हो गित, औदारिकरारीर, वार संस्थान, औदारिकरारीर आङ्गोपाङ, पाँच संहनन, दो आगुच्यों, अध्यास विद्यायोगित, दुभैग, दुःबद और अनादेयके वह्नप्ट प्रदेशवन्धक। स्वामी कीन है ? नामकर्मको चनतीस प्रहृतियोंके साथ साव प्रकारके कर्मोंक। वन्य करनेवाला और उहन्नप्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गितका जीव चन्नुक स्वर्शका स्वामी है। देवगित पञ्चित्रप्रजाति, वैक्रियकरारीर, तैजसशरीर, कार्मणगरित, समयनुरक्ष-संस्थान, वैक्रियकरारीर आङ्गोपाङ, वर्णचुक्त, वेबगरायुप्यों, अगुकल्युच्युच्छ, प्रशस्त संस्थान, वैक्रियकरारीर आङ्गोपाङ, वर्णचुक्त, वेबगरायुप्यों, अगुकल्युच्युच्छ, प्रशस्त संस्थान, विक्रियकरारीर अगुकल्युच्य और तिमाणके चल्नुष्ट प्रवेशवन्यक सामी कीन है शितकमक्षेत्र अद्यास प्रवाद के स्वर्णच क्यां स्वर्णच करनेवाला और उन्नष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके वल्लुष्ट प्रवेशवन्यक स्वर्णच करनेवाला और उन्नष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके वल्लुष्ट

१. आ॰ प्रती अपवस्ताग० ४ स्रोधं इति पाठः ।

उ०जो० । उजोव० उ० प० क० १ अण्ण० चदुगदि० तीसदिणामाए सह सत्त्रविष० उ०जो० ।

१९५. सम्मामिच्छा० छण्णं क० उ० प० क० ? अण्ण० चहुरादि० सचिषिष० उ०जो० । मणुसगदिपंचग० देव० णेरह० एगुणतीसदि० सह सचविष० उ०जो० । सैसं दुगदि० अहाबीसदि० सह सचविष० उ०जो० ।

१९६. सण्णी० ओधं। णवरि श्रीणगिद्धिदंडओ अष्ण० चदुगदि० मिच्छादि० पजन० सत्तविभ० उ०जो०। एवं सञ्चाणं। असण्णीसु पंचणा०दंडओ उ० प० क० १ अष्ण० पंचि० सञ्चाहि० सत्तविभ० उ०जो०। एवं सञ्चाणं। आहारा० ओधं। अणाहारा० कम्महगमंगो।

एवं उकस्ससामित्तं समत्तं।

१९७. जह० पगर्द। दुवि०—ओषे० आदे०। ओषे० पंचणा०-णवर्दसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचुचागो०-पंचंत० ज० प० क० १ अष्ण० सुहुमणिगोदजीवअपज्ञचगस्स' पदमसमयतच्मवत्यस्स जहण्णाणे प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है १ नामकर्मकी तीस प्रदेशवन्यका स्वामी है। उद्योतक उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है १ नामकर्मकी तीस प्रकृतिवींके साथ सात प्रकारके कर्मीका वन्य करनेवाडा और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उद्योतक उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है।

१९५. सन्यिम्ययादृष्टि जीवोंमें छह कमें के व्हुट प्रदेशवन्यका खामी कीत है ? सात प्रकारक कमोंका वन्य करतेवाळा और वह्नुट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव वक्त कमोंके वह्नुट प्रदेशवन्यका खामी है। मृत्युयगतिपञ्चक वह्नुट प्रदेशवन्यका सामी नाम-कमेंकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारक कमों का वन्य करतेवाळा और व्हुट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी है। श्रेष प्रकृतियोंके उन्हुट प्रदेशवन्यका खामी नामकमेंकी अद्वारह प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारक कमोंका वन्य करतेवाळा और व्हुट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी है। श्रेष प्रकृतियोंके वन्य करतेवाळा और व्हुट योगसे युक्त दो गतिका जीव है।

१९६. संही जीवोंमें ओघके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि स्थानगृद्धि दण्डक के उत्तृष्ट प्रदेशकर्यका स्वामी सात प्रकारके कर्मीका बन्य करनेवाळा और उत्तृष्ट योगसे शुक्त अन्यवर चार गतिका पर्योग मिख्यादृष्टि जीव है। इसी प्रकार सब कर्मों के विषयमें जानाना चाविए। असंही जीवोंमें पीच हानावरणरण्डक उत्तृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? सब पर्योगियोंसे पर्योग हुआ, सात प्रकारके कर्मी का बन्य करनेवाळा और उत्तृष्ट योगसे शुक्त अन्यवर पद्धीनृत्य जीव उक्त दण्डकके उत्तृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार सब कर्मीका उत्तृष्ट स्वामित्व समझना चाहिए। आहारक जीवोंमें ओघके समान भक्त है। स्वाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भक्त है।

इस वकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

१९७. जयन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— ओप और आदेश। ओपसे पाँच बाताबरण, नौ दर्शनाबरण, दो देदनीय, मिध्याल, सोख्य कथाय, नौ नोक्याय, नीच्याय, खबगोज और पाँच व्यन्तरायके जयन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कौन है? जयन्य योगसं युक्त और जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाळा व्यन्यतर प्रथम समयवर्षी तक्रकस्थ

आ•मतौ --णिगोद्भपक्ततगस्स इति पाठः ।

पदेसबंधे बहुमाणगस्स। णिरय-देवाऊणं ज० प०इं० क० ? अण्ण० असिष्णि० पंचि०
पोडमाणगस्स अहविघवं० जह०जो० ज० प०वं० वहू०। तिरिक्खाउ०-मणुसाउ० ज०
प० क० ? सुहुमणिगोदजीवअपञ्ज० खुद्दामवग्गदणतियितमागस्स पढमसमए ^प
आजगर्षधमाणस्स जह०जो०। णिरयग०-णिरयाणु० ज० प० क० ? अण्ण० असिष्ण०
पंचि० घोडमाण० अहावीसिद० सह अहविघ ० ज०जो०। तिरिक्ख०-चहुजादिओरा०-तेजा०-क०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४उज्जोव-दोविहायगदि-तस०४-धिरादिछयुग०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० सहस्मणिगो० अपञ्ज० पढमस्यअाहारगस्स पढमसम्ययन्यस्स तीसदिणामाए सह सत्तविघ० ज०जो०। समुस्य-मणुसाणु ज० प० क० ? अण्ण० सहस्रणि० अपञ्ज०
पदमस०तव्यव्य० एगुणतीसिद० सह सत्तवि० ज०जो०। देवग०-वेउ०-वंगो०देवाणु० ज० प० क० ? अण्ण० मणुसा० असंज० पढमस०तव्यव० एगुणतीसिद०
सह सत्तविष० ज०जो०। एग्रंदि०-आदाव-शवर० ज० पढमस०तव्यव० एगुणतीसिद०

सुच्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायु और देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, जघन्य योगसे युक्त और जघन्य प्रदेशवन्धमें अवस्थित अन्यतर असंज्ञी पञ्चीन्द्रय घोटकमान जीव उक्त दो आयुओके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। तिर्यख्वायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? क्षज्लकभवप्रहणके तृतीय भागके पहले समयमें आय कर्मका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सुदम निगोद अपर्याप्त जीव उक्त दो आयुओं के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। नरकगति और नरकगत्यानुपर्विके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी अद्राईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कमीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी पद्धोन्द्रय घोट? मान जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। तिर्युख्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, ओदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुरुक, तिर्यक्कास्यान-पूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मको तीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला, जधन्य योगसे युक्त, प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर सुद्दम निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाळा और जधन्य योगसे यक्त प्रथम समयवर्गी तद्भवस्थ अन्यतर सक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियांके जछन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, वैक्रियिकशर्रार, वैक्रियिकशरीर अक्रोपाझ और देव-गत्यानपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर असयतसम्यर्ग्द्र सनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। एकेन्टियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकमंकी

१. घा॰प्रतौ तदियभागस्स तदियसमण् इति पाठः । २. घा॰प्रतौ सह सत्तविध॰ इति पाठः ।

पदमस्तातस्मवः छन्नीसदिः सह सत्तविषः जञ्जोः । आहारः र नः पः कः १ अण्णः अप्पमत्तः एकत्तीसदिः सह अद्वविषः घोडमाणः जञ्जोः । सुद्दुमः अपञ्जः साधारः जः पः कः १ अण्णः सुद्दुमः अपञ्जः पटमसः तस्भवः पणुषीसदिः सह सत्तविः जञ्जोः । तित्यः जः पः कः १ अण्णः देवः णेरहः पटमसः तस्भवः तीसदिः सह सत्तविषः जञ्जोः ।

१९८. णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसकसा०-णवणोक०दोगोद०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमस०तन्भव०
जह०जो०। तिरिक्खाउ० ज० प० क० ? अण्ण० घोलमाण० अद्वविघ० ज०जो०।
मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० अद्वविघ० घोलमाण० ज०जो०।
तिरिक्ख०-पंचि०-तिण्णिसरीर-छम्संठा०-ओरा०ग्रंगो०-छम्संघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०अगु०४-उओ०-दोविद्दा०-तस४-धिरादिछयुग०³-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण०
असण्णिपच्छा० पढमस०आहार० पढम०तन्भव० तीसदि० सद्द सत्तवि० ज०जो०।

१९८. नारिक्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिष्यात्व, सोलह कपाय, नी नोकपाय, दो गोत्र और पाँच अत्तरायके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है ? ज्ञान्य प्रयोगवाला और असींड्रायोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्जी तद्भवस्य अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। तिर्वञ्चायुके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोठमान जोव विव्ज्ञायुके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। मतुष्यायुके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और घोठमान योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सन्यन्द्रांट जीव मतुष्यायुके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। तिर्वञ्चारीत, पञ्चित्रियज्ञाति, तीन शरीर, छह संस्थान, आंदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहमन, वर्णचवुक्क, विव्ज्ञमात्वातुर्वी, अगुरुरुयुक्तुक्क, च्यांत, दो बिह्योगीति, प्रसम्वपुक्त, स्विर आपि छह युगल ओर निर्माणके जघन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है? असींक्रयोंमेसे आकर उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्जी तद्भवस्य, नामकर्मकी तीस

१. आ॰प्रतौ सत्तविष० उ०जो० इति पाठः । २. आ॰प्रतौ तस थिरादिक्रयुग इति पाठः ।

मणुस०-मणुसाणु० तिरिक्खगदिमंगो। णवरि एगुणतीसदि० सह सत्तविष० ज०जो० । तित्वा ज० प० क० ? अण्ण० असंजद० पहम०आहार० पहम०तम्भव० तीसदि० सह सत्तविष० ज०जो० । एवं पहमाथ । विदियाए तिदयाए सव्वपगदीणं ज० प० क० ? अण्ण० मिन्छा० पहम०आहार० पहम०तम्भव ज०जो० । तित्वा ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० तीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० । आउ० णिरयोधं । चउत्वीए पंचमीए छद्वीए तं बेव । णवरि [तित्वायं वज० । सत्तमीए एवं चेव । णवरि] मणुस०-मणुसाणु ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० एगुण-तीसदि० सह सत्तावि० जह०जो० । उचा० ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० जन्नावा ज० प० क० ?

१९९, तिरिक्ख॰-एर्इदि०-सुडुम०-पञ्ज०-अपज०-पुट०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसि च सुडुमपञ्जचापञ्ज०-वणष्कदि-णिगोद-सुडुमपञ्जचापञ्ज०-कायजोगि०-असंज० ³-

प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका खामी है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपर्वीका भक्क तिर्युक्तगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाले जघन्य योगसे युक्त जीवके यह स्वामित्व कहना चाहिए। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर असंयतसम्यग्द्रप्रि नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार पहली पृथ्वीमें जानना चाहिए। दसरी और तीसरी प्रधिवीमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि जीव सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थक्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि घोळमान जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। चौथी, पाँचवीं और छठी पृथिवीमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थद्वर प्रकृतिको छोड़कर जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी जनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाळा और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर असंयतसम्यन्दृष्टि घोळमान जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य योगसे यक्त अन्यतर असंयत सम्यन्दृष्टि जीव उचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१९९. तिर्थञ्च, एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय सुरुम और उनके पर्याप्त अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, अलकायिक, अनिनकायिक और वायुकायिक जीव तथा उनके सुरुम और पर्याप्त अपर्याप्त, बनस्पतिकायिक और निगोद तथा उनके सुरुम और पर्याप्त अपर्याप्त, काययोगी, असंयत,

१. ता॰प्रतौ घोड॰ प्युणतीसं॰ इति पाठः। २, ता॰प्रतौ घोड ज॰जो॰ इति पाठः।

ता॰मा॰प्रत्योः काजोगि खदुंस॰ कोचादि ४ असंज॰ इति पाठः।

अचक्तु ०-भवसि०-आहार० ओघं।

२०१. मणुसेसु छण्णं ज० प० क० १ अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमस०-

अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भ**ङ्ग है** ।

२००, पद्धनितय तिर्युख्य और उनके पर्याप्तकोंमें ओघके समान भक्त है। इतनी बिहोषता है कि प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी जीव जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। दो आयुओके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? क्षाल्लक भवप्रहणके लुतीय त्रिभागके प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर असंही अपर्याप्त जीव उक्त दो आयओंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी अन्यतर अट्टाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर असंयतसम्यन्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। मात्र पर्याप्तकोंमें चार आयओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंझी घोलमान तिर्येख उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका वामी है। पद्मेद्रिय तिर्यक्क योनिनी जीवोंमें वहीं भक्क है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक **ृहके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अहाईस प्रकृतियांके साथ आ**ठ प्रकारके कमोंका बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर असंझी घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें ओघके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि इनमें असंज्ञी पञ्जीन्द्रय जीवके जघन्य स्विमस्य कहना चाहिए। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्थावरोंमें अपनी अपनी जातिमें तथा बादर निगोदमें प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जायन्य योगवाले जीवके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए।

२०१. मतुष्योंमें छह कर्मी के जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? असंक्रियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ, प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और

१. ता०प्रती घोडमाणस्स इति पाठः । २. आ । प्रती अण्ण० अद्वावीसदि० इति पाठः ।

आहार० पढमस०तस्मव० ज०जो० । णिरयाउ० अ० प० क० ? अण्ण० भिच्छा० घोलमाण० अहवि० ज०जो० । तिरिक्छा०-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० अपज्ज० सुद्दाम० तदियतिमाग० पढमसमयआउमवंघ० ज०जो० । देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० घोलमा० अहविच० ज०जो० । णिरयम०-णिरयाणु० ओघं । असिण्णि चि ण] माणिदल्वं । तिरिक्छानीददंडओ मणुसगदिदंडओ प्रदेदिव-दंडओ सुदुमदंडओ ओघं । णविर सब्बाणं असिण्णिप्छानदस्स चि भाणिदल्वं । देवगदि०४-तित्थ० ज०प० क० ? अण्ण० सम्मादि० पढम०आहार० पढम०-कभव० एगुणतीसदि० सह० सच्चिघ० ज०जो० । आहार०२ ओघं । एवं पज्जनाणं पि । णविर तिरिक्छ०-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० घोल० ज०जो० । देवाउ० सम्मादि० मिच्छादि० घोल०। मणुसिणीसु एवं चेव । णविर देव-गदि०४-अहारदुग-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० अप्यमच० एककतीसदि० र

जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मी के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्थामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि घोलमान मतुष्य नरकायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जाय और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? क्षुल्छकभवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अपर्याप्त मनुष्य उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाळा और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि घोलमान मनुष्य देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकर्गात ओर नरकगत्यानुपूर्वीका भक्क ओघके समान है । मात्र असंबी ऐसा नहीं करना चाहिए । तिर्युक्कगतिदण्डक. मनुष्यगतिदण्डक, एकेन्द्रियजातिदण्डक और सूक्ष्मदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन सबका जघन्य स्वामित्व असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुए मनुष्यके कहना चाहिए। देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है। प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयत सम्बन्द्देष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकता भक्न ओषके समान है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्राय और मनुष्यायके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिध्याहिष्ट घोळमान जघन्य योगवाला जीव उक्त दो आयुओं के जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी सम्यग्हिष्ट और मिध्यादृष्टि घोळमान जीव है। मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार भक्क है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करमकृतिके जपन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाळा और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रसत्तसंबत जीव

ता०आ०प्रत्योः मिच्छा० सोखस० बहुवि० इति पाठः । २. ता०आ०प्रत्योः वण्ण० धपळत्त० वृक्ष्मीसहि० इति पाठः ।

सह अट्टवि॰ विज्ञानि। मणुसः अपञ्जः पंचणाः ज्यवस्ताणः दोवेदः भिष्ठः-सोलसकः ज्यवणोकः दोगोः पंचतः विज्ञानि कः १ अष्णः असण्णिपच्छागदस्स नि माणिदच्वं। एवं सञ्चपगदीणं। दोत्राउः सुद्दाः ओषं।

२०२. देवेसु णिरयोम् । णवरि एइंदि०-आदाव-धावर० ज०^२ प० क० १ अण्ण० असण्णिपच्छा० पढम०तब्मव० छम्बीसदि० सत्तवि० ज०जो० । एवं भवण०-वाण० । तित्य० वज्ञ० । जोदिसि० तं चेव । णवरि पढमसमयतब्भवत्यस्स नि भाणिदव्यं ।

२०३. सोधम्मीसाण० पंचणा०-दोवेदणी०-उचा०-पंचंत० ज० प० क० १ अण्ण० सम्मा० मिच्छा० पहम०आहार० पढम०तक्षव० ज०जो०। णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णोचा० ज० प०क० १ अण्ण० मिच्छा० पढम० ज०जो०। दोआउ० णिरयमंगो।तिरिक्स०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्साणु०-उज्ञो०-अप्पस०³-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज०प०क० १ अण्ण० मिच्छा० पढम० तीसदि० सह

उक्त प्रकृतियों के जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। मनुष्य अपयोमकों में पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नी नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? असिंझयों मेंसे आकर उत्पन्न हुआ अन्यतर मनुष्य अपयोग उक्त प्रकृतियों के जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है ऐसा यहाँ कहना वाहिए। इसी प्रकार सब प्रकृतियों का जयन्य स्वामिस्व कहना चाहिए। दो आधुआंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी ओपके समान क्षुल्लक भवमहणके तृतीय त्रिभागका प्रथम समयवर्ती जीव है।

२०२. देवोंमें नारिक्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति आतप और स्थावरके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? असंक्षियोंमेंसे आकर उराक हुआ, प्रथम समयवती तद्भवस्य, नामकर्मको छत्रवीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकृत कर्मोंका वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशका स्वामी है। इती प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। व्योतिषयोंमें वहीं भङ्ग है। इतने त्रीयक्ष्टर प्रकृतिकों छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए। ब्योतिषयोंमें वहीं भङ्ग है। इतनो विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थके कहना चाहिए।

२०२. सोधर्म और ऐरानक्ष्ट्यमें पाँच ह्वानावरण, दो वेदनीय, उद्यगोत्र और पाँच अन्तरायके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती सद्भवस्य और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्याहिष्ठ और सिव्याहिष्ठ जीव उक्त प्रकृतियाँके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। तो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोजह क्षणाय, ने नोक्षणाय और तीचनीत्रके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्याहिष्ठ उक्त प्रकृतियाँके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। तो आयुआंका मङ्ग नारिक्योंके समान है। तियंक्क्याति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, वियंक्क्यातातुपुर्वी, ज्याते, अप्रशस्त विद्यायोगित, दुभंग, दुभ्वर और अनादेयके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, नाकक्रमंकी तीस प्रकृतियाँके साथ सात प्रकारके कर्मोका बन्य करनेवाठा और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर सिव्याहिष्ट

१. ता॰क्षा॰प्रत्योः सह सत्तवि॰ इति पाठः। २. ता॰प्रतौ आदा॰ याव॰ ज॰ इति पाठः।

ता०प्रतौ तिरिक्खाणु० उ०जो०। प्रप्य० इति पाठः।

सचिषक जञ्जो । मणुस०२-तित्य० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मादि० पहम० तीसदि० सह सचिव० जञ्जो० । [एइंदियदंडओ० जोदिसिमंगो० !] पंचि०-तिष्णासरीर-समचदु०-ओरा०अंगो० '-वजारिस०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्य०-तस०४-धिरादितिष्णियु०-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण०सम्मा० मिच्छा० पढम० तीसदि० सह सचवि० ज०जो० । सणकुमार याव सहस्सार चि एवं चेव । णवरि थावरतिगं वजा ।

२०४. आणद् याव उवरिमगेवजा चि सहस्सारमंगो। णवरि तिरिक्खाउ०-विरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उजो० वज्ञ। मणुस०-पंचि०तिष्णिसरीर-समच०-ओरा०-द्यंगो०, -वजारि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अग्र०४-पसत्य०-तस०४-थिरादितिष्णियु०-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्य० ज० प० क० १ अण्ण० सम्मादि० पटम० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। पंचसंटाण्टंडओ ज० प० क० १ अण्ण० मिच्छा० पटमस० एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। अणुदिस याव सवद्व चि पंचणा०-

उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। मनुष्यगतिद्विक और तीर्थक्कर प्रकृतिके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्गी तद्भवस्य, नामकमेकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कमीं का बन्ध करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्बन्धि उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। एकेन्द्रियजातिवृष्टकका अङ्ग ज्योतिय देवोंके समान है। पञ्चोन्द्रयज्ञाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, आंदारिक- शरीर आङ्गीपाङ्ग, बक्षपेनाराचर्यहन्त, वर्णचतुरुक, अगुरुख्यु वतुष्क, प्रसस्त विद्योगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगढ, सुभग, सुस्वर, आदेव और निर्माणके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, नामकमेकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्य करनेवाळा और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्बन्दिष्ठ और सिम्पाइटि उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। सनकुमारसे लेकर सहस्त्रार करनतक है देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विद्येषता है कि स्वावर्रिकको छोक्कर अपन्य स्वामित्व कहना चाहिए।

२०४. आनतसे लेकर उपरिम प्रेवेयकत्वक देवोंमें सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्रेख्वायु, तिर्युक्कात्व, विर्युक्कात्वयुप्यी और उद्योतको छोड़कर जम्म स्वाम्स्य कहना चाहिए। मनुस्याति, पञ्चीन्त्रयज्ञाति, तीन शरीर, समस्वरुख-संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपङ्ग, वज्रव्यनात्यसंहम्बन, वर्णवनुष्क-मुट्युक्तरातुपूर्वी, अगुरु-कुषुवन्त्व, प्रशस्तविद्यायाति, प्रसवनुष्क, सिर आदि तीन युगक, सुम्मा, सुक्य, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्गर्वे जघन्य प्रदेगक्यका स्वामी कीन है ? प्रयम समयवर्ती तद्वरव्य, नामकर्मकी तीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारक कर्मोंक। कम्य करनेवाला और जचन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यवद्यी तद्व विद्युक्त स्वामी युक्त अन्यतर सम्यवद्यी तद्व विद्युक्त क्षेत्रयात्र पुक्त कर्मका स्वामी है। वास्य समयवर्ती तद्व विद्युक्त स्वामी जनति प्रकृतियांके जचन्य प्रदेशक्यक। स्वामी कोन है ? प्रयम समयवर्ती तद्व विद्युक्त स्वामी केनतीय प्रकृतियांके साथ सात प्रकारक कर्मोक। क्ष्य करनेवाला और जचन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यवद्यीके साथ सात प्रकारक कर्मोक। क्ष्य करनेवाला और जचन्य योगसे युक्त अन्यतर सिस्थादृष्ट क्ष प्रकृतियोंक जयन्य प्रदेशक्यक स्वामी है। अनुदिक्तसे

ता॰पतौ तिष्णिसरी॰ समक॰ घोरा॰अंगो॰, घा०पतौ तिष्णिसरीर सुदुम॰ कोरा॰अंगो॰
 ता॰पतौ तिष्णिसरीर बोरा॰अंगो॰ इति पाठः।

छर्दस०-दोबेद०-[बारसक०-सत्तणोक०-] उचा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० पढस० ज०जो०। आउ० ज० प० क० ? अण्ण० घोलमाण० आहविघ० ज०जो०। मणुसगदिदंडओ आणदर्मगो।

२०५. सन्वनादराणं सन्वाणं ओघं। णवरि अप्पप्पणो जादी भाणिदन्वं। सन्व-पज्जनगणं दोआउ० घोलमाण० अहनिष० ज०जो०। एवं विमलिदियाणं। पंचिदिय-पंचिदियपज्जन० ओघं। णवरि असण्णि ति भाणिदन्वं। पज्जने आउ० पंचि०-तिरि०पज्जनमंगो। नस० ओघं। णवरि बेहंदियस्स नि भाणिदन्वं। एवं पज्जनयस्स। दोआउ० असण्णि० घोलमाण० ज०जो०। दोआउ० बेहंदि० घोल०। अपज्जनगस्स जपज्जनमंगो। णवरि बेहंदि० पटम० ज०जो०। दोआउ० अपज्ज० बेहंदि० भाणिदन्वं।

२०६. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-साहासाद०-उचा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० चटुग० सम्मा० मिच्छा० घोलमा० अष्टविघ० ज०ओ०। णवदंस०-

लेकर सर्वार्धासिंदि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, बारह क्याय, नी नोक्याय, उन्नगोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती वह स्वध्य और ज्ञचन्य योगसे युक्त अन्यतर जीव स्वामी है। आयुक्ते ज्ञचन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोका क्या करनेवाला और ज्ञघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोजमान जीव आयुक्ते ज्ञचन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। मतुष्यगतिद्गण्डकका भङ्ग आतत क्रमके समान है।

२०५. सव बादरों में सब म्हातियों का भङ्ग ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी जाति कहनी चाहिये। सब पयोग्रहोंमें दो आयुओं के जयन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकार के कर्मोंका क्य करनेवाला और जयन्य भोगासे युक्त अन्यत्वर घोठमान जीव है। इसी प्रकार विकठिन्द्रयों में जानना चाहिए। पंचिन्त्रय और पंचेन्द्रिय वर्षामकों में ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें असंहों जीव जयन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पर्याप्तकों में आयुक्त मान के एचेन्द्रिय विश्व पर्याप्तकों समान है। त्रसीं ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें जयन्य प्रदेशबन्धका स्वामी द्वीन्द्रिय जीव है। इतनी क्षित्रय है कि इनमें जयन्य प्रदेशबन्धका स्वामी द्वीन्द्रय जीव है। सात दो आयुओं के जयन्य प्रदेशबन्धका स्वामी पोठमान जयन्य योगवाला असंही जीव है। वार्व विश्व अपर्याप्तकों अपर्याप्तकों अपर्याप्तकों समान मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जयन्य योगासे युक्त इीन्द्रिय जीव है। इतनी क्षेपता है कि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जयन्य योगसे युक्त हीन्द्रिय जीव ज्ञान्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओं के ज्ञान्य प्रदेशबन्धका स्वामी हो। हो श्री अप्रथों क्षेपता चरिए।

२०६. पॉच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, धातावेदनीय, अधातावेदनीय, उद्योगित और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंक वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त भन्यतर चार गतिका सम्यग्हित और सिप्यादिष्ट घोलमान जीव उक्त त्रकृतियाँके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है। नौ दर्शना

३. ता•भा•प्रत्योः पञ्जतो इति पाठः ।

सिच्छ०-सोल्सक०-णवणोक०-णीचा० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छा० घोछ० अद्दिविष ज०जो० । णिरपाउ० ज० प० क० ? अण्ण० तिरिक्स अणुस० मिच्छा० घोछमा० अद्दिविष ज०जो० । तिरिक्साउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० मिच्छा० अद्दिविष ज०जो० । येषाउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मा० सिच्छा० अद्दिविष ज०जो० । देषाउ० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदियस्स सम्मा० सिच्छा० घोछ० अद्दुविष ज०जो० । णिरपादिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० घोछ० अद्दुविष ज०जो० । णिरपादिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० घोछ० अद्वाविसदि० सह अद्विषण ज०जो० । तिरिक्स ०-पंचरंडा०-पंचरंष०-तिरिक्साणु०-उजो०-अप्पाद्य०-द्यार-अणादे० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० घोल० तीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० । देवगदिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरह० सम्मा० तीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० । देवगदिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरह० सम्मा० तीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० । च्यंदि०-आदाव-थाव० ज० प० क० ? अण्ण० तियदि० छन्वीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० ।

करण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे यक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। नरकायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तिर्येख्व और मनुष्य मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यक्कायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौत है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव विश्वेद्धायुके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सतुःब्यायुके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाळा और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यन्दृष्टि और मिध्यादृष्टि जीव मनुष्यायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका सम्यन्दृष्टि और सिथ्यादृष्टि घोळमान जीव देवायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अडाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका घोळमान जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यक्रागति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ भाठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोछ-मान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिद्विक और तीर्थहर-प्रकृतिके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यन्दृष्ट् देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। देवगतिद्विकके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर सम्यन्द्रष्टि मनुष्य देवगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी छन्नीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त ब॰बो॰ । तिष्णिबादि॰ ज॰ प॰ क॰ ? अष्ण॰ दुगदि॰ तीसदि॰ सह अहिषि॰ ज॰जो॰ । पंचि॰-ओरा॰-समचदु॰-ओरा॰बंगो॰-बजार॰-वण्ण॰४-अगु॰४-पसत्थ॰-तस॰४-थिरादितिष्णायु॰-सुमग -सुस्सर-आदे०-णिमि॰ ज॰ प॰ क॰ ? अष्ण॰ चदुग॰ सम्मा॰ मिन्छा॰ तीसदि॰ सह अहिषि॰ घोल॰ ज॰जो॰ । बेडिबि॰-आहार॰-तेजा॰-क॰-दोअंगो॰ ज॰ प॰ क॰ ? अण्ण॰ अप्यमच॰ एकत्तीसदि॰ सह अहिष॰ घोल॰ ज॰जो॰। सुदुम-अपज॰-साधार॰ ज॰ प॰ क॰ ? अण्ण॰ दुगदि॰ पणुवीसदि॰ सह अहिष॰ ज॰जो॰।

२०७. विचजो०-असबमोस० पंचणा०-णवर्दस०-दोबेद०-सिच्छ०-सोस्सक०-णवणोक०-दोगो०-पंचत० ज० प० क० १ अण्ण० बेइंदि० अद्वविष० घोल० ज०जो० । सेसाणं दंडगाणं णाणावरणभंगो। णवरि बेउन्वियछकं जोणिणि०भंगो। दोआउ००-आहारदुगं ओघं। तित्थ० ज० प० क० १ अण्ण० देव० णेरह० तीसदि० सह अद्वविष० ज०जो० ।

अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वासी है। तीन जातिके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वासी कीन है ? नासकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कमीं का बन्ध करनेवाल और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके कमीं का बन्ध करनेवाल और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके राज्यन्य प्रदेशवन्यका स्वासी है। चेनिन्द्रयज्ञाति, जीदारिकरारीर, समज्वत्स्वसंध्यान, अविदारिकर रारीर आङ्गोपाङ्ग व अर्थभनाराचसंद्रनन, वर्णचवुष्क, अगुरुत्वधुष्वतुष्क, प्रशस्त विद्यायोगित, प्रस्चुत्वक, स्थर आदि तीन युगल, सुभम, सुबर, आदेश और निर्माणके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और घोळमान जयन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यन्दृष्टि और मियवादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? नामकर्मकी इक्तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य बरनेवाला और घोळमान जयन्य योगसे युक्त अन्यतर अग्रसत्तरंव जीव उक्त प्रकृतियोंके अधन्यतर अग्रसत्तरंव जीव उक्त प्रकृतियोंके अधन्यतर अग्रसत्तरंव जीव उक्त प्रकृतियोंके अधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। सूस्म, अपवाम और साधारणके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है? नामकर्मकी प्रवीस प्रकृतियोंके आप अपनस्तरंव जीव उक्त प्रकृतियोंके अधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। व्यवस्त दोन करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर रो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके अधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। व्यवस्त दोन विका जीव उक्त प्रकृतियाल साथ शित है न नामकर्मकी प्रवीस प्रकृतियोंके अधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है।

२०७. वचनयोगी और असत्यम्यावचनयोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिश्यात्व, सोळह कपाय, नी नोक्षाय, हो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी छीन हैं ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर द्वोन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशकाका स्वामी है। शेष दण्डकांका भङ्ग झानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि विकायकपर्कका भङ्ग योगिती जीवोंके समान है। आयुचतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग ओपके समान है। तीर्थेहर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका वस्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी है।

ता॰प्रतौ-तिण्गिषु॰ सुभग-सुभग॰ इति पाठः । २. ता॰प्रतौ आहार० २ तेजाक॰, आ॰प्रतौ प्राहारदुगं तेजाक॰ इति पाठः । ३. आ॰प्रतौ जोणिनिभंगो । आउ॰ इति पाठः ।

२०८. ओरालि०का० पंचणा०-णबदंसणा०-दोबेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णबणोक-[दो] गोद०-पंचंत० ज० प० क० १ जण्ण० सुदुमणिगोदजीवस्स पदमसमय-सरीरपजाचीदि पजाचदस्स ज०जो० सत्तविष्ठ० । शिरय०-देवाउ० ओधं । तिरिक्ख-मणुसाउ० ज० प० क० १ जण्ण० सुदुमणिगोद० अद्विविष्ठ ज०जो० । शिरय०-शिरयाणु० ओधं । देकादिपंचा० ज० प० क० १ जण्ण० मणुस० असंज० पदमसमय-सरीरपजाचीदि एज० एगुणतीसदि० सह सत्तविष्ठ० ज०जो० । सेसाणं दंढमादीणं गणा०भंगो । ओरालियमि० ओधं । गविर देवगदिपंचग० ज०प० क० १ जण्ण० मणुस० सम्मा० पदम०तम्ब० ज०जो० एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ।

२०९. बेउव्यियका० पंचणा०-सादासाद०-उचा०-पंचत० ज० प० क० १ अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० पढमसमयसरीर पञ्जनीए पञ्जनगदस्स ज०जो० । शबदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-गवणोक०-गीचा० ज० प० क० १ अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० पढमसमयपञ्जर्वे ज०जो० । तिरिक्साउ० ज० प० क० १ अण्ण० देव०

२०९. बैकिविककाययोगी जोवोंमे पाँच क्षानावरण, सातावेदनांय, असातावेदनांय, उद्याप्त और पाँच अन्तरावके जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्वाप्तिसे पर्वाप्त हुआ और जचन्य योगसे युक्त अन्यत्तर सम्यग्देष्ट और मिच्याष्टिष्ट देव व नारकी उक्त प्रकृतियोंके जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी है। नी दर्शनावरण, मिय्यात, सोछह कथाय और नीचगोजके जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती पर्वाप्त और जघन्य प्रोप्त कीर जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी कीन है ? अयम समयवर्ती पर्वाप्त और जघन्य प्रोप्त कीर जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकृतियोंके जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी है। विर्युक्षायुके जघन्य प्रदेशकण्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकृतियों के जचन्य प्रदेशकण्यका स्वामी है।

२०८. औदारिककाययोगी जोवांमें पाँच झातावरण, नी दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्याव्य, सीखह क्षाय्य, नी नोक्याय, हो गोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञयन्य प्रदेशवन्यका स्वायी कीन है? प्रथम समयमें शरीरपर्वाप्तिसे पर्याप्त हुआ, जयन्य गोगसे युक्त और सात प्रकारिक क्षाय्य कि कीर सात प्रकारके कर्मीका क्ष्य करतेया अर्थ प्रदेश क्ष्य करतेया के ज्ञयन्य प्रदेश क्ष्यका स्वायी है। नरकायु और देवायुका मङ्ग ओपक समान है। त्याव्याय ओर मनुष्यायुके ज्ञयन्य प्रदेशक्यका स्वायी है। अर्थ ज्ञयन्य प्रदेशक्यका स्वायी है। त्राव्यायुके आपने के ज्ञयन्य प्रदेशक्यका स्वायी है। त्राव्यायुके कार्यका प्रदेशक्यक स्वायी है। त्राव्यायुक्त कार्यका स्वायी है। त्राव्यायुक्त कार्यक्ष कर्माका क्ष्यक्ष है। वेद्य क्ष्यक्ष क्ष्यक

ता॰क्षा॰प्रत्योः पडमसमयतन्भवसरीह- इति पाटः। २. ता॰प्रती पटमसरीह (समय)
 पठक इति पाटः।

षेरह् भिच्छा । धोल अङ्कविष जिल्ला । मणुसाउ जिल्ला । तिरिक्स व्यंचसंदा । देव । पेरह सम्मा । भिच्छा । घोल अङ्कविष जिल्ला । तिरिक्स व्यंचसंदा । पंचसंप । तिरिक्स व्यंचसंदा । पंचसंप । तिरिक्स व्यंचसंदा । पंचसंप । तिरिक्स । प्राचित्र विष्ण । प्राचित्र । प्राचित्र

२१०. आहारका० पंचणा०-छदंसणा०दंडओ देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण०

करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिध्यादृष्टि घोलमान देव और नारको तिर्यक्कायुके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कमोका बन्ध करनेवाला और जबन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिध्या-दृष्टि देव व नारकी घोलमान जीव उक्त आयुके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्जगति, पाँच संस्थान, पाँच संहत्तन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जवन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कान है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सान प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर सम्यन्द्रष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुन्ना, नामकर्मकी हरूबीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वजर्षमनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर सम्यन्द्रष्टि और मिथ्यादृष्टि देव व नारको उक्त प्रकृतियोंके जवन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए जीवके कहना चाहिए।

२१०. आहारककायबोगी जीवोंमें पाँच झानाबरण और छह दर्शनाबरणदण्डक तथा देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, जघन्य

१. क्रा॰प्रती वण्ण ४ पसस्थ० इति पाटः।

घोला अङ्ग्रुविघ जिञ्जो पदमस्य सरीरपञ्ज । एवं इस्स-रिद । अरदि-सोग जिप पर कर १ अष्ण पदमस्य सरीरपञ्ज जञ्जो वस्तिय । देवगदिदंड ओ जिप पर कर १ अष्ण पदमस्य सरीरपञ्ज एगुणतीसदि सह अङ्ग्रिय जिल्जो । एवं अधिर-असुस-अजस्य । णविर सत्तिविध जञ्जो । एवं आधिर-असुस-अजस्य । णविर सत्तिविध जञ्जो । एवं आधारिम ।

२११, कम्मह० पंचणा०-गवदंस०दंडओ सुहुमणि० ज०जो०। तिरिक्खगहि-दंडओ तस्सेव तीसदि० सह सचित्र७ ज०जो०। एवं सन्वदंडमं। देवगदि०४ ज० प० क० १ अण्ण० मणुस० असंज० एगुणतीसदि० सह सचित्रिण ज०जो०। तित्य० ज० प० क० १ अण्ण० देव० णेरह० तीसदि० सह सचित्रिण ज०जो०।

२१२. इत्थिवेदेसु पंचणा॰दंडओ ज॰ प॰ क॰ ? अष्णा॰ असर्ण्णि॰ पढमस॰ ज॰जो॰ । आहारदुग-तित्य॰ मणुसि॰मंगो । सेसाणं जोणिणिमंगो । एवं पुस्सिसु । णवरि देवगदि॰४ ज॰ प॰ क॰ ? अष्णा॰ मणुस॰ पढमसमयतन्भव॰ असंज॰ एगुणतीसदि॰

बोगसे युक्त और प्रवमसमयवर्जी शरीर पर्वाप्तिसे पर्याप्त हुआ अन्यतर घोलमान जीव उक्त प्रकृतियांके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार हास्य और रतिका जमन्य स्वामिर। जाना वाहिए। अरित और रोकके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है? प्रयम समयवर्जी शरीर पर्वाप्ति से पर्वाप्त हुआ, जमन्य योगसे युक्त और सात प्रकारके कर्मोका वन्य करतेवाला अन्यतर जीव उक्त हो प्रकृतियांके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। देशगितरण्डकके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी कीन है? प्रयम समयवर्जी शरीर पर्वाप्ति हुआ, नामकमंत्रो उनतीस प्रकृतियांके साथ आत प्रकारके कर्मोका क्ष्य करतेवाला और जमन्य योगमे युक्त अन्यतर जीव उक्त रावकके जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामी है। इसी प्रकार अस्थिर, अञ्चभ और अयश्चान्तिकि जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामिर वाना वाहिए। इतनो विशेषता है कि सात प्रकारके कर्मोका क्ष्य करतेवाला और जमन्य प्रदेशकन्यका स्वामिर वाना वाहिए। इतनो विशेषता है कि सात प्रकारके कर्मोका क्ष्य करतेवाला और जमन्य वाना वाहिए।

- २११. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच झानावरण और नी दर्शनावरण दण्डक जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी जयन्य योगसे युक्त अन्यतर सूक्म निगीरिया जीव है। तिर्वञ्चगतिदण्डक जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी नामकर्मकी तीस मक्कित्वोंके साथ सात प्रशास कर्मोंका वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर सुक्ष्म निगोदिया जीव है। इसी प्रकार सक करनेवाला और जयन्य स्वासित्व जानना चाहिए। देवगतिवन्तुष्क जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसन्यन्दिष्ट सतुष्य उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। तीश्वरूरफुतिके जयन्य असंयतसन्यन्दिष्ट सतुष्य उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। तीश्वरूरफुतिके जयन्य अस्तेवनस्यन्यत्व स्वामी कीन है ? नामकर्मको तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारक कर्मों का वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी तीर्थक्टरफुतिके जयन्य प्रदेशवन्यक। स्वामी है।
- २१२. स्त्रीवेरी जीवोंमें पाँच झानावरणहण्डक जायन्य प्रदेशवायका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जायन्य योगसे युक्त अन्यवार असंझी जीव उक्त रण्डकके जायन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आहारफांडक और तीवेंह्नर अफ़्तिका भङ्ग स्त्रीण्यतियोंके समान है। इंग प्रकार पुरुषवेरी जीवोंमें जानता वाहिए। इतनी विशेषना है कि इनमें देवानियनुष्कके जायन्य प्रदेशवन्यका समामी कीन है प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, असंवतसम्बन्ध सामी कीन है प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, असंवतसम्बन्ध सामी कीन है प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, असंवतसम्बन्धही, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकार के

सह सचिव जिल्लो । तित्य ० जिल्प ० कि १ अण्य ० देव ० पढमसमय ० तीसदि० सह सचिव जिल्लो । गर्नुसमेष्ठ ओषं । गर्वार वेदन्यियङक्कं जोणिणिसंगो । तित्य ० मेरह ० पढम ० तीसदि० सह सचिव ० जन्जो ० । अवगद ० सचण्यं० ज० प० कि १ अण्या घोळ ० सचिव ० जन्जो ० । गर्वार संजलगाणं चदुविधवंघगस्स चि भाषिदन्त्रं । कोषादि०४ ओषं ।

२१२. मिइ०-सुद्द० सञ्चाणं ओषं । णविर वेड व्यिगङ्ककं जोणिणिमंगो । एवं अक्भव०-मिच्छा० । विमंगे पंचणा०दंडओ ज० चटुग० घोलमा० अद्विष० ज०को० । दोआउ० जह० दुगदिय० घोलमाण० अद्विष० ज०जो० । वेउ व्यिप् छ० ज० तिरि० मणु० घोल० अद्वावीसदि० सह अद्विष० ज०जो० । विरिक्स-गरिदंडओ ज० प० क० १ चटुग० घोल० तीसदि० सह अद्विष० ज०जो० ।

कर्मी का बन्ध करतेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर सतुष्य देवगतिचतुल्कके जधन्य प्रदेशवन्यका खागी है। तोखंड्वर प्रकृतिके जधन्य प्रदेशवन्यका खागी है। तोखंड्वर प्रकृतिके जधन्य प्रदेशवन्यका खागी कीन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मको तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करतेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर देव तीथंड्वर प्रकृतिके जधन्य प्रदेशवन्यका खागी है। व्युसकों में ओषके समान अङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्तियक्वयद्का स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मको तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकों है। अपनातवेदी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंक उधन्य प्रदेशवन्यका खागी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोंका वन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकों है जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोंका वन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर प्रोत्साम उद्योक्त करनेवाला और अपन्य योगसे युक्त अन्यतर प्रोत्साम स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मोंका वन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर प्रोत्साम स्वामी कीन है श्रात प्रकारके कर्मोंक वन्ध करनेवाला और अधन्य योगसे युक्त अन्यतर प्रोत्साम स्वामी मोहनीयके चार प्रकारका बन्ध करनेवाला जीव है ऐसा कहना चाहिए। कोधार्ति चार कथायवाले जीवों ओधक समान सक है।

२१३. सत्यक्षानी और श्रुनाक्षानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका मुझ ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि वैकिरिकपटकुका मुझ पुष्टीन्त्रय तियुंश योनिनयोंके समान है। इती प्रकार अभव्य और मिण्याटि जीवोंमें जानना चाहिए। विमङ्गक्कानी जीवोंमें पाँच झाना-वरणहण्डक जियन प्रदेशस्थका स्थामी आठ प्रकारक कर्मी हा वस्प करनेवाला और जपन्य योगसे गुक अन्यतर वार गतिका घोळमान जीव है। दो आयुऑके जघन्य प्रदेश-वन्यका स्थामी आठ प्रकारक कर्मीका वन्य करनेवाला और जपन्य योगसे गुक अन्यतर दो गतिका घोळमान जीव है। श्रेष दो आयुऑके जघन्य प्रदेशस्थका स्थामी आठ प्रकारक कर्मीका वन्य करनेवाला और जपन्य योगसे गुक अन्यतर वार गतिका घोळमान जीव है। श्रेष दो आयुऑके जघन्य प्रदेशस्थका स्थामी आठ प्रकारक कर्मीका कर्य करनेवाला और जपन्य योगसे गुक अन्यतर वार गतिका घोळमान जीव है। वैक्षित्रकपटकुक जपन्य प्रदेशस्थका स्थामी नामकर्भका अहाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारक कर्मीका वन्य करनेवाला और जपन्य योगसे गुक अन्यतर प्रदेशस्थका स्थामी की है। विश्वातिदण्डक जपन्य प्रदेशस्थका स्थामी की करने हैं। विश्वातिदण्डक जपन्य प्रदेशस्थका स्थामी कीर जपन्य योगसे गुक अन्यत्व साथ अहित्यक्षित्र पाय अहित्यक्ष करनेवाला और अपन्य योगसे गुक अन्यत्व वार गतिका घोलमान जीव है। मनुष्यगति और मनुष्यात्वानुपूर्विक जपन्य प्रदेशस्थका वार गतिका घोलमान जीव है। मनुष्यगति और सनुष्यात्वानुपूर्विक जपन्य प्रदेशस्थका वार गतिका घोलमान जीव है। मनुष्यगति और मनुष्यात्वानुपूर्विक जपन्य प्रदेशस्थका

१. ता०भा•प्रत्योः मिच्छा• असण्णि• । विभंगे इति पाठः ।

मणुस०-मणुसाणु० च० प० क० ? अष्णा० चरुम० घोल० एगुणतीसदि० सह अहु-विघ० ज०जो०। एहंदि०-आदाव०-थावर० ज० प० क० ? अष्णा० तिगदि० इञ्चीसदि० सह अहुविघ० ज०जो०। तिष्णाजादीणं ज०प० क० ? हुगदि० तीसदि० सह अहुविघ० ज०जो०। सुहुम०-अपज०-साधा० ज०प० क० ? अण्णा० दुगदि० पणुवीसदि० सह अहुविघ० ज०जो०।

२१४. आभिणि-सद-ओघि० पंचणा०-छदंसणा०-दोवेद०-बारसक०-सचणोक०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० असंजद० पढमस०तव्मव० सत्तवि० ज॰जो॰ । मणुसाउ॰ ज॰ प॰ क॰ ? अण्ण॰ देव॰ णेरह॰ घोल॰ अहुवि॰ ज॰जो॰ । देवाउ० ज० तिरिक्स० मणुस० घोल० अट्टवि० ज०जो०। मणुसग०-पंर्चि०-तिण्णि-सरीर-समचद् ०-ओरा०अंगोवंग०-वज्जरिस०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादितिण्णियु ग०-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०[ँ] ज० प० क० १ अष्ण० देव० णेर० पढमम०तब्मव० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। देवगदि०४ ज॰ प॰ क॰ ? अष्ण॰ मणुस॰ असंज॰ पढम॰तब्भव॰ एगुणतीसदि॰ सह सत्तवि॰ . स्वामी कोन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कीन है ? नामकर्मकी छन्वीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीन जातियोंके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे यक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पश्चीस प्रकृतियांके साथ आठ प्रकारके कर्मी का बन्ध करनेवाला और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका

रेश. आर्मिनवोधिकह्वानी, श्रुतहानी और अवधिक्वानी जींवोमें पाँच क्वानावरण, हार वृद्धानावरण, हो वेद्नांच, चारह कपाय, सात नोकथाय, ज्वानांव और पाँच अन्तरावके जमन्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्षी तद्भवय, सात प्रकारके कमींका बन्य करने-वाला और जयन्य योगसे पुष्ठ अन्यतर चार गतिका असंयतसम्बग्ध्य कम प्रकृतिवांके जयन्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कमींका कर्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर पोलमान देव और नारकी मुख्यायुके कमांका क्ष्य करवेतवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर पोलमान देव और नारकी मुख्यायुक्त कम्बन्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीत इक्षा क्ष्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर तिवंश्च और मनुष्य घोष्टमान जीव है। मुख्यावित, क्ष्य न्त्रियानक स्वामी तीन करीर सम्बन्ध प्रकारके कमींका विश्व प्रवास क्ष्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर तिवंश्च और समुख्य घोष्टमान जीव है। स्वामात्ति, क्ष्य न्त्रियानक, न्यान्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीत है । प्रवास समयवर्षी तद्भवस्य नामकर्मको तीस प्रश्वतिवांके साथ सात स्वामी कीन है ? प्रयस समयवर्षी तद्भवस्य नामकर्मको तीस प्रश्वतिवांके साथ सात प्रकारके कर्मोका क्ष्य प्रदेशनम्यक स्वामी कीन है ? प्रयस समयवर्षी तद्भवस्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । देवातिक प्रयस्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । देवातिक प्रयस्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । देवातिक प्रवस्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । प्रवस्त सम्बन्धका स्वामी कीन है । प्रवस्तिक प्रवस्त्र क्षयान प्रदेशनम्य प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । देवातिक प्रवस्त्र प्रवस्त प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । प्रवस्तिक प्रवस्त्र प्रदेशनम्यका स्वामी कीन है । प्रवस्तिक प्रवस्तिक स्वस्तिक स्वस्ति स्वस्तिक सम्बन्धक स्वस्तिक स्वस्तिक सम्बन्धक स्वस्तिक स्वस्तिक सम्बन्धक सम्बन्धक स्वस्तिक स्वस्तिक सम्बन्धक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्बन्धक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक सम्यस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक सम्यस्तिक स्वस्तिक स्वस्तिक

ज॰जो॰। आहारदुर्ग॰ ज॰प॰ क॰ ? अण्ण॰ अप्यमत्त॰ एकत्तीसदि॰ सह अङ्कवि॰ घोल॰ ज॰जो॰। एवं ओधिर्द॰सम्मा॰-खड्ग॰।

२१५. मणप० पंचणा० '-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-उचा०-पंचंत०दंडजो देवाउ० ज० प० क० १ अण्ण० घोल० अहुवि० ज०जो० । असादा०-अरिद-सोग० ज० प० क० १ अण्ण० पमत्त० घोल० सत्तविध० ज०जो० । पुरिस०-हस्स-रिद-भय०-दु० ज० प० क० १ अण्ण० पमत्त० अप्यमत्त० अष्टविध० घोल० ज०जो० । देवग०-पंचि०-सम्बद्ध०-जण्ण०४-देवगुणु०-अगुरु०४-पस्त्ववि०नस०४-थिर-सुम-सुम्स-अदि०-सर्क-पोर्सि०-तित्थ० ज० प० क० १ अण्ण० पमत्तापमक० घोल० एगुणतीसिद० सह अहुवि० ज०जो० । वेउ०-आहार०-तेजा०-क०-दोअंगो० ज० प० क० १ अण्ण० अप्यमत्त० घोल० एकतीसिद० सह अहुवि० ज०जो० । अधिर-असुम-अजसः व० प० क० १ अण्ण० पमत्त० घोल० उज्जो० सिद्धान-अस्त क० व० क० १ अण्ण० अप्यमत्त० घोल० एकतीसिद० सह अहुवि० ज०जो० । अधिर-असुम-अजसः व० प० क० १ अण्ण० पमत्त० घोड० उज्जोतिसं सह सत्तवि० ज०जो० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार० । सुहुमसं० छण्णं क० ज० प० क० १ करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंवतसम्यन्दि मनुष्ण देवगतिचनुष्कके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है १ नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारक कर्मों का वन्य करनेवाला और घोषमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंव जोव आहारकिङक्षक जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है । इसी प्रकार अवधिवर्दानी, सन्यन्ति और क्षायिकसम्बन्दिष्ठ जोवांमें सानता चाहिए।

२१५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायदण्डक तथा देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोछमान जीव उन्ह प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, अरति और शोकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कीन है ? सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे यक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तासंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पुरुषवेदः हास्यः रतिः भयं और जगण्याके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकु-तियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवगाँत,पक्को न्द्रियजाति,समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुरक्र, देवगरयानुपर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, ग्रुभ, सुभग, सुस्वर, आहेय, यशंकीति, निर्माण और तीर्थक्टर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नाम-कर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आङ्गोपाङ्गोंके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोडमान अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रवेशवन्धका स्वामी है। अस्थिर, अञ्चम और अयशःकोर्तिके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कमोंका बन्ध करनेवाला और जबन्य योगसे युक्त अन्यतर अमत्तसंयत घोळमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविञ्चद्धि

१. आ० प्रती खडग० । मणस० पंचणा० इति पाठः ।

अभ्या० घोल० स्रव्यिष्ठ० जञ्जो० ।

२१६. संजदासंज॰ पंचणा॰दंडओ घोत्त॰ अद्विध॰ ज॰जो॰। असादा॰-अरिद्सोम॰ जह॰ घोत्त॰ सचिध॰ ज॰जो॰। देवाउ॰ ज॰ प॰ क॰ १ अष्ण॰ घोत्त॰ अद्वविध॰ ज॰जो॰। देवगदिदंडओ जह॰ घोत्त॰ एगुणतीसदि॰ सह अद्विध॰ ज॰जो॰। अधिर-असुम-अजस० ज॰ प॰ क॰ १ अष्ण॰ घोत्त॰ एगुणतीसदि॰ सह सचिष्ठ॰ ज॰जो॰।

२१७. चक्सु० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० ज० प० क०? अण्ण० चदुर्गिदि० पढम०आहार० पढमस०-तक्मव० ज०जो०। एवं सव्वदंडगाणं एसेव आलावो। वेउव्वि०-आहारदुग-तित्य० ओषं।

२१८. किष्ण-णील—काउ० ओघं। णवरि देवगदि०४ जहण्ण० मणुस० असंज०पढम०आहार० पढम०तब्सव० अद्वावीसदि० सह सत्तविघ० ज०जो०।

संबत जीवोंमें जानना चाहिए। सूरमसाम्परायसंवत जीवोंमें छह कर्मोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्त्रामी कीन है ? छह प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर वोजमान सरमसाम्परायिक संवत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्त्रामी है।

२१६. संयतासंयत जीवोमें पाँच ज्ञानावरणवण्डक जे जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी आठ प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाला कीर व्याप्य थीगसे युक्त अन्यतर पोलमान संयतासंयत जीव है। असातावेदनीय, अर्तत और शोकके जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर पोलमान जीव है। देवायुके जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी कीन है? आठ प्रकारके करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर योलमान जीव देवायुके जपन्य प्रदेशबन्यका सामी है। देवायितपण्डक जपन्य प्रदेश वन्यका योजमान जीव देवायुके जपन्य प्रदेशबन्यका सामी है। देवायुक्त जपन्य प्रदेशबन्यका नामकाको उन्ततीस प्रकृतियाँके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर पोलमान जीव है। अध्यर, अञ्चम और अयराजीतिक जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी कीन है। नामकाकी उन्ततीस प्रकृतियाँके साथ यात प्रकारके जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी कीन है। जाम्यय योगसे युक्त अन्यतर पोलमान जीव इक्त प्रकृतियाँके जपन्य प्रदेशबन्यका स्थामी है।

२१७. चल्लुदर्शनी जीवॉर्मे पाँच झानावरण, ती दर्शनावरण, सातावेदनीय, असाता-वेदनीय, मिप्यास्त्र, सोळह रूपाय, नी नोकपाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी कीन है? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर चतुरिन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जयन्य प्रदेशक्त्यका स्वामी है। इसी प्रकार सभी एण्डकांका यहाँ आछाप है। वीक्षयिकद्विक, आहारकद्विक और तीर्यक्टर प्रकृतिका अङ्ग ओषके समान है।

२१८. कृष्ण, नीठ और कापोतठेदयामें भोषके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि देवगतिषतुष्कके जधन्य प्रदेशकन्यका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी अद्वाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्य करनेवाडा और

१. ता॰ प्रती दोगदि॰ पंचंत॰ इति पाठः ।

तित्व॰ ज॰ मणुस॰ एगुणतीसदि॰ सह सत्त्विष॰ ज॰जो॰। काऊए तित्व॰ ज॰ प॰ क॰ १ अण्ण॰ णेरह॰ पढम॰आहार॰ पढमत॰मब॰ तीसदि॰ सह सत्तवि॰ ज॰-जो॰। देवगदि॰४ ज॰ मणुस॰ जसंज॰ [पटम॰आहार॰ पढम॰तब्मव॰] एगुणतीसदि॰ सह सत्तवि॰ ज॰जो॰।

२१९. तेउ० पंचणा०-साहासाद०-उचा०-पंचंत० ज० प० क० ? जण्ण० हुगादि० सम्मा० मिच्छा० पढम०आहार० पढम०तन्सव० सत्तवि० ज०जो०। णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीवा० ज० प० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० पढम०-आहार० पढम०तन्सव० ज०जो०। दोजाउ० देवभंगो। देवाउ० जह० दुगादि० सम्मा० मिच्छा० पांल० अट्टविध० ज०जो०। तिरिक्ख०- पंचसंडा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्ञो०-अप्पसत्य०-दूस्स०-दुस्सर-अणादे० जह० ए० क० ? अण्ण० देव० मच्छा० पढम०तन्सवत तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। मणुस०-मणुसाणु०-तित्य ज०प० क० ? अण्ण० देव० सम्मादि० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०।

जधन्य योगसे युक्त अन्यवर असंयवसम्यन्दृष्टि मनुष्य है। तीर्थह्वर प्रकृतिके जघन्य प्रदेश-बन्यका खामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोका बन्य करनेवाछा और जघन्य योगसे युक्त अन्यवर मनुष्य है। मात्र कापोतठेश्यामें तीर्थह्वर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशन्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोका बन्य करनेवाछा और जघन्य योगसे युक्त अन्यवर नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशनन्यका स्वामी है। तथा देवगतिचतुरकके जघन्य प्रदेशक्यका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, नामकर्मकी उनतीग्र प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोका बन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यवर असंयतसम्यन्दृष्टि मनुष्य है।

२१९. पीतलेह्यामें पाँच झानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उष्यगित्र और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशस्यका स्वायो कीन है ? प्रथम समयवर्षा आहारक, प्रथम समयवर्षा वर्षा हार्यकारके कर्योंका बन्ध करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त अन्यवर दो गित्रका सम्यव्हिल और सिप्याहिष्ट जीव उक्त प्रकृतियांके जयन्य प्रदेशस्थका स्वायी है। नी दर्शनावरण, मिथ्याल, सोलह कथाय, नी नोक्याय और नीचगोत्रके जयन्य प्रदेशस्थका स्वामी हो। ते दर्शनावरण, मिथ्याल, सोलह कथाय, नी नोक्याय और नीचगोत्रके जयन्य प्रदेशस्थका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जयन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यवहिष्ट देव उक्त प्रकृतियांके जयन्य प्रदेशस्थका स्वामी हो। दो आयुऑका भद्भ देवांके समान है। देवायुके जयन्य प्रदेशस्थका स्वामी आठ प्रकारके कर्मों का वन्य करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त दो गतिका सम्यव्हिष्ट और मिथ्याहिष्ट जीव है। तिथेक्क्षाति, पाँच संस्थान, पाँच संद्भनन, तिर्यक्षारयानुष्ट्री, उद्योत, अश्रसत विद्यायोगित, दुर्भग, दुरस्थ, अर्थ, स्वत्यक्षात्रको जयन्य प्रदेशस्थका स्वामी कीन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकमकी तीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और त्यायम्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यव्हिष्ट वर्ष है। मृत्यवाति, मृत्यवारस्यानुष्ट्री और तीथेक्क्ष प्रकृतिके जयन्य प्रदेशसम्बक्त स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतिवांके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और त्यायह्म उपलिक अपन करनेवाला और स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और स्वामय स्वामी कीन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियाँके साथ साथ स्वम्य स्वम्यक्त ता अपन करनेवाला और स्वामवर्यक्र तथा अपन स्वमित्रकार सम्बन्धि देव है। एक्केन्द्रव्याति, आतप और स्वामवर्यक्यक तथा

प्ट्रंदिय-आदाब-याबरदंडजो पंचिंदियदंडजो सोधम्मभंगो। देवगदि०४ जह० मणुस० असंज० [पदमतन्मव०] एगुणतीसदि० सह सत्त विघ० ज०जो०। [आहार-दुगं जोघभंगो।] एवं पम्माए। णवरि एट्टंदिय-आदाव०-थावरं वजा। सुकाए आणद-भंगो। णवरि देवाउ०-देवगदि०४-[आहारदुगं] पम्म भंगो।

२२०. बेदमे पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-उचा०-पंचंत० ज० प० क० १ अण्ण० दुगदि० पढम०तब्भव० ज० जो०। एवं सेसाणं पि ओघि-भंगो। णवरि दुगदियस्स चि भाणिदर्ज्वं। मणुसगदिदंडओ देवस्स चि भाणिदर्ज्वं।

२२१. उवसम० पंचणा०दंडओ ज० प० क० ? अष्ण० देवस्स [पढम-]आहार० पढम०तन्मव० सत्तवि० ज०जो०। देवगदि०४ ज० प० क० ? अष्ण० मणुस० योल० एगुणतीसादि० सत्तविघ० ज०जो०। आहारदुर्ग देवगदिभंगो। णवरि एक-त्तीसि०। सेसं ओधिभंगो। णवरि णियदं देवस्स काद्व्यं।

२२२. सामण० पंचणा०पढमदंडओ तिगढि० पढम०आहार० पढम०तव्भव०

पञ्चित्रियज्ञातिदण्डकका भङ्ग सीधर्मक्टल्यके समान है। देवगतिचतुरुकके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी प्रथम समयवती तहारक प्रथम समयवती तह्न व्यः नामकमंत्री उनतीस फहित्योंके साथ साथ सात प्रकारके कमीका बन्ध करनेवाला और जपन्य योग से युक्त अन्यतर असंयतसम्बन्धरूष्टि मतुष्य है। आहारकदिकका मङ्ग ओपके समान है। इसी प्रकार पद्मित्रया जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियज्ञाति, आवर और स्थायको छोड़कट इनमें जपन्य स्वामित्व कहना चाहिए। हुवस्केट्समों आनता करने समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवायु, देवाविचतुरुक और आहारिकदिकका भङ्ग पद्मातेस्याके समान है।

२२०. वेदकसम्यक्तमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय बारह कपाय, सात नोकपाय, उषगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कौत है ? प्रथम समयवर्ती तद्रवस्य और जयन्य योगसे गुक्त अन्यतर दो गांवका जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। इसी प्रकार क्षेप प्रकृतियोंका भी अवश्राक्षाती जीवींके समान भक्त जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ दो गांवका जीव स्वामी है ऐसा कहना चाहिए। तथा मतुष्यगांवरण्डकके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी देव है ऐसा कहना चाहिए।

२२१. जपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच क्वानावरणरण्डक जपन्य प्रदेशवन्यका स्वासी कीन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्वस्थ, सात प्रकारके कर्मों का बन्ध करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियांके जपन्य प्रदेशवन्य-का स्वासी है। देवगतिचतुरुकके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वासी केन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियांके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जपन्य योगसे युक्त अन्यतर घोठमान मतुष्य उक्त प्रकृतियांके जपन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है। आहारकद्विकका सङ्ग देवगति के समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मको इकतीस प्रकृतियांका बन्ध करनेवाले जीवके इसका जपन्य सामिरव कहना चाहिए। श्रेष सङ्ग अवधिक्वानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है क्ष जपन्य स्वामिरव निवससे देवके कहना चाहिए।

२२२. सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जधन्य प्रदेशवन्धका स्थामी प्रथम

ता० प्रतौ देवस० (स्स०) आहार०, झा० प्रतौ देव० सम्मा० झाहार० इति पाठः ।

षञ्जोः । तिरिक्स-मणुसाउः जः पः कः ? अण्णः चहुमः घोलः अहविघः जञ्जोः । देवाउः जः पः कः ? अण्णः दुगदिः घोलः अहविघः जञ्जोः । देवगदिः जहः दुगदिः घोलः अहावीसदिः सह अहविघः जञ्जोः । तिरिक्स-गिदिदंडओ जहः तिगदिः पटमः तन्मवः तीसदिः सह सत्तविघः जञ्जोः । एवं मणुसः-मणुसाणुः जहः एगुणतीसदिः जञ्जोः !

२२२. सम्मामि० पंचणा०दंडओ जह० चदुगदि० घोल० सत्तविध० ज०जो० । मणुसगदिदंडओ जह० देव० धेरह० ऊणत्तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० अड्डावीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० ।

२२४. सण्णीमु पंचणा० जावदंस० दोवेदणी० मिच्छ० सोलसक० जावणोक०-दोगो० पंचंत० ज० प० क० १ असण्णिपच्छा० पहम०तन्मव० सचविघ० ज०जो० । दोआउ० मणजोगिर्मगो । तिरिक्ख-मणुसाउ० ज० प० क० १ अण्ण० दुगदियस्स सुद्दाभवग्गहणतदियविमागस्स पहमसमण् आउगवंषमा० अद्वविध० ज०जो० ।

समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला अन्यतर तीन गतिका जीव है। तियंक्षायु और मतुष्यायुके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी कीन है। आठ प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर वार गतिका घोलमान जीव उक्त रो अधुओंके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी है। वेश उक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव देवायुके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी है। देवातिचतुष्कके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी है। देवातिचतुष्कके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी अहाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका तन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव है। तियंक्षगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य, नामकर्मको तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका वन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो तीन गतिका जीव है। इसी प्रकार सनुष्याति और मतुष्यात्यानुपूर्वा के जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी गामकर्मको उनतीस प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सीन गतिका जीव है। इसी प्रकार सनुष्याति और मतुष्यात्यानुपूर्वा के जघन्य प्रदेशतन्यका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सीन गतिका जीव है। इसी प्रकार सनुष्याति और सनुष्यात्यानुपूर्वा के जघन्य प्रतिवाला जीव के स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंका वन्य करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त सन्यतिका जीव है।

२२३. सम्यम्भिण्यात्वमं पाँच ज्ञानावरणदण्डक के जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी सात प्रकार के कर्मोंका वन्य करनेवाळा और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव है। मतुष्य-गतिदण्डक जे जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंक साथ सात प्रकृतिक के कर्मों का करनेवाळा और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकों है। देवगतिचतुष्कक जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी कीन है नामकर्मकी अद्वाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मों का बन्य करनेवाळा और जधन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी है।

२२४. संक्रियांमें पाँच क्षानावरण, नो दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, नौ नोकपाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? प्रथम समय-वर्षी तद्रवस्थ, सात प्रकारके कर्मोंका क्यक करनेवाला और जयन्य योगसे युक्त असंविवांभों से आकर वस्ता हुआ जीव उक्त प्रकृतियों के जयन्य प्रदेशक्यक स्वामी है। दो आयुओं का अक् मनोयोगी जीवांके समान है। वियंक्षायु और मनुष्यायुके जयन्य प्रदेशक्यका स्वामी कीन है ? श्कुरुलक भवमहणके तृतीय त्रिमागके प्रथम समयमें आयुक्तमेका बन्ध करनेवाला आठ प्रकारके बेउन्बियछ० आहारदुग-तित्य० जोघं। सेताणं दंढगाणं णाणा०मंगो। असिन्य-पच्छागदस्स त्ति भाणिदच्चं। असण्णी० जोघो। णवरि वेउन्बियछ० जोक्षिणिमंगो। अषाहार० कम्मइगमंगो। एवं बहण्णसामित्तं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

कालाणुगमो

२२५. कालाणुगमेण दुवि०-जाइ० उक्क० च । उक्क० पगदं । दुवि०-जोघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-भय-दु०-यंचंत० उक्कस्सपदेसपंघो केविचरं । कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० वे सम० । अणु० प०वं०कालो केविचरं० ? अणादियो अपजवित्त अणादियो सपजवित्तदो सादियो सपजवित्तदो । यो सो सादियो सपजवित्तदो तस्स इमो णिदेसो-जाइ० एग०, उक्क० अद्धपोग्गल० । ओघेण सन्वासि । उक्क० पदे०कालो जाइ० एग०, उक्क० वेस० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण० 'अगु०४-उप०-णिमि० अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालमसंसे० ।

कर्मों के बन्धसे सम्पन्न और जायन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त आयुओं के जायन्य प्रदेशवन्यका खामी है। वैकियिकष्यक, आहारकद्विक और तीर्यक्कर प्रकृतिका मङ्ग ओयके समान है। प्रेप दण्डकीका मङ्ग झानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका खामित्व कहते समय अर्दाक्षिमें आकर उत्पन्न हुए जीवके करना चाहिए। अर्दाक्षयों ओयके समान मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैकिष्कण्यट्कका भङ्ग पञ्चोत्रिय तिर्यक्ष योगसाँ समान है। अताहारकों कार्यकावयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

> इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ। इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

२२५. कालानुतमको अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—जयन्य और कर्कृष्ट । चकुष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे ताँच ज्ञानावरण, छह द्वर्शानवरण, बारह कपात, भग, जुगुसा, और पाँच जनतायके उक्तृष्ट प्रदेशकन्यका कितना काल है है जप्त काल एक समय है और जरकृष्ट काल दो समय है। अनुक्कृष्ट प्रदेशकन्यका कितना काल है है शमादि-अनन्त, अनादिन्सान्य और सादि-सात काल है। उनमंसे जो सादि-सान्य काल है कानादि-अनन्त, अनादिन्सान्य और सादि-सात काल है। उनमंसे जो सादि-सान्य काल है असादि-अनन्त, अनादिन्सान्य और सादि-सान्य काल एक समय है और उक्तृष्ट काल कुछ कम अर्थ पुरुक परिवर्तनप्रमाण है। आरो भी ओपसे सब प्रकृतियोंकि उत्पष्ट प्रदेशकन्यका जपन्य काल एक समय है और उक्तृष्ट काल हो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यास्य, अनन्तानुवन्धी चतुष्क, अद्दिक्तरारी, वैतसक्षरीर, कार्मणहारीर, वर्णचनुक, अगुक्तलु, उपपात और निर्माणके अदिवादकरारी, वैतसक्षरीर, कार्मणहारीर, वर्णचनुक, अगुक्तलु, उपपात और निर्माणके अद्दुत्कर परिवर्तकप्रमाण है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, क्षीवर, न्युंसक्वेद, हास्य, राते, प्रदुत्कर परिवर्तकप्रमाण है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, क्षीवर, न्युंसकवेद है। हास्य, राते,

ता॰प्रती बंधो काले केविचरं इति पाठः। २ आ॰प्रती अप्रजवित्वरो सादियो इति पाठः।
 रे ता॰ प्रती अद्धपोत्मास॰। सम्बासि इति पाठः।

सादासाद ॰ इत्थि ० - णणुंस ० - हस्स - एदे - अरदि - सोग ० - चदु आउ० - णिरयगदि - चदु आदि अहार ० - पंचसंडा० - आहार गोगंग- पंचसंघ० - णिरयगणु० - आदाउओ ० - अप्पसत्थिव ० - थावर सहुम - अपक्ष ० - साधार ० - थिराथिर सुमासुभ - दूसरा - आप दे ० - चावर - अज्ञ ० क० ए०, उ० अंतो० । पुरिस० अणु० ज० ए०, उ० वेकाविड ० सादि० दोहि पुन्व कोडि हि सादिरेगं । तिरिम्ख ० - तिरिम्ख णु० णीचा० अणु० ज० ए०, उ० असंखे आ होगा। मणुस० - चअरि० - मणुसाणु० अणु० ज० ए०, उ० तेतीसं०। देवगदि० ४ अणु० ज० ए०, उ० तिष्णि पल्लि० सादि० पुन्वकोडितिमानेण अंतो सुहु नूषेण । पंचि० - पर० उस्सा० - तस० ४ अणु० ज० ए०, उ० पंचासी दिसागरावमतदं०। समयदु० - पसत्थि ० - सुभग सुस्सा- सादि० जुल्कोडि हि अग्न । अग्न । स्वादि० सादि० सादि० - सुभग सुस्सा- सादि० विद्या अणु० ज० ए०, उ० तेत्रीसं० सादि० अंतो हु पुन्वकोडीहि सादिरेगं तिष्णि पलि० दे ० अंतो सुहुक्ण स्वाणि। ओरालि० अंगो० सुणु० ज० ए०, उ० तेत्रीसं० सादि० अंतो हु पुन्वकोडी० वासपुष नूणगाहि सादिरेयाणि।

अर्रात, शोक, चार आयु, नरकगति, चार जाति, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, आहारक आङ्कोपाङ्क, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थाबर, सुदम, अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशकोर्ति और अयग्र:कीर्तिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त्त है। पुरुषवेदके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उरकृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक दो छ्यासठ सागर है। तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके अनुस्कृष्ट प्रदेश-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वक्रवंभनाराचसंहनन और सनुष्यगत्यानुपूर्वीके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। दैवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काळ अन्तसुंहुतकम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य है। पञ्चीन्द्रयजाति, परघात, उच्छवास और त्रस चतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक सौ पचासी सागर है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय हैऔर उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक तथा तीन पत्य और अन्तर्भृहूर्त कम दो छथासठ सागर है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुत्कृष्ट प्रदेयबन्धका जघन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त अधिक तेतीस सागर है । यह अन्तर्भहर्त अधिक काल सातवी पृथिवीसे निकलने वाले जीवके जानना चाहिए। तीर्थंद्वर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काळ वर्षपृथक्तव कम दो पूर्वाकोटि अधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ - प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच झानारवरणादि तथा अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य अपने अपने योग्य सामग्रीके मिखने पर वत्कृष्ट योगसे होता है और

[ा] ता॰ प्रती दूसमा बजादे॰ इति पाठः। २ ता॰ प्रती मञ्जूसाञ्च० अञ्च॰ ब्रञ्जः वि पाठः। १ ता॰ प्रती अंतोसुदुत्ते (त्र्) भेण, अः॰ प्रती अंतोसुदुत्तेण इति पाठः। ४ आ॰ प्रती तसः॰ ४ अञ्च४ ब्रञ्जः इति पाठः। ५ ता॰ आ॰ प्रस्थोः प्युजनीसदि॰ इति पाठः।

इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, अतः यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि सभी १२० प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि तीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध यथासम्भव गुणप्रतिपन्न जीवके होता है, इसल्यिये जो अभन्य हैं उनके सदा काल इनका अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता रहता है, क्योंकि ये प्रवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं। भव्योंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके दो विकल्प बनते हैं-अनादि-सान्त और सादि-सान्त । अतादि-सान्त विकल्प उत्त भव्य जीवोंके होता है जो इतका उत्ऋष्ट प्रदेशबन्ध किये बिना या अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्ति होते समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके ही पात्र हो जाते हैं और सादि-सान्त विकल्प उन भन्य जीवोंके होता है जो अपने अपने उत्क्रप्ट स्वामित्वके योग्य पूरी सामग्रीके मिळनेपूर उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके पूनः अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगते हैं। इनमेंसे यहाँ अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके सादि-सान्त विकल्पके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार किया है। यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध गुणप्रतिपन्न जीवके होता है, इसलिए अपने अपने उत्क्रष्ट स्वामित्वके योग्य स्थानमें इनका एक समयके अन्तरालसे चरकष्ट प्रदेशबन्ध कराके मध्यमे एक समयके लिए अनत्कष्ट प्रदेशवन्य करावे । इस प्रकार बन्ध कराने पर इनके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा अर्धपुद्रलंके प्रारम्भमें उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध कराकर बादमें कुछ कम अर्धपटल परिवर्तन काल तक इनका अनत्कष्ट प्रदेशबन्ध करानेपर इनके अनत्कष्ट प्रदेशबन्धका उत्कार काल करू कम अर्थपदल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि यहाँ इनके अनत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्बन्धी सादि-सान्त विकल्पका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्रछ परिवर्त्तन प्रमाण कहा है। स्यानगृद्धित्रिक आदि द्वितीय दण्डकमे कही गई प्रकृतियाँ धवबन्धिनी हैं। यद्यपि इनमें औदारिकशरीर प्रकृति भी सम्मलित है पर एकेन्द्रियोंमें इसकी प्रतिपक्ष प्रकृति वैक्रियिकशरीरका बन्ध न होनेसे यह भी प्रववन्धिनी है. इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके समान इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भी जघन्य काल एक समग्र और उत्क्रष्ट अनन्त काल कहा है। झानावरणादिके साथ इन प्रकृतियोंका कुल काल इसलिए नहीं कहा है, क्योंकि इन स्त्यानगृद्धि तीन आदिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य मिथ्यादृष्टि जीव करता है इसलिए इनके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालके ज्ञानावरणादिके समान अनादि-अनन्त आहि तीन विकल्प न होकर केवल एक सादि-सान्त विकल्प ही सम्भव है । सातावेदनीय आदिका जघन्य बन्ध काल एक समय और उत्क्रष्ट बन्धकाल अन्तर्महर्त है, इसके कई कारण हैं। एक ता साताबेदनीय आदि अधिकतर सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका जघन्य और उस्कृष्ट उक्त काळ बन जाता है। दसरे चार आया आहारकद्विक और आतपद्विक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ नहीं भी है। तब भी ये अन्तर्भृहर्तसे अधिक काळ तक नहीं बँघती और एक समयके अन्तरसे इनका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त कहा है। तृतीय आदि यथासम्भव गुणस्थानीम परुषवेदका ही बन्ध होता है, इसिकए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक दो लयासठ सागरप्रमाण कहा है। इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका जधन्य काल एक समय रपष्ट ही है, क्योंकि एक समयके अन्तरसे इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो और सध्यमें एक समयके लिए अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो यह सम्भव है और यह सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे एक समयके लिए इसका बन्ध होकर दसरे समयमें स्त्रीवेद या नपुंसकवेदका बन्ध होने लगे यह भी सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। आरो अन्य प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय उक्त दो हेतुओंको ध्यानमें रख कर जहाँ जो सम्भव हो उसके अनुसार घटित कर छेना चाहिए, इसलिए आगे उसका हम पन: पनः निर्देश नहीं करेंगे । तिर्यक्रमाति आदि तीन प्रकृतियोंका अग्निकायिक और वायकायिक

२२६. धेरहपसु पंचणा०-णबदंस०-सिन्छ०-सोन्सतक०-सय-दु०-तिरिक्ख०-पॅषि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०झंसो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० वेचीसं० । बो-बेदणी०-इत्थि०-णबुंस०-हस्स--रदि-अरदि-सोग-दोआउ०-पंचसंठा०-पंचसंप०-उओ०-अप्पसत्थवि०-थिरादितिण्णियु०-दुभग-दुस्सर-अणादे० उ० ज० ए०, उ० बेसम० ।

जीवोंमें निरन्तर बन्ध होता है और इनकी कायस्थित असंख्यात लोकप्रमाण है, इसिंछए यहाँ इनके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है और सर्वार्थसिद्धिमें आय तेतीस-सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। सम्यन्द्रष्टि मनुष्यके देवगतिचतुष्कका ही बन्ध होता है। किन्तु इसके मनुष्यायका बन्ध सम्यवस्य अवस्थामें नहीं होता, इसलिए पूर्वकोटिकी आयुवाले किसी मनुष्यके प्रथम त्रिभागमें मनुष्यायका बन्ध कराकर वेदकपर्वक क्षायिकसम्यक्तव छत्पन्न करावे और आयुक्ते अन्तमें मरण कराकर तीन पल्यकी आयुवाले मनुष्योंमें ले जावे। इस प्रकार करानेसे अन्तर्मुहर्त कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य काल प्राप्त होता है। यतः इतने काल तक इसके निरन्तर देवगतिचतुष्कका बन्ध होगा, अतः देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्क्रष्ट काल उक्त कालप्रमाण कहा है। एकसी पचासी सागर काल तक प्रक्रेन्टियजाति आदिका निरन्तर बन्ध होता है इसका पहले हम अनेक बार निर्देश कर आये हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल उक्त कालप्रमाण कहा है। पुरुषवेदके समान सम्यग्द्रष्टिके समज्वतरस्य संस्थान आदि प्रकृतियोंका भी निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका उत्कृष्ट काल भी दो पूर्वकोटि अधिक दो छन्यासठ सागरप्रमाण तो कहा ही है। साथ ही भागभूमिमें पर्याप्त होने पर निरन्तर इन्हीं प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसिंछए उक्त कालमें कुछ कम तीन पल्यप्रमाण काल और जोड़ा है। नरकमें औदारिक आक्नोपाइका निरन्तर बन्ध तो होता ही है। साथ ही ऐसा जीव वहाँसे निकलनेके बाद भी अन्तर्महर्त काल तक इसका बन्ध करता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उन्कृष्ट काल अन्तर्महर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। कोई एक मनुष्य है जिसने आठ वर्षका होनेके बाद तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ किया। उसके बाद इतना समय कम एक पूर्वकोटि कालतक वह यहाँ उसका बन्ध करता रहा। इसके बाद मरा और तेतीस सागरकी आयुवाला देव हो गया। फिर वहाँ से आकर पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ। फिर वर्षप्रथक्त काल होष रहने पर क्षपकश्र णि पर आरोहण कर केवलज्ञानी हो गया। इस प्रकार वर्षप्रथक्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर तीर्थेकर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, इस-छिए इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भके अवन्धके आठ वर्ष और अन्तके अवन्धका वर्षप्रथक्त इत होनोंको मिलाकर वर्षप्रथक्त काल कम किया गया है।

२२६. नारिकयोंमें पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिय्यात्व, सोळह कथाय, भय, जुगुप्सा, तिर्वेश्वमति, प्रव्वन्दियाति, अीदारिकशरीर, तैतवहारीर, कामेणागीर, अीदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्वेश्वगत्यातुपूर्वी, अगुरुळयुचतुष्क, प्रचलुष्क, तिर्वाणानीयात्रेष्ठ, वर्णाच्यात्रेष्ठ, वर्णाच्यात्रेष्यात्रेष्ठ, वर्णाच्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्यात्रेष्

अणु॰ त्न॰ ए॰, उ॰ झंतो॰ । पुरिस॰-मणुस॰-समचदु॰-वजरि॰-मणुसाणु॰-पसत्य॰-सुमग-सुस्सर-आदे॰-जचा॰ उ॰ त्न॰ ए॰, उ॰ बेसम॰ । अणु॰ त्न॰ ए॰, उ॰ तेचीसं॰ देस॰ । तित्य॰ उ॰ त्न॰ ए॰, उ॰ देसम॰ । अणु॰ त्न॰ ए॰, उ॰ तिण्यि साम॰ सादि॰ पत्नि॰ असंसे॰मागे॰ सादि॰ । एवं सत्तमाए । उनरिमालु छसु पुढनीसु एसेव मंगो । णवरि अप्पप्पणो द्विदी भाणिदन्ता । तिरिक्ख॰-तिरिक्खाणु॰-णीचा॰-उ॰ अणु॰ सादमंगो ।

पाँच सहनन, ज्योत, अप्रसस्त बिहायोगित, स्थिर आदि तीन युगळ, दुर्देग, दुःस्वर और अनार्यके उन्नष्ट प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काल दो समय है। अनुकार प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काल दो समय है। पुरुषवेद, मनुज्याति समयुद्ध स्थान विद्यान काल एक समय है और उन्नष्ट ते है। पुरुषवेद, सनुज्याति समयुद्ध स्थान विद्यान सिंह स्थान, सुस्त्र, अनुदेश उन्नय काल एक समय है। अनुकार प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काल कुछ कम तेती सागर है। तीर्यक्र राकृतिक उन्नष्ट प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट कम तेती सागर है। तीर्यक्र राकृतिक उन्नष्ट प्रदेश नन्मका जयन्य काल एक समय है और उन्नष्ट काल एक समय है और उन्नष्ट काल पत्थका असंक्यातवाँ माग अधिक तीन सागर है। इसी प्रकार सातवीं प्रथिवीम जानना चाहिए। उपरक्षी छह प्रथिवियोम वहीं भक्त है। इतनी विदेशना है कि अपनी अपनी स्थाति कहनी चाहिए। विर्वेद्ध गति, तिर्वेद्ध गत्यान्य मुर्वे और नीचगोतक उन्नष्ट और अपनी स्थात कहनी चाहिए। विर्वेद्ध गति, तिर्वेद्ध गत्यान्य मुर्वे और नीचगोतक उन्नष्ट और अपनी स्थात कहनी चाहिए। विर्वेद्ध गति, तिर्वेद्ध गत्यान्य मुर्वे और नीचगोतक उन्नष्ट और अपनी स्थात करने काल सातावेदनीयक समान है।

उत्कृष्ट काल दो समय जैसा ओघमें घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धके जघन्य काल एक समयके विषयमें भी ओघप्ररूपणाके समय काफी प्रकाश डाल आये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी जान छेना चाहिए। अब रहा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका खुलासा इस प्रकार है-नरकमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ ध्रवर्चान्धनी हैं। मात्र तिर्युक्कगति, तिर्युक्कगत्यानुपर्वी और नीचगोत्र सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। फिर भी सातवें नरकमें मिथ्यात्रिके ये भी धव-बन्धिनी हैं और सातवें नरककी उस्कृष्ट आय तेनीस सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्क्रष्ट काल तेतीस सागर कहा है। दो वेदनीय आदि दसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुस्हृष्ट प्रदेशवन्धका उरहृष्ट काल अन्तर्महर्त जिस प्रकार ओघप्रक्रपणाके समय घटित करके वतळा आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर छेना चाहिये। सम्य-क्टिश नारकीके परुषवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता है और सातवें नरकमें सम्यक्त सहित जीवका जरूष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थक्रर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही बन्ध होता है। उसमें भी साधिक तीन सागरकी आयबाले जीव तक ही इसका बन्ध सम्भव है, इसलिये यहाँ इसके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका एस्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन सागर कहा है! सब प्रकृतियोंका यह काल सातवीं प्रियंतीकी मुख्यतासे कहा है, इसलिये सातवीं प्राथवीमें इसी प्रकार जाननेकी सचना की है। अन्य छह पृथिवियोंमें प्रकृतियोंका इसी प्रकार विभाग करके काळ कहना चाहिये। मात्र सर्वेत्र कालका प्रमाण अपनी अपनी स्थितिको ध्यानमें रखकर कहना चाहिए। इतनी २२७. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंवंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अणंतका०। दोवेदणी०- छण्णोक०-चहु आउ '०-दोमदि-चदुज्ञादि-पंचसंठा०-ओरा० अंगो०--छस्संघ०--दोआणुपु०-अदाउज्जो०-अप्पसत्य०-धावरादि०४-अधिरादि-तिष्णिपुम०-दुसम-दुस्स-अणादे० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-देवम०-वेडिव्य०-समचदु '०-वेड०अंगो-देवाणु०-पसत्यवि०-सुमम-सुस्सर-आदे०-उचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तिष्णि पत्ति०। तिरिक्स०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० असंसेजा लोगा। पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उ० ज० ए०, उ० वेसम०। अणु० ज० ए०, उ० वर्षण पत्ति०।

विशेषता है कि नियंक्ष्मगतिद्विक और नीचगोत्र ये तीन छटे नरक तक सम्प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिंकिये इन नरकोंने इनका काल असानायेदनीयके समान घटित कर छेना चाहिये। साथ ही नीयंक्ष्मर प्रकृतिका वन्य तीसरे नरक तक ही होता है, इसिंक्ये इसके कालका विचार प्राप्तमक तीन नरकोंने हो करना चाहिये।

२२ श तिर्यञ्जों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोळह कषाय, भय, जुगुप्सा, ओदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्क्रष्ट प्रदेशवन्धका जधन्य काळ एक समय है और उत्क्रष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। दो वेदनीय, छह नोकपाय, चार आयु, दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक-शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह सहनन, दो आनुपनी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विष्ठायोगति, स्थाबर आदि चार, अस्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःश्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्क्रष्ट काळ अन्तर्महर्त है। पुरुपवेद, देवगति, बैकियिकशरार, समचतुरस्रसंस्थान, बैकियिकरारीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उद्यगोत्रके उरकुष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पत्य है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काल अलंख्यान बोक्यमाण है। पक्केन्द्रियजानि, परघात, उच्छास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध का जघन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काळ दो समय है। अतुरक्रष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन परुष है।

विशेषार्थ — यहां व आगेको मार्गणाओंमं सब प्रकृतियोके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य व उत्कृष्ट काल और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल पहलेके समान जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादि भ्रुववन्धिनी प्रकृतियो हैं और एकेन्द्रियोमें ओदारिकशरीर भो. भ्रुववन्धिनी प्रकृति है, इसलिए तियंश्रोमें इन प्रकृतियोके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण

१. बा॰प्रती 'बृष्णोक॰ दो आउ॰' इति पाठः । २. बा॰प्रती 'देवग॰ समचदु॰' इति पाठः ।

२२८. पंतिं ०तिरि०३ पंचणा०-णवदंस०-मिन्कु^{*}०-सोलसक०-मय-दु०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ओषं। अणु० सच्वाणं ज० ए०, उ० तिष्णि पलि० पुव्यकोडिपुषतं। साददंडओ तिरिक्खोपं। णवरि तिरिक्ख०३-ओरालियं च पवट्टं। पुरिसदंडओ पंनिंदियदंडओ तिरिक्खोघं। णवरि पंनिं०तिरि०जोणिणीसु प्रिसदंडओ तिष्णिपलि० वे०।

कहा है, क्योंकि तिर्वेक्कों ही उरहाट कार्यायति अनन्त काल प्रमाण है। दो वेदनीय आदि कुछ समितपक्ष प्रकृतिया है और कुछ अध्रवनिधनो प्रकृतिया है, इसिलए इनके अनुरुक्त प्रदेशक्य का उक्त काल अन्तर्मुं ते कहा है। सम्बन्धाः ति देख्यों में पुरुष्वेद आदिका नियमसे नन्य होता है और तिर्वेक्कों में सम्बन्धाः कहा कहा कि तर्वेक्कां त्रहे का नियमसे नन्य होता है और तिर्वेक्कों में सम्बन्धाः का उक्त काल की तरकातिहिक व स्वाचित्रक जीव तियमसे क्या कहा है। अनिकायिक व बायुक्तियक जीव तियक्कातिहिक व सीचाये का तियमसे क्या करते हैं और इनकी कार्यास्थिति असंस्थात लोकप्रमाण है, इसीलए यहां इन तीन प्रकृतियांके अनुरुक्त प्रदेशक्यका उक्त काल असंस्थात लोकप्रमाण हहा है। भोगभूमिम पक्कों है। साथ हो जो तिर्वेक्का तर कर भोगभूमिम जन्म लेते हैं उनके अन्तर्मुद्ध पहलेसे इनका नियमसे बयन हो जो तिर्वेक्का तर कर भोगभूमिम जन्म लेते हैं उनके अन्तर्मुद्ध ते पहलेसे इनका नियमसे बयन होने लगता है, इसीलए इनके अनुरुक्त प्रदेशवन्यका उक्त हो काल साथ हो। लगता है, इसीलए इनके अनुरुक्त प्रदेशवन्यका उक्त हम लिए स्वीत प्रवेद काल हो। है।

२२८. पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्चनिकमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोळह कपाय, भय, जुगुप्ता, तैनसरारीर, कामंत्ररीर, बणंचतुष्क, अगरूब्यु, उपपान, तिर्माण और पाँच अन्तरायके कन्नु प्रदेशनयका काव ओपके समान है। अनुकर प्रदेशनयका स्वाय प्रकृतियो ज्ञान्य काल पंकस्तय है और उन्कृष्ट काल पूर्वकीट्ययक्त अधिक तीन पत्य है। बातावेदनीयरण्डक का अङ्ग सामान्य तिर्वञ्चांकि समान है। इतनी विशेषता है कि इस दण्डकमें तिर्वञ्चांतित्रक और आंत्रारिक्तारीरको प्रविष्ट कर लेना चाहिए। पुरुषवेदरण्डक और पञ्चांन्द्रयज्ञांतिरणक अङ्ग सामान्य तिर्वञ्चांके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चोंन्द्रय तिर्वञ्चां विशेषता है। सम्बन्धांके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चोंन्द्रय तिर्वञ्च योगिनियोमे परप्रवेदरण्डक । उन्हर्म काल कुछ कम तीन पत्रय है।

१. सा०प्रती 'णवदस० मिछ (च्छ)' इति पाठः।

२२९. पॅचिंदि०तिरि॰अपजल सम्बपगदीणं उ० ज॰ ए०, उ० वे सम०। अणु॰ ज॰ ए०, उ॰ अंती॰। एवं सञ्जयजनगाणं तसाणं धावराणं च सम्बसुहुम-पजनगाणं च।

२३०. मणुस०३ पंचणा०-णवदंसणा०-सिच्छ०-सोलसक०-सय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सन्बेसिं उकस्सगं। अणु० ज० ए०, उ० तिष्णि पलि० पुच्वकोहिपुधत्तं। पुरिस०-देवगदि-पंचिदि०-वेउन्बि०-समचदु०-वेउन्बि०कंगो०-देवाणु०- पर०-उस्सा०-पसत्य०-त्तर०४-सुमग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० अणु० ज० ए०, उ० तिष्णि पलि० सादि० पुच्वकोहि-तिमागेण०। तित्य० अणु० ज० ए०, उ० पुच्वकोदी० दे०। सेसाणं अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। णवरि मणुसिणीसु पुरिसदंडओ जोणिणमंगो।

२२९. पर्क्रोन्द्रय तिर्वेक्च अपयोक्तिमें सन अकृतियांके उस्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य काळ एक समय है और उक्कृष्ट काल हो समय है। अनुक्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य काळ एक समय है और उस्कृष्ट काळ अन्तर्सुहुत है। इसी प्रकार त्रस आर स्थावर सन अपयोक्तिमें तथा सन सूक्ष्म पर्योक्षकों जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उन सबकी कायस्थित अन्त-सुह्तिप्रमाण है, इसिलए इनमें यहां वैधनेवाली सब प्रकृतियोंके अनुरुष्ट अदेशबन्यका उस्कृष्ट काळ अन्तर्सुहुर्त प्रमाण कहा है।

२३०. मनुष्यत्रिक्तं पाँच आनावाण, नी दर्शनवरण, मिध्यात्व, सोख्य कथाय, भय, जुगुप्सा, तीजवरारार, कर्मणरारीर, वणावुक्त, अगुरुख्य, उपयात, तिमाण और पाँच अन्तर रायके उरहुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है भोर उन्हष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियांके उरहुष्ट अदेशवन्यका काल जानना चाहिए। अनुकुष्ट प्रदेशवन्यका काल जानना चाहिए। अनुकुष्ट प्रदेशवन्यका काल एक समय है और उन्हष्ट काल पूर्वकारिष्ट्रथवस्य अधिक तीन परुष्य है। पुरुषवेद, वैद्याति, पक्षेत्रित्वकारीर समयद्वरस्त्रस्त्रस्यान, विक्रियककारीर आक्षेपाक्ष, वेदारावानुपूर्वी, परचात, उन्ह्यूस, प्रशास विहायोगाति, त्रसचनुक्त, सुभा, सुख्य, आदेश और उद्योवक्र काल अन्तर्ग्रहुक्तं क्ष्म पूर्वकारिका त्रिमाण अधिक तीन परुष्य है। तीर्यक्र एक्तिक अनुकुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उन्हष्ट काल अन्तर्ग्रहुक्तं अप्तर्ग्यक काल एक समय है। शेष प्रकृतिका त्रिमाण अधिक तीन परुष्य है। तीर्यक्र एक्तिक अनुकुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है। शेष प्रकृतिका त्रिमाण के । शेष प्रकृतियांके अनुकुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उन्हष्ट काल अन्तर्गुह्त है। इतनी विश्लेषत है। हिम्मानुष्टिविविद्यांकी प्रसुप्त है। इतनी विश्लेषत ही कि मनुष्टिविविद्यांकी प्रसुप्त है। इतनी विश्लेषत हो है। इतनी

विशेषां - प्रथम दण्डकमें सब ध्रवबन्धिनी प्रकृतियाँ कही हैं और सनुत्यांकी उत्कृष्ट कायरियति पूर्वकोटियुण्यक्य अधिक तीन पत्य है, इसिलए इनमें पाँच ज्ञानावरणाहिक अनुत्कृष्ट प्रदेशावण्यका एकष्ट काल उत्कृप्तमाण कहा है। मनुष्य और मनुष्यपाँची महामें सम्बद्धका स्कृष्ट काल अन्तर्युह्त कम पूर्वकोटिका त्रिमाण अधिक तीन पत्य है और ऐसे मनुष्यांके पुरुषवेद आदिका नियमसे बन्ध होता है, इसिलए इन दो प्रकारके मनुष्यांमें प्रविवेद अनुत्कृष्ट प्रदेशावन्यका उत्कृप्ट काल उत्कृप्त काल प्रवेदानन्यका उत्कृप्ट काल कालप्रमाण कहा है। पर मनुष्यानियाँमी सम्बद्धका उत्कृष्ट काल विश्वेद्ध योगिनी जीचोंके समान है, इसिलए इनमें पुरुषवेद आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल विश्वेद्ध योगिनी जीचोंके समान कहा है। तीथेद्ध प्रकृत अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल विश्वेद्ध योगिनी जीचोंके समान कहा है। तीथेद्ध प्रकृत कल्कृत्कृप्त प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल

२३१. देवेसु पंचणा०-इट्सणा०-वारसक०-पुरिस०-मय-दु०-मणुस०-पंचिदि०-तिष्णिसरोर-समचद्द०-ओरा०श्रंगो०-चजरि०-चण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-पसत्य०-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्य०-उचा-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० वेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं०। श्रीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ उक्क० ओषं। अणु० ज ए०, उ० एकत्तीसं०। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० वेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सञ्चदेवाणं अप्पप्पणो द्विरी णेदच्चा।

२३२. एइंदिएसु धुवियाणं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणुपु०-णीचा० उ० ज॰ ए०, उ० बेसम०। एवं सञ्जाणं उकस्मपदेसवंघो । अणु० ज० ए०. उ० असंखेजा लोगा ।

तीनों प्रकारके मतुष्योंमें कुछ कम एक पूर्वकोट प्रमाण है यह रष्ट हो है। पर यह व्हिष्ट काल जिस भवमें तीर्यक्कर प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होता है उस भवकी अपेक्षा से जानना चाहिए। यहां मतुष्यिनीके भी तीर्यक्कर प्रकृतिक बन्धका निर्देश किया है। इससे ब्लात होता है कि तीर्यक्कर प्रकृतिक बन्ध जिस के स्वात होता है कि तीर्यक्कर प्रकृतिक बन्ध जिस मामें प्रारम्भ होता है उस भवमें उसका उदय नहीं होता, क्योंकि तीर्यक्कर कोवेदी नहीं होते, क्योंकि तीर्यक्कर कोवेदी के अनुकृति है के स्वात के अन्य सातावेदनीय आदिके अनुकृष्ट प्रदेशक्य करके उसके अनुकृष्ट प्रवेशक्य अन्य सातावेदनीय आदिके अनुकृष्ट प्रवेशक्य करके उसके क्या करके विकास के स्वात के स

२२१. देवांमें पाँच झानावरण, छह दशनावरण, बारह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, महुष्याति, पञ्चांट्रियवाति, तीन झारीर, समचतुरस्रसंख्यान, औदारिक रारोर आङ्गापङ्ग, बज्जवन्ति, तीन स्वारीर, समचतुरस्रसंख्यान, औदारिक रारोर आङ्गापङ्ग, बज्जवन्ति, विश्वाचारित, वर्णेच्नुष्क, प्ररास-विद्वाचारीत, सुभग, सुखर, आदेव, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चारात्र और पाँच अन्तरायके उच्छ्य प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उच्छ्य कोल तेतीस सागर है। स्थानगृद्धि तीन, मिथ्यात्र और अन्तरायुक्त काल पक समय है और उच्छ्य प्रदेशवन्यका जावन्य काल एक समय है और उच्छ्य प्रदेशवन्यका काल काल पक समय है और उच्छ्य प्रदेशवन्यका जावन्य काल एक समय है और उच्छ्य काल इक्तीस सागर है। शेष प्रकृतियांके उच्छ्य प्रदेशवन्यका जावन्य काल एक समय है और उच्छ्य काल इक्तीस सागर है। इसी प्रकार सब देवांमें अपनी अपनी स्थिति जाननी चाहिये।

विशेषाय प्रथम रण्डक में कही गई प्रकृतिवंशिं गाँच ज्ञानावरणादि कुछ प्रकृतिवंशिं वो प्रविचेशिय । पुरुषेद आदि जो कुछ प्रकृतिवंशिं यो रहती हैं भी सम्यन्दिक वे भी प्रविचित्ति के आप ति जो कुछ प्रकृतिवंशि । यह ते हैं भी सम्यन्दिक वे भी प्रविचित्ति हैं भी र सर्वाधि हों के आप ते तिस सागर है। वेशी हैं ते काल तक इनका नित्तत्त दन्य होता रहता है, इसलिये वहाँ इनके अनुकुछ प्रदेशवन्ध्य । उक्कु काल तेतीस सागर कहा है। स्थानगृद्धि आदि दूसरे दृष्केश के ही गई प्रकृतियों का सम्यन्दिष्ठ अवि नहीं प्रविच्या के प्रवृत्ति हैं। स्थानगृद्धि अवि नीव में प्रवेचक तक ही होते हैं, इसळिये इनके अनुकुछ प्रदेशवन्ध्य के अकुछ काल हती सागर कहा है। होष प्रकृतियाँ या तो सत्तिपक्ष हैं या अभुववन्धिनी हैं, अतः उनके अनुकुछ प्रदेशवन्धका उक्कुष्ट काल अनुकुछ ते वि हो है। से स्थान का अनुकुछ काल हती प्रवृत्ति कहा है। साथ वि नी प्रविच्या के स्थान स्थान प्रवृत्ति कहा है। साथ वि नी प्रविच्या तक्किय त्या के लाल लाना वाहिये। साथ दी नी प्रविच्या तक्किय तक के देवीं में प्रथम देवार स्थान से स्थान से स्थान से स्थान से प्रवृत्ति हो। स्थान स्थान से स्थान से स्थान से स्थान से प्रवृत्ति है। स्थान स्थान स्थान स्थान से प्रवृत्ति हो। स्थान स्यान स्थान स

२३२. एकेन्द्रियोंमें प्रुवयन्थवाली प्रकृतियोंके तथा तिर्वश्चारित, तिर्वश्च गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उन्कृष्ट प्रदेशकन्थका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल दो समय सेसाणं उक्क० अणु० अपजन्तर्भगो । बादरे घुनियाणं अणु० ज० ए०, उ० ऋंगुरू० असंसे० । तिरिक्स०-तिरिक्साणु०-णीचा० अणु० ज० ए०, उ० कम्मिट्टिरी० । बादरपज्ज० संसेजाणि वाससह० धुनियाणं तिरिक्सगदितिगस्स च । सेसाणं अपजन्तर्भगो । सुहुम० धुनियाणं तिरिक्सगदितिगस्स च उ० ज० ए०, ० वेसम० । अणु० ज० ए०, उ० सेहीए असंसेज्जदि० । सेसाणं पगदीणं अपजन्मभंगो । प्रस्कार सच्य-सुहुमाणं । विगलिदि० धुनियाणं उ० ज० ए०, उ० वेसम० । एवं सच्याणं उक्सस-पदेशमंणं । अणु० ज० ए०, उ० चेसम० । एवं सच्याणं उक्सस-पदेशमंणे । अणु० ज० ए०, उ० संसेजाणि वाससह० । सेसाणं अपजन्नसंगो ।

है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उन्कृष्ट प्रदेशबन्धका काळ है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण है। सोध प्रकृतियोंके उन्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका मङ्ग अपर्याग्नकोंके समान है। वादर जीवोंमें मुबबन्धवाळी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका ज्ञान्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट मान अकृत्वे असंख्यात्व मान प्रमाण है। तिर्यञ्चाति, निर्यञ्चानातुर्वी और नीचगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका ज्ञान्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काल कर्मिस्यतित्रमाण है। वादर प्रयोगक जोवोंमें भुववन्धकाळी और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका ज्ञान्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काल कर्मुस्यतिक मान है। स्वर्य प्रवोगक दंशाद वर्ष है। होष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्यागकोंके समान है। सुद्ध एकेन्द्रिय जीवोंमें भुववन्धवाळी और तिर्यञ्चानितिकके उन्कृष्ट प्रदेशबन्धका ज्ञान्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल हो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल हो समय मान प्रमाण है। होष प्रकृतियोंका मङ्ग अपर्योगकोंक समान है। इसी प्रकृत स्व सूद्ध जीवोंमें जानना चाहिए। विकर्जेन्द्रियोंमें भूववन्धवाळी प्रकृतियोंके उन्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल हो समय हे आ उनक्ष्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल संस्थात इज्ञार वर्ष है। व्यक्तिक सन्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट प्रदेशबन्ध प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल संस्थात इज्ञार वर्ष है। हो प्रवृत्तियांक सङ्ग अपर्याग्नकोंक समय है। व्यव्यक्तिकाल सम्बन्धका जयन्य काल एक समय है और उनकृष्ट काल संस्यात इज्ञार वर्ष है। हो प्रवृत्व क्षा क्षा है काल प्रवृत्तिकाल सन्व जयन जयन वर्ण हो समय है। इस प्रवृत्तिकाल सन्व क्षा संस्थात हो हो स्व प्रवृत्तिकाल सम्बन्धकाल प्रवृत्तिकाल सन्व हो स्व स्वत्व हो हो स्व स्वत्व स्वत्व है और प्रवृत्तिकाल सन्व हो स्वत्य स्वत्व हो स्वत्व स्वत्व हो स्वत्व स्वत्व हो स्वत्व स्वत्व स्वत्व स्वत्व

विज्ञेषार्थ-एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य अपनी अपनी अन्य योग्यताओं के साथ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव करते हैं और एकेन्द्रियों में इनका उत्क्रप्त अन्तर काल असंख्यात छोकप्रमाण है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जब तक एकेन्द्रिय जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त नहीं होता तब तक वह ध्रवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध ही करता रहता है, इसिळिये तो एकेन्द्रियोंने ध्रववन्धवाली प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काळ असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीव अपनी कायस्थितिके भीतर निरन्तर तिर्युख्नातित्रिकका बन्ध करते हैं, इसलिये एकेन्द्रियोंमें इन तीन प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धका उस्कृष्ट काल असंख्यात छोकप्रमाण कहा है। बादर एके-न्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गलके असंख्यानवें भागप्रमाण है। यह सम्भव है कि इस कालके भीतर ये जीव ध्रवयन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते रहें, इसिक्रिये इनमें उक्त प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काळ अङ्गलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पर बादर एकेन्द्रियोंमें बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति कर्मास्थितिप्रमाण है, इसिलये बादर एकेन्द्रियोंमें विर्यक्कागतित्रिकके अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। बादर पर्याप्तकोंकी और इनमें अग्निकायिक व वायकायिक जीवोंकी उक्कष्ट कायस्थिति संख्यात इजार वर्षप्रमाण है, इसलिए बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ध्रवयन्यवाकी प्रकृतियोंके और तिर्यक्रमातित्रिकके अनुस्कृष्ट प्रवेशयन्यका

२३३. पंचिदिएसु२ पंचणा०-णवदंतथा०-मिच्छ०-सोलसक०-मय-दु०-सेवा०-क०-वण्णध-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० वेसम०। एवं सब्वाणं उ० पदेसवंघो०। अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसद् ९ वृच्वकोडिपुघने०। पछने० अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसद्पुघनं। साददंडओ मूलोपं। पुरिसदंडओ ओघं। तिरिक्ख०-ओरालि०-ओरालि०आंगे'०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ए०, उ० तेनीसं० सादि० अंतोसुहुनेण सादि०। मणुसगदिदंडओ देवगदिदंडओ पंचिदियदंडओ समचद०दंडओ तित्ययरं च ओपं।

उक्तृष्ट काल संस्थात हजार वर्ष कहा है। सूर्म एकेन्द्रियोंकी कार्यास्थित तो असंस्थात लोक प्रमाण है। पर इनमें पर्योप्त और अपयोग जीवोंकी कार्यास्थित अन्तर्मुहतेसे अधिक तही है, इसिल्य सूचम एकेन्द्रियोंमें उनकी और उनमें पर्योप्तकोंकी कार्यास्थितिको ध्यानमें रख कर प्रवच्यात्र अन्तर्भित्योंके अव्यक्त अदेशवन्यका उक्तृष्ट कांक न कह कर योगास्थानोंकी ध्यानमें रख कर एक्तृष्ट काल कहा है, क्योंकि यह सम्भव है कि जो योग इनमें उत्तर्थ प्रदेशवन्यका कारण हो वह क्रमसे अन्य सब योगोंकि होनेके बाद है। प्राप्त हो और सब योगस्थान जार्याणिक असंस्थाति मागप्रमाण हैं, इसिल्य इनमें प्रवचन्यवाती प्रकृतियोंके और विषक्षात्र विकास अस्ति काल क्ष्ति काल कारण हो हो सुरु क्षत्र काल काल जार्याणिक असंस्थाति मागप्रमाण कहा है। सुरु प्रविविकायिक आदि जीवोंमें यह काल इसी प्रकार पटित कर लेना चाहिए। विकल्ययोंकी काविस्थिति संस्थात इजार वर्ष है, इसिल्य इनमें प्रवचन्यवात्री प्रकृतियोंको अनुतकृष्ट अस्ति विकास प्रवचन वाला प्रकृतियोंको अनुतकृष्ट इसिल्य इनमें प्रवचन्यवात्री प्रकृतियोंको अनुतकृष्ट इसिल्य इनमें प्रवचन्यवात्री प्रकृतियोंको अनुतकृष्ट इसिल्य हना है। यहां जितनी मागणाएँ गिनाई हैं इस सम्बंध श्रेष प्रकृतियोंका सङ्ग अपयोगकोंके समान है यह स्पष्ट ही है।

२३१. पञ्जीन्त्रय और पञ्जीन्त्रय पर्यावकांमें पांच ज्ञानावरण, मी दर्शनावरण, मिळ्यात्व, सीलह कषाय, मस, जुपुत्या, तैज्ञतरारीर, कार्मणरारीर, वर्णजपुत्क, अरुहळ्छु, उपपात, निर्माण और पांच अन्तरायके एक्छुष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उल्कुष्ट आके प्रीविध्य प्रवाद के एक्छुष्ट प्रदेशवन्यका काल है। पञ्जीन्त्रयांमें अनुक्ष्ट प्रदेशवन्यका काल है। पञ्जीन्त्रयांमें अनुक्ष्ट प्रदेशवन्यका काल के है। पञ्जीन्त्रयांमें अनुक्ष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काल एक समय है और उल्कुष्ट काल प्रवाद समय है और उल्कुष्ट काल प्रवाद समय है। प्रवाद प्रवाद समय है। सातावेदनीयरण्डकका भद्र मुलीक्ष्य समान है। प्रवाद प्रवाद समय है। सातावेदनीयरण्डकका भद्र मुलीक्ष्य समान है। प्रवाद प्याद प्रवाद प

२२४. पुटवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० घुवियाणं उ० कोषं। अणु० क० ए०, उ० असंखेआ लोगा। बादरे कम्मट्विदी०। पत्रचेसु संखेआणि वाससहस्साणि। वणप्पदि० एहंदियमंगो। बादरवणप्पदियत्तेय-णिगोदजीवाणं पुटविकाह्यसंगो।सेसं अपआत्तमंगो।

२२५. तस-तसपज्जन० धुनियाणं पढमदंडओ उ० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० सगष्टिदी० । सेसाणं पंचिदियमंगो ।

२२६. पंचमण०-पंचनचि० सव्वपगदीणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं मणजोगिर्मगो वेउव्वि०-आहारका०-कोधादिचदुक्क-

२३४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और बायुकायिक जीवॉर्से ध्रवयन्थवाली प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशवन्थके कालका अङ्ग ओषके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्थका जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादरॉर्स कर्मीस्थिति-प्रमाण है। इनके बादर पर्याप्तकोंसे संख्यात हजार वर्ष है। वनस्थतिकायिकोंसे एकेन्द्रियोंके समान अङ्ग है। बादर बनस्थतिकायिक प्रत्येकझारे और बादर निगोद जीवॉर्से पृथिवीकायिक जीवोंके समान अङ्ग है। वनस्थतिकायिक जीवोंके समान अङ्ग है। वन सबसे शेष अङ्ग अथ्योककीके समान है।

दिशेषार्थ — पृथिबीकायिक आदि चारांकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसतिल इतसे प्रवक्त्याली प्रकृतियांके अनुतक्त प्रदेशस्यका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण
कहा है। बादर पृथिबीकाय आदि चारांकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है और इतके
क्षा है। बादर पृथिबीकाय आदि चारांकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है। विर इतके
अनुतक्तृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। वत्तस्यिकायिकाँकी कायस्थिति अनत्तकालप्रमाण है। पर इतमें अनुतक्तृष्ट प्रदेशवन्य यदि निरत्तर हो तो
असंस्थात लोकप्रमाण काल तक हो होगा। कारणका विचाय एकेन्द्रियमार्गणाकी प्रस्थात्वा समय कर आये हैं, इसलिए इतमें एकेन्द्रियोंके समान भक्क कहा है। बादर वनस्यतिकायिक
प्रत्येकश्रारीर और बादर निगोद जोवांकी कायस्थिति बादर पृथिवीकायिक जोवोंके समान है,
इसलिये यहाँ इन जीवोंका भक्क पृथिवोकायिक जोवोंके समान कहा है। शेष कथन
स्थि हो है।

२२५. तसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई भूवबाओं फ्राइतियाँके एक्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओपके समान है। अनुरुक्त प्रदेशबन्धका जपन्य काळ एक समय है और उन्क्रष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चीन्द्रयोंके समान है।

विश्वेषार्थ — त्रसाँको कार्यास्थित पूर्वकोटिष्टथक्त अधिक दो हजार सागर और त्रस-पर्योप्तकांकी कार्यास्थित दो हजार सागर है। इतने काळ तक इनके अवसन्धवाळी प्रकृतियांका तिरन्तर अनुक्कष्ट प्रदेशकन्य सम्भव है, इसलिए इनके अनुक्कष्ट प्रदेशकन्यका उक्तष्ट काल अपनी अपनी कार्यास्थित प्रमाण कहा है। शेष प्रकृतियांका भङ्ग प्रकृतियांके समान है यह स्पष्ट हो है।

२३६, पाँच मनोयोनी और पाँच वचनयोगी जोवोंमें सब प्रकृतियोंके ब्लूड प्रदेश-बन्धका जपन्य काल एक समय है और उल्कुष्ट काल हो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशन्यका जपन्य काल एक समय है और उल्कुष्ट काल अन्तर्युक्त है। इसी प्रकार मनोयोगी जीवांके समान विकित्यक्वाययोगी, आहारक्कावयोगी, क्रोबादि चार क्वायवाले, अपगतवेदी, सूक्त- अवगदवेद-सुहुमसंप०-उवसम०-सम्मामि० ।

२२७. कायजोगीसु पंचणा० णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक० भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० अर्णतकालमसं०। तिरिक्ख०२--णीचा० उ० अणु० ओघं। सेसाणं पगदीणं मणजोगिमंगो ।

२२८. ओरालिका० पंचणा०-णवदंसणा०-भिच्छ०-सोलसकसा०-भय-दु०-औरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिभि०-पंचत० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० बाबीसं वस्ससहस्साणि देख्०। तिरिक्खगदिदंडओ उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि वाससहस्साणि देख्०। सेसाणं मणजोगिभंगो।

साम्परायसंयन, उपरामसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ-इन सब मार्गणाओंका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें सब प्रकृतियोंके

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२७. काययोगी जीवोंमें पाँच ब्रानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यास्व, सोलह कषाय, भय, जुगुत्मा, औदारिकरारीर, तैजसरागिर, कामंणरारीर, वर्णचतुष्क, अगुतलबु, उपभात, क्रिमीण और पाँच अन्तरायके उत्तृष्ट प्रदेशन्यका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्तृष्ट प्रदेशन्यका जान एक समय है और उत्तृष्ट का अन्तरावा है जो असंख्यात पुद्रल परि-वर्षनामाण है। तिर्ज्ञ्चगीलिंद्ध और नीचगोजके उत्तृष्ट और अनुत्तृष्ट प्रदेशन्यका भङ्ग श्रीधके समान है। श्रेष प्रकृतियांका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। श्रेष प्रकृतियांका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ काययोगी जीवांकी उत्कृष्ट कायस्थित अनन्त काळप्रसाण है। इनमें इतने काळ तक प्रथम दण्डकमें कहीं गई प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुतकृष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काळ अनन्त काल कहा है। ओघसी तिर्यक्ष गतिविद्य और नी अनुतकृष्ट और अनुतकृष्ट अग्रेर अनुतकृष्ट प्रदेशवन्यका जो काल कहा है वह यहाँ भी सम्भव है, इसलिए इनका सङ्ग ओघके समान कहा है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवांके समान है यह स्पष्ट ही है।

२२८. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोछह कपाय, भय, जुगुत्सा, ओदारिकशरीर, तैवसरारीर, कामणवरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुत्वपु, वपपात, निमोण और अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका अङ्ग ओपके समान है। अतुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजा दर्ष है। विशेष्ट्रमातिदण्डक उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका अङ्ग लोपक समय है और उत्कृष्ट क्षेत्र अहित क्षेत्र क्षेत्र अहित काल कुछ कम वाईस अधिक समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका अञ्चन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्षप्रमाण है। शेष प्रकृतियांका अङ्ग सनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ — औदारिककाययोगका चल्छ काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण है, इस्तिल इस योगबाले जीवीम भूवकन्यवाली मकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशकन्यका चल्छ काल कफ प्रमाण कहा है। तथा बायुकायिक जीवीम औदारिककाययोगका चराष्ट्र काल अन्तर्मुहुते कम तीन हजार वर्षप्रमाण है, इसिलए यहाँ तियंक्ष्यातिदण्डक अनुतक्कष्ट प्रदेशकन्यका चल्छ काल अन्तर्मुहुते कम तीन हजार वर्ष कहा है। होष कथम स्पष्ट ही है।

आ॰प्रतौ 'सेसायां मणजोगिर्मगो' इति पाठः ।

२३९. ओरास्तिमिः पंचणा०-णवदंसणा०-सिच्छ०-सोलसक०-अय-दु०-देवग०-चत्तारिसरीर-वेड व्वि०अंगो०-वण्ण४—देवाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-तित्य०-पंचंत० उ० ज० उ० ए० । अणु० ज० उ० अंतो० । सेसाणं पगदीणं उ० ज० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । आउ० ओषं । एवं वेडव्वियसि०-आहारमि० ।

२४०. कम्मझ्म० ै एइंदियमगदीणं उ॰ ज॰ उ॰ ए॰ ३ । अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ तिष्णि सम॰ । तसपगदीणं उ॰ ज॰ उ॰ ए॰ । अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ बेसम॰ । अभवा देवगरिपंचगवजाणं सञ्चयगदीणं उ॰ ज॰ उ॰ ए॰ । अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ तिष्णिसम॰ ।

२३९. औदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोळद कपाय, भय, जुगुरसा, देवगति, चार शरोर, बीकियिकशरीर आङ्गोपङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्वातुर्वी, अगुरुळ्यु, वर्णचतुष्क, तिर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अनतरायके उत्कृष्ट प्रदेशन्यका जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशन्यका जघन्य और उत्कृष्ट कोळ एक समय है। अतुन्कृष्ट प्रदेशन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काळ अनतर्गुहते है। शेष प्रकृतियांके उत्कृष्ट प्रदेशन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काळ पत्न समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशन्यका जघन्य और उत्कृष्ट काळ पत्न समय है। अनुतक्ष्य प्रदेशन्यका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काळ अन्तर्गुहते है। आयुक्तमंका भङ्ग ओपके समान है। इसी प्रकार वैकियिकिमिश्रकाययोगी तथा आहारक-

बिहोषार्थ - औदारिकांमश्रकाययोगमं दो आयुओंको छोड़कर सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशन्य आरोरपर्याप्ति पूर्ण होनके अनन्तर पूर्व समयमें होता है, इसिक्रंप भुवबन्धानी प्रकृतियोंके साथ अन्य प्रकृतियोंके साथ अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशनन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु प्रथम दण्डकमं कहा गई भुवबन्धानो प्रकृतियाको यहां होय अन्यत्युंहर्त काल तक अनुक्तृष्ट प्रदेशन्य होता है, इसिक्रंप यहां भुवबन्धिनो प्रकृतियोके अनुक्रृष्ट प्रदेशन्य व्याप्त जयम्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तयान प्रकृतियों है, इसिल्य उनके अनुक्रृष्ट प्रदेशनन्यका जयम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्युंहर्त कहां है। यहां दो आयुओंका मङ्ग ओपके समान है, क्योंकि आयुकर्मका भङ्ग श्रिमागमं या मरणसे अन्तर्युहर्त पूर्व होता है और जो औदारिकांमश्रकाययोगी आयुक्त वन्ध्य करता है वह लञ्च्यपयाम होता है, इसिक्य यहां ओपके समान उत्कृष्ट और अनुक्तृष्ट प्रदेशनन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल प्राप्त होनमें कोई वाधा नहीं आता। बैक्तियकांमश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जांवोंमें इसी प्रकार अपनी अपनी प्रकृतियोंका काल परित हो जाता है, इसिक्य उनमें औदारिकांमश्रकाययोगी जीवोंके समान जाननेकी सचना की है।

२४०. कार्यणकाययोगी जीवोंमें एकेन्द्रिय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जमन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुतृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। त्रसग्रः ितयोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक एक समय है। अनुतृक्ष्ट प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल हो समय है। अथवा देवगांविश्वक्रकों छोड़कर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्यका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुतृह्य प्रदेशवन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

१. आ०प्रती 'उ० ज॰ पू॰' इति पाठ:। २. ठा॰बा॰बस्पोः 'आहारमि॰ बसादमंगो । कम्मइग॰' इति पाठ:। ३. बा॰प्रती 'उ॰ ज॰ पु॰' इति पाठ:।

२४१. इत्यिषेदे पंचणाणावरणादिपदमदंडओ उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० पिलदो-सदपुषमं । सादासाद०-छण्णोक-०-बदुआउ०-दोमादि-बदुबादि-आहारदुग-पंचसंठा०-पंचसंप०-दोआणु०-आदाउओ०-अप्यसत्थ०-थावरादि०४-थिरादितिण्णियु०-दूमग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । पुरिस०-मणुस०-पंचिदि०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वजरि०-

विशेषार्थ- यहां सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य अपने अपने स्वामित्वके योग्य स्थानमें एक समयके छिए होता है, इसछिए सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय कहा है। परन्तु अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्धके कालके विषयमें दो सम्प्रदाय हैं। प्रथमके अनुसार जो एकेन्द्रियोके विप्रहातिमें वधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनके अनुस्कृष्ट मदेशबन्धका जघन्य काळ एक समय और उस्कृष्ट काळ तीन समय कहा है. क्योंकि अधिकसे अधिक तीन विग्रह एकेन्द्रियोंमें ही सम्भव हैं। तथा जो केवल असोंमें बँधनेवाळी प्रकृतियां हैं उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जधन्य काळ एक समय और इत्कृष्ट काल दो समय कहा है, क्योंकि त्रसामें अधिक से अधिक दो विग्रह ही होते हैं। दसरे सम्प्रदायके अनुसार देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियक आङ्गोपाङ और तीर्थक्कर इन पाँच प्रकृतियोके अनुन्कृष्ट प्रदेशबन्धका जयन्य काल एक समय और उस्कृष्ट काछ दो समय ही है, क्यों कि इनका बन्ध करनेवाले जीव कामणकाययोगमें अधिकस अधिक दो समय तक ही रहते है। किन्तु शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जधन्य काल एक समय और उरकृष्ट काछ तीन समय कहा है। यहां यह तो स्पष्ट है कि जिनका एकेन्द्रियोंके कार्मणकाययोगम बन्ध होता है उनका यह काळ वन जाता है। परन्त जिनका एकेन्द्रियोंके कार्मणकाययोगमें बन्ध नहीं होता उनका यह काछ कैसे बनता है यह विचार-णीय है। साधारण नियम यह है कि जो जिस जातिमें उत्पन्न होता है उसके यदि वह सम्यादृष्टि नहीं है तो अन्तर्सूहर्त पहलेसे उस जातिसम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है। पर अन्यत्र भी मरणके बाद वित्रहरातिम यह नियम नहीं रहता ऐसा इस कथनसे स्पष्ट होता है। इसिंछए एकेन्द्रियोंके विग्रहगतिमें तिर्यक्क्षगतिसम्बन्धी और मनुष्यगतिसम्बन्धी सभी प्रकृतियोंका बन्ध हो सकता है यह इस कथनका तारपर्य है। देवगतिचतुष्क और तीर्थक्कर प्रकृतिको इस नियमका अपवाद रखा है सो उसका कारण यह है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका तो सदैव सम्यन्दृष्टिके ही वन्ध होता है, अतः कार्मणकाययोगमें भी इसका बन्ध करनेवाले जीवके अधिकसे अधिक दो विग्रह हो सकते है। और देवगतिचतुष्कका कार्मण-काययोगमें केवल मनुष्य और तिर्युख सम्यन्दृष्टिके ही बन्ध होगा, इसिलए यहाँ भी अधिकसे अधिक दो विमह ही सम्भव है। यही कारण है कि इन पॉच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका दूसरे सम्प्रदायके अनुसार भी वस्कृष्ट काल दो समय कहा है।

८४१. स्रोबेदमं पाँच झानावरणादि प्रयम दण्डकके उत्तृष्ट प्रदेशकन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्तृष्ट काल दो समय है। अनुतृष्ट प्रदेशकन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्तृष्ट काल दो प्रस्य है। अनुतृष्ट प्रदेशकन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्तृष्ट काल सी पर्वे प्रयूचना हो। सातावेदनीय, अधानावेदनीय, उद्यान काल सुत्र सहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, ज्योत, अप्रशस्त विद्यागिति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन सात्र काल एक समय हो। अप्रशस्त विद्यागिति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन सम्बद्ध कुमा, दुःस्वर, अनादेय बीर नीचनीयके उत्तृष्ट प्रदेशकन्यका जपन्य काल एक समय है और उत्तृष्ट काल अन्तर्धुद्ध है। पुरुषवेद, सनुष्टमति, प्रक्षोन्यकाति, समयद्वादि, सम्बद्धात्र काल एक समय है और उत्तृष्ट काल अन्तर्धुद्ध है। पुरुषवेद, सनुष्टमति, प्रक्षोन्यकाति, सम्बद्धात्र काल एक समयद्वादि, सम्बद्धात्र काल एक समयद्वादि, स्व

मणुसाणु०-यसत्य०-तस-सुमग-सुस्सर-आदे०-उचा० उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं पत्ति० देस्०। देवगदि०४ उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० तिष्णि पत्ति० देस्०। ओरासि०-पर०-उस्मा०-बादर-पजन-पत्ते० उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं पत्ति० सादि०। तित्य० उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी देस्णाणि।

२४२. पुरिसेसु पंचणाणावरणादिपदमदंडजो सादादिविदियदंडजो` इत्थिभंगो । णवरि सगड्विदीः । पुरिसः उ० ज० ए०, उ० वेसमः । एवं सच्वाणं उक्क० पदेस-वंघो । अणु० ज० ए०, उ० वेखावट्टि० सादि० दोहि पुच्चकोडीहि० । देवगदि०४

संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्क, वज्जर्थभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त बिहायोगांत, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके चरुष्ट प्रदेशन्यका काळ ओघके समान है। अनुरुष्ट प्रदेशन्यका काळ ओघके समान है। अनुरुष्ट प्रदेशन्यका काळ कुछ कम पचवन पर्य है। देवातिचनुष्कके उन्कुष्ट प्रदेशन्यका काळ ओघके समान है। अनुरुष्ट प्रदेशन्यका काळ एक समय है और उन्कुष्ट काळ कुछ कम तीन पर्य है। ओदारिकशरीर, परधात, उच्छुास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके उन्कुष्ट प्रदेशनन्यका काळ ओघके समान है। अनुरुष्ट प्रदेशनन्यका जायन्य काल एक समय है और उरुष्ट काळ साळ समान है। अनुरुष्ट प्रदेशनिक्य काल एक सुन्य है। तीर्यक्कर प्रदेशनन्यका काल एक सुन्य है। अनुरुष्ट प्रदेशके उन्कुष्ट प्रदेशनन्यका काल एक सुन्य है। अनुरुष्ट प्रदेशनेक्य काल एक सुन्य है। अनुरुष्ट प्रदेशनेक्य काल एक सुन्य है। अनुरुष्ट प्रदेशनेक्य काळ कुछ कम एक पूर्वकीटि है।

विरोपाय सोवेदको उक्कृष्ट कायस्थित सी पल्यग्रक्त्वतमाण होनेस इसमें पाँच कानावरणादि प्रवन्ध्याली प्रकृतियां के अनुक्रुष्ट प्रदेशक्त्य मा ब्ह्रुष्ट काल सी पल्यप्रथक्त्य प्रमाण कहा है। सातावरनीय आदिमं कुछ सप्रतिप्रध प्रकृतियाँ हैं और कुछ अध्यवनिधनी प्रकृतियाँ है, इसिज्य इसके अनुक्रुष्ट प्रदेशक्त्यका प्रकृष्ट काल अन्तुमुद्ध कहा है। समयरहिष्ट देवीके पुरुष्ट अविष्ठ महिका निरन्तर वन्य होता रहता है। इसाल्य यहां इसके अनुक्रुष्ट प्रदेशक्त्यक जल्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पत्य कहा है। उत्तम भोगम्प्राममं प्रयोग होने पर मनुष्टिवनीके देवाति चतुत्कका नियमसे वन्ध होता है, इसाज्य वहां इस्वाति चतुत्कका जल्कृष्ट कम तीन पत्य कहा है। देवों के और वहांसे च्युत होने पर मिध्याहिष्ट जीवके अन्तुमुद्ध के काल तक औदारिक्शरोर आदिका वन्ध सम्भव है, इसाज्य की बारिक्शरोर आदिका वन्ध सम्भव है, इसाज्य की साधिक पचवन पत्य कहा है। सुनीयनी आठ वर्षको होकर सम्बन्धको उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है। सुनीयनी आठ वर्षको होकर सम्बन्धको उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है। सुनीयनी आठ वर्षको होकर सम्बन्धको उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य कहा है। सुनीयनी आठ वर्षको होकर सम्बन्धको उत्कृष्ट काल तीयन्त वस्त्र कर सकती है, इसिज्य यहां तीर्यहर प्रकृतिक अनुत्कृष्ट प्रदेशनक्षका उक्कृष्ट काल स्व कि सन्तर वस्त्र कर पत्र विर्वह है।

२१२. पुरुषों में पाँच जानावरणादि प्रथम दण्डक और सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डकक भक्त क्षीदिदी जीवांके समान है। इतनी विदोषता है कि प्रथम दण्डकके अनुतकुष्ट प्रदेशवन्यका उत्तरृष्ट काल कहते समय वह अपनी कायिष्टतिप्रमाण कहना चाहिए। पुरुषवेदके उत्तरृष्ट प्रदेशवन्यका जचन्य काल एक समय है और उत्तरृष्ट प्रदेशवन्यका जचन्य काल एक समय है। अनुतरृष्ट प्रदेशवन्यका जचन्य काल है। अनुतरृष्ट प्रदेशवन्यका जचन्य काल है। अनुतरृष्ट प्रदेशवन्यका जचन्य काल एक समय है अपासन सामर है।

ता॰प्रती 'सा [दा] दियदंडको' इति पाठः ।

पंचिदियदंडओ समचदु॰दंडओ तित्य॰ ओधं। णवरि पंचिदियदंडओ अणु॰ उ॰ तेबड्डि॰ सागरोबमसदं। मणुसगदिपंचग॰ अणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ तेचीसं सागरो॰।

२५२. णबुंसमे पढमदंडओ विदियदंडओ तिरिक्व०३ तिरिक्वोधं । पुरिसदंडओ सचममंगो । देवगदि०४ अणु० ज० ए०, उ० पुल्कोडी दे० । पंचि०-ओरा०अंगो० पर०-उस्सा०-तस०४ उकस्सं ओधं । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि अंतोम्रुनीहि सादि० । ओरा०अंगो० एगसुहुनोहि सादि० । तित्थ० अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिसाग० सादि० ।

देवातिचतुष्क, पञ्चिन्द्रयज्ञानिदण्डक समचतुष्क्रसंख्यानदण्डक और तीर्यक्कर प्रकृतिका भक्क ओषके समान है। इतनो विशेषता है कि पञ्चिन्द्रियज्ञानिदण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशदन्यका उक्कृष्टकाल एक सी त्रेसट सागर है। मनुज्यगितिषञ्चके अनुत्कृष्ट प्रदेशदन्यका जपन्य काल एक समय है और उन्कृष्टकाल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ — यहां पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकके कालमें स्त्रीवेदी जीवोंकी अपेक्षा जो विशेषता है उसका निर्देश मुख्यें किया हो है। तात्स्य यह है कि पुरुष्वेदकी उत्कुष्ट कायियाँ व हो कि पुरुष्वेदकी उत्कुष्ट कायियाँ से सागर पृथक्ष्वप्रमाण है और पाँच ज्ञानावरणादि भुवक्षियमाँ प्रकृतियाँ है, इसींक्ष्य इनके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल सी सागर पृथक्ष्वप्रमाण जानना चाहिए। सावावेदनीय आदि दण्डक्का भक्न स्त्रीवेदी जीवोंमें जैसा वतलाया है वह यहां भी बेता हो है। कारण स्वष्ट है। पुरुष्वेदिका निरुष्ट क्या ओपयों दो पूर्वेशिट अधिक हो छ्यास्य सागर वतळा आय दे वह पुरुष्वेदी जीवोंमें अधिक करित हो जाता है, इसिंक्ष्य वहां मा इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल उक्त काक प्रमाण कहा है। द्वाति चतुक, पश्चित्रियवातिदण्डक, समयतुः स्तर्सस्थानदण्डक ओर तीयेट्कर प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल अपेक्ष तो एक सी प्यामी सागर कहा है। उसमेंसे वाहंस सागर कम हो जाता है, क्यां विशेष एक सी प्यामी सागर कहा है उसमेंसे वाहंस सागर कम हो जाता है, क्यां अध्या उत्कृष्ट अदेशवन्यका उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट अतुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट अतुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट अतुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल एक हो है। सवौर्यसिद्धिमं मनुष्यगति प्रकृष्ट कात्र ति सागर क्ष्य होता दहा है, इसिंक्ष्य यहां इन प्रकृतियांके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट कात्रवा तै ति सागर क्ष्य होता दहा है। इसिंक्ष यहां इन प्रकृत्यका ति ति सागर क्ष्य होता रहता है, इसिंक्ष यहां इन प्रकृतियांके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट कात्रवा है। सागर क्ष्य होता रहता है। इसिंक्ष यहां इन प्रकृतियांके अनुतक्ष्य प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट कात्रवा है।

२४३. नपुंसकवेदमे प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक और विर्यक्कागीवित्रकका भक्क सामाग्य विरक्कांके समान है। एँडपवेदरण्डकका भक्क सातवी प्रथिवोक्ते समान है। देवगांतिचतुष्कठे अनुस्कृष्ट प्रदेशनण्डका जावन्य काळ एक समय है और उन्हण्डका कुळ कम
एक पूर्वकीट है। पक्कोन्द्रपजाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्क, परापत, क्च्छुमा और त्रसचतुष्कक उन्कृष्ट प्रदेशनण्डका भङ्ग आपके समान है। अनुन्कृष्ट प्रदेशनण्डका जवन्य काळ
एक समय है और जहरू काल दो अन्तर्युद्धते अधिक तैतीस सागर है। मात्र औदारिक
कारीशाङ्गोपाङ्गका यह काळ एक अन्तर्युद्धते अधिक है। तीर्थङ्कर प्रकृतिक अनुन्कृष्ट 'प्रदेशवन्यका अपन्य काळ एक समय है और उन्हण्ड काळ साधिक तीन सागर है।

विश्चेषाथं—सामान्य तियेश्वामें प्रथम और द्वितीय दण्डक तथा तियेश्वरातित्रिकका जो काल कहा है वह अविकल नपुंसकदेदमें बन जाता है, इसलिए इनका अब सामान्य तिर्यक्षांके समान जाननेकी सूचना की है। सम्यन्दष्टि मनुष्य पर्याप्त नपुंसकदेदीके देवगति-षतुष्कका नियन्तर बन्ध होता रहता है और इनमें सम्यनस्वका काल कुछ कम एक पूर्वकोट है, २४४. मदि०-सुद० पंचणा०दंडजो तिरिक्ख०३ पंचिंदियदंडजो णव्यंसगर्मगो । सादासाद०-सत्तगोक०-चदुआउ०-णिरयम०-चदुजा०-पंचसंठा०-छस्संघड०- णिरयाणु०-आदाउजो०-अप्पसत्य०-धावरादि०४-धिरादितिण्णियु०-दूमग-दुस्सर-अणादे० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसमादि०२ उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० कंतो। मणुसमादि०२ उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि सस्य-सुमा-सुस्सर-आदे०-उच्चागो० उक्क० ओषं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पत्थिक दे०। एवं अक्शबसी०-मिच्छा०।

इसकिए यहाँ देवगतिचतुष्कके अनुक्तष्ट प्रदेशवन्यका उन्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। सातव नरकम पद्धोत्द्रयज्ञाति आदिका निरन्तर बन्ध तो होता हो है। साथ ही वहाँ जानेके पूर्व अन्तर्शहुर्त काल तक उत्तर वहां जानेके पूर्व अन्तर्शहुर्त काल तक इतका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुक्रष्ट प्रदेशवन्यका उन्कृष्ट काल तो अन्तर्शुहुर्त काल तक हो होता है। इसलिए यहाँ इनके अनुक्रष्ट प्रदेशवन्यका उन्कृष्ट काल तो अन्तर्शुहुर्त अभिक तेतीस सागर कहा है। मात्र अग्नितंत्रकारीर आङ्गोपङ्गका नरकमें जानेके पूर्व बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अनुक्तुष्ट प्रदेशवन्यका उन्कृष्ट काल सं पर अन्तर्शुहुर्त कम कर दिया है। तीसरे नरकमें साधिक तीन सागर काल तक तीर्थङ्कर प्रहतिका निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुक्तुष्ट प्रदेशवन्यका उन्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है।

ैश्प्रः सस्यक्षानी और अुताक्षानी जीवांमें पाँच क्षानावरणदण्डक, तिर्यक्षगितित्रक और पश्चांत्रयज्ञातिदण्डकका भङ्ग नायुं कहवेदी जीवांके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगित, चार जाित, पंच संस्थान, छह संहमन, नरकगत्यावुप्वी, आतप, उद्योत, अप्रक्षस्त विहायोगित, स्थावर आदि पार, स्थिर आदि तीत युगळ, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उन्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ दो समय है। अदुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ दो समय है। अदुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ ओपके समान है। अदुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका काळ ओपके समान है। अदुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका जाठन काळ पक्त समय है और उन्कृष्ट काळ निकलनेवाळेका अन्तर्यकुर्त अधिक इकतीस सागर है। देवर्गावचतुष्क, समचतुरस्तसंख्यान, प्रशस्त विहायोगित, सुमग, सुस्वर, आदेव और उच्चण्ड काळ पक्त समय है और उन्कृष्ट काळ जोपके समान है। अतुन्कृष्ट प्रदेशवन्यका जघन्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ पत्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ पत्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ प्रव्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ प्रव्य काळ पत्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ प्रव्य काळ पत्य काळ एक समय है और उन्कृष्ट काळ कुछ कम तीन पत्य है। अमञ्च अर्थर काळ प्रवेद सम्बन्ध स्थाप हो। अस्त स्थाप स्य

२४५. विभंगे पंचणा०-गवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-विस्किष-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा० क० - ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्षाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णोचा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तेचीसं० दे० । मणुसगदि०२ उक्क० ओर्थ । अणु० ज० ए०, उ० एकचीसं० देख० । सेसाणं मणजोगिसंगो ।

२४६. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुस्स०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु० वष्ण०४-अग्रु०४-पसत्य०-तस०४-सुभग सुस्सर-आदे०-णिमि०-उचा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सब्वाणं उक्क०। अण्रु० ज० ए०, उ० छाबिहुसाग० सादि०। सादासाद०-चदुणोक०-दोआउ०-आहात्दुग-धिरादितिष्ण-यु० अण्रु० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अपचक्काण०४-तित्य० अण्रु० ज० ए०, उ० तेचीसं० सादि०। पचक्काण०४ अण्रु० ज० ए०, उ० बादालीसं० सादि०। मणुस-

२४. विभंगज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, निध्यात्व, सोळ्ह कथाय, भय, जुगुप्सा, नियंक्वगति, प्रक्रीट्रयज्ञाति, औदारिक्शरोर, तेशवरारोर, कामणशरीर, कोदारिक्शरोर आक्रोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, नियंक्वगरयातुष्की, अगुरुळुचतुष्क, अध्यतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके वर्ष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्क्रष्ट काल हो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्क्रष्ट काल कुळ कम तेतीस सागर है। मतुष्मगतिक्वके च्क्रुप्ट प्रदेशवन्यका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्क्रष्ट काल कुळ कम हिस्सान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यका जयन्य काळ एक समय है और उत्क्रष्ट काल कुळ कम इक्तीस सागर है। श्रेष प्रकृतियांका भङ्ग मनोयोगा जीवांके समान है।

विशेषार्थ — नरकमें विभंगक्षानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक पाँच ज्ञानावरणादिको जिरन्तर बन्ध होता है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिको अनु- कुछ प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नांव मेवेयकमें विभंगक्षानका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। इतने काल तक यहाँ मतुष्यगतिद्विकका निरन्तर कहा है। होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुतक्ष्ट भरेकवन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष प्रकृतियाँ परावतमान है, इसलिए उनका भंग मनोयोगी जोवोंके समान जाननेकी सुचना है।

२५६. भाभिनियोधिक झानी, अनुत्कानी और अवधिकानी जीवोमें पाँच झानावरण, छह् द्रांतावरण, चार संख्वकन, एक्यवेद, भय, जुतुप्सा, पद्मिद्धवाति, तैजसक्षरीर, कमागरारीर, सम्बदुरक्सस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुक्तपुचतुष्क, प्रशस्त विदायोगित, अस्वयुद्धक, सुभग, सुम्यर, आवेद्य, निर्माण, उच्चात्र और पाँच अन्तरायके उक्कष्ट प्रदेशसम्बद्धक जम्म काल पर समय है और उक्कष्ट काल वो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोके वक्कष्ट प्रदेशसम्बद्धक काल पर समय है और उक्कष्ट काल धार्षिक अवावाद सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकचाया, दो आयु, आहारक्षरीरिक और स्थित सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकचाया, दो आयु, आहारक्षरीरिक और स्थित आदि सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकचाया, दो आयु, धार्मिक उत्पादक सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकचाया, दो आयु, धार्मिक उत्पादक सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकचाया, दो आयु, आहुक्क प्रदेशसम्बद्धक अप्रकृत्क प्रकृतिक साथिक तेतीस सागर है। प्रशास्त्रवानावरण चार और तीयेक्कर काल समय है और वक्कर काल समय काल पर समय

यदिपंचनः अञ्चर्ं वर ए०, तर हेचीसं०। देवनदि० । उत्तर अञ्चर जोवं। वर्ष ओधिरं -सम्बार ।

२४७. मणपञ्ज**ः पंचमाः -क्वंसणाः -बद्संबः-युत्सः -यय-द्--देवनदि नंत्रिकेः** वेडच्चिः-तेजाः--कः-समयद् ः-वेव्यिः अंगोः -वण्यः ४-देवा**णः -अगुः ४-प्यत्यः-**तसः४-सुमग्रसुस्सर-आदेः-णिमि**ः-तित्यः -एकाः गं**चंतः उः जः पः, उ**ः वेसमः** ।

साधिक व्यातीस सागर है। अनुष्यगतिपञ्चक्के अनुक्रष्ट प्रदेशक्षण्यका जयन्त्र काळ एक समय है और उक्कष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिषतुष्कके व्यक्कष्ट और अनुक्रक्ट प्रदेशवन्यक काळ जोपके समान है। इसी प्रकार सवधिवृक्षनी और सन्यन्द्रष्टि बीवॉर्से जानना चाहिए।

विद्रीवार्ध-आभिनिवीधिकज्ञान आदि तीन ज्ञानोंका उत्कृष्ट काळ चार पूर्वकोटि अधिक छ यासठ सागर है। यही कारण है कि यहाँ पर पाँच ज्ञानावरणादि भुववन्धिनी प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काळ साधिक क्रयासठ सागर कहा है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट काळ अन्तर्भृहत् है इसका पहले अनेक बार खुळासा कर आये हैं। सर्वार्थसिद्धिमें और वहाँ से निकलकर मनुष्य होने पर संयमासंयम या संयम प्रहण करनेके पूर्वतक जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका बन्ध करता रहता है और श्रेणि आरोहण करके आठव गुणस्थानके अन्ततक तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करता रहता है। वह काळ साधिक तेतीस सागर होता है, इसलिए यहाँ इन पाँच प्रकृतियाँके अनुतकृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल साथिक वेतीस सागर कहा है। प्रत्याख्यानावरणचतकका बन्ध संबंधासंबंध गणस्थानतक प्रारम्भके पाँच गणस्थानोमें होता है, पर यहाँ आभिनिबोधिकज्ञान आदिका प्रकरण है, इसक्रिए यहाँ यह रेखना है कि देवल सम्बद्धनके माथ और सरव्यन्त व संवसासंवसके साथ जीव अधिकारे अधिक कितने काल तक रहता है। केवल सम्यक्तक साथ रहनेका क्ताह काल साधिक तेतीस सागर है इस बातका उल्लेख तो हमने इसी विक्रेचार्यके प्रारम्भमें किया ही है । किन्स सम्यवस्थी जीव कहीं केवळ सम्यवस्थके साथ और कहीं सम्यवस्थ व संयमासंबमके साथ लगातार यदि रहता है तो उस कासका बोग साचिक बयाखीस खानर होता है. इसस्टिए यहाँ प्रत्यास्यानावरण चतुष्कके अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धका बस्कृष्ट काल साधिक बयालीस सागर कहा है । सर्वार्थसिद्धिमें मन्त्र्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक शरीर आक्रोपाक और वक्क्यमताराच संहतन इन पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है. इसकिए यहाँ इनके अतरह प्रदेश-बन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। ओषसे देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुतक्कष्ट प्रदेशबन्धका जो काल कहा है वह यहाँ अविकळ बन जाता है, इसक्षिप यह अक ओघके समान कहा है। अवधिवरानी और सस्यक्ष्टि जीवोंका काल आधिनिवोधिकवानी आहिके ही समान है, इसलिए इनका भक्त आधिनिवोधिकहानी आदिके समान कहा है।

२४७. मनःपर्ययद्वानी जीवॉर्म पाँच ज्ञानावरण, छद्द वर्षनावरण, चार संव्यक्षन, पुरुषदेद, मनः जुगुस्ता, देवगति, पञ्चित्रवाति, वैक्षिविक्करोर, वैज्ञाकरोर, कार्ययरारीर, समचुरससंस्थान वैक्षिविककरोर आक्षेत्रकारी कार्यक्षात्रकार, समचुरससंस्थान वैक्षिविककरोर आक्षेत्रकार, व्यवस्थान कार्यक्षित्रकार कार्यक्षात्रकार अक्षेत्रकार कार्यक्षात्रकार कार्यक्षात्रकार कार्यक्षात्रकार कार्यक्षात्रकार कार्यकार कार्यक्षात्रकार कार्यकार कार

ता॰प्रती 'महस्यादियंच्या॰ मच्चाद्रादियंक्या॰ (१) माह्न॰' इक्कि इस्तः ।

अणु० ७० ए०, ७० पुरुषकोडी०' [देखना । सादासाद०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-हेवाउ०-आहारस०-आहार-अंगो०थिराथिर-समासुम-जस०-अजस० उ० ज० ए०, उ० बेसम्बर्ग । अणुरु ज्ञुरु एर, उरु अंतोम्ररु । एवं संजद-सामाद्वर-छेदो ०-परिहारः ।]...

अन्तराणुगमो २४८. ·····कस्समंगो । देवगदि०४ जह० णत्थि ज्ञंतरं । अज० जह० एग०, उक्क तेत्तीसं सादि० । एइंदियदंहओ उक्कस्समंगो । एदाणं दंडगाणं उक्कस्साणुक्कस्स-बंघातो विसेसो । जहण्णपदेसबंघंतरं जह० श्रंतो० । सेसं पुरिसं । तित्थ० ओघं ।

२४९. णर्बुसगे धुवियाणं [जह०] जह० खुदाभवग्गहणं समऊणं, उक० असंखेजा लोगा। अज ० जह ० उक्क ए० । थीणगिद्धि ०३ दंह ओ वह ० णाणा ० भंगो। अज ॰ अणुकस्सभंगो । सादासाद ०-पंचणोक ०-पंचिंदि ०-समचद ०-पर ०-उस्सा ०-पसत्थ ०-अनुरकुष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, देवाय, आहारकशरीर, आहारकशरीर आक्नोपाक्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जपन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काछ दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काछ एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सृह ते हैं। इसी प्रकार संयत, सामायिकसयत, छेदीपस्थापना-संयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जानना चाहिये।

पाँच ज्ञानावरणादि भ्रवबन्धवाळी प्रकृतियांके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उस्कृष्ट काल कुछ कम एक पर्वकोटि कहा है। सातावेदनीय आदिके अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यका उत्कृष्ट काल अन्त्रमहर्त है यह स्पष्ट ही है। संयत आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ यहाँ गिनाई हैं उनका एत्कुष्ट काल भी कुछ कम एक पूर्वकोट है और मन:पर्ययक्कानके समान ही इन मार्गणाओं में प्रकृतियोका बन्ध होता है, इस्रतिए इनकी प्ररूपणा सनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान जाननेकी सचना की है।

अन्तरानगम

२४८.....चत्कृष्टके समान भक्क है । देवगतिचत्रकके जघन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाळ नहीं है। अजयन्य प्रदेशबन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। एकेन्द्रि यदण्डकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इन दण्डकोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धसे विशेष जानना चाहिये । जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है। शेष पुरुषवेदके समान है। तीर्थहर प्रकृतिका भक्न ओघके समान है।

२४९. नपुंसकवेदी जीवोंमें ध्रववन्धवाळी प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य बन्तर एक समय कम श्रुह्मकभवमद्गाप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोकप्रमाण है। अजवन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और सरकृष्ट अन्तर एक समय है। स्थानगृद्धि तीन दण्डकके जयन्य प्रदेशबन्धका अन्तर झानावरणके समान है। अजधन्य प्रदेशबन्धका अन्तर अत-रक्टके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, पक्कोन्द्रयजाति, समचतुरस्र

२, ता ः तौ 'पुष्यकोडिदे । [धत्र ताडपत्रचतुष्ट्यं विनष्टम्].......इति निर्दिष्टम् । आ । प्रताविष १८१, १८४, १८५, १८६, संस्थाङ्किताडपत्राणि विनष्टानीति सुचना वर्तते ।

१. मा॰प्रसी पन्द्र॰ चीणगिक्दिश्वंदको इति पाठः १

तस०४-धिरादितिष्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे० जह० बाबावरणमंगो। अज० जह० ए०, उक्क० अंतो०। अड्डकसा०-णिरयग०-मणुसग०-आहारदुग-तिष्णिआ०-दोआणु०-उचा० जह० अज० ओयं। देवाउ० मणुसि०मंगो। देवगदि०४ जह० जह० एग०, उक्क० पुञ्चकोडितिमागं देस्र०। अज० जह० एग०, उक्क० अर्थतकाल०। ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-वजरि० जह० णाणा०मंगों। अज० जह० एग०, उक्क० पुञ्चकोडी देस्र०। तित्य० जह० णत्य अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

संस्थान, परघात, उच्छुास, प्रश्नस्विद्दायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगळ, सुभगः सुस्वर और आदेवके जघन्य प्रदेशवन्यका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजमन्य प्रदेशवन्यका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजमन्य प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय है और उच्छु अन्तर अन्तर्युद्ध है। आठ क्याय, नरकारित, मतुष्यं नित्त आद्वाद हो आदु अनु श्री उच्छुपो के जाय अपन्य अदेशवन्य का अन्तर ओपके समान है। देवगतिचतुष्कके जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उच्छुष्ट अन्तर पूर्वकिटिका कुछ कम सिमागप्रमाण है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उच्छुष्ट अन्तर अनन्त काक्षप्रमाण है। आदिक्कारीर, औदारिकारीर अष्ट्वापा अपन्य अन्तर एक समय के और अच्छुप्त अन्तर अनन्त काक्षप्रमाण है। आदिक्कारीर, औदारिकारीर अष्ट्वापा अपन्य प्रदेशवन्यका अन्तर आनन्त कायन्य प्रदेशवन्यका अन्तर आन्तर हानावरणके समान है। अजयन्य प्रदेशवन्यका अन्तर आन्तर इक्ष्य अन्तर अन्तर प्रकृ समय है और उच्छुष्ट अन्तर अन्तर प्रदेशवन्यका जन्तर हो । अज्यन्य प्रदेशवन्यका जन्तर हो । अज्यन्य प्रदेशवन्यका अन्तर एक समय है और उच्छुष्ट अन्तर अन्तर्य हो और उच्छुष्ट अन्तर अन्तर्य हो और उच्छुष्ट अन्तर अन्तर्य है।

विशेषार्थ--- प्रवबन्धवाळी प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सुक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीवके भवप्रहणके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके जधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय कम श्रुल्तक भवत्रहण प्रमाण कहा है, क्योंकि दो श्रुल्तक भवोंके प्रथम समयोंमें जघन्य प्रदेशबन्ध होनेपर उक्त अन्तर काल प्राप्त होता है। तथा सूद्रम निगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ भ्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका उत्क्रष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनका जघन्य प्रदेशबन्धका काल [एक समयमात्र है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व झानावरणके समान होनेसे इसके जघन्य प्रदेश-बन्धका अन्तरकाळ उसके समान कहा है और इसके अज्ञधन्य प्रदेशबन्धका अन्तर जो अनुतक्रह के समान कहा है सो उसका यही अभिन्नाय है कि इसके अनुस्कृष्टके समान अजघन्य प्रदेश-बन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर कल कम तेतीस सागर बन जाता है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी यथायोग्य झानावरणके समान होनेसे इनके जघन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाल उसके समान कहा है। तथा इनका जघन्य बन्धान्तर एक समय और उत्हृष्ट बन्धान्तर अन्तर्सृष्ट्रते होतेसे इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त कहा है। नप सकवेदी जीवोंमें आठ कवाय आदिके जधन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व भोषके समान होनेसे तथा यहाँ इनके जघन्य और अजवन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान प्राप्त होनेसे वह ओघके समान कहा है सो वह विचार कर जान केना चाहिए। तथा मनुष्यिनियोंमें देवायुके जघन्य और अजधन्य प्रदेशवन्धका जो अन्तर इहा है वह यहाँ नपुंसकवेदियोंमें भी बन जाता है, इसविए उसे मतुष्यिनियोंके समाम जानवेकी

१, भा॰प्रतौ 'बहु॰ बहु॰ वाषा॰संदो' इदि याहः ।

२५०. अवगद्ये - सम्बद्धार्थ जह जज क क ए०, उ० अंतो० ।

२५१. कोवकसा० पंचमा०-सच्दंतमा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचत० जह० परिव अंतरं । अष० वह० उद्म० एम० । मिद्दा-पयला दोवेदणी०-सवणोक०-तिण्यियदि-पंचनादि-तिष्णसरीर-इस्संठा०-जोरा०अंगो०-इस्संघ०-वणा०४- तिण्यियाणु०-अगु०४-अषाउओ०'-दोविद्दा०-तवाविद्दसयुग०-णिवि०-तित्य०-दोगो० जह० परिव अंतरं । अव० जह० ए०, उद्म० अंतो० । दोआठ० बह० श्रवः श्रवः वंतरं । दोआठ०-

सुचना की है। देवगतिचतुन्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भन्यतर अट्टाईस प्रकृतियोंके साथ भाठ प्रकारके कमी का बन्ध करनेवाका असंज्ञी नपुंसक जीव होता है। यतः यह आयुवन्धके समय ही सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तथा इनका बन्ध एक समयके बन्तरसे भी सम्भव है भीर अनन्त काबके अन्तरसे भी सम्भव है, इसकिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्क्रष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण कहा है। औदारिक-शरीर आदि तीन प्रश्तियोंके जवन्य प्रदेशबन्यका स्वामी यथायोग्य झानावरणके समान होनेसे इनके जवन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाछ ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनका नपु सकवेदी जीवोंमें कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटिके अन्तरसं बन्ध सम्भव है इसिन्ए इनके अजपन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और क्का अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंचकोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशवन्य नरकमें अपन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशवन्धके अन्तरकाल-का निषेत्र किया है। तथा इसके जयन्य प्रदेशवन्यके समय अजघन्य प्रदेशवन्य नहीं होता, इसिक्तए इसके अजघन्य प्रदेशावन्यका जघन्य अन्तर तो एक समय कहा है और तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जो नपु सकवेदी मनुष्य द्वितीयादि नरकोंमें उत्पन्न होता है उसके अन्तर्मेहर्व काळतक तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, इसिछए यहाँ इसके अजधन्य प्रदेश-बन्धका एत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त कहा है।

२५०. अपगतबेदी जीवोंमें सब प्रश्नतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और एन्क्रप्ट अन्तर अन्तर्युहर्त है।

विश्वेषार्थ—यहाँ घोळमान जघन्य बोगसे जघन्य प्रदेशवन्य सम्भव होनेसे जघन्य बौर अजवन्य प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और अक्ट अन्तर अन्तर्भुहुर्त वन जाता है। सात्र अजवन्य प्रदेशवन्यका चक्ट अन्तर अन्तर्भुहुर्त उपशान्त्रभोहमें के जाकर प्राप्त करना चाहिए, क्यांकि सब मक्कतियोंके जघन्य प्रदेशवन्यका एक्ट बन्यकाळ अन्तर्भुहुर्त नही है।

२५१. कोषकपायमें पाँच झानावरण, खात दर्शनावरण, मिध्यास्त्र, सोलह कथाय और पाँच ब्रन्तरायके काराय प्रदेशन्यका जपन्य कौर कहाय प्रदेशन्यका जपन्य कौर कहा व्यत्तराक कर समय है। मिद्रा, प्रचता, दो बेदनीय, नो नोकपाय, तीन गरित, पाँच खाति, तीन करीर, कह संदर्शन, वर्णचतुरुक, तीन करीर, कह संदर्शन, वर्णचतुरुक, तीन ब्राह्म, अधुवतवुष्णुक, कावप, ज्योव, दो बिद्दायोगित, जसादि दस युगळ, तिकांण, तीचेहुर बौर दो गोजके जमन्य प्रदेशक्यका व्यत्तरकाल नहीं है। व्यवस्य प्रदेशक्यका व्यत्तरकाल नहीं है। व्यवस्य प्रदेशक्यका क्षायक्ष करना करना व्यवस्य करना व्यवस्य कोर व्यवस्य कावप्रकाल करा हमा को कोर्य कीर व्यवस्य प्रदेशक्यका व्यवस्थक करा हमा कोर्यक्री है। दो व्यवस्य विषयक्ष व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक व्यवस्थक व्यवस्थक व्यवस्थक व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक विषयक व्यवस्थक विषयक विषयक विषयक विषयक विषयक व्यवस्थक विषयक व

s. ता॰मती 'तिन्त्रिमाञ्च०४ (!) अधु०७ आस्तुओरं वृति पाकः।

जहारदुम् बन्नोगिर्मणो । जिरयगदिदुर्ग जह अन बह् ए ए०, उक्क अंतो । माने पंचणा - सचदंसणा - सिन्छ - पण्चारसक - पंचंत व जह विश्व अंतरं । अन व जह उक्क एगा । सेसाणं कोषमंगो । मायाण् पंचणा - सचदंसणा - सिन्छ - चोस्सक - पंचंत वह वह जह कि स्वार्ण कोषमंगो । लोने पंचणा - सच्छ अंतरं । अन जह उक्क ए । सेसाणं कोषमंगो । लोने पंचणा - सचदंसणा - सिन्छ अंतरं ॥ जन जह वह वह विश्व अंतरं । अज जह उक्क एगा व सेसाणं कोषमंगो ।

जीवोंके समान है। नरकगतिद्विकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशकन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्हार अन्तर अन्तर्भुद्ध है। मानक्यायमें पाँच झानावरण, सात दर्शनावरण, मिष्याव्स, एन्द्रह कथाय और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशकन्यका अन्तरकाळ नहीं है। अजघन्य प्रदेशकन्यका जघन्य और उन्हार अन्तरकाळ नहीं है। अप प्रकृतियांका सङ्ग क्रीयक्यायलोके समान है। मायाकवायमें पाँच झानावरण, सात दर्शनावरण, मिष्याव्स, चौर्ह् कथाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशकन्यका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशकन्यका जघन्य और उन्हार अन्तरायके जघन्य प्रदेशकन्यका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशकन्यका जघन्य और उन्हार कथाय और पाँच अन्तरायके जघन्य अन्तरकाल करायकाल क्षित्र वाद्य कथाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशकन्यका जघन्य और उन्हार अन्तरकाल एक समय है। शेष प्रकृतियांका मङ्ग कोषक्यायको जघन्य और उन्हार अन्तरकाल एक समय है। शेष प्रकृतियांका मङ्ग कोषक्यायको जीवोंके समान है।

विशेषार्थ---प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिका तथा दसरे दण्डकमें कही गई निद्रा आदिका कोधकषायके कालमें दो बार जघन्य प्रदेशवन्ध सम्भव नहीं है, इसिछए यहाँ इनके जघन्य अदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशवन्ध होते समय अजघन्य प्रदेशवन्ध नहीं होता. इसलिए यहाँ इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। तथा निहादिदण्डकों दो वेदनीय: नौ नोकषाय: तीन गति, पाँच जाति, तीन जारीर, छह संस्थान. औदारिक आक्रोपाझ, छह संहनन, दो विहायोगीत, त्रसादि दस यगल और दो गोत्र ये तो अध्रवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं तथा शेष चार प्रकृतियोंको आठवे गणस्थानमें बन्धन्यच्छिति होकर और अन्तमहत्तमें क्रोधकषायके कालमें ही मरकर देव हानेपर पुनः इनका बन्ध होने लगता है, इसिलए इन प्रकृतियों के अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। यहाँ सब प्रकृतियोंका यह जघन्य अन्तर एक समय, एक समय बन्ध न कराके या मध्यमें एक समयके लिए जघन्य बन्ध कराके छे आना चाहिए। तिर्यक्काय और मन्द्र्यायका ज्ञाचन्य प्रदेशबन्ध ततीय त्रिभागके प्रथम समयमें ही सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकाळका निषेध किया है। शेष दो आयु और आहारक-विकता जघन्य प्रदश्यन्य घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनका मनोयोगी जीविक समान अन्तर कथन बन जानेसे वह उनके समान कहा है। नरकगतिद्विकका एक तो घोळमान जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशवन्य होता है। दसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसिक्टए इनके जवन्य और अजवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाछ अन्तर्भवर्त कहा है। मान, माया और लोभकषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जधन्य और

१. ताश्यती 'का ८० ए० सेसाम् । कोधभंगी' घाण्यती 'कहण्ए० उक्क० ए० । सेसाम् कोधर्क्यो' इति पाठः । २. घाण्यती 'स्रव० व्यक्क क्वक उक्क প্ৰত' বৃत्ति यकः ।

२५२. मिद-सुरे धुवियाणं जहः बहः खुद्दाभवम्महणं समऊणं, उष असंखेजा लोगा। अञ्चः जहः उक्षः एः । दोवेदणीः '-छण्णोकः -पंचिंदिः-समच परः-उस्साः-पसत्यः-नसः ४-थिरादितिण्णियुगः-सुभग-सुस्सर-आदेः जहः णाणावरः मंगो। अञ्चः जहः एः, उक्षः संतोः। णवुंसः-ओरालिः-पंचसंठाः-ओरालिः अंगो छस्संघः-अप्पसत्यः-दूभग-दुस्सर-अणादेः-णोचा जहः णाणावरणमंगो। अजः जा एगः, उक्षः तिण्णिपत्तिः देषः । दोआउः-वेउित्यछः जहः अजः जहः एग उक्षः अणंतकाः। तिरिक्सः-मणुसाउः-मणुसगदिः ३ ओषं। तिरिक्सः अण्णापारणमंगो। अजः जाणावरणमंगो। अजः जहः एगः। सादिः। चदुजादि-आदाव-यावर-सुद्दुम-अपञः-साधाः जहः णाणावरणमंगो। अञ जहः एगसम्पं, उक्षः तेचीसं सादिः दोहि सुहुचेहि सादिरेगं। एवं अञ्मवसि मिच्छाः।

अज़घन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर ठेना चाहिए। मात्र इतमे क्रमसे दो और चार कषायको कम करके यह अन्तरकाल कहना चाहिए, क्योंकि मानमें क्रोध भावामें क्रोध और मानके तथा लोभमें चाराके अज़धन्य प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक स

और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त वन जाता है।

२५२, मस्यज्ञानी और श्रताज्ञानी जीवांमें प्रवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्ध जाधन्य अन्तर एक समय कम क्षज्ञक भवप्रहण प्रमाण है और उत्क्रष्ट अन्तर असंख्य छोकप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। दो वेदन छड नोक्षाय, पञ्चोन्द्रयजाति, समचतुरस्रसंख्यान, परवात, उच्छास, प्रशस्त विहा गति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगळ, सुभग, सुस्वर और आदेयके जघन्य प्रदेशवनः अन्तरकाळ ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समर और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त है। नपु सक्वेद, औदारिकशरीर, पाँच सस्थान, औदार्ग शरीर आक्रोपाक, छह संहतनन, अप्रशस्त विहायोगांत, दर्भग, दःस्वर, अनादेय नीचगोत्रके जधन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अजधन्य प्रदेशबन्ध जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुयप्रमाण है। दो आयुः वैक्रियिक छहके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और स अन्तर अनन्तकालप्रमाण है। तिर्यक्काय, मनुष्याय और मनुष्यगतित्रिकका भंग आ समान है। तियञ्जगतित्रिकके जधन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजा प्रदेशबन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उस्कृष्ट अन्तर दो मुहर्त अधिक इकर सागर है। चार जाति, आतप, स्थावर, सुद्दम, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्ध अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है : बत्कृष्ट अन्तर दो सुदूर्त अधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अभन्य और मिथ्यादृष्टि जीर जानना चाहिए।

विश्वेषार्थ - यहाँ प्रथम और द्वितीय दण्डकका स्पष्टीकरण जिस प्रकार नृपुंसक जीवोमें कर आये हैं उस प्रकार कर छेना चाहिए। तीसरे दण्डकमें कही गई नृपंसक मादिके जपन्य प्रदेशवन्यका अन्तर क्वानावरणके समान हो हैं। तथा ये सब एक

१. भावप्रती 'बहुर एक उक्का संतोत । होवेहस्तीर' इति राहः ।

२५२. विसंगे पंचणा०-णबदंसणा०-सिन्छ०-सोलसक०-सय-दु०-तेबा०-क०-बण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० जह० एग०, उक्क० क्रम्मासं देष्टणं । अब० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। दोबेदणी०-सत्त्वणोक०-दोनादि-पहंदि०-पंचिदि०-ओरालि०-क्रस्तंद्रा०-ओरालि०अंगो०-क्रस्तंप०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउको०-दो-विद्दा०-तस-बावर-पज-प-पने०-धिरादितिण्णियु०-दोगो० जह० जह० एग०, उक्क० क्रम्मासं देष्टणं ।अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोआउ० मणजोगिमंगो। दोआउ० देवमंगो। वेउव्वियक्रक-तिण्णिजादि-सुहुम-अपज०-साधार० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं । दूसरे भोगभूमिमं पर्याप्त होने पर इनका बन्ध नहीं होता, इसतियं इनके अव्याप्त्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर एक समय और उक्कृष्ट अन्तर कुछ कम
तीन पत्थ कहा है। नरकायु, देवायु और बिकियक्यरुक्का जयन्य प्रदेशक्य एक तो
पोल्लमान जक्ष प्रयोगसे होता है। दूसरे एक्टेन्ट्रिय और विकल्पनय जीव इनका कन्य नहीं
करते, इस्तिल्य इनके जयन्य और अज्ञयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर एक समय और
उक्कृष्ट अन्तर अन्तर्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ विव्यक्षारित आदिका बन्ध नीहे विव्यक्तमें
आज्ञयन्य प्रदेशक्यका उक्कृष्ट अन्तर हो अन्तर्मुद्ध काल तक नहीं होना, इसलिये इनके
अज्ञयन्य प्रदेशक्यका उक्कृष्ट अन्तर हो अन्तर्मुद्ध अधिक तेतीस सागर कहा है। चारजाति आदिका बन्ध साववे नरकमें और बहाँ जानेके पूर्व तथा निकलनेके वाद एक एक
अन्तर्मुद्ध तक तक क्या होना, इसलिये इनके
अज्ञयन्य प्रदेशकन्यका उक्कृष्ट अन्तर हो अन्तर्मुद्ध अधिक तेतीस सागर कहा है। चारजाति आदिका बन्ध साववे नरकमें और बहाँ जानेके पूर्व तथा निकलनेके वाद एक एक
अन्तर्मुद्ध तक नहीं होता, इसलियं इनके अज्ञयन्य प्रदेशकन्यका उक्कृष्ट अन्तर हो अन्तर्मुद्ध व

२५३. विभक्ष्मानी जीवोंमें पाँच क्षानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोख्य क्षाय, म्य, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्णवारीर, वर्णवात्वक, अगुरुबणु, उपधात, निर्माण और पाँच अनतायके जयन्य प्रदेशकरथका जयन्य अनतर एक समय है और उक्कष्ट अनतर कुछ कनत छह महोना है। अजयन्य प्रदेशकरथका जयन्य अनतर एक समय है और उक्कष्ट अनतर कुछ अनतर चार समय है। दो वेदनीय, साल नोक्षणय, दो गति, प्केत्त्रियज्ञाति, प्रक्षांन्द्रयज्ञाति, औदारिकरारीर, छह संस्थान, औदारिकरारीरआक्षोणक्ष, छह संद्यनन, दो-आनुवर्ती, एपशात, क्ष्ण्र्यास, आत्रव, उद्योत, दो विद्याचीरित, त्रत. स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रदेशक, स्थिर आदि तीन युगळ और दो गोजके जयन्य प्रदेशकरथका जयन्य अनतर एक समय है और उक्ष्ण्य अनतर एक समय है। बो आनुवर्तीका भक्ष मनोयोगी जोवांके समान है। दो आयुर्जीका मक्ष मनोयोगी जोवांके समान है। दो आयुर्जीका अक्ष मनोयोगी जोवांके समान है। दो आयुर्जीक अक्ष मनोयोगी जोवांके समान है। दो आयुर्जीक सक्ष देवांके समान है। वोक्षियकपटक, तीन जाति, सूदम, अपयोग्न और साधारणके जयन्य और अजयन्य प्रदेशकर्यक, अन्तर एक समय है और उक्ष्य अन्तर एक समय है अंग उक्ष्य अनतर एक समय है और उक्ष्य अनतर एक समय है अंग उक्ष्य अनतर एक समय है अंग उक्ष्य अनतर प्रदेशकर्य क्षाया अज्ञ्वन अन्तर एक समय है और उक्ष्य अनतर अन्तर एक समय है और उक्ष्य अनतर अन्तर्य उत्तर है।

विशेषार्थ — पाँच झानावरण आरिका जघन्य प्रदेशवन्य आयुक्रमेके बन्यके समय घोळमान जघन्य योगसे होता है। यह जघन्य प्रदेशवन्य कमसे कम एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और कुछ कम छह महीनाके अन्तरसे भी हो सकता है, इसिए इनके जघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य भनतर एक समय और उन्कृष्ट अन्तर छुछ कम छह महीना कहा है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि सद्यपि यह जघन्य प्रदेशवन्य वारों गतियोंने होता है पर इसका उनकृष्ट अन्तर तरक और देशानिमें ही सुम्मव है, क्योंकि

२५४. बाविण-सुर-जोषि० पंचणा०-स्ट्रंसणा०-सादासाद०-न्यसंतुज्ञ०-सपणो-क०-गंवंत० सह० वह० वासपुघर्च समऊणं, उक० छावड्डि० सादि०। अव० वह० एग०, उक० अंतो०। अङ्क० वह० वह० वह० देशाउ० उकस्समंगो। मणुसगद्धि-सादि०। अव० वह० एग०, उक० पुण्वकोडी २०। दोआउ० उकस्समंगो। मणुसगद्धि-गंवम० वह० पात्व अंतरं। अव० वह० वासपुघ०, उक० पुण्यकोडी २०। देवगदि०४ वह० णात्व अंतरं। अव० वह० अंतो०, उक० तेतीसं साग० सादि०। पंचिदि०-तेजा०-क०-समबदु०-वष्ण०४-अगु०४-पसस्य०-तस०४-विरादितिष्णियु०-

अन्तर्भृहर्तसे अधिक काल तक इस ज्ञानकी प्राप्ति उन्हीं दो गतियोंमें सम्भव है। आगे जिन प्रकृतियोंके अधन्य प्रदेशवन्यका यह अन्तर कहा है वहां यह इसी प्रकार घटित कर छेना चाहिए। तथा घोळमान योगका जघन्य काल एक समय है और उस्कृष्ट काळ चार समय है, इसिक्टर इतने काळ तक पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर जयन्य प्रदेशवन्य सम्भव होतेसे इतके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। दो बेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियां हैं, इसिक्ट इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जाघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्व कहा है। नरकाय और देवायका अधन्य प्रदेशबन्ध भी घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका ज्ञचन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहर्त तथा अज्ञचन्य प्रदेशबन्धका ज्ञचन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर चार समय मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। तथा क्षेष दो आयुओंका जपन्य प्रदेशवन्य भो घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और वस्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना देवेंकि समान कहा है। यहां यद्यपि इन दो आयुआंका जघन्य प्रदेशबन्ध चारों गतियोंमें होता है पर इनके अजधन्य प्रदेशकम्बका उस्कृष्ट अन्तर मनुष्यगति और देवगितमें सम्भव नहीं है। इसलिए यह धव अन्तर देवांके समान कहा है। वैक्रियकपटक आदि परावर्तमान प्रकृतियां हैं और इनका जघन्य प्रदेशवन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है. इसिक्षिप इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और एका अन्तर अन्तर्गहर्त कहा है।

२५४ आभितिबोधिकहाती, मृतहाती और अवधिहाती जीवोंसे पाँच हातावरण, उद्ध दरांतावरण, सात तीववाय और पाँच अवस्तावरके जम्म वावेदनीय, असातावेदनीय, चार संववतन, सात तीववाय और पाँच अवस्तावरके जम्म वावेदनीय, असातावेदनीय, चार संववतन, सात तीववाय और पाँच अस्तावरके जम्म प्रदेशकरण का जम्म व्यवेद्यकरमाण है और उस्कृष्ट अन्तर साधिक छथासठ सागर है। अत्रवस्त्र प्रदेशकरण जम्म वन्तर एक समय क्षेत्र एक अन्यर प्रत्यावर्ष का जम्म वन्तर एक समय का व्यव्यावर्ष का अस्तर प्रत्यावर्ष का अस्तर प्रत्यावर्ष का अस्तर प्रत्यावर्ष का अस्तर साधिक छथासठ सागर है। अत्रवस्त्र अस्तर अस्तर प्रत्यावर्ष का अस्तर स्वावर्ष का अस्तर स्वावर्ष का अस्तर स्वावर्ष का अस्तर स्ववर्ष का अस्तर स्वावर्ष का अस्तर स्ववर्ष का अस्तर स्वर्ष का अस्तर स्ववर्ष का अस्तर स्वयं वर्ष का अस्तर स्वयं वर्ष का अस्तर स्वयं वर्ष का अस्तर स्वयं वर्ष का अस्तर स्वयं का अस्तर स्वयं का अस्तर स्वयं का स्वयं का

सुभग-सुस्सर-जादे०-णिमि०-तिस्थि०-उचा० जह० णस्थि संतरं । जच० वह० एस०, उक्क० संतो० । आहारदुगं जह० जह० एग०, उक्क० पुरुवकोदितिभक्षं देखणं । अख० जह० ए०, उक्क० तेत्रीसं० सादि० । एवं लोघिदं०-सम्मा० ।

आदेय, निर्माण, तीर्थहूर और उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाळ नहीं है। अज्ञास्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कृष्ट अन्तर अन्तरहुर्त है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कृष्ट अन्तर प्रदेशिक कुछ सम हिमागप्रमाण है। अज्ञयन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कृष्ट क्ष्मार साथिक तेतीस सागर है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्बन्धि जीक्षीस ज्ञानग चाहिए।

विशेषार्थ---यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशवन्य तद्भवस्य जीवके प्रधन समयमें होता है, इस्छिए इनके अधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य अन्तर एक समग्र क्या वर्षप्रवस्त्र प्रमाण कहा है, क्योंकि किसी उक्त ज्ञानवाले जीवने मनुष्यभवके प्रथम समयमें अधन्य प्रदेश-बन्ध किया और वर्षप्रथक्त काल तक जीवन धारणकर मरा और देव होकर वहाँ भी सबके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशवन्य किया तो इस प्रकार यह जघन्य अन्तरकाल उपस्टब्स हो जाता है। तथा इनके जयन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक स्थासठ सागर कहनेका काला यह है कि इतने काल तक कोई भी जीव उक्त झानोंके साथ रहकर प्रारम्भमें और अन्तर्भ यथायोग्य उक्त कर्मीका जधन्य प्रदेशबन्ध कर सकता है। आगे अन्य जिन प्रकृतिशोंका सह अन्तरकाल कहा है वह इसी प्रकार घटित कर छेना चाहिए। इन प्रकृतियोंका सम्बन्ध प्रदेशवन्य एक समय तक होता है, इसल्डिए इनके अजधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य अल्ला एक समय कहा है और उपशान्तमोहमें पाँच ज्ञानावरणादिका तथा कठे गुणस्थानके आचे खौटकर वहाँ आनेके पूर्व मध्य काळमें असाताबेदनीय आदिका यथायोग्य अन्तर्श्वर्त काळ तक बन्ध नहीं होता, इसल्ए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। अप्रत्याख्यानावरणचतष्कका संयतासंयत आदिके और प्रश्याख्यानावरण चतष्कका संयत आदिके अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक बन्ध नहीं होता. इसकिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका उस्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ दो आयुओंसे मनुष्याय और देवाय ली गई हैं। इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्क्रष्ट अन्तर इन मार्गणाओं में जो प्राप्त होता है वह यहाँ भी वन जाता है, इसिक्टिए यहाँ यह उत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है। मनुष्यगतिपञ्चकका जधन्य प्रदेशवन्य स्थी प्रथम समयवर्ती तदभवस्थ देव और नारकीके होता है जो तीर्थक्रएफ्रिका बन्ध कर रहा है। ऐसा जीव पनः देव और नारकी नहीं होता, इसलिए इनके जधन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। प्रक्रोन्टयजाति आदिके सधन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेधका यही कारण जानना चाहिए । सम्यग्हर्ष्टि मनुष्य मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध नहीं करता और इसकी जधन्य आब वर्षप्रथक्तवप्रमाण और कर्मभूमिकी अपेक्षा उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटिप्रमाण होती है, इसलिए वहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल कससे उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ उत्कृष्ट अन्तरकाळ देशोन कहा है सो कारण जानकरकहना पाहिए । दैवगतिपतुष्कका जचन्य प्रदेशवन्य ऐसा प्रथम समयवर्ती तद्भवस्य मनुष्य करता है जो तीर्थहर प्रकृतिका भी बन्ध कर रहा है। यतः ऐसा मनुष्य नियमसे उस भवमें तीर्यक्र होकर मोक्ष जाता है, अत: यहाँ देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेष किया है। तथा उपरामश्रीणमें अन्तर्भृहर्त काल तक बन्ध नहीं होता और जो जीव उपरामश्रीणमें अन्तर्मुहर्त तक इनका अवन्धक होकर मर कर तेतीस सागर आयुके साथ देव होता है उसके साधिक ्र- २५५, समपन्न असाद अरिद सोग-अधिर असुभ अजस० जह० वह० एग०, उक्क पुत्रकाहो दे०। अज जह० एग०, उक० ब्रंतो०। देवाउ ० उकस्सभंगो। सेसाणं जह० जह० एग०, उक० पुत्रकोहितिसागं दे०। अज जह० एग०, उक० ब्रांतो०। एवं संजदा०। एवं चेव सामाह०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०। णविर-श्विय-तिस्व० प्रज जह० एग०, उक० चनारिस०।

तेवीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके अजयन्य प्रदेशलन्यका जयन्य अन्तर अन्तर हैं। पञ्चित्रियः जाति आदिका एक समयके अन्तर से जयन्य प्रदेशलन्य सम्भव है और उपज्ञान शिमें अन्तर से अपन्य प्रदेशलन्य सम्भव है और उपज्ञान शिमें अन्तर से अन्तर से अन्तर से अपन्य प्रदेशलन्य सम्भव है और उपज्ञान शिमें अन्तर सुदेशलन्य अन्तर एक समय और उरहर अन्तर अन्तर्भृहतं कहा है। आहारकढिकका जयन्य प्रदेशलन्य अपन्य स्वत्य है अपने उपज्ञान से अपने प्रदेशलन्य प्रदेशन्य होता है, इसिक्षण इनके अन्य प्रदेश सम्भव अपने प्रदेश सम्भव किया प्रदेश सम्भव अपने स्वत्य अन्तर एक समय और अन्तर एक प्रदेशन्य होते पर अज्ञान्य प्रदेशलन्य होते पर अज्ञान्य प्रदेशला ज्ञान्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है और साधिक तेतीस सागर तक आहान्य अन्तर एक समय प्रदेशलन्य होते पर अज्ञान्य अन्तर साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर कहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदरशंनी और सम्बन्धिप्त वहा करता साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदर्शन साधिक साधिक तेतीस सागर वहा है। अवधिदर्शन साधिक साधिक साधिक सागर सागर साधिक साधिक सागर सागर साधिक सागर सागर साधिक साधिक सागर सागर सागर साधिक साधिक सागर साधिक सागर सागर साधिक साधिक सागर सागर साधिक साधक साधिक साधिक साधिक साधक

स्पर्धा मन प्रयोगहानी जीवोंमें असातावेदनीय, अर्रात, शोक, अस्थिर अशुभ और स्वयाशकीरिके कार्य्य प्रदेशकराका जपन्य अन्तर एक समय है और उन्नष्ट अन्तर कुछ कम एक पृषेकीटि है। अजायन प्रदेशकराका जपन्य अन्तर एक समय है और उन्नष्ट अन्तर स्वयाशकीरिके जपन्य प्रदेशकराका जपन्य अन्तर एक समय है और उन्नष्ट अन्तर अन्तर क्षान्य प्रदेशकराका जपन्य अन्तर एक समय है और उन्नष्ट अन्तर एक पृषेकीटिका हुछ कम जिमाग प्रमाण है। अजायन अन्तर एक समय है और उन्नष्ट अन्तर अन्तर्गर्द्धत है। इसी प्रकार वाश्रायिक जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामायिकसंयत, होर्रीप्रयायनासंयत, परिहारिकेड्डिदेसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए। शतनी विशेषता है कि इनमें भुवसन्यवाछी प्रकृतियों और तीर्यहूर प्रकृतिके अज्ञयन्य प्रदेशकरणका जमन्य अन्तर एक समय है और उन्नष्ट वाह समय है और उन्नष्ट वाह समय है

विशेषार्थ — यहाँ असातावेदनीय आदिका जयन्य प्रदेशवन्य घोठसात जयन्य योगसे होता है। यह सम्भव है कि इस प्रकारका योग एक समयके अन्तरसे हो और मतःप्रयंग्रज्ञानके उक्कुष्ट कालके भीतर प्रारम्भमें और अन्तमें हो मध्यमें न हो। इसिलए इन प्रकृतियों के जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उक्कुष्ट अन्तर कुछ कम एक पृक्षेतिद्रप्रप्राण कहा है । तथा इनका अजयन्य प्रदेशवन्य भी एक समयके अन्तरसे सम्भव है और छठेसे आगेके गुण्यानीमें जाकर तथा वहाँ से लीटकर छठे गुणस्थान कक आनेसे लगनेवाले अन्तर्मृत्व कालके भीतर इनका बच्च नहीं होता, इसिलए इनके अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उक्कुष्ट अन्तर अन्तर्मृत्व होता, इसिलए इनके अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उक्कुष्ट अन्तर अन्तर्मृत्व होता, इसिल्य व्यवस्थान होता है। व्यवस्थान जयन्य समय समय सीर उक्कुष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका इक्ष कम त्रिभागप्रमाण होता है। व्यवस्थान अन्तर एक पूर्वकोटिका इक्ष कम त्रिभागप्रमाण होता है। व्यवस्थान अन्तर एक पूर्वकोटिका इक्ष कम त्रभागप्रमाण होता है। व्यवस्थान अन्तर एक पूर्वकोटिका इक्ष कम त्रभागप्रमाण होता है। व्यवस्थान अन्तर एक पूर्वकोटिका उन्तर एक प्रवास व्यवस्थान हो। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों का सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध स्थान स्थान स्थान हो। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियां के सम्बन्ध है। होष प्रकृतियों के स्थान सम्बन्ध स्थान है। होष प्रकृतियों के सम्बन्ध स्थाने स्थानिय स्थान है। होष प्रकृतियों के स्थान स्थान स्थान हो।

^{1.} ता॰प्रती ^{ब्}चुवियतेय॰ (?) अज॰' भा॰प्रती ^{ब्}चुवियतेय॰ सजः शहित पाठः ।

२५६. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०नेजा०-क०-बण्क०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचत० जह० जह० खुदाम० समऊ०, उक० असंखेजा खोगा। अज० जह० उक० एग०। धीणगिद्धि०२दंढजो साददंढजो तिष्णजादिदंढजो तिस्थ०-दंढजो णबुंस०-चदुआठ०-वेउन्वियछ०-मशुस०२ जोघमंगो। चक्सु० तसपजनमंगो। अचक्सु०-मवसि० ओषं।

२५७. किण्ण-णील-काऊ० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-अय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० णस्य झंतरं। अञ्च० जह० उक्क० एग०।

जधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर और उत्क्रष्ट अन्तर असातावेदनीयके समान ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनके जधन्य प्रदेशकरथके एतकर अन्तरमें फरक है। बान यह है कि इनका जघन्य प्रदेशवन्य आयुक्तमंके बन्धके समय ही होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट अन्तर पर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह एक प्रमाण कहा है। संयत जीवों में भी सब प्रकृतियोंका यह अन्तरकाल घटित हो जाता है. इसिंखए उनके कथनको मनःपर्ययज्ञानियोंके समान जाननेको सूचना की है। सामायिकसंयत आदि मार्गणाओं में भी यह अन्तरकाल बन जाता है, इसिछए उनके कथनको भी मनःपर्यय-ज्ञानियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इन मार्गणाओंमें जो ध्रवबन्धवाळी प्रकृतियाँ हैं उनके अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्त अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय ही प्राप्त होता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ यह बात ध्यानमें छेनेकी है कि सामायिक संयम और छेदोपस्थापनासंयम यद्यपि नौवें गुणस्थान तक होते हैं और इसके पर्व आठवें ब नौवें गणस्थानमें कुछ प्रकृतियोको बन्धव्युच्छित्ति हो लेती है, पर एक तो ऐसे जीवके नौबें गणस्थानके आगे उक्त दो सबम नहीं रहते दूसरे नीवें गुणस्थानमें मरण होने पर भी इक्त हो संयमों का अभाव हो जाता है, इसांखए इन संयमोंमें अन्तरकालको प्राप्त करनेके लिए उपशम-श्रीण पर आरोहण नहीं कराना चाहिए और इसलिए इन संयमोंमे जिन प्रकृतियोंका छठे और सातवं गुणस्थानमें नियमसे बन्ध होता है वे सब इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ जान केनी चाहिए।

२५६. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कथाय, अय, जुगुप्ता, तैजवस्तरीर, कार्मणरारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुत्वपु, तथात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जयन्य अन्तर एक समय कम खुरुक्त भवत्रव्यप्रमाण है और उक्छ अन्तर असक्यात त्रोकप्रमाण है। अज्ञयन्य प्रदेशक्यका जयन्य और उक्छ अन्तर एक समय है। अत्यानगृद्धित्रकृदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, तीन जातिदण्डक, तीर्यद्वराष्ट्रकृतिदण्डक, न्युवक्तदेव, वार आयु, वैक्षिषक छह और मनुष्यातित्रिक्का भक्क ओषके समान है। चछु- व्यक्तनावे जीवोंमें त्रसप्यात वीवोंके समान मक्क है। तथा अच्छुदर्शनवाठे और मध्य जीवोंके समान मक्क है। तथा अच्छुदर्शनवाठे और मध्य जीवोंके समान मक्क है। तथा अच्छुदर्शनवाठे और मध्य जीवोंके समान मक्क है।

विशेषाय — यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकके अन्तरकाळका विचार जिस प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें भुववनधवाळी प्रकृतियोंका कर आये हैं उस प्रकार कर छेना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंके अन्तर कालका विचार ओषप्ररूपणाका स्मरण कर कर छेना चाहिए।

२५७. कृष्ण, तील और कापोतलेश्यामें पाँच झानावरण, छह दश्तावरण, बारह क्याय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कामेणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्खु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाळ नहीं है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और स्कूड भीणविद्धिः २ इंडवो णिवचोषं। सादासाइ०-पंचणो०-देवनादि-एइंदि०-पंचिदि०-कोरालि०-सम्बद्धाः - कोस्तलि० अंगो०-वज्ञति०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-कादाव-पसत्य०-तसादिचदुगु०-विराहितिष्णियु०-सुक्म-सुरसर-कादे० जह० णत्य अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंती०। दोआउ०-तिर्य० मण०मंगो। दोआउ० जह० णत्य अंतरं। अज० णिरय-भंगो। णिरयगदिदुगं जह० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो। वेउन्वि०-वेउन्वि०-अंगो० जह० णत्य अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० गावीसं साग० सत्तारस० सत्त्वसाग्व। णविरं सणुसगदि०३ सादभंगो।

अन्तरकाल एक समय है। स्यानगृद्धिवकदण्डकका भङ्ग सामान्य नार्राक्योंके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, देवनाति, एकेन्द्रियज्ञाति, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, विद्याति, एकेन्द्रियज्ञाति, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, विद्याति, एकेन्द्रियज्ञाति, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, विद्याति, एकेन्द्रियज्ञाति, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, विद्याति, एकेन्द्रयज्ञाति, विद्यात्ति, विद्याति, विद्याति,

है कि मनुष्यगतित्रिकका सङ्ग साता वेदनीयके समान है।

विश्लेषार्थ-- उक्त तीन देश्याओं में पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशवन्य सक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें करता है ! इस जीवके पनः इस अवस्थाके प्राप्त करने पर केंद्रया बद्दक जाती है, इसलिए यहां इन प्रकृतियों के जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशवन्धके अन्तरकालके निषेध करनेका यही कारण है। तथा जब एक समय तक पाँच झानावरणाहिका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। तब अजधन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, इसिंखए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य और उत्क्रष्ट अन्तर एक समय कहा है। स्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भद्र सामान्य नार्राक्योंके समान है यह स्पष्ट ही है। सारावेदनीय आदि सब अधुववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। नरकाय, देवाय और तीर्शकर प्रकृतिका भक्क मनोयोगी जीवोके समान यहाँ भी घटित कर छेना चाहिए। तिर्यक्कायु और मनुष्यायका जधन्य प्रदेशबन्ध सद्दम निगोद अपयोप्तके ततीय त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसिल्ए इनके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका अन्तर नारिकवोंमें जैसा कहा है उस प्रकार घटित कर छेना चाहिए। नरकगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध असंझी जीव घोलमान योगसे आयुवन्धके समय करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जबन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। तथा ये दोनों सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिंखर इनके अजयन्य प्रदेशबन्यका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त क्या है। वैकिथिकद्विका जघन्य प्रदेशवन्य प्रथम समयवर्ती तद्ववस्य आहारक असंयत-

१. सा॰भा॰प्रत्योः 'सक्तसायः । जीख-कारः ववरि' इति पाठः ।

सम्बन्धिष्ट मतुष्य करता है, इसिलए इनके अन्तरकाकका निषेध किया है। तथा एक तो ये दोनी साप्तिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे तरकमें इनका बन्ध नहीं होता, इसिलए इनके अजयन्य प्रदेशक्षण करिया होता है। सहिल्य इनके अजयन्य प्रदेशक्षण करिया होता है। सार्वित स्वाध्य साप्ति होता, इसिलए यहाँ कृष्ण-लेख्या है का कालमें वैकियिकद्विकका बन्ध नहीं होता, इसिलए यहाँ कृष्ण-लेख्या है। सार्वित साप्ति कहा है। यहाँ साल्या सार्वित साप्ति सार्वित सार्व सार्वित सार्व सार्व

उनके समान कहा है।

२५८. पीतलेइयामें पाँच झानावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और उत्क्रष्ट अन्तर एक समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्रोवेद, नवंसकवेद, तिर्वञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, तिर्वञ्चगत्यानपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और वत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। छह दर्शनावरण, बारह क्षाय, भय, जुगप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुखपुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थक्ररके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उस्क्रप्ट अन्तर काल एक समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और एक्गोत्रके जघन्य प्रदेशवन्धका भक्त ज्ञातावरणके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कार अन्तर अन्तर्गहर्त है। परुषवेद, हास्य, रति अरति, शोक, मनुष्यगति, पश्चेन्द्रियजाति, सम-चतरस्त्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्कोपाङ्क, वज्रपंभनारा चसहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुभग, सुखर और आदेवके जघन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाळ नहीं है। अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और सरकार अन्तर अन्तर्महर्त है। दो आयुओंका भक्क देवोंके समान है। देवाय और आहारकद्विकता अक मनोबोगी जीवोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाल नहीं है।

१. आ॰प्रतौ 'देवाशु-' इति पाठः ।

जह० णत्यि अंतरं । अज० जह० पत्ति० सादि०, उक्क० वेसाग० सादि० । ओरा० ^प जह० अज० णत्यि अंतरं ।

२५९, पम्माए पढमदंडओ विदियदंडओ तेउ०भंगो। णवरि विदियदंडए०

अजघन्य प्रदेशवत्यका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। औदारिकशरीरके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्यका अन्तरकाल नहीं है।

विज्ञेषार्ध--पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशवन्य मनुष्य और देवके भवप्रहणके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक परुयप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरप्रमाण कहा है। और इनके जघन्य प्रदेशबन्धका यह एक समय काल अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल होनेसे वह जघन्य और उत्क्रष्ट एक समय कहा है। स्यानगृद्धि आदिका जघन्य प्रदेशवन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देवके होता है, इसिंछए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके इस जघन्य प्रदेशवन्थके आगे पीछे अजघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसिंछए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और पीतलेश्याके प्रारम्भमें व अन्तमें मिध्यादृष्टि होकर इनका बन्ध किया और मध्यमें सम्यग्दृष्टि रहकर अबन्धक रहा तो इनके अजघन्य प्रदेशवन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक दो सागर प्राप्त होनेसे बह उक्तप्रमाण कहा है। छह दर्शनावरण आदिके जघन्य प्रदेशवन्धके अन्तरकाल का निषेध इसी प्रकार जान छेना चाहिए जिस प्रकार स्थानगृद्धि तीन आदिके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यतः इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है, अतः इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। सातावैदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी पाँच ज्ञानावरणके ही समान कहा है इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल पाँच जानावरणके समान कहा है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजयन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर अन्तमुहुर्त कहा है। पुरुषवेद आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव ही है, अतः इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसिछए इनके अजवन्य प्रदेशवन्यका जवन्य अन्तर एक समय ओर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यक्ताय और मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान तथा दवाय और आहारकदिकका भक्त मनायोगी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध असंयत सम्यन्द्रष्टि मतुष्य जघन्य योगसे करता है, इसिलए इनके जघन्य प्रदेशवन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा देवांमे इनका बन्ध नहीं होता, इसिछए इनके अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्त्य और उत्क्रष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशवन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव करता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषध किया है और देवों और नारकियोमें इसकी कोई प्रतिपक्ष प्रकृति नहीं, इसलिए वहाँ इसका निरन्तर बन्ध होता रहता है । तथा मनुष्यों और तियंखोंमें छेदया बदलती रहती है, इसलिए पीतलेश्यामें अन्तरकाळ सम्भव नहीं, इसलिए इसके अजघन्य प्रदेशवन्धके अन्तरकालका भी निषेध किया है।

२५९. पद्मलेख्यामें प्रथम दण्डक और द्वितीय दण्डकको भङ्ग पीतलेख्याके समान है।

^{1.} ता॰प्रतौ 'अञ्ज॰ अइ॰ पश्चि॰ सादि॰ । स्रोरा॰' इति पाटः ।

एहंदि०-आदान-थानरं नज । विदियदंडए' पंचिंदिय-तसपिविद्य । सादासाद०दंडजो य तेउ०भंगो । पुरिसदंडजो तेउ०भंगो । तिष्णिआउ०-देनगदि ४-आहारदुग ० तेउभंगो । णवरि अप्यप्यणो हिंदी माणिदच्चा । ओरा०-ओरा०अंगो० जह० अज० णस्य स्रंतरं ।

२६०. सुक्षाए पंचणा०-दोबेदणी०-उचा०-पंचंत० जह० जह० अहारस साग० सादि०, उक्क० तेतीसं साग० समऊ० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । शीण-गिद्धि०३दंडओ गेवज्ञभंगो । छदंसणा०-चदुसंज०-सचणोक०-पंचिदि०-तेजा०-क० समचदु०-वज्ञारि०-वणा०४-अगु०४-पसत्य० नतस०४-थिरादितिण्णिपुग०-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ० जह० णत्य अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अहुक्क० जह० णत्यि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । देवाउ० मण्जोगिभंगो । मणुस०४ जह० अज० णत्यि अंतरं । देवगदि०४ जह० णत्यि अंतरं । अज० जह० उत्ति० । आहार०२ जह० एग०, उक्क० अंतो०, उक्क० तेतीसं साग० सादि० । आहार०२ जह० जज० जन० एग०, उक्क० अंतो०।

इतनी विशेषता है कि दूसरे रण्डकमेंसे एकेन्द्रियजाति, आतप और स्यावरको कम कर देना चाहिए। तथा इसी दूसरे रण्डकमें पक्कोन्द्रयजाति और त्रसको प्रविष्ट करना चाहिए। साता-वेदनीय और असातावेदनीय रण्डकका मङ्ग पीतळेदयाके समान है। पुरुपवेदरण्डकका मङ्ग पीतळेदयाके समान है। पुरुपवेदरण्डकका मङ्ग पीतळेटयाके समान है। तीन आयु, देवगतिचतुष्क और आहारकहिकका भङ्ग पीतळेटयाके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। औदारिकहारीर और औररिकारीर आङ्गोपाङ्गके जधन्य और अज्ञवस्त्रका भन्तरकाळ नहीं है।

विश्वेषार्थ पद्मलेरयामें एकेन्द्रियजाति, आंतप और स्थावरका बन्धे नहीं होता, इसिक्टए उन्हें कम करके उनके स्थानमें पद्मिन्द्रियजाति और त्रसको सम्मिक्ति किया है। शेष विचार सुगम है। सात्र पद्मिक्टरमामें अन्तरका कथन करते समय पीतलेश्याकी स्थितिक स्थानमें पद्मित्रकार वाहिए।

२६०. शुक्छले स्थामं भाँच झानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और भाँच अन्तरायके जयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर साथिक अटारह सागर है और उन्ह्रष्ट अन्तर एक समय का तीति सागर है। आज ज्यन्य प्रदेशक्यका जायन्य अन्तर एक समय के तीति सागर है। अज्ञच्य प्रदेशक्यका जायन्य अन्तर एक समय है और उन्ह्रष्ट अन्तर एक समय अन्तर्शहृतं है। स्थानगृद्धित्रक्दण्डका भङ्ग वेवकके समान है। छह दर्शनावरण, चार संज्यक्त, सात नोक्याय, पञ्चन्द्रिक्त, अग्रु कलुचनुत्रक, रिवार क्याप्त्रकार, साम व्यक्तियारा क्याप्त्रकार क्याप्त क्याप्त्रकार क्याप्त क्याप्त्रकार क्याप्त क्याप्त्रकार क्याप्त क्याप्त्रकार अन्तर अन्तर्शक्त क्याप्त प्रदेशक्यका अन्तर काल नहीं है। अज्ञयन्य प्रदेशक्यका अपन्य अन्तर एक समय है और उन्ह्रप्ट अन्तर अन्तर्श्वहर्त है। आट क्यापोंक ज्ञयन्य प्रदेशक्यका अन्तर काल नहीं है। अज्ञयन्य प्रदेशक्यका अन्तर काल नहीं है। विवार्षका अन्तर काल नहीं है। अज्ञयन्य प्रदेशक्यका ज्ञयन्य अन्तर क्याप्त क

^{1.} ता॰प्रती 'तदियदंडप' इति पाठः ।

विज्ञेषार्थ---पाँच ज्ञानावरणादिके जचन्य प्रदेशवन्यका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर जीव है। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी योग्यता-बाला मनुष्य और देव अन्यतर जीव इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है, इसिक्टिए इनका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर और उस्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर कहा है। तात्पर्य यह है कि किसी जीवको आनत-प्राणतमें एत्पन्न करा कर जधन्य प्रदेशवन्य करावे और वहाँ से मरनेपर मनुष्य भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशवन्य करावे । ऐसा करनेसे ज्ञचन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है। तथा किसी एक जीवको सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न कराकर प्रथम समयमें जवन्य प्रदेशबन्ध करावे और वहाँसे मरनेपर मनुष्योंमें उत्पन्न कराकर प्रथम समयमें पनः जघन्य प्रदेशवन्ध करावे और ऐसा करके खुकुछ अन्तर काछ छे आवे। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, और उपशमश्रेणिमें अन्त-र्मुहर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और परकृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त देखकर वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय और असातावेदनीय सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिछिये इनका इस अपेक्षासे यह अन्तर छे भाना चाहिये। स्यानगृद्धि तीन दण्डकका भक्त ग्रैवेयकके समान विचार कर घटित कर लेना चानिए । अर्थात जिस प्रकार ग्रेवेयकमें इन प्रकृतियोंके जचन्य प्रदेशवन्यका अन्तर काळ नहीं बनता और अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और एत्कृष्ट अन्तर इन्छ कम इतीस सागर प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। छह दर्शना-बरण आहिका जधन्य प्रदेशवन्त्र यथायोग्य सम्यम्हि या मिध्याहरि प्रथम समयवती तद्भवस्थ और प्रथम समयवर्ती आहारक देवके होता है, इसस्टिये इनके जघन्य प्रदेश-बन्धके अन्तरकाळका निषेध किया है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और इनमेंसे कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और कुछका आगे नौवें आदि गुणस्थानोंमें बन्ध नहीं होता, इसळिए इनके अजधन्य जघन्य अन्तर एक समय और उस्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। आठ क्यायोंके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका अभाव तो छह दर्शनावरण आदिके समान ही जानना चाहिए । तथा इनके जघन्य प्रदेशबन्धके समय इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है। मनुष्यायुका भक्न देवांके समान और देवायुका भक्न मनोयोगी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिचतुष्कका जयन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती बाहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर काल का निपेध किया है। तथा शुक्छलेदयावाले देवांमें ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियां नहीं हैं, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशवन्यके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगतिचतष्कका जधन्य प्रदेशबन्ध ऐसा प्रथम समयती तद्भवस्थ और आहारक मनुष्य करता है जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है, इसक्षिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा नौवें गणस्थानसे लेकर लौटकर पन: आठवें गुणस्थानमें आने तक इनका बन्ध नहीं होता और ए सा जीव इनका बन्ध होनेके पर्व मरकर यदि तेतीस सागरकी भायवाला देव हो जाता है तो साधिक तेतीस सागर तक इनका बन्ध नहीं होता यह देखकर इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्भहर्त और उस्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकका घोळमान जघन्य योगसे जघन्य प्रदेश-बन्ध होता है और ये सर्शातपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसिक्टए इनके जघन्य और अजयन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्महत् कहा है।

२६१. खहुग० पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-चदुसंज०-सत्तणोक०-उचा०-पंचत० जह० जह० चदुरासीदिवाससहस्साणि समऊ०, उक० तेचीसं साग० समऊ०। [अज० ज० ए०, उक० अंतीष्ठ०]। अष्टक० जह० णाणा०मंगो। अज० ओघमंगो। मणुसाउ० देवमंगो। देवाउ० मणुसमंगो'। मणुसगदिपंचग० अष्ट० अज० णात्य अंतरं। देवगदि०४ जह० णात्य अंतरं। अज० ओघिमंगो। पंचिदियजादिदंडओ आहार०२ ओघिमंगो।

२६१. श्वायिकसम्प्यक्तमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, पार सजवळन, सात नोक्शय, ज्वाशोज और पाँच अन्तरायके जमन्य प्रदेशक्षणका जम्य अन्तर एक समय कम वेतीस हाता दर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम वेतीस सागर है। अजयन्य प्रदेशक्षणका जमन्य अन्तर एक समय में तेतीस सागर है। अजयन्य प्रदेशक्षणका जमन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृद्ध है। आज क्यायोंके जमन्य प्रदेशक्षणका अङ्ग लोगक समान है। अजयन्य प्रदेशक्षणका अङ्ग लोगके समान है। अजयन्य प्रदेशक्षणका अङ्ग लोगके समान है। सतुष्याविक्षणके जमन्य अर्थायका अञ्चरका प्रदेशक्षणका अन्तरकाळ नहीं है। देवाणिकनुत्कके जमन्य प्रदेशक्षणका अञ्चरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्षणका अङ्ग अवधिक्षानी जोवोंके समान है। पञ्चित्रयातिकृष्टक और आहारकद्विकका मङ्ग अवधिक्षानी जोवोंके समान है। पञ्चित्रयातिकृष्टक और आहारकद्विकका मङ्ग अवधिक्षानी जोवोंके समान है। पञ्चित्रयातिकृष्टक और आहारकद्विकका मङ्ग अवधिक्षानी जोवोंके समान है।

विशेषार्थ-जो क्षायिकसम्यन्द्रष्टि नरकमें या देवोंमें उरपन्न होता है वह और वहाँसे आकर जो मनुष्य होता है वह भी अपने उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्धके योग्य अन्य विशेषताओं के रहने पर जघन्य प्रदेशवन्धका अधिकारी होता है, इसलिए यहाँ पर पाँच ज्ञातावरणादिके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम चौरासी हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर कहा है। तथा जवन्य प्रदेशबन्धके समय अजधन्य प्रदेशबन्य नहीं होता और उपरामश्रीणमें कुछका और कुछका सातवें आदि गणस्थानीं में अन्तर्महर्त काल तरु बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहर्त कहा है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल पाँच जानावरणके समान हो घटित कर छेना चाहिए। तथा इनके अजघन्य प्रदेशवन्धका अन्तर जो ओघके समान कहा है सो जिस प्रकार ओघसे इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्राप्त होता है उसी प्रकार यहां भी घटित कर छेना चाहिए। मनुष्यायका भक्क देवोंके समान और देवायका भक्त मनुष्योंके समान है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिपञ्चकका जधन्य प्रदेशकन्ध प्रथम समयवर्ती देव और नारकीके हो सम्भव है, इसलिए यहां इनके जघन्य और अजघन्य प्रहेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगतिचत्रकका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती ऐसा मनुष्य करता है जो तीर्थं कर प्रकृतिका वन्ध कर रहा है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और ज्युष्ट अन्तर काळ अवधिज्ञानी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है। पंचेन्द्रियजातिदण्डक और आहारकदिकका भक्न भी अवधिज्ञानी जीवोंके समान है, इसलिए इनका अन्तर काल बहां देखकर घटित कर छेना चाहिए।

आ॰प्रतौ 'मणुसगदिभंगो' इंति पाठः ।

२६२. बेदमे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० जह० जह० जाह० समऊ०, उक्क छाबद्विसाम० देख्य० । अज० जह० उक्क० एग० । सादासाद०-चदुणोक० जह० णाणा०मंगो । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोआउ० उक्कस्समंगो । मणुसगदिपंचगं ओधिमंगो । देवगदि०४ जह० णाल्य अंतरं । अज० जह० पिल्दो० सादि०, उक्क० तेचीसं० । पंचिदियदंडओ तित्य० जह० णा्य अंतरं । अज० जह० पिल्दो० सादि०, उक्क० तेचीसं० । पंचिदियदंडओ तित्य० जह० णा्य अंतरं । अज० जह० एग० । आहारदुगं ओधिमंगो । थिरादि-तिणिणुग्रग० जह० णात्य अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२६२. वेदकसम्पक्तवसें पाँच ज्ञानावरण, छ्र दर्शनावरण, चार संज्वलन पुरुषवेद, भय, जुगुप्ता, ज्यांगेत्र और पाँच अन्तरावके जयन्य प्रदेशक्त्यका जयन्य अन्तर एक समय क्षम वर्षप्रयक्तमामाण है और कल्कष्ट अन्तर कुछ कम छल्वायर सागर है। अजयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर एक समय क्षम जयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अनेशक्यका जयन्य अनेशक्यक जयन्य अन्तर एक समय क्षम ज्ञानावरणके समान है। अजयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्युद्ध है। दो आयुआंका भङ्क उत्कृष्ट के समान है। सुच्यातिरक्षकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीविके समान है। देवातिवनुत्कके जयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका जयन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर तिनीस सागर है। एक्षेत्रियातिदण्डक और तिर्मक्ष प्रकृत अवस्तर स्वरक्ष अन्तरकाल जन्ति है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अपनत्यकाल महा अवधिज्ञानी जावाके समान है। स्थिर आदि तीन युगलोंके जयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं तीन युगलोंके जयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशक्यकाल जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्य एक्ष समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है और अत्कृष्ट अन्तर्य अन्तर एक समय है और अत्कृष्ट के स्वस्थ है।

विशेषार्थ--यहाँपर पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध देव और मनुष्य पर्यायके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए तो इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्ष प्रथक्त्वप्रमाण कहा है और वेदक सम्यक्त्वका उत्क्रष्ट काल छथासठ सागर होनेसे उसके प्रारम्भमें और अन्तमें याग्य सामग्रीके मिळनेपर जघन्य प्रदेशबन्धके करानेपर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छथासठ सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा जघन्य प्रदेशवन्धका यह एक समय काल अजधन्य प्रदेशवन्धका अन्तर काल होनेसे इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। साताबेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट हो है। तथा ये सप्रतिप्रक्ष प्रकृतियाँ है. इसलिए इनके अजवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और रुक्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान और मनुष्यगतिपञ्चकका भङ्ग अवधि-ज्ञानी जीवाके समान है यह स्पष्ट ही है। देवगति चतुष्कका जघन्य प्रदेशवन्ध तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले प्रथम समयवती मनुष्यके सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेश-बन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा वेदकसम्यग्ह्यके मरकर देवांमें अत्पर होनेपर बहाँ इनका बन्ध नहीं होता और ऐसे देवोंकी जवन्य आयु साधिक एक परुपप्रमाण और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरप्रमाण है, इसिंखए इनके अजवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर साधिक एक परुप प्रमाण और उस्क्रष्ट अन्तर तेतीस सागर कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति दण्डक और तीर्थंकर प्रकृतिका जवन्य प्रदेशवन्य प्रथम समयवर्ती ऐसे देव और नारकीके होता है जो तीर्थ कर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशवन्ध दूसरीबार प्राप्त न हो सकनेके कारण उसके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धका यह एक समय अजघन्य प्रदेशबन्धका २६३. उबसम० अड्डक० जह० णित्य अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। मणुसगदिपंचग० जह० अज० णित्य अंतरं। देवगदिपगदीणं ज० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० णित्य अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२६४. सासणे धवि० पत्थि अंतरं । अज० जह० उक० एग० । तिण्णिआउ०

अन्तरकाल होता है, इसलिए इनके अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य और लकुष्ट अन्तर एक समय कहा है! आहारकदिकका भङ्ग अविधिज्ञानी जीवोंके जिसप्रकार घटिन करके बनला आये हैं उसप्रकार यहाँ भी घटिन कर लेना चाहिए। स्थिर आदि तीन युगलके जयन्य प्रदेशवन्यके अन्तरकालके निषयका वही काग्ण है जो पञ्चित्रियाति वृशलके जयन्य प्रदेशवन्यके अन्तरकालके निषयका वही काग्ण है जो पञ्चित्रियाति वृश्लक जयन्य प्रदेशवन्यके अन्तरकालके निषयक तिए दिया है। नथा ये सप्रतिवक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजयन्य प्रदेशवन्यके अजयन्य प्रत्याति कर समय और लकुष्ट अन्तर अन्तर्युद्धते कहा है।

२६३. उपश्रमसम्प्रक्षवर्मे आठ क्यायोके जघन्य प्रदेशवन्धका अन्तर काळ नहीं है। अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और उस्कृष्ट अन्तरकाळ अन्तर्मृहृते है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाल नहीं है। देवगति आदि प्रकृतियाँके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उस्पृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृते हैं। इंप प्रकृतियाँके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उस्पृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृते हैं। अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहृते हैं।

विशेषार्थ-आठ कपायोंका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती देवके सन्भव है, इसलिए इनके जपन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निपंध किया है। तथा इन आठ कपायोंकी बन्धवयुच्छितिके वाद उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए पुनः इनका बन्ध अन्तर्मुहूर्तके पहले नहीं हो सकता, इसल्लिए इनके अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त कहा है। मनध्यति पञ्चकता जवन्य प्रदेशवन्य भी भवके प्रथम समयमें देवांके सम्भव है और उसके बाद अजघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगति आदि प्र तियोंका जयन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जयन्य योगसे मनध्य करता है। यतः इनका जघन्य प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी बन सकता है और अन्तर्महर्तके अन्तरसे भी बन सकता है। तथा जधन्य प्रदेशबन्धके समय अज्ञधन्य प्रदेशवन्ध नहीं होता और उपरामश्रीणमें अन्तर्महर्त कालतक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्क्रष्ट अन्तर अन्तम् हुर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंका जधन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें देवांके सम्भव है, इसलिए ता इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनमें जो ध्रुवबन्धनाली प्रकृतियाँ हैं उनका तो जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और यथास्थान इनकी बन्धव्युच्छित होने पर पुनः उस स्थानमें आकर बन्ध करनेमें अन्तर्मुहर्त काळ लगता है। तथा जो अधववन्धिनी प्रकृतियाँ हैं उनका जधन्य बन्धान्तर एक समय और उत्क्रष्ट बन्धान्तर अन्तर्मुहूर्त तो है ही, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त कहा है।

२६४. सासादनसम्यक्तमें ध्रुवबन्धवाडी प्रकृतियोंके जधन्य प्रदेशवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाड एक समय है। तीन आयुओंका भङ्ग मनोधोगी जीवोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जधन्य और अजधन्य प्रदेश- मणजोगिमंगो । देवगदि०४ जह० अज० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२६५. सम्मामि० धुनिगाणं ज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० चतारिसमयं । सेसाणं जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२६६. सण्णीसु पंचणाणा॰दंडओ जह॰ णित्य अंतरं। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ अंतो॰। घीणगिद्धि॰३ दंडओ जह॰ णित्य अंतरं। अज॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ बेळाबिट्ठि॰ देस्र॰। अटक॰ जह॰ णित्य अंतरं। अज॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ पुच्चकोडी दें॰। इत्थि॰ जह॰ मिच्छ॰मंगो। अज॰ जह॰ एग॰, उक्क॰ आंघं। णव्ंसगदंडओ

बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्गृहर्त है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशक्यका अन्तर्काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशकथका जघन्य अन्तर एक समय है

और उस्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहुर्त है।

विशेषांच—पहाँ प्रवक्तवाली प्रकृतियोंका जयस्य प्रदेशक्त तीन गतिके प्रथम समयवती आहारक और तद्भवस्य जीविक सम्भव है, इसलिए यहाँ हनके जयस्य प्रदेशक्त्रक जीविक हिया है और इस जयस्य प्रदेशक्त्रक कीर अज्ञस्य प्रदेशक्त्रक कार्यक अज्ञस्य प्रदेशक्त्रक जयस्य अर्थक्तरक अज्ञस्य प्रदेशक्त्रक विश्व हिया अज्ञस्य प्रदेशक्त्रक जयस्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। तीन आयुकांका भङ्ग मनोयोगी जीविक समान है यह पण्ट ही है। देवगति व्युक्कका जयस्य प्रदेशक्त्रक जीवस्य गोस होता है, इसलिए इतके जवस्य और अज्ञस्य प्रदेशक्त्रका जयस्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्य है। होए प्रकृतियां है, इसलिए इतके जयस्य प्रदेशक्त्रक जयस्य प्रदेशक्त्रक जयस्य प्रदेशक्त्रक जयस्य प्रदेशक्त्रक ज्ञास्य प्रदेशक्त्रक ज्ञास्य प्रदेशक्त्रक विश्व है। होए क्रित्य हैं, इसलिए इतके जयस्य प्रदेशक्त्रक ज्ञास्य प्रदेशक्त्रक ज्ञासक ज्ञ

२६५. सम्बक्तिण्यात्वमं ध्रुवबन्धवाबी प्रकृतियोके जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुते हैं। अजयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वार समय है। शेष प्रकृतियोंके जयन्य और अजयन्य प्रदेशवन्यका

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ घोलमान जघन्य योगसे ध्रुवबन्धवाडी प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशवन्ध होता है, इसिंछए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका मूळमे कहे अनुसार अन्तरकाळ कहा है। शेष प्रकृतियाँ एक तो अध्यवबन्धिनी हैं और दूसरे इनका जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशवन्ध होता है, इसिंहाए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय

और उस्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६६. सिक्वयों में याँच झनावरणदण्डकके जमन्य प्रदेशबन्यका अन्तर काळ नहीं है। अजयन्य प्रदेशबन्यका जमन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर अन्तर्भूहते हैं। स्थानगृद्ध तीन रण्डकके जमन्य प्रदेशबन्यका अन्तरकाल नहीं है। अजयन्य प्रदेशबन्यका जमन्य अन्तर अन्तर्भूहते हैं और उन्क्रष्ट अन्तर कुछ कम दो छेशासठ सागर प्रमाण है। आठ कथायोंके जमन्य प्रदेशबन्यका अन्तरकाळ नहीं है। अजयन्य प्रदेशबन्यका जमन्य अन्तर क्लाव्यं अर्थन्य प्रदेशबन्यका अन्तरकाळ नहीं है। अज्ञवन्य प्रदेशबन्यका जमन्य अन्तर क्लाव्यं अर्थन्य प्रदेशबन्यका अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोदिम्माण है। अ्रोवेदके जमन्य प्रदेशबन्यका अस्तर क्लाव्यं अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर ओपके समान है। व्यावकवेदएवकका मङ्ग ओषके समान है। इतनी

बोधं। णवरि जह० णित्य अंतरं। फिरयाउं-देवाउ० पंचिदियपजन मंगो। तिरिक्खमणुसाउ० जह० जह० खुद्दा० समऊ०, उक्क० कायद्विदी०। अज० जह० अंतो०,
उक्क० कायद्विदी०। फिरयादि फिरयाणु० जह० जह० एग०, उक्क० कायद्वि०।
अज० अणुक्क०मंगो। तिरिक्ख०३ जह० णित्य अंतरं। अज० ओघं। दोगदि-वेउ व्वि०वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-उच्चा० जह० णित्य अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क०
तेनीसं० सादि० अंतोधुहुनेण। एइंदियदंडओ जह० णित्य अंतरं। अज० ओघं।
ओरा०-ओरा०अंगो०-वजिर० जह० णित्य अंतरं। अज० ओघं। आहार०२ जह० जह०
एग०, उक्क० पुष्यकोडितिमागं दे०। अज० ज० ए०, उक्क० सागरोवमसदपुधनं।

विशेषता है कि इसके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। नरकाय और देवायुका भक्त पक्रोन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। तिर्यक्राय और मनुष्यायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अल्लकभवमहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहर्त है और उत्क्रष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकर्गात और नरकरात्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर अनन्तरके समात है। तिर्यक्ष-गतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काळ नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान है। दो गति, वैक्रियकशरीर, वैक्रियिकशरीर आक्रोपाङ, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके जधन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य अन्तर एक समय है ओर उत्रुख अन्तर अन्तर्मृहर्त अधिक तेतास सागर है। एकेन्द्रियरण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अज्ञ घन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आजावाक और वजर्षभनाराचसंहननके जधन्य प्रदेशवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अज्ञचन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेश-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग-प्रमाण है। अज्ञघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर सी सागर प्रथक्तवप्रमाण है।

बिरोबार्थ — जो असंक्षियों में से आकर संक्षियों में उत्पन्न होता है उसके उद्यन्न होते के प्रमुद्ध समयमें पाँच झानाबरणादिका जघन्य प्रदेशक्च सम्भव है, इसिंछए इनके जघन्य प्रदेशक्च सम्भव है, इसिंछए इनके जघन्य प्रदेशक्च के अन्तर काळका निषेष किया है। स्वान्य द्विज्ञक्च आठ कवाय, स्रोवेद और तपुंचकें द रण्डक के जघन्य प्रदेशक्च अन्तर काळके निषयक यहाँ कारण जानना चाहिए। अपनी वन्धज्युच्छित्तिक वाद वर्ष होनावरणादिका कमसे कम एक समय तक और अधिक अन्तर्य हुत काळ तक बन्ध नहीं होता, इसिंछए इनके अजयन्य प्रदेशक्च आच्य अन्तर एक समय और उत्तरुष्ट अन्तर अन्तर्य हुत काळ तक बन्ध नहीं होता है। मिष्यावस्त्र जायन्य अन्तर प्रत्याद्व कहा है। मिष्यावस्त्र जायन्य अन्तर प्रत्याद्व अकरण्य प्रदेशक्च का अपन्य अन्तर एक समय अधिक उत्तर्य अन्तर प्रत्याद्व की अजयन्य प्रदेशक्च का ज्यन्य और उत्तरुष्ट के अजयन्य प्रदेशक्च अजयन्य अन्तर एक समय कहा है। सींवेद कि उत्तरुष्ट अन्तर औपके समान हित्त कर लेना चाहिए। नरकायु अक्षेत्र के अजयन्य प्रदेशक्च अन्तर स्वाप्त एक समय कहा है और उत्कृष्ट अन्तर ओपके समान दित कर लेना चाहिए। नरकायु अक्षेत्र देशक्च अजयन्य प्रदेशक्च अक्ष प्रत्य प्रदेशक्च अक्ष प्रत्य है। विवेद आपके प्रत्याव्य प्रदेशक्च अक्ष प्रत्य है। विवेद आपके समान वित्र कर लेना चाहिए। नरकायु अक्षेत्र देशक्च अजयन्य प्रदेशक्च अक्ष प्रत्य है। विवेद आपके स्वाप्त वित्र होता है, इसिंकए इनका भक्क प्रक्रेतिक प्रत्य प्रदेशक्च क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र प्रत्य है। विवेद आपके समान कहा है। विवेद आपके स्वाप्त वित्र होता है, इसिंकए इनका भक्क प्रक्रेतिक प्रत्य प्रदेशक्च अक्ष प्रत्य होता की स्वाप्त वित्र होता है। स्वयंत्र व्यवस्त्र प्रत्य होता है। विवेद आपके स्वाप्त वित्र होता है। स्वयंत्र व्यवस्त स्वयंत्र वित्र स्वाप्त होता है। विवेद सान का है। विवेद सान वित्र सान वित्र सान का स्वयंत्र स्वयंत्र स्वयंत्य प्रत्य स्वयंत्र स्वयंत्

२६७. असण्णीसु पढमदंडओ मदि०भंगो । चढुआउ०-मणुसगदि०३ तिरिक्खोध-

तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुत्रक भवपहणप्रमाण कहा है और यह जधन्य प्रदेशवन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथासमय हो और मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके जचन्य प्रदेशबन्धका उत्क्रष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। एक बार आयबन्ध हो कर पनः आयबन्धमें कमसे कम अन्तर्महर्त काल लगता है तथा कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तर्मे विवक्षित आयका बन्ध हो और मध्यमें अन्य आयका बन्ध हो यह सम्भव है. इसिंछए इनके अज्ञाचन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहत् और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितप्रमाण कहा है। नरकगतिद्विकका जघन्य प्रदेशवन्य संज्ञी जीवके घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसल्लिए यह एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और कहा कम कार्यास्थितिके अन्तर से भी हो सकता है, इसलिए इनके जवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर एक समय ओर उत्क्रप्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तथा इनके अजवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जो एक सौ पचासी सागर अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्यके अन्तरके समान कहा है सो वह यहां भी बन जाता है। तिर्यञ्जगितित्रकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान ही है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काळ ओघके समान कहनेका कारण यह है कि ओघसे जो इसके अजवन्य प्रदेशबन्धका जवन्य अन्तर एक समय और उस्क्रष्ट अन्तर एकसी बेसठ सागर कहा है वह यहां भी वन जाता है। दां गति आदिके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निपेध किया है। तथा एक तो ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं। दूसरे यहां साधिक तेतीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, इसल्लिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। सात्र सन्द्यगति आदिका उत्क्रप्ट अन्तर छानेके छिए नरकसें उत्पन्न कराना चाहिए। और देवगतिका उत्क्रष्ट अन्तर छानेके लिए उपशमश्रेणि पर आरोहण करा कर और वहीं मृत्य करा कर देवांमे उत्पन्न कराना चाहिए। एकेन्द्रियजातिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भी ज्ञानावरणके समान है. इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा इसके अजधन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल जो ओघके समान कहा है सो ओघसे जो इसके अजघन्य प्रदेशवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसी पचासी सागर बतलाया है वह यहां भी घटित हो जाता है। औदारिकशरीर आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान ही है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेश-बन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ओघके समान कहनेका कारण यह है कि ओघसे जो इतके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उस्क्रष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य कहा है वह यहां भी बन जाता है। आहारकद्विकका जधन्य प्रदेशवन्य आयुवन्धके समय घोलमान जधन्य योगसे होता है. इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तथा ये एक तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथा समय इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर सी सारार प्रथवन्त प्रमाण कहा है।

२६७. असंक्रियोंमें प्रथम १ण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। चार आयु और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्वञ्चोंके समान है। जीक्रियक छहके जघन्य भंगो। वेउन्विब्छ० जह० जह० एग०, उक्क० पुन्वकोडितिभागं देख०। अज० जह० एग०, उक्क० अर्णतका०। सेसाणं जह० णाणा०भंगो। अज० ज० एग०, उक्क० भंतो०।

२६८. आहारमेसु पंचणाणावरणपढमदंडओ जह० जह० खुदा० समऊ०, उक्क० ब्रंगुल० असंखे०। अज० जह० ए०, उक्क० ब्रंगो०। थीणमिद्धि०३दंडओ^र णवुंस्प-दंडओ जह० णाणा०भंगो। अज० ओघं। दोआउ०-दोगदिदोआणु०-उचा० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। णवरि मणुसगदि० जह० जह०

प्रदेशवन्यका जायन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिमागप्रमाण है। अजपन्य प्रदेशनन्यका जायन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर-काळ अनत्वकाल है। शेष प्रकृतियोंके जायन्य प्रदेशवन्यका भङ्ग झानावरणके समान है। अजयन्य प्रदेशवन्यका जायन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्युद्धे हैं।

बिद्येषार्थ—असिवयों में प्रथम दण्डकका मञ्ज मत्यक्षातियोंके समान कहतेका कारण यह है कि मत्यक्षातियों में प्रथम दण्डकके जधन्य प्रदेश वन्यका जो जधन्य अन्तर एक समय कम क्षुत्वक मव प्रह्मणप्रमाण की। उक्कृष्ट अन्तर असंस्थात लोकप्रमाण तथा अजधन्य प्रहेश, वन्यका जो जधन्य अन्तर एक समय वन्यका जधन्य प्रहेश अजधन्य प्रहेश, वन्यका जधन्य प्रशे उक्कृष्ट अन्तर एक समय वनक्षया है वह वहाँ भी धिटत हो जाता है। असंबियोंम तियंश्चोंको प्रधानता है, इसिव्ध वार आयु और मनुष्यगतिविकका भङ्ग जैसा विवश्चोंसे वन्ताया है वेसा वहाँ भी जात केना चाहिए। वहाँ बेकियक छड्का उपस्य प्रदेशवन्यक वन्य आयुवन्यके समय घोलमान जधन्य योगसे होता है, इसिल्ध दनके जधन्य प्रदेशवन्यक जधन्य अन्तर एक समय और उक्कृष्ट अन्तर पूर्व केटिका कुछ कम विभाग प्रमाण कहा है। तथा एक तो जधन्य प्रदेशवन्यके समय अजबन्य प्रदेशवन्य नहीं होता। साथ हो ये सप्रतिवश्च प्रकृतियाँ है। दूसर एकेन्द्रिय और विकक्षित्र पर्थायों हते हुए इनका अधिकसे अधिक अनन्तकाल कत वन्य नहीं होता, इसिव्ध दनके अजधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य अन्तर एक समय और उक्ष्य अन्तर अनन्तकाल कहा है। सेष अकृतियोंके जधन्य प्रदेशवन्यका स्वामी ज्ञानावरणके समान होनेसे इनके जमन्य प्रदेशवन्यका भन्न ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा ये स्व परावर्यक समान प्रकृतियों हैं, इसिव्ध दनके अजधन्य प्रदेशवन्यका जधन्य अन्तर एक समय अन्तर एक समय अवस्य प्रदेशवन्यका जधन्य अन्तर एक समय अन्तर एक समय अवस्य अन्तर एक समय अन्तर एक अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्यस्य अन्तर एक अन्तर एक अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्यस्व विवस्य अन्तर प्रवस्तर अन्तर अन्त

२६८. आहारकोंने पाँच क्षानावरण आदि प्रथम दण्डकके जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय कम शुल्लक भव महणप्रमाण है और उन्क्रष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजपन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर अन्तर्श्वहृत है। स्यानगृद्धित्रक दण्डक और ज्वंति देशविक्षका अभिक्ष होनावरणके समान है। अजपन्य प्रदेशवन्यका भक्ष झानावरणके समान है। अजपन्य प्रदेशवन्यका भक्ष शोषके समान है। श्री श्री शु दो तित हो आगुपूर्वी और उद्योजके अपन्य और अजपन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उद्योजके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है

१. ता॰प्रती 'अंगुला॰ श्रसंखे॰। शीणागिद्धि॰ ३ दंडभो ' इति पाठः। २, ता॰का॰प्रत्योः 'জ৹ জ॰ অজ॰' इति पाठः

एवं अंतरं समत्तं।

विशेषार्थ — आहारकांमें पाँच ब्रानावरणादिकका जयन्य प्रदेशवन्य स्क्रम एकेन्द्रिय अपनीत जीव भवके प्रथम समयमें करता है और इसकी कार्यास्थित अंगुळके असंस्थातयें भागप्रमाण है, इसिए इनके जयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तरकाल एक समय कम भागप्रमाण है। तथा अपन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तरकाल एक समय कम अपन्य प्रदेशवन्य के समय कम अपन्य प्रदेशवन्य के सामप्रमाण है। तथा जयन्य प्रदेशवन्य के समय इनका अज्ञयन्य प्रदेशवन्य नहीं होता और बन्ध व्युच्छित्तिक बाद इनका यदि पुनः बन्ध हो तो अधिकसे अधिक अन्तर्युद्ध काळ लगता है, इसिछए इनके अज्ञयन्य प्रदेशवन्यका जयन्य अन्तर एक समय और वन्द्र अन्तर अन्तर्युद्ध कहा है। स्थानस्थितिक दण्यक और न्यूचकवेद रण्यकके जयन्य प्रदेशवन्यका सामा ब्रानावरणके समान कहा है। तथा स्थानपृद्धितिक दण्यक अपन्य प्रदेशवन्यका अन्तर काल ब्रानावरणके समान कहा है। तथा स्थानपृद्धितिक रण्यक अपन्य प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय और वक्ष्य क्यान्य प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय और वक्ष्य व्यवस्थ अन्तर प्रदेशवन्यका अपन्य अन्तर एक समय और वक्ष्य व्यवस्थ अन्तर एक समय और वक्ष्य व्यवस्थ अन्तर एक समय और वक्ष्य वस्त्र व्यवस्थ अन्तर एक समय और वक्ष्य वस्त्र वस्त्र व्यवस्थ अन्तर एक समय और वक्ष्य अन्तर एक समय और वस्त्र वस्त्र अन्तर एक समय और वक्ष्य अन्तर एक समय और वक्ष्य अन्तर एक समय अन्तर एक समय अन्तर प्रवास्त्र सामय अन्तर एक समय और वस्त्र वस्त्र अन्तर प्रवास्त्र सामय अन्तर एक समय अन्तर एक समय अन्तर वस्त्र वस्तर वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्य वस्त्र वस्त

^{1.} ता॰प्रती समक॰ । जाजा॰ (?) तिरिक्काड॰ आ॰प्रती 'समक॰। जाजा॰ तिरिक्काड॰ इति पाठः।

ओघसे प्राप्त होता है वैसा यहाँ भी वन जाता है, इसलिए यहाँ यह ओघके समान कहा है। हो भाग आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजबन्य प्रदेशबन्धका जबन्य अन्तर एक समय कहा है। मात्र मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्र-का जचन्य प्रदेशवन्य सक्स अपूर्वाप्त जीवके भवके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अल्लक भवप्रहणप्रमाण कहा है। तथा अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथासमय इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, क्यों कि एकेन्द्रिय पर्यायमें रहते हुए नरकाय, देवाय और नरकगतिद्विकका तथा अग्निकायिक और वायकायिक पर्यायमें रहते हुए मनुष्यगतिहिक और उन्नगोत्रका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जधन्य और अजधन्य प्रदेशबन्धका उत्क्रष्ट अन्तर अंगुळके असंख्यातचे भागप्रमाण कहा है। अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इन प्रकृतियोंका जघन्य और अज्ञघन्य प्रदेशबन्य कराकर यह अन्तर हे आना चाहिए। तिर्यक्कायका जघन्य प्रदेशबन्ध सक्स अपर्याप्त जीवके दो भवोंके तृतीय भागके प्रथम समयमे दो बार करानेसे इसके जघन्य प्रहेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षल्छक भवग्रहणप्रमाण और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें करानेसे उत्क्रष्ट अन्तर अगलके असल्यातवें भागप्रमाण आता है। ज्ञानावरणके जघन्य प्रदेशबन्धका यह अन्तर इतना ही है, इसलिए तिर्युखायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा एक त्रिभागबन्धसे द्वितीय त्रिभागबन्धमें कमसे कम अन्तर्मुहर्त-का अन्तर होता है और आहारक जीव अधिक से अधिक सी सागरप्रथक्त कालतक तियंक्राय-का बत्ध न करे यह सम्भव है, इसिंखए तिर्यक्कायके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर अन्तर्महर्त प्रमाण और उत्क्रष्ट अन्तर सौ सागर प्रथक्तवप्रमाण कहा है। एक बार मनुष्यायका जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्ध होकर पनः होनेमे कमसे कम अन्तर्महर्त काल और अधिकसे अधिक कार्यास्थानप्रमाण काल लगता है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तिर्यक्करातित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान होनेसे इनका भक्त ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और एत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसर सागर ओघके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यह भक्न ओघके समान कहा है। हेवगतिचतरकका जघन्य प्रदेशवन्य प्रथम समयवर्ती तद्ववस्थ असंयतसम्यन्ति आहारक समस्य तीर्थका प्रकृतिके साथ करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकाखका निषेध किया है। तथा ये एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और दसरे कार्यास्थितप्रमाण कालतक इनका बन्ध न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर कार्याध्यतिप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियजातिदण्डक और औदारिकशरीरत्रिकका अस ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट है, क्योंकि जघन्य स्वामित्वकी अपेक्षा ज्ञानावरणसे इनमें कोई भेट नहीं है। तथा एकेन्द्रियजातिरण्डकके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर व औदारिकशरीरत्रिकके अजधन्य प्रदेशबन्धका जबन्य अन्तर एक समय और एत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य ओपके समान यहाँ भी बन जानेसे वह ओवके समान कहा है। आहारकशरीरद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्मृहत् ओघके समान यहाँ वन जानेसे वह ओघके समान कहा है। तथा ये एक तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दसरे जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अजधन्य प्रदेशबन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगलके

सण्णियासपरूवणा

२६९. सिण्यासं दुविधं—सत्थाणसिण्यासं चेव परत्थाणसिण्यासं चेव।
सत्थाणसिण्यासं दुवि०—जह० उक्त० । उक्त० पगदं । दुवि०—जोषे० आदे० ।
ओषे० आभिणि० उक्त० पदेसवंधंतो सुद०-ओषि०-मणपञ्ज०-केवल० णियमा वंधगो
णियमा उक्तस्तं । एवं एकेकस्स । एवं पंचतराहगाणं ।

२७०. णिदाणिहाए उक्क० पदेश्वंघं० पयलापयला-धीणिगिद्धि० णियमा बंघगो णियमा उक्कस्तं । णिदा-पयलाणं णियमा बंधं० णियमा अणुक० अणंतभागूणं बंघदि । चदुरंस० णियमा वं० णियमा अणु० संखेडादिमागूणं बंघदि । एवं पयलापयला-

असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तोर्थंड्रूर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशवन्य देव और नारकी भवके प्रथम समयमें करता है, इसल्लिए इनके जवन्य प्रदेशवन्यके अन्तरकालका निषेष किया है। तथा एक तो जघन्य प्रदेशवन्यके सार्वे हिन्ते । दूसरे उपयाम- अणिमें एक समयके लिए अवन्यक होकर दूसरे समयमें मरकर देव होने पर पुनः इसका बन्ध होने लगता है और उपशमभेणिमें अन्तर्मुहर्त कालतक इसका बन्य नहीं होता। या जो तीर्यंड्रूर प्रकृतिका बन्य करनेवाला जीव द्वितीयादि प्रथिवियोंमें मरकर उत्पन्न होता है उसके अन्तर्मुहर्त काल तक इसका वन्य नहीं होता। इसके अन्तर्मुहर्त काल तक इसका वन्य नहीं होता, इसलिए इसके अजयन्य प्रदेशकन्यका जघन्य अन्तर एक समय और दत्कुल अन्तर भर्मीुहर्त कहा है। अनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवों के समान है यह रुग्छ हो है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ। सश्चिकपेत्ररूपणा

२६९. सिं६ कर्ष दो प्रकारका है—स्वस्थान सन्निकर्ष और परस्थान सन्निकर्ष । स्वस्थान सिन्निकर्ष है —जवन्य और उन्क्रष्ट । उन्क्रष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है —जवन्य और उन्क्रप्ट । उन्कर्षका है । निर्देश दो प्रकारका है —जोश और अंदिश । ओपसे आमितनेविधिक हानावरणके उन्क्रष्ट प्रदेशोंका वन्य करनेवाला और केवज्रहानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनाप्यवानावरण और केवज्रहानावरणका नियससे बन्धक होता है । हसी प्रकार पीचा कावावरणका नियससे बन्धक होता है । हसी प्रकार पीचा हमावावरणों से एक एक होता है । हसी प्रकार पीचा कावावरणों से एक एक हो सुख्य करके सन्निकर्ष होता है । तथा इसी प्रकार पीचा अन्तरावामें से एक एक हो सुख्य करके सन्निकर्ष होता है । तथा इसी प्रकार पीचा अन्तरावामें से एक एक हो सुख्य करके सन्निकर्ष होता है ।

विश्लेषार्थ — इन कर्मों के उन्कष्ट प्रदेश बन्धका खामी एक है और इनका एकसाथ बन्ध होता है, इसलिए पाँच ज्ञानावरणमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशकन्य होनेपर शेषका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशकन्य होता है। तथा इसी प्रकार पाँच अन्तरायोंमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशकन्य होने पर शेषका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशकन्य होता है यह उक्त कथनका तास्पर्य है।

२७०. निद्रानिद्राके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलायला और स्थानगृह्धिका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। निद्रा और प्रचलाका यह नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अनन्वर्षे आग न्यून अशुन्कुष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चक्षुदर्शनावरणादि चार दर्शेनावरणोंका यह नियम बन्धक होता है जो नियमसे संस्थावर्षे भाग न्यून अनुत्कुष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार प्रचलाध्रचला

१. ता॰ प्रती 'खेव [परत्याणसण्णिकास] सत्याणसण्णियासं' इति पाठः ।

थोणिनिः । णिद्दाए उक्तः [बं] पयला णियमा बं॰ णियमा उक्तस्तं । चदुदंसः णि॰ बं॰ णि॰ अणु॰ संखेजदिमानृणं बंघदि । एवं पयला । चन्तसुदं॰ उक्तः बंधंतो अचनसुदं॰-ओधिदं॰-केनलदं॰ णियमा बं॰ णिय॰' उक्तस्तं । एवं तिष्णिदंसणा॰ ।

२७१. सादा० उक्क० बंधतो असादस्स अबंधगो । असादा० उक्क० बंधतो सादस्स अबंधगो । एवं चटुण्णं आउगाणं दोण्णं गोदाणं च ।

२७२. मिच्छ० उक्क० बं० अणंताणु० णिय० बं० णिय० उक्क०। अहरू

और स्यानगृद्धिकी मुक्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। निद्राके एस्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करनेवाळा जीव प्रचताका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उक्कृष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। चार दर्शनावरणांका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे सक्यातवें सात ग्यून अनुक्कृष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। इसी प्रकार प्रचळाते मुक्यतासे सन्तिकर्ष कहना चाहिए। चक्कुदर्शनावरणके उक्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करनेवाळा जीव अवश्रुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणका नियमसे वन्धक होता है। हो प्रकार तान दर्शनावरणोंकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष कहीता है।

विश्वेषार्थ—प्रथम और दितीय गुणस्थानमें दर्शनावरणको सव प्रकृतियोंका बन्ध होता है : इसिळए निद्रानिदाके उठ्ठा प्रदेशका बन्ध होता है : इसिळए निद्रानिदाके उठ्ठा प्रदेशका बन्ध करता है । स्टर्माळ प्रदेशका प्रदेशका बन्ध करता है । स्टर्माळ प्रदेशका बन्ध करता है । इसिळए निद्रानिदाके उठ्डा प्रदेशका बन्ध करतेवाळा जीव ६न दो प्रकृतियोंके हां उठ्छा प्रदेशका बन्ध करतेवाळा जीव ६न दो प्रकृतियोंके हां उठ्छा प्रदेशका बन्ध करता है । होतायादि गुणस्थानीमें निद्रादिक और चक्ष प्रदेशकाथको देखते हुए अनुरुक्त प्रदेशका विश्व होता है । उत्तेश्वादि गुणस्थानीमें निद्रादिक और चक्ष प्रदेशकाथको क्वाच के । उठ्डा चित्र के । उठ्डा प्रदेशकाथका स्वामी जार गतिका सम्पर्यादि जीव है और चक्ष प्रदेशकाथका स्वामी जार गतिका सम्पर्यादि जीव है और चक्ष प्रदेशकाथका स्वामी अन्यतर सुद्धसाम्परायिक जीव है, इस्विल्प निद्रादिक से किसी एकका उठ्छा प्रदेशकाथका स्वामी अन्यतर सुद्धसाम्परायिक जीव है, इस्विल्प निद्रादिक होता है और चक्ष प्रदेशकाथका स्वामी अन्यतर सुद्धसाम्परायिक जीव है, इस्विल्प निद्यान्य होता है और चक्ष प्रदेशकाथका स्वामी अन्यतर सुद्धानिद्यान प्रयान प्रदेशकाथका स्वामी अन्ति होता है। सात्र इसके स्वानगृद्धानिक का क्रम नहीं होता। तथा चक्ष दश्रीनावरण आदिमेंसे सुद्धसाम्परायमें किसी एकका उद्धान प्रदेशकाथ होते समय शेष वीनका नियमसे उठ्छा प्रदेशकाथ देशता है। सात्र इसके स्वानगृद्धानिक प्रदेशकाथ होते समय शेष वीनका नियमसे उठ्छा प्रदेशकाथ होते होता। तथा चक्ष दश्री क्वाच नियमसे उठ्छा प्रदेशकाथ होते होता। विश्व समय होते होता।

२७१. सातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशींका वन्य करनेवाळा जीव असातावेदनीयका अवस्थक होता है और असातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशींका वन्य करनेवाला जीव साता-वेदनीयका अवन्यक होता है। इसी प्रकार चार आयु और दो गोत्रोंके विषयमें भी जानना चाहिए।

विश्वेषार्थ — रोनों वेदनीय, चारों आयु और दोनों गोत्रकर्म ये प्रत्येक परस्पर सप्रतिपक्ष प्रकृतियों हैं। दोनों वेदनीयमेंसे किसी एकका बन्ध होनेपर अन्यका बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार चारों आयुकर्मों और दोनों गोत्रकर्मोंके विषयमें जानना चाहिए, इसक्रिए यहाँ पर इनके सन्निकर्षका निषय किया है।

२७२. मिध्यास्त्रके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककः

१. ता॰मतौ 'णिय॰ विं०] णि॰' इति पाठः ।

भय-दु० णिय० वं० णिय० अणु० अणंतभागृणं वंघि । कोघसंत्र० णिय० वं० णिय० अणु० दुभागृणं वंघि । माणसंत्र० सादिरेयदिवहुभागृणं वंघि । माणसंत्र० सादिरेयदिवहुभागृणं वंघि । माणासंत्र० सोमासंत्र० णिय० वं० णिय० अणु० संखेआगुणहीणं वंघि । इत्यि०-णद्यंत० सिया उक्स्सं । पुत्तिक सिया संखेआगुणहीणं वंघि । इस्स-दि-अरदि-सोग० सिया अणंतभागणं वंघि । एवं अणंताणुवं०४-इत्यि०-णद्यंत०।

२७३. अपचनसाणकोष० उक्त० बं तिष्णिक०-भय-दु० णिय० बं तिणय० ढक्ससं। पच्चस्खाण०४ णि० बं तिण्य० अणु० अणंतभागूणं बंघदि। चहुसंज० मिच्छत्तभंगो। पुरिस० णि० बं० णि० अणु० संखेकगुणहीणं बंघदि। चहुणोक० सिया बं ठक्क०। एवं तिष्णिकसा०।

विशेषार्थ — तास्पर्य यह है कि मिध्यास्त, अनन्तानुबन्धोचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशकन्यका स्वामी एक जीव है, इसिक्टि मिध्यासके उत्कृष्ट प्रदेशकन्यको मुख्य करके जो सिन्तिकर्ष कहा है वह अनन्तानुबन्धोचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको मुख्य करके भी वन जाता है। शेष कथन वन्यव्यवस्थाको जानकर घटित कर लेना चाहिए।

२०३. अप्रत्याख्यानावरण कोषके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव तीन कपायों, भ्य और जुगुप्साका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट 'देशोंका बन्धक होता है। प्रत्याख्यावावरणवृद्धकका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अन्तवर्षे भागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चार संज्यलनका भङ्ग मिथ्यादके समान है। पुरुषवेदका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे सल्यातगुणे होन अनुतकृष्ट प्रदेशोंक बन्धक होता है। चार नीकषायांका वह कहाचित्र बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार अप्रत्याक्यानावरण मान आदि तीन क्यायोंकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए।

विद्येषार्थ — अप्रत्याख्यानायरण चतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी एक जीव है, इसलिए इनका सन्निकर्य एक समान कहा है। यहाँ पर जो चार संज्वलनोंका भङ्ग मिय्यात्वके समान कहा है सो इसका यह अभिग्राय है कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध

१. ता॰प्रती 'माणसंज॰ को भसंज॰ जिय० [बं॰] जि॰' इति पाठः ।

२७४ पच्चक्खाणकोष्ठ० ६० तिष्णिक०-मय-दु० णिय० वं० णिय० उक्क० । चदुसंज०-पुरिस०-चदणोक० अपचक्खाणमंगो । एवं तिष्णिकसा० ।

२७५. कोघसंज ० उक्क ० पवं ० माणसंज ० णि० वं ० णि० अणु० संसेआदिभागूणं वंघित । मायासंज ० त्तोभसंज ० णि० वं ० णि० अणु० संसेआगुणहीणं वंघित । माणसंज ० उक्क ० पदे०वं ० मायासंज ० णि० वं ० णि० अणु० संसेआदिभागूणं वंघित । सोमाए ० उक्क ० पदे०वं ० तोभ ० णि० वं ० णि० अणु० संसेआगुणहोणं वं०। मायाए ० उक्क ० पदे०वं ० तोभ० णि० वं० णिय० अणु० दुभागूणं वंघित ।

२७६, पुरिस० उक्क० पदे व्यं० कोघसंज० णियमा अणु० दुभागूणं यंघदि । करनेवाळे जीवके चार संज्वलनोंका सन्निकर्षं कहा है उसी प्रकार यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण कोघके उरहष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाळे जीवके इनका सन्निकर्य जानना चाहिए। इसके प्रिष्यास, अनननानुबन्धीचुण्क, स्रीवेर और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, इसळिए इनका

२७४. प्रस्याख्यानावरण कोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कपाय, भय और जुगुप्याका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्यतन, पुरुषवेद और चार नोक्ष्यायोंका भक्क अप्रया-स्थानावरणके समान है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिये।

चित्रोपार्थ - मस्यास्थानावरणचनुत्कके उत्कृष्ट प्रदेशवन्यका स्वामी एक जीव **है, इसिए** इनका सन्तिक्षे एक समान कहा है। इसके मिध्यात्व, प्रारम्भको आठ क्याय, स्रीवेद और त्रमेशकवेदका प्रत्य मही होता, इसिंब्य इनका सन्तिक्ष नहीं कहा।

२७५. कोघ संब्वलनके वक्कट प्रदेशोंका वन्य करनेवाला जीव मान संबवलका नियमसे बन्यक होता है जो नियमसे संख्याववे भाग हीन अनुक्कट प्रदेशोंका बन्यक होता है। माया संब्वलन और लोभसंवलनका नियमसे बन्यक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे होन अनुक्कट-प्रदेशोंका बन्यक होता है। मानसंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका बन्यक करनेवाला जीव माया-संग्वलनका नियमसे बन्यक होता है। मानसंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका बन्यक होता है। मायासंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका वन्यक होता है। लोभसंग्वलनका नियमसे बन्यक होता है। लोभसंग्वलनका नियमसे बन्यक होता है। मायासंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका बन्य करनेवाला जीव लोभसंग्वलनका नियमसे बन्यक होता है। मायासंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका वन्य करनेवाला जीव लोभसंग्वलनका नियमसे बन्यक होता है। मायासंग्वलनके उक्कट प्रदेशोंका वन्यक होता है। स्वालक्कट क्ष्यक स्वलनका नियमसे बन्यक होता है। स्वल्यक होता है जो नियमसे हे। भागहीन अनुक्कट प्रदेशोंका बन्यक होता है।

विशेषार्थ कोधसंस्ववनके उक्त प्रदेशोंका बन्य करनेवाला जीव शेष तीन संस्वकानोंका, मानसंस्वलनके स्कुष्ट प्रदेशोंका बन्य करनेवाला जीव माया और लोभ संस्वलनक तथा
मायासंस्वलनके स्कुष्ट प्रदेशोंका बन्य करनेवाला जीव लोभसंस्वलनका ही बन्य करता है,
इसलिए यहाँ इसी अध्यासे सम्भव सन्निकर्ष कहा है। लोभसंस्वलनके उन्हष्ट प्रदेशोंका बन्य
करनेवाल जीवके अन्य प्रकृतियोंका बन्य नहीं होता, इसलिए उसका अन्य किसीके साथ
सन्निकर्ष नहीं कहा।

२७६. पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध परनेवाला जीव कोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। मानसंज्वलनका

१. ता०आ०प्रत्योः 'कोघसंज० जीखुस्बा० भागूखं' इति पाटः ।

माणसंज णियमा सादिरेयदिवङ्गमागृणं वंधदि । मायासंज - लोमसंज ० णियमा संसेजगुणद्वीणं वंधदि ।

२७७. हस्त० उक्क० पदे०वंधंतो अपचक्खाण०४ सिया ।

२७८. णियमा उक्तः । अड्का-मय-दुगुं० णि० वं० अणंतभाग्णं वं० । कोधसंत्रः णि० वं० दुभाग्णं वं० । माणसंज्ञः णि० वं० दे सादिरेयदिवहुभाग्णं वं० । माणसंज्ञः लोभसंज्ञः णि० वं० णि० संखेज्ञगुणहीणं वं० । इत्थि०-णवंस० सियाः उक्कः । पुरिस्तः सियाः संखेज्ञगुः । चदुणोकः सियाः अणंतभाग्णं वंघदि । एवं अणंताणुः ४-इत्थि०-णवंसः । अपचक्ताणुः ४-स्तणोकः -चदुसंजः मिच्छत्तभंगो । सेसाणं माणसंगो ।

नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक ढेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट पूर्वशोंका बन्ध करता है। मायासंज्ञकन और छोभसंज्ञ्चलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे होन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है।

विशेषार्थ —पुरुषवेदके उत्क्रष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाल। जीव मोहनीयकी पुरुषवेदके साथ चार संज्वलन प्रकृतियोंका ही बन्ध करता है, इसलिए इसके इस दृष्टिसे सम्भव सन्निकर्ष कहा है।

२७७. हास्यके उरकृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्धक होता है।

२७८. ""म्वससे उन्कृष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। आठ क्याय, भय और जुराप्ताका निवससे सन्धक होता है जो निवससे अनन्तयं भागहोन अवुतकुष्ट प्रदेशांका वन्धक होता है। कोध संव्यवनका निवससे बन्धक होता है। कोध संव्यवनका निवससे बन्धक होता है जो निवससे मागहोन अवुतकुष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। कोध संव्यवनका निवससे सन्धक होता है जो निवससे साधिक ढेढ़ भागहोन अवुतकुष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। मायासंव्यवनका जिर्थससे बन्धक होता है जो निवससे संव्यवत्याणे होन अवुतकुष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। क्षावेद और नपुसकवेदका कदार्थित वन्धक होता है। वरिवस्तक होता है। विवससे सर्थक होता है। वरिवससे संव्यवत्याचाणे होन अवुत्राष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। वरिवससे संव्यवत्याचाणे होन अवुत्राष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। वरिवस्ते अवुतकुष्ट प्रदेशांका बन्धक होता है। इसीमकार अनन्तावुत्वक्रो जुक्कावेद और नपुरंसकवेदकी प्रवेदांका सम्बन्धक बहुना चाहिए। अप्रत्याक्ष्यानावण्यवुत्क, स्रोवेद और नपुरंसकवेदकी प्रकृत्याचे अनुतक्षक कहाना चाहिए। अप्रत्याक्ष्यानावण्यवुत्क, साव नोक्याय और चार संव्यवत्यक अन्न सिन्धायके समान है। हो। श्रेष प्रकृत्यांका अन्न मानक्यायके समान है।

अंत्र १८८ कमाद्वकं साहपत्रं विनक्ष्मः। २. छा॰प्रती 'माणसंत्र॰ वं॰' इति पाटः।
 स. सा॰प्रती 'त्वं अणंताणु॰ ४। इस्वि॰ णपुं॰' इति पाटः।

२७९. कोधसंज उक्क पदे ० वं माणसंज णि० वं णि० वं सिजादि-भागूणं वं । दोष्णं संज णि० वं संसेज्जगुणहीणं वं । माणसंज उक्क पदे ० वं दोसंज णि० वं संसेजदिमागूणं वं । मायासंज उक्क पदे ०वं होभसंज णि० वं णि० उक्क । एवं सोभसंजल । सेसं ओधं । सोमे ओधं ।

२८०. मदि०-[सुद०] सचण्णं क० अपञ्जनभंगो । णामपगदीणं पंचिंदिय-तिरिक्सभंगो । एवं विभंगे अन्भव०-मिच्छा०-असण्णि० ।

२८१. आभिणि-सुद-श्रोधि० सत्तर्णं कम्माणं श्रोषं । मणुसगदि० उक्क० पदे०-वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समबदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुभम-सुस्सर-आदे०-णिमि णि० वं० णि० अणु० संखेजदिभागूणं वं० । ओरा०-ओरा०अंगो०-वजरि०-मणुसाणु० णि० वं० णि० उक्क० । चिरादितिष्णयुग० सिया संखेजदि-भागूणं वं० । णवरि जस० सिया संखेजगुणहोणं वं० । एवं ओरा०-ओरा०अंगो०-वजरि०-मणुसाणु० ।

२८२, देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४ देवाणु०-

२७९. कोधसन्वलनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव मानसंव्यवजनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे सस्यातवे भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। दो सज्बवनोंका नियमसे वन्धक होता है। दो सज्बवनोंका नियमसे वन्धक होता है। जो नियमसे संस्थातयूणे होंन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानसञ्चलनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक करनेवाला जीव दो संव्यवनोंका नियमसे वन्धक होता है। मानस्यंज्यवनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानस्यंज्यवनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानस्यंज्यवनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। जो नियमसे वन्धक होता है। जो नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसोप्रकार लोभसंक्यवनकी मुख्यतासे सिक्षक्ष जानना चाहिए। शेष भंग ओषके समान है। बोभक्षपायवाले जोवोंमें ओषके समान भक्ष है।

२८० मत्यक्षानी और श्रुताक्कानी जीवोंमें सात कर्मोंका मङ्ग अपयोप्त जीवोंके समान है। नाममकृतियोंका मङ्ग पञ्जीन्द्रय तिर्युखोंके समान है। इसी प्रकार विभङ्गकानी, अभव्य, मिथ्याहृष्टि और असंबी जीवोंमें जानना चाहिए।

२८१. आभिनवीधिकहानी, शुवहानी और अवधिहानी जीवोंमें सात कर्मोंका सङ्ग ओघके समान है। मतुष्याविके उत्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करतेवाला तीव प्रश्नेन्द्रियात्रित तैजस- इरारे, कार्मणशारीर, समचतुरक्रसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरुक्कुचनुरक, प्रशान विहायोगित, प्रसचतुरक, सुमग, सुस्यर, आहेय और निममेश निमसे बन्धक होता है जो नियमसे संस्थातवें आगहीन अनुस्ष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। औदारिकश्चरीर आहोपाह्न, वर्षप्रभागायचर्सहनन और मतुष्यान्यातुपूर्वीका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। सिर आदि तीन युग्वका कदाचिन् बन्धक होता है। हात है ना विहास होता है। वर्ष नियमसे बन्धक होता है। हता है ना स्वताव मागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। इतनी विशेषता है कि यश्चकीर्तिका कदाचिन सम्यक होता है। इतनी विशेषता है कि यश्चकीर्तिका कदाचिन सम्यक होता है। इतनी प्रविशेषता है कि यश्चकीर्तिका औदारिकश्वरीर, औदारिकश्चरीर आङ्गीपाङ्ग, वर्ष्यभन्ताराचसंहनन और मतुष्यगत्वातुर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८२. देवाविके उत्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चीन्वजाति, समचत्रक्ष

अगु०४-पसत्व०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि० वं० णि० उक्क०। वेउच्वि०-नेजा०-क्र०-वेउच्वि०अंगो० णि० वं० तं तु० संखेजदिभागणं वं०। आहार०२-चिरादिदोधुग०-अजस० सिया० उक्क०। जस० सिया` संखेजगुणहोणं। देवगदिभंगो पंचिदि०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-चिरादि-पंच०-र्णापिक।

२८३, वेउच्चि० उक्क **परे०बं० देवगदि** याव णिमि० णि० बं०णि० उक्क० | चिरादिदोयुग०-अजस०^२ सिया० संखेआगुणहीणं बं०। एवं तेजा०-क०-केरिका० जंगो ।

२८४, आहार० उक्क० पदे०बं० देवगदि०-पंचिदि०-समचदु०-[आहारअंगो०] वष्ण०४-देवाजु०-अगु०४-ससत्थ०-सस०४-थिरादिपंच०-णिमि० णि० उक्क०। जस० णि० बं० संखेजगुणहीणं०। वेउन्वि०-तेजा०-क०-वेउन्वि०अंगो० णि० बं० संखेजादि-

२.८. बेकियिकशरोरके उत्कष्ट प्ररेशींका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिसे लेकर पूर्वमें कही गई निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्धक होता है जो तियमसे उत्कृष्ट प्ररेशींका बन्धक होता है। स्थिर आदि दो युगळ और अयशःक्रीतिका कदाचित् बन्धक होता है। है। यदि बन्धक होता है। स्थायतागुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशींका बन्धक होता है। हसीप्रकार तैजसवरीर, कार्मणकारीर और वैकिथिकशरीर आक्रोणक्रकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष

२८४. आहारकरारीरके उक्तृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चिन्द्रियजाति, समजुरुक्तसंस्थान, आहारकआङ्गोपाङ्ग, वर्ण चतुष्क, देवगत्यातुपूर्वी, अगुरुक्युबतुष्क, प्रश्नस्त बिहाबोगति, त्रसन्तुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्धक होता है जो निवससे सिवस देशक होता है जो निवससे सिवस देशक होता है जो निवससे संख्यक होता है जो निवससे संख्यक होता है जो निवससे संख्यात्यां है। बीह्मिक्सरारीर, वैजसशारीर कार्मण- इसरी होता है। विकास से संख्यात्यं स्थानक होता है जो निवससे संख्यात्यं स्थानक होता है। इस्तिमक होता है जो निवससे संख्यात्यं स्थानक होता है। हसीमकार आहारकरारीरकी सुक्यतासे सम्बन्धक भगाइतीन अनुक्ष्य प्रदेशींका बन्धक होता है। इसीमकार आहारकरारीरकी सुक्यतासे सम्बन्धक स्थानक स्यानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्था

मागुणं वं । एवं जाहारजंगी । अधिर-त्रसभ-त्रजप । वेउव्विय ० मंगी ।

२८५. तिस्य उक्क पदै वं देवगदिशादीणं संखेजदिशाम्णं र्व । जस । तिया संखेजगुणहीणं वं । एवं मणपक ः संजद-सामाइ ः छेदो ः परिहार । संजदा-संजद ः जोषिदं - सम्मादि ः -खहग ः नेदग ः -उ वसम ः -सम्मामि । । णवरि सामाइ ः छेदो । दंसणा । इत्यमंगो । परिहार ः संजदासंजद नेदग ः सम्मामि । जस । सन्वाणं सिया । उक्क ।

२८६. असंजदेसु सत्तर्णं कम्माणं णिरयभंगो। णामाणं पंचिदियतिरिक्ख-भंगो। णवरि तित्यः ओयं। किण्णः णीलः ०-काउः असंजदभंगो। तेउः छष्णं कम्माणं णिरयसंगो। सिच्छः उक्कः पदेः वं अणंताणुः ४ णिः वं णिः उक्कः। बारसकः -भय दुगुंः णिः अणंतमागुणं वंः। इत्यिः -णवुंसः सियाः उक्कः। पंचणोकः सियाः अणंतमागुणं वंः। [एवं अणंताणुः ४-इत्थिः -णवुंसः]। अपच-क्खाणः कोघः उक्कः पदेः वं तिष्णकः पुरिसः -भय-दुः णिः वंः णिः उक्कः। अद्यकः णिः वंः णिः अणंतमागुणं वंः। चदुणोकः सियाः उक्कः। एवं तिष्णिः

कहना चाहिए। अस्थिर, अञ्चम और अवशःकीर्तिको सुख्यतासे सन्निकर्ष वैकियिकशरीरकी सुख्यतासे कहे गये सन्तिकर्षके समान है।

२८५. तीर्थं क्रूर प्रकृतिके उन्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाळा जोव देवगति आदि प्रकृतियोंके संस्थातवें भागहीन अनुकुष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। यहारकोर्तिक कदाचित् बन्धक होता है। यहारकाह होता है। विकास होता है। हसीप्रकार मनःपर्वयक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविज्ञुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदक्षेती, सस्यव्हिष्ट, ब्रायंक्षसम्यव्हिः, वेदकसम्यव्हिः, उपराससम्यव्हिः क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्यक्षिः, वेदकसम्यव्हिः, उपराससम्यव्हिः क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्यक्षिः, विक्षसम्यविक्षस्यक्षस्यक्षिः, क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्यक्षिः, विक्षसम्यविक्षस्यक्षस्यक्षिः, क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्यक्षिः, विक्षस्यक्षस्य और क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्य क्षेत्र क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्य क्षेत्र क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्य क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्य क्षेत्र स्थान संयत् स्थान क्षेत्र सम्यायम्यविक्षस्य क्षेत्र स्थान स्थानस्य स्यानस्य स्थानस्य स्थानस्य

२८६. असंवत जीवों में सात कर्मोंका पङ्ग नार्राक्योंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका मङ्ग पञ्चीन्त्रय तिवांकों के समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थहर प्रकृतिका मङ्ग अपके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थहर प्रकृतिका मङ्ग अपके समान है। क्षण, नील और कापोतलेडयामें अस्तेयांके समान मङ्ग है। पीतलेडयामें छह कर्मोंका मङ्ग नार्राक्ष्योंके समान है। प्रिष्यासके उट्ट प्रदेशोंका बन्य करनेवाला जीव अनन्तानुकन्यीचतुष्क का नियमसे बन्य करता है। जी नियमसे उट्ट प्रदेशोंका बन्य करता है। बारह कवाय, अय, और जुएसाका नियमसे अनन्तवं भाग न्यून अनुत्कृष्ट श्रदेशोंका बन्य करता है। बीदि और क्षण है। क्षोंदि और क्षण है। विशेष वन्य करता है। वीदि बन्य करता है। ती नियमसे अनन्तवं भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्य करता है। वीदि बन्य करता है। ती नियमसे अनन्तवं भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्य करता है। इसी प्रकार अनन्तवाद्वरण कापके उत्ताह है। कीर नियमसे अन्यत्व वीदि सन्ति क्षण स्वाप्त कीर नियमसे अन्य करता है। कीर क्षण क्षण के क्षण प्रदेशोंका बन्य करता है। जी नियमसे कर्य करता है जी नियमसे कर्य करता है। जी नियमसे कर्य करता है जी नियमसे कर्य करताह है जी नियमसे कर्य करताह है जी नियमसे कर्य करताह है जी नियमसे क्षण कर्य करताह है जी नियमसे कर्य करताह है। आठ क्षण क्षण कर्य करताह जी नियमसे कर्य करताह है जी नियमसे कर्य करताह जीवस्त है। वाल क्षण क्षण क्षण क्षण करताह है जी नियमसे कर्य करताह जीवस्त करताह है जी नियमसे करताह है जी नियमसे करताह है जी नियमसे कर्य करताह है जी नियमसे करताह है जी नियमसे करताह है जी नियमसे क्षण करताह है जी नियमसे करताह है जी न

कसाः । पषक्काणकोभः उक्कः पदे व्यं विश्विकसाः पुरिसः न्यय-दुव णिव वं विश्व उक्कः । चदुसंज्ञः णिव वं विश्व अणुव अर्णतमस्य वं । चदुयोकः सियाः उक्कः । एषं तिष्णितं । कोभसंज्ञः उक्कः पदेव्यं विष्णितं । पूरिसः नयपुर्गुं णिव वं णिव उक्कः । च्यं तिष्णितं व्यवस्थाः उक्कः । एषं तिष्णितं विष्णातं विष

२८७. तिरिक्ख ० उक्क० पदे०वं० सोधम्म० एइंदियदंडओ आदि पणुरीसदिणामाए सह ताओ सन्वाओ सिष्णिकासेदन्वाओ। मणुसग० उक्क० पदे० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-वादर-पञ्जन पचे०-णिमि० सि०

अनन्तवें भागद्दीन अनुत्रृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्या-ख्यानावरण मान आदि तीन कवायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण कोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कपाय. परवर्षेत, भय और जगुण्याका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्क्रष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्वळनकषायोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्तवं भाग-हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करता है। चार नोकवायोका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका वन्ध करना है। इसी प्रकार प्रस्थाख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। क्रोधसंख्वलनके उत्क्रष्ट प्रदेशीं-का बन्ध करनेवाळा जीव मान आदि तीन संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार नोकपायोंका कवाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वाद्धनोंकी सुख्यतासे सन्निक्षे जानता चाहिए। पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अप्रस्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायांका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचत्रकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनके उस्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशों-का बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तवें भागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्वलनकषायांका नियमसे बन्ध करता है जो इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकुष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तर्वे भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करता है। भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे छत्कुष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार छह नोकषायोंकी सुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिये।

२८% तिर्वेश्वमतिके वस्तुष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेबाले जीवके सीधकंके पकेन्द्रियदण्डकाँ कहीं गई नामकर्मकी पंचीस अकृतियोंके साम उन सब प्रकृतियोंका सिन्धकं करता बाहिए। महाप्यातिके उत्कृष्ट अदेशोंका बन्ध करनेबाला जोव पञ्चीन्द्रपञ्चाति, श्रीदारिकक्षारा, तैजसक्षरीर, कामणप्रतिर, वर्णचनुत्वक, अयुरक्षपुष्पकुक, बादर, पत्नीस, स्रवेक और निर्माणका निवससे बन्ध करता है जो नियससे सक्यावने सम्ब्रीन अस्तुक्रक

वं ० संखेजदिभागुणं वं ० । समचद् ० हुं इसं०-पसत्य ०-विरादिपंचयुग०-सुस्सर० सिया संखेजदिमायुणं बं ०। बदुसंठा०-इस्संघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० बोरा व अंगो व मनुसाणु व [तसव] णिव ब व जिव उक्त । एवं मणुसाणु व । देव गदि० उक्कः पदे०वं ० पंचिदि०-समचदु०-देवाणु०-पसत्य०-तस०-सुमग-सुस्सर-आदे० णि॰ वं॰ णि॰ उक्त० । वेउन्वि॰ वेउन्वि॰ ग्रंमो॰ णि॰ वं॰ णि॰ तं॰ त॰ संखेजदि-भागाणं बं । तेजा०-क०-वण्ण०४-अग्०४-बादरतिण्णिक - णिमि० णि० बं ० णि० संखेजदिभागणं वं ०। आहार०२ सिया० उक्त०। धिरादितिष्णियु० सिया संखेजदि-भागाणं बं० । एवं पंचिदि०-समच्दर्-०-देबाणु०-पसन्य०-तस०-सुमग-सुस्सर-आदे० । वेउच्चि^उ०-वेउच्चि०अंगो० देवगदिमंगो। णवरि आहार०२ वजा। आहार०२ देव-गदिभंगो । वेउन्वि॰-वेउन्वि॰अंगो॰ णि॰ वं णि॰ संखेअदिमागूणं वं॰ । णग्गोष० तिरिक्ख ०-तिरिक्खाणु ४०-पसत्य ०-धिरादिपंचयु ०-सस्सर ० प्रदेशोंका बन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, हण्डसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि पाँच युगल और सुरवरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशींका बन्ध करता है। चार संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दु:स्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्क्रह प्रदेशोंका वन्ध करता है। औदारिकशरीर आक्रोपाक, मनुष्यगत्यानपूर्वी और त्रसका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगस्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सांत्रकर्ष जानना चाहिए। देवगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रस्नेन्द्रिय-जाति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। वैकियिकशरीर और वैकियिकशरीर आक्रोपाइका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका भी वन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागडीन अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। तैजसज्ञरीर, कार्मणज्ञरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुख्युचतुष्क, बादर आदि तीन भौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संस्थातवें भागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। आहारकशरीरद्विकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेशांका बन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलांका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वन्ध करता है। इसी प्रकार पञ्चित्रियजाति, समजतुरक्षसस्थान, देवगस्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियकशरीर और वैक्रियकशरीर भाक्नोपाक्की मुख्यतासे सिन्नकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकद्रिकको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। आहारकहिककी मुख्यतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जी इनका नियमसे संस्थातमागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। न्यप्रोधपरिमण्डलसंस्थानके एत्कृष्ट प्रवेडोंका बन्ध करनेवाळा जीव तिर्यक्रगति, विर्यक्रगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यायोगति, स्थिर वादि

आ.पती 'ध्यु॰ वावर तिम्बि' इति वादः । २. ता॰पती 'पूर्व पॉर्थ॰ । समय॰' इति वादः ।
 ता॰प्रती 'ध्यादे॰ वेदान्थि॰' इति वादः । ४. जा॰प्रती 'प्ये॰थं। तिरिच्याणु॰' इति पादः ।

स्विषा संबोक्कदिममूर्च वं ० । मञ्जस०-छस्त्रंच०-मञ्जसाकु०-अप्यसत्व०-दुस्सर० सिवा० उक्क० । जोरा०क्रंगो० मि० वं बि० उक्क० । सेसं वि० वं० वि० संखेजदिमासूर्च^१ वं ० । एवं तिष्णिसंठा०-जोरा०क्रंगो^र०-छस्संच०-अप्यसत्व०-दुस्सर० । तित्व^ड० क्रोकंक ।

२८८. एवं पम्माए । जबरि तिरिस्त उक्क पदेव्यं व पंचिदिव-तेबाक्क-बण्यव्य-४-अगुव्ध-सत्य-जिमिव णिव यं व णिव संखेजदिमागूणं यं व । जोराव-जोराव्यंगोव-तिरिस्त्वाणुव णिव यं व णिव उक्क । पंचरंडाव-उस्संघव-अप्पसत्य-ब्सग-दुस्सर-अणादेव सियाव उक्क । सम्पद्व व निरिस्त्वाणुव्या-उम्रमस्यस्यत्यादेव सियाव संखेजदिमागूणं यं । प्रव तिरिस्त्वाणुव्या-उम्रमस्यस्यत्वेव सियाव संखेजदिमागूणं यं । प्रव तिरिस्त्वाणुव्या-उम्रमुख्य-१ देवाणुव-अगुव्ध-स्यत्य-त्याव-४-स्वाणुव-अगुव्ध-स्यत्य-व-वण्य-४-रेवाणुव-अगुव्ध-सत्य-त्याव-४-प्रमास्य-सादेव-गिमिव णिव यं व णिव उक्क । वे उच्चिव-तेजाव-कव-वेउविव-अंगोव णिव वं व तं व त संखेजदिमागुणं उक्क । वे उच्चिव-तेजाव-कव-वेउविव-अंगोव णिव वं व तं व त संखेजदिमागुणं

पाँच युगळ और सुस्वरका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो संस्थातवं भागाहीन अनुतक्क प्रदेशांका बन्ध करता है। मृत्यमांत, छह संहतन, मृत्यमायातुम्बी, अप्रशस्त विद्यायोगित और दुन्खरका कदाचित्त बन्ध करता है। वादि बन्ध करता है तो निवमसे कर्क्ष हरेगाँका बन्ध करता है। बौदारिकारोर आङ्गापङ्गका निवमसे वन्ध करता है। बौदारिकारोर आङ्गापङ्गका निवमसे वन्ध करता है। बौदारिकारोर आङ्गापङ्गका निवमसे वन्ध करता है। को निवमसे संस्थाव क्षा करा है। के प्रदेश करता है जो निवमसे संस्थाव क्षा है। के प्रता है। के प्रता के प्

२८८. पीतक्षेत्रयांके समान पद्मकेदयांमें जानना चाहिए। इतनां विशेषना है कि तिर्वश्चगानिके उत्तक्ष्य प्रदेशींका बन्ध करनेवाका जीव पश्चीन्त्रवाति, तैनस्त्रारीर, कामणारादीर,
वर्णचतुकक, अगुरुक्कुचनुकक, समयुक्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे
संस्थावर्षे आगादीन अगुरुक्ष्य श्रेष्ठींका बन्ध करता है। औदारिक्त्रारीर, अशिदारिक्त्रारीर
आङ्गोणाङ्ग और तिर्वश्चनस्थानुप्रीका नियमसे बन्ध करता है। जीत्रागक्ष्य उत्तक्ष्य अगुरुक्ष्य अगुरुक्ष अगुरुक्ष्य अगुरुक्ष अगुरुक्ष्य अगुरुक्ष्य अगुरुक्ष अगुरु

१. ता०मती 'से सं वि० वं० वि० वि० वं० वि० (?) संखेळारेनागं०' इति वाडः । २. ता०मती 'पूर्व विकास सं का० १ कोता०वंदीा०' इति वाडः । ३. ता०मती 'पुर्व विकास है। इति वाडः । ३. ता०मती 'पुरव विकास है। इति वाडः । ३. ता०मती 'पुरव किया । वाडा १ ता०मती 'पुरव किया । वाडा १ ता तावा । वाडा १ तिरिक्वाणुः मणुवाणुः मणुवाणुः मणुवाणुः मणुवाणुः मणुवाणुः मणुवाणुः अव्याप्त १ ति वाडा ।

वं । आहरू०२-धिरादितिष्णियुगः श्विपाः उकः। एवनेदाको एकनेकस्स उक्कस्साओ काद्रव्याओ । ओराः उकः० वं ० दोगदि-मंत्रसंठाः इस्संघः दोआधुः -अप्पसत्यः - दूसग-दुस्सर-अणादेः सियाः उकः। पंत्रिदि - तेजाः - कः वष्णः ४:-अगुः ४:-तसः ४:-णिमिः षि० वं ० संखेखदिमान् वं वं । ओराः कंगोः णि० वं ० णि० उकः। समयदुः - पसत्यः - थिरादितिष्णियुः सुमग-सुस्सर-आदे ० सियाः संखेखदिमान् वं । एवं ओराः भंगों पंचसंठाः - ओराः अंगोः - इस्संघः - अप्पसत्यः -दूसग-दुस्सर-अणादे ०।

२८९. सुकाए सत्तर्ण कम्माणं ओषं। मणुसग० उक्क० [पदे०] व पंचिदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० व ० संखेजदिभागूणं व । ओरा०-ओरा०अंगो०-मणुसाणु० णि० व ० णि० उक्क०। समयदु०-पसत्य०-धिरादि-दोषु १०-सुभग-सुस्सर-आदे०-अज० सिया संखेज्जदिभागूणं व ०। जस० सिया० संखेज्जगुणहीणं व ०। पंचसंठा०-अस्संघ०-अप्पसत्य०-दुमग-दुस्सर-अणादे० सिया०

बन्ध करता है। जो इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका भी यन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। आहारकद्विक और स्थिर आदि तीन युगलांका कराषित्त क्षम करता है। यदि वन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्य उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्य उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्य उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार हुन्ध और अन्तादेशका कराचित्त वन्ध करता है। अनुपूर्वी, अप्रकार विद्वायोगित, दुभैग, उद्दर्श और अन्तादेशका कराचित्त वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है वो निवमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। प्रक्रीन्यवाति, तैयसक्षरीर, कार्मणशरीर, वर्णवृत्तक, अनुस्कृष्ट चतुक्क, जसचनुक्क और निर्माणका निवमसे बन्ध करता है। जीत्वमसे संस्थात अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। अतिवासके सम्भावीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। अत्वादिक सम्भावीत, स्थिर आदि तीत्रमसे सस्वयान समान करता है। यदि बन्ध करता है। विवससे सस्वयान समान करता है। अत्वाद करता है। उत्त प्रकार करता है। उत्त प्रकार करता है। इस प्रकार औदि तिवससे सस्वयान अगलहीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंक वन्ध करता है। इस प्रकार औदि तिवससे सस्वयान अगलहीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंक वन्ध करता है। उत्त प्रकार करता है। उत्त करता है। उत्त विवससे सस्वयान अगलहीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंक वन्ध करता है। उत्त प्रकार औदि विवससे सस्वयान अगलहीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंक वन्ध करता है। उत्त प्रकार औदि विवससे समान वीच सस्वयान अगलहीत अनुस्कृष्ट प्रदेशोंक वन्ध करता है। उत्त प्रवास करता है स्वी विवससे समान वीच सस्वयान अगलहीत करते जानना चाहिए।

२८९, शुक्छ छेदयामें सात कर्मों का भक्त ओपके समान है। मनुष्यगितिके ब्रक्कष्ट प्रदेशोंका बन्च करनेवाला जीव पक्किन्द्रवज्ञाति, तैनसरारीर, कार्मणकारीर, वणचनुष्क, अगुरुत्वपुचनुष्क, इसचनुष्क और सिर्मणका नित्तमसे बन्च करता है जो नियमसे संक्याता अगुरुद्ध प्रदेशोंका बन्च करता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आक्रोणक और मनुष्यात्रपानुप्रविक्त नियमसे बन्च करता है। बीतानिकसरीर, औदारिकशरीर आक्रोणक जीव मन्य करता है। स्मानुप्यात्रपानुप्रविक्त नियमसे बन्च करता है। बीत नियमसे वन्क्ष प्रदेशोंका बन्च करता है। ब्रह्म करता है तो नियमसे सन्यात्र आवाद और स्मानुप्तिक प्रदेशोंका कराचित्र करा करता है। ब्रह्म कर्म करता है। ब्रह्म करता है। ब्रह्म करता है। ब्रह्म करता है। ब्रह्म कर्म करता है। ब्रह्म करता है। ब्रह्म करता है। ब्रह्म कर्म करता है। ब्रह्म करता है। क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता है। क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता क्रह्म करता है। क्रह्म करता क्रह्

२. बा॰पर्वौ 'पूर्व बोरा॰अंगो॰' इति पाठः । २. बा॰पर्वौ 'बिराडिड्रोबायुः' इति पाठः ।

उक्कः । एवमेदात्री एकमेकस्त उक्कस्तियात्रो कादिव्यमात्रो । देवमदिसंजुतात्रो पम्ममंगो । सासवे सत्तर्णं कः मदिः मंगो । सेसं वम्माए मंगो । जणाहारः कम्मद्रगर्मगो ।

एवं उकस्ससत्थाणसन्गिकासो समत्तो ।

२९०. जहण्णए पगरं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० आप्रिणि० **जह०** - परे० बंधती चदुणाणा० णि० बं० णि० जहण्णा । एवमण्णमण्णस्स जहण्णा । एवं णवदंसणा०-पंचंत० । दोबेदणी० -चदुआउ०-दोगोद० उक्तस्समंगी ।

२९१. मिच्छ० जहर पदे०बं० सोलसक०-भय-दु० णि० बं० णि० जहण्या। सचणोक० सिया० वं० जहण्या। एवं सोलसक०-णवणोक० एवमेकमेकस्स जहण्या।

अप्रशस्त विहायोगित, दुसँग, दुस्वर और अनादेयका क्दाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। हो तिस्प्रस्ते उच्छा प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परम्पर उच्छा सिन्धक्ष करना चाहिए। देवगतिसंयुक्त प्रकृतियांका भङ्ग पद्रमत्वेदयांके समान है। सासादन सम्यवस्यमें सात कर्मीका भङ्ग पद्रम- अद्यान तीवांके समान है। हो था प्रकृतियांका भङ्ग पद्रम- केदयांके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

२९०. जधन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आमितिबोधिकहानावरणके जधन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाळा जीव चार ज्ञानावरणका नियम-से बन्ध करता है जो नियमसे इनके जधन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परास्त्र अधन्य सन्तिकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार नी दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जधन्य सन्तिकर्ष जानना चाहिए। दो वेदनोय, चार आयु और दो गोत्रका भङ्ग उक्षक्रके समान है।

विशेषाय — पाँचों झानावरणके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी एक जीव है, इसलिए इनमेंसे किसी एकका जघन्य प्रदेशवन्य होते समय अन्यका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य होता है। यहां कारण है कि सबका जघन्य सन्तिकवें एक साथ कहा है। नी दर्शनावरण और पाँच अनतरायके जघन्य प्रदेशवन्य कामी भी पाँच झानावरणके समान है। इसलिए इनका जघन्य सिक्तवें भी पाँच झानावरणके समान जाननेकी सूचना की है। दो देदनीय, चार आयु और दो गोज वे प्रदेशक कमें प्रस्तिम प्रतिच्छा प्रकृतियाँ हैं। इनका उत्कृष्टके समान जघन्य सिन्तिक्यं नहीं बनता, इसलिए इनका भक्त उत्कृष्टके समान कहा है।

२९१. मिध्यासके जयन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाका जीव सोलह क्याय, भय और जुजुम्साका निव्यक्ते कन्य करता है जो नियमके इनके जयन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। विद बन्ध करता है तो नियमके जयन्य प्रदेशोंका करावित कन्य करता है। विद बन्ध करता है तो नियमके जयन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार सीक्द क्याय और नी नोक्योगोंका परस्य जयन्य स्तिनकर्य जानना व्यक्ति।

^{1.} ता श्राती 'पंचंद्र व दोवेदर्जा o' इति पाठः ।

१९२. णिरका० बहु॰ पदेवबं० पंचिति०-चेत्रस्मि०-क्तेजा०-क०-हुंब०-वेत्रस्मि०कागो०-वष्म-९४-अगु०४-अप्यसत्य०-तस०४-अधिरादिछ०-शिमि० शि० वं० भि० अअ॰ असंसेअगुज्य-महियं वंपदि । शिरपाजु० भि० वं० शि० जहण्या । एवं णिरपाजु० ।

२९३. तिरिक्ख० बहु० पदे०वं० चहुवादि-ङस्संठा०-झस्संघ०-दोविहा०-विरादिझ्युम० सिया वं० जह०। ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०झंगो०-वण्ण०४-तिरि-क्खाणु०-अगु०४-उओ०-तस०४-णिमि^{*} णि० जहण्णा। एवं तिरिक्खाणु०।

दिशेषार्थ — मिण्यार आदि छड़बीस प्रकृतियों के जपन्य प्रदेशबन्यका स्वामी भी एक ही जीव है, इसिल्य इनका जयन्य सिन्नकर्ष एक समान कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना जाहिए कि भुवबन्धिनों मकुतियों का तो सर्वत्र नियम से सिन्नकर्ष कहना चाहिए और स्वतियक्ष प्रकृतियों का यथासम्भव विकल्पसे सिन्नकर्ष कहना चाहिए। उसमें भी तीन बेद, रित-अरित और हास्य-शोक इनमेंसे एक एक प्रकृतिकों सुख्य करके सिन्नकर्ष कहते समय अपनी अपनी सप्रतिप्रक्ष प्रकृतियों को छोड़कर ही सिन्नकर्ष कहा चाहिए। उदाहरणार्थ तीन बेदीमेंसे जब किस एक देवते सुख्यता से सिन्नकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों को खेड़कर ही सिन्नकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों को खेड़कर ही सिन्नकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों को खेड़कर ही सिन्नकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों को खेड़कर ही सिन्तकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों को खेड़कर ही सिन्तकर्ष कहा जाय तव अन्य दो बेदीकों के खेड़कर ही सिन्तकर्ष कहा जाय तव अन्य हो बेदीका सिन्सकर्ष हो सिन्त पर्वाते के सिन्द करते सिन्तकर्ष करते जायन सिन्तकर्ष करते होत्तकर हो सिन्तकर्ष करते होत्तकर हो सिन्तकर्ष करते होत्तकर हो सिन्तकर्ष करते सिक्त सिक्त होते हो सिन्तकर हो सिन्तकर्ष करते सिन्तकर हो सिन्तकर हो सिन्तकर हो सिन्तकर्म करते सिन्तकर हो सिन्तक

शरोर, तैत्रखरारी, क्रमणहारार, हुण्डसंस्थान, बैक्तियकरारीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचलुष्क, अगुरू, ब्रमुचलक, ब्रमुचल, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचल, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचल, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचल, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचलक, ब्रमुचल, ब्रमुचल,

नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

विश्वेषार्थ — नरकाति और नरकात्वातुपूर्वीके जधन्य प्रदेशवन्धका स्वामी एक हो जीव है, इसक्रिए इनकी सुख्यतब्दी सन्तिकर्ष एक समान कहा है। नरकातिके साथ बँधने बाढी अन्य प्रकृतियोका जयन्य सन्तिकर्ष यथासम्भव वनके जिवन्य स्वामित्यको देखकर

जान छेना चाहिए।

२९२. तिर्वक्कमतिकं जपन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाळा जीव चार जाति, छह संस्थान, छह संहत्तन, हो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगळका कराचित्त वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। विहायोगति और स्थिर आदि छह युगळका कराचित्त वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उनके जधन्य प्रदेशोंका वन्ध करता है। वोशारिकरारीर, जीताविकरारीर आङ्गीपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यक्कमत्यात्रपृष्ठी, अगुरुक्य चुन्छक, च्यांत, त्रसम्बद्धक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। वो इनके जयन्य प्रदेशोंका नियमसे वन्ध करता है। इसीप्रकार विष्क्रमत्यात्रपृष्ठीको सुख्यतसे सन्धिकर्य जानना चाहिए।

विश्वेष्ट्रम्य - निर्णक्षपातिके जयन्य प्रदेशकन्यके साथ वैवनेवाळी वहाँ जितनी प्रकृतियाँ मिनाई हैं उन सबके जयन्य प्रदेशकन्यका स्वामी एक समान है, स्वतिए वहाँ सन्निकर्ष तो सबका जयन्य ही वहा है। फिर भी वहाँपर केवल विश्वेक्षणत्यानुपूर्वीकी सुरूपतासे सन्निकर्ष

s, আ্রুমরী 'ঝি্০ সজ্জমন' ছবি দার:। २৯ আংমরী 'প্রযুক্ত করাণ বরুত ৮ সিমিক' ইবি দার:।

२९४. मणसग् वह वदेव्यं पंचिद्दिव-जोराव-तैजाव-क-जोराव्यंगीव -वण्या०४-अगु०४-तस०४-णिमि० वि० वं० वि० अज० संखेजदिमागव्यद्वियं बं • । इस्तंठा • इस्तंघ • दोविहा • धिरादि छुप ग • सिया • संस्थे अदिभाग • भहियं वं । मणुसाणु ० णि० वं ० णि० अहण्णा । एवं मणुसाणु ० ।

२९५. देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचद०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे-०णिमि० णि० बं० णि० अज० असंखेज-गुणस्महियं वं । वेउव्वि - वेउव्वि - अंगो - देवाणु । शि वं । शि अहण्या । थिराधिर-सभासम-जस०-अजस० सिया० असंसेजराणक्महियं बं०। तित्थ० णि० संखेजभागवभहियं बं०। एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-डेवाण्०।

तिर्यञ्चगतिके समान जाननेकी सूचना की है, अन्य प्रकृतियोंकी मुख्यतासे उस प्रकारके सम्तिकर्षके जानने की सूचना नहीं की है सो इसका जो भी कारण है उसका स्पष्टीकरण आगेके मन्त्रिक्षमे स्वयमेव हो जायगा।

२९४. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पञ्चन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसकारीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके असंख्यातवें भाग अधिक अज्ञघन्य विद्यारोका बन्ध करता है। छह संस्थान, छह सहनन, दो विद्यायोगित और स्थिर आदि छह यगळका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशोंका बन्ध करना है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इसका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

जीव है, इसलिए यहाँपर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्षको मनुष्यगतिके समान

जाननेकी सूचना को है।

२९५. देवर्गातका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाळा जीव पञ्चन्द्रियजाति, तैजसक्षरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगित, त्रसचतुष्क, स्थान, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे असंस्थातगुणे अधिक अजघन्य प्रदेशांका बन्च करता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आक्नोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम, यशकीर्ति और अयशकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यह बन्ध करता है तो नियमसे इनका असंख्यातगुणा अधिक अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है! तीर्थक्रप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजधन्य पारक्रात्राच्या है। इसोप्रकार वैक्रियिकसरीर, वैक्रियिकसरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगस्थानुपूर्वी की मुख्यतासे सन्निक्षे जानमा चाहिए।

विश्लेषार्थ-देवगतिहिक और वैक्रिविक शरीरहिकके जघन्य प्रदेशवन्यका स्वामी एक ही जीव है, इसलिए वैकिथिकद्विक और देवगत्यानुपूर्वीकी मुक्बतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सुचना है।

बा॰प्रती 'तेबाक्कंगो॰' इति पाढः । २. बा॰प्रती 'अवस० असंबेकदिशासम्बद्धं' ः इति पाठः ।

२९६. एइंदि०: जह० तिरिक्खाग०-ओरा०-तेजा०-क०-इंद्र०-वष्णध्-तिरिक्खाखु०-अगु०४-बादर-पजन-पत्ते०-द्भग०-अणादे०-णिमि० णि० वं०णि० अज० संखेज्रदि-मागम्मिहियं वं०। आदाव० सिया० जह०। धावर० णि० वं० णि० जहण्णा। उज्जो० सिया० संखेज्जदिमागम्मिहयं वं०। बिरादितिष्णयुग० सिया संखेज्रदि-मागम्मिहियं वं०। एवं आदान-यावर०।

२९७. बीइंदि० जह० पदे०बं० तिरिक्ख०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरा०-अंगो०-असंप०-वणा०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उजो०-अप्पसत्थ०-तस०४-द्भग-दुस्सर-अणादे०-णिमि० णि० बं० णि० जहण्णा। धिरादितिष्णियुग० सिया० जह०। एवं तीइंदि०-चट्टरिंदि०।

२९८. पंचिंदि० जह० पदे०बं० तिरिक्ख०-तिण्णिसरीर-ओरा०अंगो०-बण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमिणं ै णि० बं० णि० जहण्णा ।

२९६. एकेन्द्रिय जातिका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव वियेख्याति, औदारिक-रारीर, तैजसक्षरीर, कार्मग्रासीरा, हुण्डसंख्यान, वर्णचतुष्क, वियक्षारः गुत्रुवर्षी, अगुत्रुकसु वृत्कक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे संख्यातवों भाग आंधक अजसन्य प्रदेशका बन्ध करता है। आवश्यक कर्दाचित् बन्ध करता है। यदि वन्य करता है तो नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। स्थावरका नियमसे वन्ध करता है जो नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। उद्योतकका क्दाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्याववों भाग अधिक अजसन्य प्रदेशकन्य करता है। स्थिर आदि ती-युगाळका क्दाचित् वन्य करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्याववों भाग अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। इसीप्रकार आवश्य और स्थावरकी मुख्यतासे सिक्कर्ष जानमा

विशेषार्थ — एकेन्द्रियजातिके समान ही आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशवन्धका स्वामी है, इसलिए यहाँ पर आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सांन्नकर्ष एकेन्द्रियजातिकी मुख्यतासे कहे गये सन्तिकर्षके नमान जाननेकी सुचना की है।

२९७. द्वीन्द्रयजातिका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव विश्वस्थाति, औदारिकश्रार, वैजनशरीर, कार्मणश्रार, हुंडसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासुपाटिकासंहतन, वर्णचतुष्क, विश्वस्थान, विश्वस्थान, अगुरूक्ष, उद्योग, अगुरूक्ष, उद्योग, अगुरूक्ष, उद्योग, अगुरूक्ष, अगोर्व, अगोर

विशेषार्थ — द्वीन्द्रयजातिके स्थानमें एकवार त्रीन्द्रियजातिको रसकर और दूसरीवार चतुरिन्द्रयजातिको रसकर उसी प्रकार सन्तिकर्ष कह्ना चाहिए जिसप्रकार द्वीन्द्रयजातिकी प्रस्थतासे कहा है यह उक्त कथनका तासर्थ है।

२९८. पञ्चिन्द्रियजातिका जमन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चाति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगस्यानुपूर्वी, अगुरुलचु बहुष्क, ख्वोत, प्रसचतुष्क

१. ताञ्मतौ 'बेबाजु॰ पृष्दि' इति पाठः । १. ता॰भा॰प्रत्योः 'तस॰णिमिखं' इति पाठः ।

छरसंठा०-छरसंघ०-दो०विद्दा०-धिरादिछयुग० सिया० जहण्या । एवं पंचिदि०संगो पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्य०-सुभग-सुस्स-आदेज ति । ओरा०-तेजा०-फ०-डुंड०-ओरा०अंगो०-असंव०-वण्ण०४-अगु०४-उजो०-अप्पसत्य०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-दुभग-इस्सर-अणादे०-णिमिणं एवमेदे०' तिरिक्सगदिभंगो ।

२९९, आहार० बह० पदे०बं० देवगदि-पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि० अंगो०-वण्णध-देवाणु०-अगु० ४-पसत्थ-तम० ४-धिरादिङ०-णिमि०-तित्व० णि० बं० णि० अज० असंखेजगुणन्महियं बं०। आहारंगो० णि० बं० णि० जहण्णा। एवं आहार०अंगो०।

और निर्माणका नियमसे यन्य करता है जो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। घह संख्यान, छह संहतन, दो विहायोगांन और सियर आदि छह प्रात्तका विकल्पसे वन्य करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसकार प्रकृतिहम्बानिक समान पाँच संस्थान, पाँच संस्थान, पाँच संस्थान, पाँच संस्थान, पाँच संस्थान, पाँच संह्यान, प्रकार विहायोगांन, सुमग, सुम्बर और आदेवको सुम्बना से सिककर जानना चाहिए। नया औदारिकशारीर, तैज्ञवदारीर, कामणशारीर, हण्डसंखान, औदारिकशारीर आङ्गोपाङ्ग, असमग्रा-मास्पारिका संहन्तन, वर्णपञ्चलक, अगुरुक्षयु चतुष्क, स्वात्ते अगुरुक्त विहायोगांनि, प्रसचतुष्क, सिंद्य आदि तीन गुणाल, दुसँग, दुस्पर, अनादेव और निर्माण इस प्रकार दनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष तिर्वञ्चातिको मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षक समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ— गणिय पञ्चेन्द्रय नाति है जार य प्रदेशवर्यका जो स्वामी है वही निर्मेश्वगतिके ज्ञान्य प्रदेशवर्यका स्वामी है और नहाँ पर इन दोनोंकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकपेके
समान अन्य जिन प्रकृतियाँकी मुख्यतासे सिन्नकपेक जाननेकी सुच्यता की है उनके ज्ञायन्य
प्रदेशवर्यका स्वामी भी वही जीन है किर भी किस प्रकृतिका ज्ञायन्य बन्ध होते समय अन्य
किन किन प्रकृतियाँका किस प्रकारका वन्य होता है इस वातका विचार कर नहाँ अन्य
प्रकृतियाँकी मुख्यतासे सिन्नकपेक जाननेकी स्वाना की है। तात्यय यह है कि पञ्चीन्यजातिकी
सुख्यतासे जिस प्रकार अन्य प्रकृतियाँकी साथ सिन्नकपे होता है उस प्रकार पाँच संस्थान
स्रव्यतासे जिस प्रकार अन्य प्रकृतियाँकी साथ सिन्नकपे होता है उस प्रकार पाँच संस्थान
स्रव्यतासे जिस प्रकार कार अन्य प्रकृतियाँकी स्वयता हो है, इसित्तप उन प्रकृतियाँकी प्रख्यतासे
प्राप्त होनेवाछे सिन्नकपेकी प्रमुद्धानिकी मुख्यतासे कहें, राये सिन्नकपेक समान जाननेकी
सुच्यता को है जोर तियंक्षवातिकी मुख्यतासे जिस प्रकृतियाँकी मुख्यतासे साम सिन्नकपेकी
है जस प्रकार जीटातिकारीर आदि तीस प्रकृतियाँकी मुख्यतासे वास स्वानकपेक वन जाता है,
इसित्तक प्रकृतियाँकी मुख्यतासे प्राप्त होनेवाकी सिन्नकपेकी तियंक्षातिकी मुख्यतासे कहे
गये सिन्नकपेकी समान जाननेकी सुच्यतासे प्रकृतियाँकी सुख्यतासे मुख्यतासे कहे
गये सिन्नकपेकी समान जाननेकी सुच्यतासे प्राप्त होनेवाकी सिन्नकपेकी तियंक्षातिकी मुख्यतासे करे
गये सिन्नकपेकी समान जाननेकी सुच्यता हो हो।

२९९, आहारकझरीरका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव देवगति, पद्ध न्द्रियजाति, विविध्वक्षरीर, कामणाशीर, समयतुरक्षसंख्यान, वैकियिकझरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णजनुरुक, संस्थान, वैकियिकझरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णजनुरुक, देवगात्यातपूर्वी, अगुरुकणुजनुरुक, प्रशस्त विद्वायोगति, स्रस्यतुर्फ, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थक्षरका नियमसे वरण करता है जो नियमसे वरण अपन्य अपन्य करता है। आहारकझरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे वरण करता है। आहारकझरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे वरण करता है। आहारकझरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे सरका जानेना चाहिए।

१. सा॰प्रतौ 'णिमिखं। युवमेदे' इति पाठः।

२००. सुद्दुम० जह० पदे०बं० तित्विस्त०-प्रदंदि०-जोग०-तेजा०-क०-डूंह०-वण्ण०४-तित्विस्ताणु०-अगु०४-[यज्ञत०-] थावर-दृभग-अणादे०-अजस०-णिमि० णि० वं० णि० अजहण्णा संखेजसमान्महियं वं०। पत्ते०-थिराधिर-सुमासुम० सिया संखेजदिमागन्महियं वं०। साधा० सिया० जह०। एवं साधार०।

३०१. अपञ्ज० जह० पदे०वं० दोगिदि-बदुजा०-दोआणु० सिया० संखेजिदि-भागव्यक्षियं वं०। ओरालिय यात्र शिमिणं ति शि० वं० शि० संखेजिदिमाग-व्यक्तियं वं०।

३०२. तित्यः जहः पदे०चं० मणुम्र०-पॉचिदि०-ओरालि०-तेज्ञा०-क०-समबदु०-ओरालि० ग्रंगो०-वजरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि० वं० असंखेजगुणन्महिपं^३ वं०। थिरादितिण्णियुग० तिया० असंखेजगुणन्महिपं वं०।

विशेषार्थ---आहारकशरीर और आहारकशरीरआङ्गोपाङ्गके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी

एक ही जीव है; इसछिए इन दोनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष एक समान कहा है।

२००. सुरमप्रकृतिका जधन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव निर्वक्रमति, एकेन्द्रियज्ञाति, भीवारिकशरीम, तीजनसरीम, कामंप्रशासीस, हुण्डसंख्यान, वर्णवतुष्क, निर्वक्रमस्यानुष्की, अशुक्रलयुवतुष्क, पर्याम, स्थायन, दुर्भग, अनादेव, अयशःकीति योत निर्माणका नियमसे बन्ध करना है जो नियमसे इनका संस्थातवाँ भाग अधिक जवचन्य प्रदेशक्य करता है। प्रत्येक, न्यि, अध्यन, छुन और अञ्चनका कदाचित् यन्य करता है। यदि बन्ध करना है तो संस्थातवाँ भाग अधिक अज्ञवन्य प्रदेशवन्य करता है। साधारणका कदाचित् वन्य करता है। यदि कहना वाहिए।

विशेषांध —सूक्ष्म और साधारण इन दोनों प्रकृतियोंके जधन्य प्रदेशकन्यका स्वामी एक है और इन दोनोंका जधन्य प्रदेशकन्य होते समय एक समान प्रकृतियोंका बन्ध होता है,

इसलिए इनकी मुख्यतासे एक समान सन्निक्ष कहा है।

दे? अपयोप्त प्रकृतिका जयन्य प्रदेशक्त्य करनेवाळा जीव दो गति, चार जाति और दो आतुर्युक्ति कहाचित्र क्ला करता है। यदि क्ला करता है तो नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्त्य करता है। औदारिक रारीरसे छेकर निर्माण तक्का प्रकृतियाँका नियमसे क्ला करता है। जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्त्य करता है।

३०२. तीर्थं हुरम्कृतिका जघन्य प्रवेशक घ रुतेवाला जीव मनुष्यगित, पञ्चिन्द्रियजाति, जीवारिकरारीर, तैजवशरीर, कार्मणकारीर, समचतुरस्रतंत्रमान, जीवारिकरारीर आहोपाह, सम्बद्धस्त्रमान, जीवारिकरारीर आहोपाह, कर्ष्मभागात्मात्मंत्रमान, व्यावस्त्रमान, व्यावस्

ता०प्रतौ 'जः [पः] वं ' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'णिमणं तिष्णि वं ' इति पाठः।
 ता०माना प्रत्योः 'ध्रतंत्रे अदिगुणस्मित्य' इति पाठः।

३०३. णिरस्तु^र सचर्णं क० जोषं । तिरिक्खगदिसंजुनाओं जोषं । मणुस०-तित्य० जोषं । एवं सचसु पुढबीसु । णवरि सचमाए मणुसगदिदुगं तित्य० मंगो ।

२०४. तिरिक्ख - पॉचिंदि - तिरिक्ख - पंचिं - पक्षतेसुर अोघमंगो। पॉचिंदि - तिरिक्ख जोणिणीसु सत्तर्णं क० तिरिक्ख गदिसंज्ञ पदंड यो मणूसगदिदंड यो एइं दिय-दंड यो सणूसगदिदंड यो एइं दिय-दंड यो सणूसगदिदंड यो एइं दिय-दंड यो सहुम्मदंड यो आपे । गिरय । जहरू पदं - वे उच्चि - वेउच्चि - वेउच्चि - वेउच्चि - वेउच्चि - वेउच्चि - वेउच्चि - वेउच्च - विव - वेउच्च - वेऽच्च - वेउच्च -

६०३. नारिकयों में सात कर्मोंका भङ्क ओचके समान है। तिर्वेख्याति संयुक्त शक्तियोंका भङ्क ओचके समान है। मतुष्याति बोर तीथंडूप शक्तिका भङ्क ओचके समान है। इसी प्रकार सातों हथिवयोंमें जानना चाहिए। इतनी विद्येषता है कि सातवी द्विधवांमें मनुष्यातिद्विकका मङ्क तीथंडूप्ट शक्तिके समान है।

विशेषार्थ — ओघमें जिस प्रकार तीर्धक्रूर प्रकृतिकी सुख्यतासे सङ्गिकं कहा है असी प्रकार सातवी प्रथिवांने मतुष्यगतिहित की सुख्यतासे सङ्गिकंप कहना चाहिए, क्योंकि सातवी प्रथिवांने मतुष्यगतिहित की सुख्यतासे सङ्गिकंप कहना चाहिए, क्योंकि सातवी प्रथिवांने इनका बन्ध सिम्याष्टिष्ट और सासादनसम्पर्नेष्ट नहीं करते। शेप प्रकृतियोका सिन्तकर्ष ओपग्रह्मपणाको देखकर और स्वामित्वका िचास्कर षटित कर छेना चाहिए।

२०४. सामान्य विश्वं प्रस्नेतृत्व विश्वं भीर पञ्चेत्रित्व विश्वं प्रयोस जीवों में आपके समाः अह है। पञ्चेत्रित्व विश्वं बांगिनी जीवों में सात कर्मोका भह्न तथा विश्वं वांगिनी जीवों में सात कर्मोका भह्न तथा विश्वं वांगिनी जीवों में सात कर्मोका भह्न तथा विश्वं वांगिनी जीवों में सात कर्मोका भङ्ग जीवके समान है। नरमार्थातिक जयस्य प्रदेशन्य करनेवाला जीव वींकियक्करारं, वींकियक्करारं काह्नोपाङ्ग और नरकाम्बरातुर्थीका निवससे बन्ध करता है जो निवससे इनका जयस्य प्रदेशन्य बन्ध करता है। अहित्यकार्य क्षात्र कर्मा करता है। इसी प्रकार नरका नरका नरका अस्वा वाल्याणा अधिक अज्ञवन्य प्रदेशन्य करता है। इसी प्रकार नरका स्वात्य वाल्यास सिन्धकर्य जानना चाहिये। देवनात्वा अध्य प्रदेशन्य करनेवाला जीव वैकियक्करारं, वैकियक शरारं आङ्गोपाङ्ग और देवनात्वातुर्भीका निवससे बन्ध करता है। विश्वं देवनात्वातुर्भीका निवससे बन्ध करता है। विश्वं देवनात्वातुर्भीका निवससे बन्ध करता है। विश्वं देवना असंस्थातुर्भीका अव्यन्य प्रदेशन्य करता है। विश्वं देवना असंस्थातुर्भीका अव्यन्य प्रदेशन्य करता है। इसी प्रकार देवनात्वातुर्भीका स्वात्व वान्य प्रदेशन्य करता है। इसी प्रकार देवनात्वातुर्भीका अस्ति वान्य स्वात्य करता है। इसी प्रकार देवनात्वातुर्भीका स्वात्व वान्य करता है। इसी प्रकार देवनात्वा जीव दो गति और दो आतुर्भोक्त कर्शावन्त करता है। वोंकियक्करारं करता है। विश्वं प्रकार करता है। वींकियक्करारं करता है। विश्वं प्रकार वेवनात्वा जीव दो गति और दो आतुर्भोक्त कर्शावन्त्र करता है। वांगिक सित्य करता है। वांगिक सित्य करता है। वांगिक स्वात्य करता है। वांगिक सित्य वांगिक स्वात्य करता है। वांगिक सित्य वांगिक करता है। वांगिक सित्य वांगिक सित्य करता है। वांगिक सित्य वांगिक स्वात्य करता है। वांगिक सित्य वांगिक सित्य वांगिक सित्य करता है। वांगिक सित्य वांगिक

ता०प्रती 'त्रसत्तेक्रमुणस्म० दं०॥४॥ णिरवेषु बा०प्रती 'लेक्टब्रमुणस्मिद्य दं०॥४॥ चिरवृषु' इति पाठ:। २. आ०प्रती 'त्रिवृष्णक' पंचिद्रि ० तिरिस्त्य-पत्रक्षेषु' हति पाठ:। ३. ता०प्रती 'वेद०अंगो। जिस्साणु॰' इति पाठ:। २. आ०प्रतौ 'संचिद्रियाल' इति पाठ:।

तस॰४-णिमि० णि० वं० अज्ञ० असंखेजगुणस्मिहिषं वं०। समचह०-हुंड०-दोविहा०-चिरादिख्युम० सिया० असंखेजगुणस्मिहिषं वं०। वेउच्वि०द्यंगो० णि० वं० णि० जहण्णा। एव वंउच्वि०अंगो०।

२०५. पॅचिंदि०तिरि०अपञ्ज० सच्चपगदीणं ओघभंगो । एवं सच्चअपञ्जनगाणं तसाणं सच्चएइंदि०-विगल्लिदिय-पंचदायाणं पञ्जनायञ्जनगाणं च ।

३०६. मणुस०३ ओघमंगो। णविर मणुसिणीसु तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ एहं दियदंडओ ओघं। णिरयग० जह० पदे०बं० पंचिदि०-तेजा०-क०-हुंड-वण्ण०४-अगु० ४-अप्यसस्य०-स्तरू ७८-अपिगदियः । लेउ थि ० अ ज० असंखेआगुणम्महियं ० बं०। वेउटिश०-वेउटिश० अंगो० णि० बं० अज० संखेआगागट्याणु० णि० वं० णि० जह०। एवं० णिरयाणु० णि० वं० णि० जह०। एवं० णिरयाणु०। वेदवादि० जह० पदे०वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समवदु०-वण्ण०४-अगु०४-पस्थ०-तस०४-चिरादिछपुग०-णिम० णि० वं० णि० अज० असंखेआगण्याहियं वं०। वेउटिश०-वेउटिश्व अगो० णि० वं० णि० अज० असंखेआगण्याहियं वं०। वेउटिश्व०-वेउटिश्व० अगो० णि० वं०

बन्ध करता है। किन्तु इनका असंस्थातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशवन्ध करता है। सम-चतुरस्रसंस्थान, हुण्डसस्थान, दो बिहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह इनका असंस्थातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशवन्ध करता .है। बैकियिकरारीर आङ्गोपाङ्गका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका नियससे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार वैकियिकरारीर आङ्गोपाङ्गकी सुस्यतासे सन्तिकर्षे जानना चाहिए।

३०५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयोप्तकोंमं सब शकृतियांका मङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार सब अपयोप्त त्रनीमं तथा सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पॉच स्थावर कायिकोंमें तथा इनके पर्योग्नकों और अपयोगकोंमें जानना चाहिए।

२०६. मनुष्योमि ओषके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनयोमें तिर्यक्षगतिरुण्डक, मनुष्यिनिरुण्डक और एकेन्द्रियजाति रण्डकका भङ्ग ओषके समान है।
तरकातिका जपन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव एक्टोन्ट्रयजाति, तैजनसरारं, कार्मणशरीर,
हुण्डसंखान, वर्णचनुष्क, अगुरुतलुचनुष्क, अग्रशस्त विद्वायोगित, त्रवचनुष्क, आसंध्य आदि
छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनका असंस्थातगुणा अधिक
अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। वैक्रियकरारं और वैक्रियकरारं आङ्गोणाङ्गका नियमसे वन्य
करता है। किन्तु वह इनका संस्थातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। तरकगरयातुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इसका नियमसे जगन्य प्रदेशवन्य करता
है। इसी प्रकार नरकारवातुपूर्वीका प्रकार सिर्माणक जानना वाहिए। देवगतिका जयन्य
प्रदेशवन्य करतेवाला जीव एक्टोन्ट्रयजाति, तैजसपरारं, कार्मणशरीर, समाचनुरुप्तसंस्थान,
वर्णचनुष्क, अगुरुखनु चनुष्क, प्रशस्त विद्वायोगित, त्रसचनुष्क, स्थर आदि छह और निर्माणक नियससे वन्य करता है। किन्तु वह इसका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। किन्तु वह इसका नियमसे क्रांच करा है।
किन्तु वह इसका जयन्य प्रदेशवन्य भी करता है।

१. ताब्बाव्यत्योः 'बगुव्ध पसत्यव' ६/६ पाठः ।

तंतु क संखेजमागन्महियं बं ० । आहार ०-आहार ० अंगो० सिया० जह ० । देवाणु०-तित्य ० णि० बं ० णि० जह ण्णा । एवं देवाणुप०-तित्य । आहार ० जह ० पदे० बं० देवगदि बेउन्वि०-वेउन्वि० अंगो०-देवाणु०-तित्य० णि० बं० जह ० । सेसाणं णि० बं० णि० जज० असंखेज गुणन्महियं बं०।

२०.७ देवेसु सत्तवणं कम्माणं ओघं। तिरिक्सगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ एइंदियदंडओ ओघो। एवं मतण०-नाणवें -जोदिसि०।

३०८. सोधम्भीसाणेषु सचाणं कम्माणं ओघो । तिरिक्खः जहः पदे०चं० पंचिदिः ओरालि॰ नेजा॰ कः ओरालि॰ ग्रंगो॰-चणा॰ ४-तिरिक्खाणु॰-अगु॰ ४-उजो॰-तस॰ ४-णिमि॰ णि॰ चं॰ णि॰ जहः । छस्तंछाँ ०-छस्तंघ ०-दोविहा॰-थिरादिछसुग॰ सिया॰ जहः । एवं तिरिक्खाणु॰-उजो॰ । मणुस॰ जहः पदे०चं० पंचिदि॰-विण्णिसरी॰-समचदु॰-ओरालि॰ ग्रंगो॰-चजरि॰-चण्ण॰ ४-मणुसाणु॰-अगु॰४-पस्त्थ॰-तस॰ ४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि॰-तित्थ॰ णि॰ चं॰ णि॰ जिहः]।

यदि अजपन्य प्रदेशवन्य करता है तो नियससे संख्यातवाँ माग अधिक अजधन्य प्रदेशवन्य करता है। बाहारकरारीर और आहारकरारीर आङ्गेषाज्ञका कराचित्त वन्य करता है। यदि बन्य करता है। इसी प्रकार करता है। इसी प्रकार करता है। इसी प्रकार हेवारयानुष्वी और तीयेद्धरप्रकारकों स्वयं करता है। इसी प्रकार हेवारयानुष्वी और तीयेद्धरप्रकारिक स्वयं करता है। आहारकदिकका जमन्य प्रदेशवन्य करते हो। आहारकदिकका जमन्य प्रदेशवन्य करते हो। आहारकदिकका जमन्य प्रदेशवन्य करते हो। अहर करता है वेशकरारीर आङ्गोषाङ्ग, वेवगस्यानुष्वी और तीयेद्धरप्रकृतिका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे अस्वयं प्रदेशवन्य करता है। श्रेष प्रकृतियाँका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे अस्क्यात-गणा अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है।

२:७, रेबांसे सात कर्माका भङ्ग ओषके समान है। तिर्वञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगति-दण्डक और एकेन्द्रियज्ञातिदण्डकका भङ्ग ओषके समान है। इसांप्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतियों देवांसे जानना चार्डिए।

शेट. सीयमं और पेशानकन्यके देवोमं साव कर्मोंका मङ्ग आपके समान है। वियं प्रात्तिका जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाला जीव पञ्चिन्त्रयानि, आंदारिकशरोर, तैज्ञसवारीर, क्षांसंग्रहारीर, आंदारिकशरोर, तेज्ञसवारीर, क्षांसंग्रहारीर, आंदारिकशरोर, तेज्ञसवारीर, क्षांसंग्रहारीर, आंदारिकशरोर, आंदारिकशरोर आङ्गोपङ्ग वर्णव्यक्त, त्रस्वच्रात्व वर्णव्यक्त क्षांस्वच्यक आंदातिमांग्रका निवससे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। छह संस्थान, छह संहत्तन, दो ब्रिह्मवंग्रित आंद स्थित आदि छह सुगळका कर्षााक्षित वर्णव्यक्त हरता है। वर्ष्य करवा हे सं इत्यक्त वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान हरिए। महुष्य-गिक्का त्रविद्धारीर हरिए। महुष्य-गिक्का त्रविद्धारीर आहेता हरिए। महुष्य-गिक्का त्रविद्धारीर आहेता वर्णव्यक्त स्थान अविद्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान अविद्यक्त स्थान अविद्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान वर्णव्यक्त स्थान स्थान स्थान वर्णव्यक्त स्थान स्थान स्थान वर्णव्यक्त स्थान स्थान

^{1.} सा.मती 'दें बाणुपु॰ । तित्य॰ देति पाठः । २. ता॰मती 'मवण॰ भवण (?) वाणवं॰' इति पाठः । ३. ता.मती 'मि॰ ज॰ इस्संदा॰' इति पाठः ।

षिराधिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० जह०। एवं मणुराणु०-तित्थ०। पंचिदि० जह० पदे०वं० दोगदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-धिरादिछपुग०-तित्थ० सिया० जह०। ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-चण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० जह०। एवं पंचिदियमंगो ओरालि०-तेजा०-क०-सम्बद्ध०-ओरालि०अंगो०-जलि०-वेजा०-क०-सम्बद्ध०-ओरालि०अंगो०-जलि०-वेजा०-क०-सम्बद्ध०-ओरालि०अंगो०-जलि०-वेजा०-क०-सम्बद्ध०-ओरालि०अंगो०-जल्ण०४-तिरिक्खाण्ड-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णिविण्यारीर-ओरा०अंगो०-जल्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णिवं० णिव जह० १६ छस्संघ०-दोविहा०-चिरादिछपुग० सिया० जह०। एवं णम्गोघ-भंगो चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पत्थ०-दुमा-दुस्स-अणादे०। सणकुमार याव सहस्सार सि सोधम्यभंगो। णवरि एर्ट्रदियदंडओ वज ।

३०९, आणद याव उनरिनमेवजा चि सचर्ण कम्माणं णिरयमंगो । मणुसग० जह० पदे०वं० पंचिदि०-ओरालि०-नेजा०-क०समचद०-ओरालि०अंगो०-वजरि०-

स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अग्रुम, यशःकीर्तिऔर अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार मनुष्य-गत्यानपर्वी और तीर्थक्रपप्रकृतिकी सुख्यतासे सिन्नको जानना चाहिए। पञ्चीन्द्रयजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो गति, हह संस्थान, हह संहनन, हो आनुपत्री, उद्योत, दो विहायोगित, स्थिर आदि छह युगल और तीर्थक्कर प्रकृतिका कराचित बन्ध करना है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, ओदारिकरारीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुत्तपुचतुष्क, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार पञ्च न्द्रिय जातिके समान ओदारिक गरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समजतु-रक्रासंस्थान, औदारिकशरीर आक्रोपाङ, वज्राधिमनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुनग, सुस्वर, आदेय और निर्माणको मुख्यतासे सन्निकर्ण जानना चाहिए। न्यम्रोधपरिमण्डलसंस्थानका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव विश्वख्रागीत, पद्म निद्वयजाति, वीन शरीर, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, बर्णचतुष्क, तिर्यक्कणत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्ध करता है। इह सहनन, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार न्यप्रोधपरिमण्डळसंस्थानके समान चार संस्थान, पाँच सहनन, अप्रश्रम विहायोगांत, दुर्भग, दुश्वर और अनादेयकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए। सनस्कमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवांमें सीधम करूपके देवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रियजातिदण्डकको छोडकर यह सम्निक्रों जानना चाहिए।

३०९. आनत करपसे ठेकर उपरिम मैं वेषक तकके देवोंमें सात कर्मों का भङ्ग नारिक्योंके समान है। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशवन्य कानेवाला जीव पञ्चिन्द्रियजाति, औदारिक्शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समजुदरक्ससंखान, औदारिकशरीर आक्नोपाङ्ग, वज्रार्थभनाराज-

ता॰ प्रती 'तित्थ पचिदि॰' इति दाढः । २. ता॰ प्रती 'अणादे ॰ सणक्डुमार' इति पाटः ।

बण्ण० ४ मणुसाणु०-अगु० ४ यसत्य ० तस० ४ सुमग-सुस्सर-आदेजः णिमि०-तित्य ० णि० जहण्णा । एवं मणुसगिद-मंगो पंचिदि ० तिष्णसरीर-समचदु०-ओरालि ० छंगो० '-व ज्वारि०-वण्ण० ४ मणुसाणु०-अगु० ४-पसत्य ० -तस० ४-धिरादि तिष्णियुग० - सुमग-सुस्वर-आदे० - णिमि०-तित्य ० । णम्मोष० जह० पदे० वं० मणुसगिद-पंचिदि० तिष्णसरीर-ओरालि० अंगो०-वण्ण० ४ मणुसाणु '० - अगु० ४ -तस० ४ -णिमि० णि० वं० णि० अजह० संखेज्जिद-मामक्मिह्यं० वं। पंचसंघ०-अप्पस०-दूमग-दुस्सर-आदे० सिया० जह०। व ज्जादि० पसत्य ० -णिरातिष्णयुग०-सुग सुस्सर-आदे० सिया० संखेज्जिदिभागक्मिह्यं वं०। एवं णमगोस्योग चहुसंदा० पंचसंघ०-अप्यत्य ० -दुभग-दुस्सर-आदे०। अणुदिस याव सन्वद्व ति सच्चणं कम्मणं णिरयमंगी। णामाणं आण्डमंगी।

३१०, पंचिंदि०-तस०२ ओघमंगो । पंचमण०-तिष्णिवचि० सचर्णा कम्माणं ओघो । णिरयगढि० जह० पदे०वं० पंचिंदि० याव णिमिण चि अङ्गवीसं० णि० बं०

संहतन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगस्यानुपूर्वी, अगुरुखघुचतुष्क, प्रशन्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सभग, सस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे प्रदेशबन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कराचित बन्ध करता है यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार मन्द्यगतिके समान पञ्चन्द्रयजाति, तीन शरीर, समचतरस्र संस्थान, औटाज्ञिक शरीरआङ्कोपाङ्क, वज्रवीभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगीत, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुखर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। न्यप्रोधपरिमण्डलसंस्थानका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यर्गात, पञ्चिन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आक्कोपाक्क, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी अगुरुलघृचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे सख्यातवां भाग अधिक अजबन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेशका कदा चित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वक्कर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे सस्यातवा भाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार न्यप्रीधपरिमण्डळ संस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। अनुदिशासे लेकर सर्वार्थासिक तकके देवांमें सात कर्मीका भन्न नार्यकराके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भन्न आनतकरपके समान है।

३१०. परूचेन्द्रियद्विक और त्रसिद्विकों ओपके समान मङ्ग है। पाँचां मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओपके समान है। नरकगतिका जघन्य प्रदेशतक्य करनेवाला जीव परूचेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माणतक अट्टाईस प्रकृतियोंका नियससे बन्ध करता

१ भा• प्रतौ तिष्णसरीर ओराकि० अंगो०' इति पाठ:।

२ ऋ। ० प्रती 'स्रोरा कि ॰ बण्ण ४-मणुसाणु॰' इति पाठः ।

है जो नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। नरकगत्यानुपर्वीका नियमसे प्रदेशवन्ध करता है जो नियमसे जधन्य प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार नरक-गुरुवानपर्वीकी मुख्यतासे सांब्रकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्जगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेषाला जीव औदारिकशरोर, ओदारिकशरीर आक्रोपाझ, वर्णचतष्क, तिर्यक्रास्यानपूर्वी, अगुरुक्ष चत्रक, उद्योत, त्रसचत्रक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जधन्य प्रदेशवन्य करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवस्य करता है। चार जाति, छह संस्थान, छह संहतन. दो विहायोगित और स्थिर आदि छह यगलका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार विश्वक्रगतिके समान हण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासूपाटिका संहनन, निर्यक्कगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायो-र्गात, दर्भग, द:स्वर और अनादेशको मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका जवन्य प्रदश् बन्ध करनेवाला जीव पश्चन्द्रियजाति, औदास्किशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, बज्जर्यभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपर्वी, अगुरुखपु-चतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, जसचतुष्क, सुमग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थद्वरप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इतका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार मन्द्यगतिके समान मन्द्य-गत्यानुपूर्वी और तीर्थक्करप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पञ्चन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुरुक, इस प्रकार निर्माण पर्यन्त जितनी प्रज्ञात प्रकृतियाँ हैं असका और तीर्थक्रप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशारीर, तैजसरारीर, कार्मणरारीर और वैक्रिविकश्ररीरआङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। बीर अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। बाद अजयन्य प्रदेशकन्य करता है तो इनका निवमसे संस्थातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। आहारकद्विकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

बेउष्टिक अहर पदे०वं० देवगदि-पंचिदि०-आहार०नेजा०-क०-दोशंगो०-देवाणु० णि० वं० णि० जहरू । पंचिदियादि याव णिमणं तित्वः णिय० वं० अज ० संखेजमाग-स्मिद्धि कं । एवं आहार० तेजा०-क०-दोशंगो० । पंचिदि० जहरू पदे०वं० सोधम्म-मंगो । जबार तेजा०-क० णि० वं० णि० संखेजमाग-महियं वं० । तिष्णिजादि० अोधं । जबार तेजा०-क० णि० वं० णि० संखेजमाग-महियं । चतुसंदा०-चदुसंघ० संखेजमाग-महियं० । चतुसंदा०-चदुसंघ० संखेजमाग-महियं० । चत्व-असचमोस० अोधं । जबार तेजा०-क० णि० वं० संखेजमाग-महियं० । चिन०-असचमोस० अोधं । जबार वेटन्वियक० पंचिदियजोक्षणिगंगो ।

३११, कायजोगि-ओरालिय॰ ओघो । ओरालियमि॰ ओघो । णवरि देवम॰ जह॰ पदे॰वं बेउच्वि॰-बेउच्वि॰-अंगो॰-देवाणु॰-तित्थ॰ णि॰ वं णि॰ जह॰ । पंचिदियादि याव णिमिण त्ति णि॰ वं॰ णि॰ अज॰ असंखेजगुणस्मिह्यं॰ । थिरादितिष्णियम् भिया॰ आसंखेजगणस्मिहयं॰ । एवं बेउच्चिय०४-तित्थः ।

जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैकिश्विक कारीरका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव देवगति, पञ्चन्द्रियजाति, आहारक-शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और देवगस्यातपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियम से जघन्य प्रदेशवन्य करता है। पद्मिन्द्रियजातिसे लेकर निर्माणतककी प्रकृतियोंका और तीर्थक्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका संख्यातवा भाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसीप्रकार आहारकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आक्रोपोक्सकी मुख्यतासे सिक्तकर्ष जानना चाहिए। पश्चीन्द्रयजातिके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवका भक्त सौधर्मकरूपके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तैजस-शरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे सख्यातवां भाग अधिक अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन जातिका भक्न ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजवन्य प्रदेशवन्य करता है। चार संस्थान और चार संहननका भक्क सौधर्मकरूपके समान है। इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। वचनयोगी और असत्यसृषावचनयोगी जीवोंमें ओधके समान भक्त है। इसनी विशेषता है कि इनमें वैकिथिकपटकका भक्त पश्चिन्दिय तिर्यक्त योनिनी जीवांके समान है।

३११. काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिकभिभकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जपन्य
प्रदेशकन्य करनेवाला जीव वैकियिकयरीर, वैकियिकयरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यातृपुर्वी और
प्रवेशक्तर्यकातिक नियससे बन्य करता है जो इनका नियससे जपन्य प्रदेशवन्य करता है।
पश्चीन्त्रयज्ञातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियससे बन्य करता है वो इनका नियससे
असंस्थातगुणा अधिक अजपन्य प्रदेशवन्य करता है। स्विर आदि तीन युगळका कदाचित्
बन्य करता है। यदि बन्य करता है तो इनका नियससे लसंस्थातगुणा अधिक अजपन्य
प्रदेशवन्य करता है। इसीप्रकार वैकियिकचतुष्क और तीर्थहरकी मुख्यतासे स्रिक्यं

३१३. कम्महमे सुख्याणं० ओघं। णविर देवगदि० जह० पदे०वं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाण० णि० वं० णि० जह०। तित्थ० णि० वं० संबेखदियाग-

३१२. कार्मणकाययोगी जीवींमें सब कर्मोका भङ्ग बोघके समान है। इतनी विश्लेषता है कि देवगतिका जयन्य प्रदेशक्य करतेवाला जीव वीकियिकश्चरीर, वीकियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग कीर देवगत्यानुपूर्वीका नियमने अन्य करता है जो इतका नियमने जबन्य प्रदेशकन्य करता है। तीयेङ्करमकृतिका नियमने जन्य करता है जो इसका नियमसे संस्थातवा भाग अधिक है। तीयेङ्करमकृतिका नियमसे संस्थातवा भाग अधिक

३१२. वैकियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी और नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्क सौधर्म-करूपके समान है। इसीप्रहार वैक्रियकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाय-योगी और आहारकामश्रकाययोगी जीवांमें कोधसंख्वलनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसो प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर जघन्य सन्निकपं जानना चाहिए। अरनिका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाळा जीव चार संज्वलनः पुरुपवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है । इसायकार शोककी मुख्यतासे सक्तिकर्ष जानना चाहिए । देवगति-का जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पञ्चनिद्यजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगतिके समान तीर्थङ्करप्रकृति सहित प्रतस्त प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। अस्थिर-प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ नाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अध्यस और अयज्ञ:कीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। श्रम, यशःकीति और तीर्थक्टर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इतका नियमसे संख्यातवां भाग अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसंप्रकार अग्रभ और अयशःकोर्तिकी मस्यासे सम्निक्ष जानना चाहिए। शेष कर्मीका भक्त ओघके समान है।

१. ता०प्रती 'क० । जामाणं' रति पाठः । २. ता०प्रती 'वेडम्बियमि०' आहार०-बाहारमि०' इति पाठः । ३. ता०प्रती 'बहुष्णा । देवगदिसंगो' इति पाठः ।

स्मिद्दर्यः । सेसं पंचिदिवादि याव शिमिषा ति थि० वं ० शि० अज० असंखेजगुण-स्मिद्दर्यः । विरादितिष्मियुम् । सियाः असंखेजगुणन्महियं । एवं देवगदि०४ ।

३१४. इत्थिबंदे० बंधिहियतिस्त्रिक्षजीषिणिसंगो। प्रवरि० तित्य० व्रह० वं ० आहार०२ सिया० व्रह० । सेसाणं देवगदि याव णिमिण ति णि० वं ० असंखे०गुण्या० । पुरिसेसु ओघमंगो। ण्युंसनेसु ओघमंगो। वेउन्वियङ० जोणिणिमंगो।
अवसद्वेदे ओघं। कोघादि०४-असंब०-चक्सुदं०-अचक्सुदं०-तिण्यिले०-भवसि०सिष्णा आहारग ति ओघं। ण्यारि किष्ण०-णील० तित्य० व्यह० पदं०वं ० देवगदिदुवं०' णि० असंस्वेअगु०। बिरादितिष्ण्युग० सिया० असंस्वेअगुण०। काउ०
तित्य० व्यह० पदं०वं ० मुलोधं।

२१५. मदि०-सुद्-अव्भव-मिच्छा०-असिष्ण० पंचिदियतिरिक्सजोणिणिमंगो । विभंगो बच्चिजोमिसंगो । णवरि णिरयगदि० जह० पदे०व'० वेउच्चियदुगं णिरयाणु० णि० जह० । पंचिदियादिसेसाणं णि० वं० संस्तेजमागव्मिष्टपं०। एवं णिरयाणु० ।

अवसन्य प्रदेशबन्य करता है। पञ्जोन्द्रयज्ञातिसे लेकर निर्माण तरुको शेष प्रकृतियाका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंस्थानगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। स्थिर आदि तीन युगळ्या कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असस्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार देयगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सिष्कके जावना चाहिए।

3१५. मत्यक्षानी, शुताक्षानी, अभन्य, ांमध्यादृष्टि और असंक्षा जीवांमें पक्षांन्द्रय विषय्रेष्ठ योनिर्मा जीवांके समान भक्क है। विश्वकक्षानी जीवांभे वचनयोगी जीवांके समान अक्क है। इतन्य कार्यवाद्या है कि इनमें नरकगतिका जयन्य प्रदेशवन्य करतेवाला जीव वेकियंक-विक और नरकारवातुपूर्वीका निवससे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जन्य प्रदेशवन्य करता है। पक्कोन्द्रयजाति आदि शोष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका

ता॰मतौ 'देवगदिधुवं' इति पाढः ।

वेडिन्बियदुर्ग एवं चेब । णवरि' दोगदि० सिया० जह० । दोविहा०-धिरादिक्युग० सिया० संसेजभागव्यविष्ण । देवगदि० जह० पदे०वं० वेउन्वि०-वेउन्वि०अंगो०-देवाजु० णि० जह० । सेसाओं पंचिंदियादि याव^र जसगि०-णिमिण चि णि० वं० णि० संसेजभागव्यदियं० ।

३१६, आभिणि०-सुद्र०-ओषि० सत्तण्णं० कम्माणं ओषं। मणुसगदि० जह० पदे०वं० मणुसगदिसंजुताओ तीसिमाओ णि० वं० णि० जहण्णा। एवं तीसिमाओ एक्समेक्स्स जहण्णा। देवग० जह० पदे०वं० वेउन्वि०-वेउन्वि० आंगो०-देवाणु० णि० वं० णि० जह०। सेसाणं णि० वं० अज० संखेजमागन्महियं०। एवं वेउन्वियदुगं देवाणु०। आहारदुगं० ओषं⁵। एवं ओषिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०।

२१७. मणपञ्ज० सत्तण्णं कम्माणं आहारकायजोगिमंगो। देवगदि० जह० पदे०वं ० पंचिंदियादि याव णिमिण ति तिरवं ० णि० वं ० णि० जह०। वेउन्वि०तियमसे संस्थानवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार नरकारयानुपूर्वीको सुरुवतासे सिन्नकं जानना चाहिए। तथा इसीपकार वैक्रियेचकिकको सुस्थतासे भी सिन्नकं सुस्थाना । किन्तु इतनी विश्रेषता है कि यह दो गतिका कर्राचित्त वन्य करता है। विद्यायोगि और स्थिर आहि कु सुनतं के प्रकार विश्रेषता है कि यह दो गतिका कर्राचित्त वन्य करता है। विद्यायोगित और स्थिर आहि कु सुगतका कराचित्त वन्य करता है। वेद वन्य करता है। दो विद्यायोगित और स्थिर आहि कु सुगतका कर्यन्य प्रदेशवन्य करता है। देवगितका जयन्य प्रदेशवन्य करता के। देवगित्रवाहिक त्रियमसे वन्य करता है। जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। पत्रविन्य ज्ञितसे लेकर यसा-किति और नियमिणकं से प्रकृतियाला नियमसे वन्य करता है। जो इनका नियमसे संस्थातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। को इनका नियमसे संस्थातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। जो इनका नियमसे संस्थातवां भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है।

३१६ आभिनिवाधिकहानी, श्रुतहानी और अवधिजानी जीवों से सात कभीका भङ्ग ओवके समान है। मनुष्पातिका जवन्य प्रदेशन्य करनेवाला जीव मनुष्पातिसंपुक्त तीस प्रकृतियों का नियमसे वन्य करता है। इसी प्रकृतियों का नियमसे वन्य प्रदेशन्य करता है। इसी प्रकृति तों से प्रकृतियों की प्रकृतियां की प्रकृतियों की प्रकृतियों की प्रकृतियों की प्रकृतियों की प्रकृतियां के प्रकृतिय

२१७. मनःपर्ययक्तानी जीवामें सात कर्मोका भङ्ग आहारककाययोगी जीवांके समान है। देवगतिका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाका जीव पर्झोन्ट्रयज्ञातिसे लेकर निर्माणतककी प्रकृतियोंका और तीर्थहुर प्रकृतिका नियमसे बच्च करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्ध

ता॰प्रती 'चेव णविर हित पाठः। २. ता॰प्रती 'पंचित्रय याव' इति पाठः। ३. आर॰प्रती 'देवायु०। चक्कु॰ जोव' इति पाठः। २. ता॰प्रती 'णिमिण चि। तित्य॰' इति पाठः।

तेजा०-क०-बेउब्बि०अंगो'० णि० बं०तं तु० संखेजमागम्महियं०। आहार०२ सिया'० जह०। एवमेदाओ देवगदि० सह एकमेकस्स जहण्णाओ। अधिर० जह० एदे०बं० देवगदिश्वविगाणं णि० संखेजमा०। असुम³-अजस० सिया० जह०। सुभ-जस० सिया० संखेजमागम्महियं०। एवं असुम-अजस०। एवं संजद-सामाह०-छेदो०-परिहार०। एवं संजदासंज०। णवरि देवगदि० जह० पदे०वं० वेउब्विय०-[बेउब्बियअंगो०-देवाणु०-] णि० वं०णि० जहण्णा। सुहुमसं० अवगद०मंगो।

३१८, तेउ० सत्तर्णं क० देवोधं । तितिक्सगदिदंडओं मणुसगदिदंडओं पंचिदियदंडओं सोधम्मभंगो । देवगदिदंडओं आहार०२दंडओं ओधिमंगो । एवं पम्माए । णवरि एइंदिय-आदान-आवरं वजा । सुकाए सत्तर्णं क० देवमंगो । मणुसगदिदंडओं जग्गोध०दंडओं आणदमंगो । देवगदिदंडओं जग्गोध०दंडओं आणदमंगो । देवगदिदंडओं तेउ०मंगो ।

करता है। वैकियकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैकियकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशवन्य करता है। आहारकदिकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जधन्य प्रदेशवन्ध करता है। इस प्रकार देवगति सहित इन प्रकृतियोंकी मुख्यतास परस्पर नियमसे जघन्य सन्निक्ष करता है। अस्थिरप्रकृतिका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव देवर्गात आदि धववन्धवाली प्रकृतियोंका नियममे बन्ध करता है जो इनका नियमसे सस्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अशम और अयशःकीर्तिका क्याचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। ग्रूम और यशःक तिंका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अग्र.भ और अयश कोर्तिकी मख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, ब्रेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसयत जीवोंके जानना चाहिए। नथा इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संयतासंयतोंस देवगतिका जघन्य प्रदेशगन्ध करनेवाला जोव वैकिथिकशरीर, वैकिथिकशरीरआङोपाङ और देवगरयानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। सदमसामारायसयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोके समान भक्त है।

३१८. पीतलेड्यामे सात कर्मोका अङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तियञ्जमातिवृण्डक, मनुष्यातिवृण्डक ओर पञ्जांत्रवजातिवृण्डक। अङ्ग सीम्मकल्यके देवोके समान है। देवमात-वृण्डक अर्थ सामान है। इसी प्रकार प्रफूलेड्या-स्पृष्ठक और आदाःकिडकृष्ण्डकका भङ्ग अविश्वामी जांबोके समान है। इसी प्रकार प्रफूलेड्या-में जानना चाहिए। इननी विशेषता है कि इसमें एकेन्द्रियज्ञाति, आतम और स्वायवको छोडकर सन्तिकृष्णे कहना चाहिए। शुक्रकेदयामे सात कर्मी का भङ्ग देवोंके समान है। मनुष्यातिवृण्डक और स्यमोपपरिमण्डलसंस्थानदण्डकका भङ्ग आनतकल्पके समान है। देवगतिवृण्डकका भङ्ग

पातलस्याक समान ह

ताप्रती 'विड ते० बेड०शंगो०' इति वातः । २. आ०मती 'ब्राह्मर०सिया०' इति वातः ।
 बा०मती 'ब्रुबिगाणं '''' अझुन' इति वातः । ४. आ०मती 'ब्रब्बार्यस्तो ।'''' सक्तव्यं इति वातः ।
 पाढा । ५. आ०मती 'तिरिक्वद बस्ते' इति वातः । ६. आ०मती ह'बगदिद बस्ते २ द'बस्ते इति वातः ।

२१९, सासणे सचर्णं क० देवगदिमंगो । तिरिक्खगिदिदंडओ मणुसगिदि-दंडओ ओषो । देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिदियादि याव णिमिण चि णि० बं० णि० अज्^र० असंखेअगुणक्महियं०। वेउन्वि०-वेउन्धि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह०। एवं० वेउन्वि०-वेउन्वि०अंगो०-देवाणु०।

३२०. असण्णी० तिरिक्खोघं । णवरि वेउन्वियछ० खोणिणिमंगो । अणाहार० कम्मश्रासंगो ।

एवं जहण्याओं सत्थाणसिष्णयासी समसी।

३२१. परत्याणसिष्णियासं दुविधं—जद्द० उक्त० च । उक्क० पर्ग । दुवि०-ओषे० आदे० । ओषे० आमिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा० चदुदंस०-सादा० जस०-उचा० पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । एवमेदाओ एक्सेकस्स उक्कस्सिगाओ ।

३२२, णिहाणिहाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुर्दसणा०-पंचत० णि० षं० णि० अणु० संखेजमानूणं बं०। पयलापयला-धीणिगिद्धि-मिच्छ०-अर्णताणु०४ णि० बं० णि० उक्क०। णिहा-पयला-अड्डक०-मय-दू० णि० बं० णि० अणु० अर्णत-भागूणं०। सादा०-उचा० सिया० संखेजदिमानूणं। असादा०-हस्थि०-णबुंस०-

२१९. सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मों का भङ्ग देवोंके समान है। दिश्रेश्वगतिदण्डक और मनुष्यगितिदण्डक को भङ्ग ओषके समान है। देवगितका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाका जीव पञ्चिन्त्रियात्रीति केवर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करना है जो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करना है। वैक्षियकशरीर, वैक्षियकशरीर आङ्गो-पाङ्ग और देवगत्थानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करना है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करना है। इसी प्रकार वैक्षियकशरीर, वैक्षियकशरीर आङ्गो-पाङ्ग और देवगत्थानुपूर्वीकी मस्यवासे सम्मिक्य जानना चाहिए।

२२०. असंज्ञियोंमें सामान्य तियञ्जाके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैकियिक छह्का भङ्ग पञ्जनिद्रय तियंख्य योनिनी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भक्त है।

इस प्रकार जघन्य स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

३२?. परस्थानसिन्नकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और वरहृष्ट । वरहृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—जोघ और आदेश । ओघसे आभिनिवोधिकश्चानावरणका वरहृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जोच चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्लि, वक्षाोच और पाँच अन्तरायका निवमसे वन्य करता है जो इनका निवससे वरहृष्ट प्रदेशवन्य करता है । इस प्रकार इनमेंसे किसी एकका वरहृष्ट प्रदेशवन्य होते समय अन्य सबका वरहृष्ट प्रदेशवन्य होते समय अन्य सबका वरहृष्ट प्रदेशवन्य होते समय

२२२. निद्रानिद्राका उक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागदीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रचळाप्रचळा, स्वागगृद्धि, मिध्यात्व और अन्तरायुक्तधी- चतुष्कका नियमसे कर्क्य करता है। निद्रा, प्रचता, आठ कथाय भय और जुगुस्साका नियमसे कन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचता, आठ कथाय भय और जुगुस्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनत्तभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। सातावेदनीय और उच्चागेत्रका कदाचित्र वन्ध

^{1.} ताःप्रसी 'णि॰ । बाज॰' ृति पाठः ।

वेउस्पियक ० आदाव ० मोचा० सिया० उक्त०। कोघसंब० णि० बं० णि० अणु० दुमागूणं०। मामसंब० लोमसंब० सिदरेयदिन दुमागूणं०। मामसंब० लोमसंब० णि०वं० णि० अणु० संखेक मुणहीणं०। पुरिस० जस० सिया० यदि वं० संखेक मुणहीणं०। हस्स-रि-अरि-अरि-सोमा० सिया० णि० यदि वं० अणु० अणंतमागूणं०। दोमिद-पंचाािक औराति० छस्तं उन्हेस १० अणु० अणंतमागूणं०। दोमिद-पंचाित को सिया० जोगित छस्तं पु०-प० उस्सा० - उजो० - दोनिहा०-संसाित चुणु० प० उस्सा० - उजो० - दोनिहा० संसाित चुणु० प० जिल्ला प्राच्या प० अणु० चुण्या प० अणु० चुण्या प० अणु० चुण्या पण्या प्राच्या प्राच्या पण्या पण

३२३, णिहाए उक्क० पदे०बं० पंचणाणा ०-चहुदंसणा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-[अगु०४-] तस०४-णिमि०-उचा०-पंचत० णि० वं० णि० अणु० संखेजदि-भागुणं०। पयका-भय-द० णि० वं० णि० [उक्क०]। सादा०-मणुस०-ओरालि०-

करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। असातावेदनीय, खीवेद, नपंसकवेद, वैक्रियकपटक, आतप और तीचगोत्रका कराचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध करता है। कोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे हो भागहीन अनस्कर प्रदेशबन्ध करता है। मानसंख्वछनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायसंज्वलन और छोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कवाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे सख्यातगुणा हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्कोपाङ्क, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परधात, उच्छाम, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ यगस और अयशःकार्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसगरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुख्यु, उपघात और निर्माणका निरमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, सिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२२. निद्राका उत्कृष्ट श्रदेशकन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, वार दक्षेतावरण, प्रमेन्त्रियताति, तैजसदरिर, कार्मणदरिर, वर्ण वतुष्क, अगुरुत्वशु नतुष्क असचतुष्क, निर्माण, क्वांत्रेत्र और पाँच अन्यरायका निवससे सन्य करता है जो इनका निवससे संख्यातवाँ भाग हीन अतुष्क श्रदेशकन्य करता है। प्रच्छा, भय और जुगुप्ताका निवससे सन्य करता है। अस्त्रा के सामानेवर्ण अस्त्र से क्वांत्र करता है। सामावेदनीय सनुष्क्राति, औदारिक्शरिर, स्वा

९. धा.प्रतौ 'धीजनिद्धि ३ सिच्छु॰' इति पाठः। २. आ.प्रतौ 'चंदुणाजा॰' इति पाठः।

जोरात्ति जंगो - मणुसाणु - विराविर सुभासु म- अनस ' । सिया । संखेजदिभागूणं । असादा - अपचन्खाण - ४-चदुणोक - सिया । यदि यं । णि - उक । एच न्साणा - ४ सिया । तं तु - अणंतभागूणं । । कोषसंज - णि - यं - दुमागूणं । । माणसंज - सादिरेयदि बहुमागूणं । । मायासंज - कोभसंज - पुरिस - [जस] णि - यं - संखेज- गुणहीणं । देवगदि ने उच्चित्र - उच्चित्र - जिल्ला ने सिया । तं तु - संखेजदिभागूणं वं । । आहारदुगं सिया - तं तु - संखेजदिभागूणं वं । । अम् - चदु - पसत्य - सुमा - सुस्सर-आदे । णि - यं - णि तं तु - संखेजदिभागूणं वं । । यद्व पयला । ।

३२४. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चढदंस० पंचंत० णि० बं० णि० अणु ० संखेजदिमागुणं वं ० । थीणगिद्धि ०३-मिच्छ ०-अणंताणु ०४-इत्थि ०-णवंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-णीचा० सिया० उक्क०। णिद्दा-पयत्ता-भय-द० णि० बं० आङ्गोपाङ्क, मनुष्यगस्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, और अयशक्रीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे सख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोक्षायका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्याना-बरणचतुष्कका कराचित् बन्ध करता है। किन्तु वह इनका एसक्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो नियमसे अनन्त भागहोन अनुस्कृष्ट प्रवेशवन्ध करता है। क्रोधसंख्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक डेंद्र भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासञ्बद्धन, लोभसंख्याहन, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुरकुष्ट प्रदेशवन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आक्रोपाङ, व अर्पभ-नाराचसंहनन, देवगरयानपूर्वी और तीर्थक्रप्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित करता है। यदि बन्ध करता है तो उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विद्वायोगति, सुभग, सस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार प्रचळा प्रकृतिकी सुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२४. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका निवमसे बन्ध करता है जो इनका निवमसे संख्यातमागाहीन अनुतकृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्वमानगृद्धित्रक, मिय्याल, अनन्तानुवन्योत्त, क्षीवेद, नयुंचकवेद, नरकाति, नरकारपालुपूर्वी, आतप और नोचगोत्रका कहाचित्त् बन्ध करता है। वाद बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। विद्वा, प्रचला, मय, और

१. बा.मती 'सुभासुभ कस० अवस०' इति पाठः । २, बा०मती 'पयका ।'''उष्क०' इति पाठः ।

तं हु अनंतमानूणं बं । अब्रुक-बदणोक ' सिया व तं तु अर्थतमानूषं बं । कोक्संबर जिल् बंद हमागणं बंद । माणसंजद सादिरेयदिवहमागुणं बंद । माया-संब-सोमसंज कि बं संखे अगुणहीणं बं । प्रतिस - जस सिया : संखे अगु क हीर्ण बं०। तिण्यगदि-पंचजादि-दोसरीर-इस्संठा०-दोअंगोवंग-इस्संघ-तिण्णिशास्त्र०-पर०-उस्सा०-उन्नो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज०-तित्थ० सिया० तं तु० संखेजिद-मानाणं वं। तेका०-क०-वण्ण०४-अग्०-उप०-णिमि० णि० वं० तंत्र० संसेजिदि-मान्यं वं । उचा । सिया । संसेजदिभाग्यं वं ।

३२५. अपचक्खाणकोघ० उक्क० पदेव्बंव पंचणाव-चदुदंसव-पंचिदिव-तेजाव-**क०-वण्ण**०४ अगु०४-तस०४-णिमि०-उचा०-पंचंत० णि० वं० संखेजदिमागृणं वं० । णिदा-पयला-तिष्णिक-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। सादा०-मणुस०-ओरालि०-**जोरालि** • जंगो • - मणुसाणु • - चिराधिर सुभासुभ-अजस • सिया • संखे अदिभाग् णं वं • ।

जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्थ भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभाग-हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और चार नोकपायका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध भी करना है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशयन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रवेशवन्ध करता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मान संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक डेद भागहीन अनुकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासञ्चलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यक्षः कीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे सख्यानगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो झरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगळ, अयशः-कोर्ति और तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशबन्ध भी। करता है। यदि अनुतकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। तैजसग्ररीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुम्ब, अगुरुत्तु, व्यघात और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उन्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहोन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातमागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

२२५. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पञ्चिन्द्रियजाति, तेजसङ्गरीर, कामेंगरारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुळपुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, उच्चयोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका आतावेदनीय, मनुष्यगति, औदारिक्शरीर, औदारिक्शरीर आक्रोपाइ, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम और अवशःकीर्तिका कराचित् क्य करता है। यदि बन्ध करता

१ मा॰ प्रती 'बं॰। चतुकोकः' इति पाटः।

असाद ०-चरुषोकः सिया ० उक्त । [रक्क्स्याम्म ० १ विण वं विण अमंतराम्म का ।]
कोषसंव ० दुभागूणं वं । माणसंव ० सादिरेयदिक्कुमान्म् वं ० । माणसंव ० सोस् संव ० पुत्तिस ० विण् वं ० विष् संस्वे असुमान्नी वं ० । देवगदि-वे उन्वि ० वे उन्वि ० वेगो ० वे वापु ० सिया ० तं तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । समच दु ० प्रस्व ० सुमण-सुस्तर आदे ० विण वं तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । वच्चिरि सिया ० तं तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । वच्चिर ते तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । वस्व ० सिया ० तं तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । वस्व ० सिया ० तं तु ० संस्वे ज्वदिभागूणं वं ० । वस्व । विष्ण कसा ० ।

३२६, पश्चक्खाणकोधः उक्कः पदे०षं व्यापाः सद्द्रंताणाः प्यंतिदिः तेजाः कः न्यणाः ४ अगु ०४ तसः ७४ णिमिः उखाः पंचतः जि० वं जि संखेजिहः भागणं वं । णिद्दा-पयला-तिज्यिकः -सय-द्रः णि वं जि उक्कः । सादाः -

है तो नियमसे संस्थातभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्क्रह प्रदेशकन्य करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्त मागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। कोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुरकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंख्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। म यासंस्थलन, स्रोभ-संज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । देवगति, बैकियिकशरीर, बैकियिकशरीरआक्रोपाक और देवगत्वान-पूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्रष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो नियमसे संख्यातभाग-हीन अनुरहृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचत्रक्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सभग, सस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करना है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्जवभनाराच संहननका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। यश:कीतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संस्थात-गणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। तीर्थक्र प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यहि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातमागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रध्याख्यानावरण मान आदि तीन कवायोंकी मुख्यतासे सिक्रकर्ष जानना चाहिए।

३२६. प्रत्याच्यानावरण कोथका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, परुचेन्द्रिय ग्रातिः तैजस्मारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुक्कसुचकुष्क, प्रसन्तपुष्क, निर्माण, उब्बागित्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनको नियमसे स्तित्यसामाग्रीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। निहा, प्रचला, तीन कथाय, भय कीर जुगुण्याका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे कक्कष्ट प्रदेशवन्य करता है। सांसावेदणीय, स्थिर, अस्तिर, ह्यान, अञ्चन और अवदान्कीर्विका कहायित क्ष्य करता है। सांसावेदणीय, स्थिर, ंपराचिर-सुभाधुन-अजस० सिया० संखेजदिमायूणं वं०। असादा०-चदुणोक०-तिस्थ० सिया० उक्क०। देवगदि-वेडन्थि०-समचदु०-वेडन्थिवऽजंगो०-देवाणु०-पसस्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० णि० षं० तं तु० संखेजदिमागूणं बं०। चदुसंज०-प्रुरिस०-जस० अपबस्खाणमंगो। एवं तिष्णिक०।

२२% कोधसंज ० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०'-जस०-उच्चा० पंचंत० णि० संखेजदिभागूणं वं०। माणसंज० णि० वं० संखेजदिभागूणं वं०। मायासंज ० दुभागू०। होभसंज[्] संखेजगु०।

३२८. माणसंज० उक्कः पदे०वं॰ पंचणा०-चटुदंसणा०-सादा०-मायासंज०-जस०-उचा०-पंचंत० णि० वं॰ संखेजिदमागूणं वं॰ । होभसंज० णि० वं॰ संखेज-गुणहीणं वं॰ । एवं मायासंज० । णवरि होभसंज० दुमागूणं वं ।

इनका निषमसे सङ्यातभागहांत अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। असातावेदनीय, चार तोकषाय और तीयेह्नर प्रकृतिका क्यांचित्र वन्य करता है। यदा वन्य करता है। वेहनका निषमसे स्वरुष्ट प्रकृतिका क्यांचित्र विवासि वेहिष्टिकसीर, समयनुष्ट स्वर्माका वेहिष्टिकसीर, समयनुष्ट स्वर्माका निष्टिकसीर आहें विवासिकसीर क्यांचित्र का निष्टिकसीर का निष्टिकसीर का निष्टिकसीर का निष्टिकसीर का निष्टिकसीर का निष्टिकसीर करता है। किन्तु वह इनका करूक्ट प्रदेशक्य भी करता है। अर्थात्र है। बिरुक्ट प्रदेशक्य करता है तो निष्टिकसीर का निष्टिकसीर अनुतक्ष्ट प्रदेशक्य करता है। वा निष्टिकसीर का निष्टिकसीर

२२७. क्रोयसंब्रह्मका व्ह्न्छ प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच हानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यराव्हार्ति, व्यागेत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागाई।न अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। मानसंब्रह्मका त्वियमसे वन्य करता है जो इसका नियमसे संख्यातभागई।न अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। मायासंब्र्गवनका नियमसे वन्य करता है जो इसका नियमसे दो भागई।न अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। लोभसंब्रह्मका नियमसे वन्य करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुण्हीन अनुतक्ष्ट प्रदेशवन्य करता है।

२२८. मानसंज्यक्रनका उत्कष्ट प्रदेशवाध करनेवाळा जीव पांच झानावारण, चार दरांनावरण, सातावेदनीय, मायासम्बत्तन, यशान्त्रीर्त, उद्यमात्र और पांच अन्तराथका नियमसे सन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातमानाहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। लीभ-करता है। इसमे प्रकार मायासंज्यतनको मुख्यता सांक्रक्य जानना चाहिए। इतनी चिशेषना है कि यह छोभसंज्यक्रनका हो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है।

१ बा॰ बा॰ प्रस्योः 'बहुसंब॰ सादा॰' हति पाठः ।

९ वा॰ वर्वी 'मापसं॰ ह्यस॰ (हुमम्।॰) बोमसंब॰' इति पाठः ।

३२९, लोमसंज० उक्क० पदेव्यं ० पंचणा०-चदुर्दस०-सादा०-जस०-उषा०-पंचंत० णि० वं ० संखेजदिमाग्णं वं ०।

३३०. इत्यि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-चेंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० वं० संखेज्जदिभाग्णं० वं०। बीण-पिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० वं० णि० उक्क०। णिदा-पयला-अष्टक०-अप-दु० णि० अणंतभाग्णं वं०। सादा०-दोमारि-अगिलि०-बुंड०-ओगिलिअंगी०-असंप०-दोआणु०-उज्जो०-अपसत्य०-चिराधिर-सुभासुभ-दुभग-दुस्सर-अणादे० -अजस०-उचा० सियाण संखेज्जदिभाग्णं वं०। असादा० देवाणु०-चेठिक०-बेठिक०-अंगो०-देवाणु०-णीचा० सिया० उक्क०। चदु संज०-[जस० णिदाणिहाण भंगो]। चहुणोक० सिया० अणंतभाग्णं वं०। पंचसंडा०-पंचसंघ०पस्य०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया वं० सिया अषं०। यदि वं० णि० तं तु० संखेजदिभाग्णं वं०। यदि वं० णि० तं तु० संखेजदिभाग्णं वं०।

३३१. णबुंस० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-चदुंदंस-पंचंत० णि^०० बं० संखेजदि-

३२९. छोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है।

३३०. स्त्रीवेदका उत्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पक्कोन्द्रयज्ञाति, तैजसभरीर, कार्मणभरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलपुचतुष्क, असचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तराधका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुरक्ष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रक, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। सातावेदनीय, दो गति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गा-पाङ्ग, असम्प्राप्तासूपाटिका संहतन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीति और उद्यात्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, देवगति, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कराचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्यलन और यशः कीर्तिका भक्क निद्वानिद्वाके समान है। चार नोक्षायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहतन, प्रशस्त विहायागति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो कदावित् उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और कदाचित् अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। याद अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यात-भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करतः है।

२२१. नपुसकवेदका उक्कष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शना-बरण, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन

¹ ता० आ॰ प्रत्यो॰ 'चदुसंज॰ ओर्थ। पंचसंडा॰' इति पाठः। २. झा०मती 'पंचणा॰ चदुसंज॰ पंचंत्र॰' इति पाठः।

३३२. पुरिस० उके० पदे०बं० पंचणा०-चदुरंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० वं० संखेजदिमाम्णं वं० । कोघसंज० दुमाग्णं वं० । माणसंज० सादिरेयं अनुस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थानबुद्धि तीन, मिध्यात्व और अनुन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्वा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। साताबेदनीय और उच्चगीत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, नरकगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और नीचगोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करना है। चार संज्वलनका मङ्ग स्वीवेदी जीवोंके समान है। चार नोकपायोका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्कोपाङ्ग, छह सहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विद्वायोगति, त्रसादि चार युगळ, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसश्रारीर, कार्मणश्रारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुख्यु, उपधात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनु-त्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३२२. पुरुषवेरका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दशानावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, वचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे सक्यातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। क्रोधसञ्चलका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। मान संव्यवनका नियमसे

आ॰प्रती 'आदाव यावर जोवा॰' इति पाठः । २, आ॰प्रती 'संसेजदिभागूणं इं॰ सिवा॰'

दिवहमान्नं वं । मायासंब ० तोमसंब ० णि० वं ० संखेजगुणहीयं वंधदि । ३३३. हस्स ० उक० पदे ०वं ० पंचया ० चहुदंस ० [उच्या ० -] पंचतं ० वि०

र २२. हस्स- उक्क० पद-वक्क० पत्रवा०-बहुदस- । उञ्चा०- । पत्रवर कि । कि अणुक संख्येत्रसम्पूर्ण वं । कि ज्ञान-असदा-असदा-अस्य । अस्य असदा-असदा-अस्य । अस्य कि अस्य क्षेत्रसम्पूर्ण वं । विद्यान-असदा-अस्य । अस्य क्षेत्रसम्पूर्ण वं । साद-अस्य । अस्य क्षेत्र । स्य क्षेत्र सम्पूर्ण वं । अहस्य क्षेत्र स्थान संख्येत्र सिमाण वं । विद्यान क्षेत्र विद्यान अस्य । विद्यान क्षेत्र विद्यान विद्यान

३३४. अरदि³० उक्क० पदे ब्वं० पंचणा०-चदुदंस०-पंचिदि०-तेजा०-क०-

बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक ढेढ़ भागहीन अनुक्तृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मायासंज्वातन और लोभसंब्वतनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातगुण-होन अनुकार प्रदेशवन्ध करता है।

३११. हास्वका उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, ज्यागोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । निद्वा, प्रचका, असातावेदनीय और अप्रस्थाख्यानावरणचतकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे छरहुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, औदारिकश्ररीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आक्नोपाङ्ग, वर्णचतुरक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुळ्युचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि दो युगल, अवशाकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागतीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। आहारकद्विकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संन्वस्त और पुरुषवेदका अङ्ग निद्वाके समान है। रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे करकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, समचतुरक्तसंस्थान, बैकियिकशरीर, बैकियिकशरीर बाङ्कोपाङ्ग, वक्कवभनारावसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, बाहेब और तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। बदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशकोर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो द्विस्थानपतित बन्ध करता है, कदाचित् संस्थातमागृहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और कदाचित् संख्वातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार रतिकी सच्यतासे सन्निकर्ष जानमा नाहिये।

३३४. अरितका व्यक्तप्ट प्रदेशघन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण,

ता॰प्रती 'पंचणा॰ पंचंत॰' इति पाठः । २. भा॰प्रती 'पंचिदि॰ ओशक्ति॰ भंगो॰' इति
पाठः । ३. ता॰भा॰प्रत्योः 'रहि भयदुगुं॰ अस्दि॰' इति पाठः ।

बष्ण ० ४ जमु ० ४ -तस ० ४ - णिमि० - ज्वा० - पंचंत० णि० वं० णि० अणु० संखेजिदमाणूणं गं० | सिद्ध ० - ज्या से अपित - अपेरालि - अपे

३३५. भय० उक्क० पदे०वं के पंचणा०-चदुदंसणा०-उन्ना०-पंचंत० णि० **वं**० संखेजदिभागृणं वं०। णिहा-पयला-असाद०-अपचक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्कः । सादा०-मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तिजा०-क०-] ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-पश्चिन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणञ्चरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागहीन अनुकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आक्रोपाक्क, मनुष्यगत्यात्पूर्वी, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अग्रुम और अथशक्कोर्तिका कदाचित् बन्ध इत्ता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे सस्यान भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और यशःकोतिका भङ्ग निद्राके समान है। निद्रा, प्रचला, शोक भय और जगण्याका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हेबगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्जर्घभनाराचसंहनन, देवगश्यानुपूर्वी और तीर्थकर प्रकृतिका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। समचतुरस्रसस्थान, प्रशस्त विहारीगति, सुभग, सस्बर और आदेशका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुरक्तृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सिक्कर्य जानना चाहिए।

३३५. भयक। उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, वक्योत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागाद्दीन अञ्चल्क प्रदेशवन्य करता है। निर्द्रा, पत्रका, असातावेदनीय, अग्रत्याख्यानावरण चतुक्क और चार त्रोक्षायका कदाध्वत वन्य करता है। वार वन्य करता है तो नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वार वन्य करता है तो नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वारावोदनीय, महुत्यमात, प्रकृत्यिक्त, वाराविकरारीर, वेद्यावर्थी, अप्रतिविकरारीर, कार्यावर्थी, अप्रतिविकरारीर, कार्यावर्थी, अप्रतिविकरारीर आक्षांचान्न, वर्णचतुष्क, महुव्यात्र वीद्यावर्थी, अपुरत्वपुष्वक्र, समचतुष्क,

प्राच्यती 'अपवस्त्वाण॰४ सिया॰ तं तु॰ सिया॰ त तु॰ झर्णतमानूषं बं॰।' इति पाठः।
 ता॰पती 'पवं सोगं भय। १प॰ प॰' इति पाठः।

मञ्जसायु॰-अगु॰४-तस०४-बिराषिर-सुमासुम-जनस॰-बिमि॰ सिया॰ संखेजदिमाण्णं वं॰। जस इस्समंगों। पषरचाणः ४ सिया॰ तं तु॰ ज्ञणंतमाय्णं वं०। चदु-संज॰-पुरिस॰-[सस॰] बिदाए मंगो। इगुं० वि॰ वं० वि॰ उक्त०। देवम॰-वेउन्वि॰-आहार॰दुग-समचदु०-वेउन्विजंगो०-वजरि॰-देवायु॰-पसत्य० - सुभग-सुस्सर-आवे॰-तित्य० सिया॰ तं तु॰ संखेजदिमाग्णं वं०। एवं दुर्गु॰।

३२६. णिरयाउ ० उक्क० पदे० वं ० पंचणा० गवरंस० असाद० मिच्छ०-वारसक० गांस०-अरहि-सोग-भय-दु गुं०-णिरयग०-पंचिदि० ने उच्चि०-तेखा०-क०-बुंढ०-वेउचिव०अंगो०-वष्ण०४-णिरयाणु०-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४-अविरादिछ०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० वं ० णि० अणु० संखेआदिमाग् णं वं ०। चदु संख० णि० वं ० णि० संखेआगुणहीणं वं ०। तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०वं ० पंचणा०-गवरंस०-मिच्छ०-वारसक०-अय-दु०-तिरिक्ख०-तिष्णिसरीर-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-[णीचा०] पंचंत० णि० वं ० णि० अणु० संखेआदिमागुणं वं ०। दोवेद०-क्रण्णोक०-

विथर, अस्पिर, शुप्र, अशुप्प, अयराःकीर्ति और निर्माणका दश्यित् वन्य करता है। यांद वन्य करता है तो इनका निवससे संख्यातभागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। यांद वन्य करता है। वांद स्वयं करता है। वांद स्वयं स्व

आ०प्रती 'इत्सरिक्षंगो' इति पाठः । २. आ०प्रती 'सिचा॰ कणंत्रकातृणे' इति पाठः ।
 ता०प्रती 'वृत्रं हुगु-(च्') । जिरवाड॰ 'इति पाठः ।

पंचवा- उक्केश- जोशास्त्र जंगो - इस्संव - पर - उस्सा - आदाउको - दोविहा - ससादिप्वयुग - अव - सिया - संसे अदिमागूणं यं । यह तंब । णि वं । णि अपु - संसे अपुणदीणं यं । पुरिस - अस - सिया - संसे अगुणहीणं यं । मणुसाउ - उक ' क
पदै - वं - पंचवा - इदंस - अहुक - भय-हु - मणुस - पंचिदि - ओरासि - तेजा-क ओरासि - अंगो - नच्च - अमुसाय - अपु - उप - तस - न्वाहर - पणे - णिरि - पंचवं त
णि वं - णि - अपु - संसे कादिमागूणं यं । योणिशिद्द - हे - सादासाद - मिच्छ अणंताय - अच्या - इस्से - अस्ते च - यर - उस्सा - दोविहा - असाद - भिच्छ अणंताय - अच्या - हिस्से - अस्ते च - यह संसे अदिमागूणं यं । यह संसे - विद्या - विद्या - संसे अदिमागूणं यं । यह संसे - विद्या - विष्या - विद्या - विद्या - विद्या - विद्या - विद्या - विद्या - विष्या - विद्या - विद्

शरीर आक्रोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, हो विहायोगित. त्रसादि नौ यगुळ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। चार सञ्चलनका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्टृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कवाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कथाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पश्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कामणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुख्यु, उपचात. त्रस. बादर, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। स्यानगृद्धि तीन, सातावेदनीय. असाताचेदनीय, मिध्यास्व, अनन्तान्वन्धी चार, छह नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, परचात, उच्छवास, दो बिहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर आदि पाँच युगत, अयश:कीति, तीर्थक्र और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करना है। चार संस्वलनका नियससे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रवेशवन्य करता है। वैवायुका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव गाँच झानावरण, छह दर्शमावरण, सातावेदनीय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चोन्द्रयजाति, वैक्रियिकशरीर, तेबसरारीर, कामणशरीर, समचतुरससंस्थान, वैकिविकरारीर आक्नोपाक्क, वर्णचतुरक, देव-गत्वानुपूर्वी, अगुरुखपुष्तुष्क, प्रश्नस्त निहाबोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण, व्यवीत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्त्र करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागृहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कृषाय, स्रोवेद, आहारकदिक और तीयक्कर प्र तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

आ०प्रती 'मणुसाणु० उद्ध०' इति पाठः । ३. ता०बा०प्रत्वोः 'वेवगदियंच वेठव्यि०' इति वाठः ।

चदुसंब विव वं विव संखेखानुः । पुरिस विस्ताव संखेखानुः । उसः विव संखेखानुः ।

३३७, णिरयग० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-चट्टदंस०-पंचंत० णि० वं० णि० अणु० संखेआदिभागूणं वं०। श्रीणमिद्धि०३-असाद०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-णवुंस०-णीचा० णि० वं० णि० उक्क०। णिहा-पयला-अड्डक०-अरदि-सोग-अय-दु० णि० वं० णि० अर्णतभागूणं वं०। चट्टसंब० मिच्छत्तमंगो। एवं सच्वाणं णामपगदीणं मिच्छत्त-पाओग्याणं णामसत्थाणभंगो'। एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर०।

३२८. तिरिक्ख० उक्त० पदे०वं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० वं० णि० संखेजिदिभागूणं वं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४-णांच्य०-णोचा० णि० वं० णि० उक्त०। णिहा-पयरा-अड्डक०भय-दु० णि० वं० अणंतभाग्णां वं०। सादा० सिया० संखेजिदिभाग्णं वं०। असादा०-बादर-सुहुम^००-पत्ते०-साधार० सिया० उक्त०। चहुसंज० भिच्छत्तभंगो। चहुणोक० सिया० अणंतभाग्णां वं०। णामाणं

सल्यातभागद्वीन अनुत्कृष्ट प्रदेशयन्य करता है। चार सञ्चलनका नियमसे दन्य करता है जो इनका नियमसे सल्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषदेदका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इसका नियमसे सल्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। यदा-कीर्तिका नियमसे वन्य करता है जो इसका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है।

२३७. नरकगतिका उक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दश्चेनावरण और पाँच अनतरायका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागदीन अनुष्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थानगृद्धि तीन, असातावेदनीय, मिध्यास, अनत्तातुवन्धी मार, नपुंचक वह और नीच गोत्रका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निव्रा, पचला, आठ कवाय, आती, श्रोक, मय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। निव्रा, पचला, आठ कवाय, आती, श्रोक, मय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्यकनका भङ्ग मिध्यास्व के समान है। इसी प्रकार निय्वास्व प्रायोग्य सब नामकर्मकी प्रकृतियोका मङ्ग नामकर्मके सम्यान सिक्रवर्षके समान है। इसी प्रकार नियमसे कन्य नामकर्मके सम्यान सिक्रवर्षके समान है। इसी प्रकार निर्माणका नरकारवानुपूर्वी, अप्रशास विद्यायोगित और उत्तयका सिक्रवर्षके समान है। इसी प्रकार निर्माणका स्वर्णका स्वर

३३८. तियंश्चगतिका उन्तृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है। किन्तु यह इनका संख्यातभागदीन अतुन्नुष्ट प्रदेशक्य करता है। स्थानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अन्ततातुवन्यों चार, नपुंसकवेद बीर नीयगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे उन्नुष्ट प्रदेशक्य करता है। निव्रा, प्रचला, आठ क्याय, भय और जुगुष्धाका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुन्नुष्ट प्रदेशक्य करता है। सातावेदनीयका कदाचित् बन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इसका नियमसे संख्वातभागहीन अनुन्नुष्ट प्रदेशक्य करता है। असातावेदनीय, वादर, सुन्म, प्रायेक और साधारणका कदाचित् बन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। चार संक्वतन्तका भग निष्यालके

ता०४तौ मिष्णप्रयाभोगाणं । वाससस्याणमंगो इति पाडः । १. ता०प्रतौ 'बसाद० सह० कुमुम०' आ०पतौ 'असादा० वारतक० खुदुम०' इति पाडः ।

सस्याणकंषो । एवं तिरिक्खमदिकंगो एर्र्ड्र -जोरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वष्ण०४-विरिक्खाणु०-जगु०-उप०-थावर०-बादर-सुद्दुम-जपञ्ज०-पत्ते०-साधार०-अधिरादिपंच-विरिक्ष ।

३३९. मणुसग० उक्कः पदे०वं० हेट्टा उचिर तिस्क्लिगदिसंगो । णामाणं सस्यानसंगो । एवं मणुसाणु० ।

३४०. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० संसेअदिमागूणं बं०। धीणगिदि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इस्थि० सिया० उक्क०। णिदा-पयला-अइक्क०-चदुणोक० सिया० तं तु० अणंतमागूणं बं०। सादा० सिया० संस्केअदिमागूणं बं०। कोघसंज० णि० वं० दुभागूणं वं०। माण-संज० सादिरेयं दिवङ्गमागूणं बं०। मायासंज०-सोमसंज० णि० वं० संस्केअगुणहीणं बं०। पुरिस०-जस० सिया० संस्केअगुणहीणं०। भय-दु० णि० वं० तं० तु०

समान है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग खायान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार विश्वेद्वातिके समान एकेन्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, वैजसशरीर, कामण्यार, दुण्डसंथान, वर्णचतुष्क, विश्वेद्वारानुपूर्वी, अगुरुळ्यु, उपधात, स्थावर, वादर, सूचन, अपर्योप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर आदि गाँच और निर्माणकी गुरुयतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३९. मतुष्यगतिका उक्कष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका मङ्ग तिर्वञ्जगतिकी मुख्यतीसे कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३४०. देवगतिका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, अवयोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागहीन व्यनस्कृष्ट प्रवेशवन्य करता है। स्यानगृद्धि तीन, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और सीबेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचळा, आठ कषाय और चार नोकपायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है भीर अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्य करता है तो नियमसे अनन्तमागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सातावेदनीयका कराचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातमागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध-संबद्धनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मानसंबद्धनका निवससे बन्ध करता है जो इसका निवससे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रवेशवन्य करता है। मायासंब्वछन और लोभसंव्यक्तका नियमसे बन्ध करता है जो इनका निषमसे संख्यातराणा होन अनुत्कृष्ट प्रवशवन्य करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्ब करता है। भय और जुगुप्साका निषमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनका अरुष्ट प्रदेशकम्ब भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशकम्ब भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशकम्ब करता है तो नियमसे अनन्त्रभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। बामकमेकी प्रकृतियोंको अंग अर्णतभाग् णं णं ० । षामाणं सत्याणमंगो । एवं देवगदिमंगो वेउच्वि ०-सञ्चदु ०-वेउच्चि ० अंगो० देवाण ० प्सत्य ० समग्र सस्सर-आदे० ।

३४१. बीइंदि'०-तीइंदि०-चदुर्गि०-पंचिदियजादीणं हेड्डा उचिं तिरिक्खणदि-मंगो । णामाणं सत्याणमंगो । एवं ओरालि०अंगो०-असंपच०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस-पज्जच-चिर-सुभाणं । णवरिं एदेसिं णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणं कादर्व्व ।

३४२. आहार० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदु दंसणा०-सादा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेजदिआग् णं बं०। णिदा-पयला० सिया० उक्क०। कोचसंज० णि० दुआग् णं बं०। माणसंज सादिरेयं दिवहुआग् णं बं०। माणसंज०-होअसंज० पुरिस० णि० बं० णि० संखेजसुण्य०। इस्स-रदि-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। णामाणं सत्याणसंगो। एवं आहार०ग्रंगोवंग०।

३४३. णग्गोघ० उक० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं०

स्वस्थान सन्तिकर्षके समान हैं। इस प्रकार देवगतिके समान वैक्रियिक्शरीर, समयतुरस्व संस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, देवगत्यातुपूर्वी, प्रशस्त विद्दार्थोगति, सुभग, सुखर ओर आदेयकी मुख्यतासे सम्निकर्ष जानना चाहिए।

३४१. द्रीन्द्रियजाित, त्रीन्द्रियजाित, चतुरिन्द्रियजाित और प्रश्लेन्द्रयजाितका चल्कृष्ट प्रदेशस्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी ओर बादको प्रकृतियोंका मङ्ग निर्वक्षातिकों प्रदेशस्यासे कहे गये साम्रकदेके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका मङ्ग लक्ष्यान साम्रकक्षेके समान है। इसी प्रकार औदारिकारांर आङ्गोपङ्ग, असम्प्रामासूपाटिकासंहनन, परमान, जच्छ्यास, आनप, च्यांत, त्रस, पर्योग, स्थिर और हुम प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सम्मिक्षक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इम प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सन्निक्षक कहते समय नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सम्रिकक्षक समान करना चाहिए।

2४२. आहारकरारोरका उच्छा प्रदेशकन्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय उच्चांग्र और पाँच अन्तरावका निवससे बन्ध करता है जो इनका निवससे संस्थात मागहीन अनुक्रष्ट प्रदेशकन्य करता है। निद्रा और अच्छाका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका निवससे उच्छा प्रदेशकन्य करता है। कोच-संज्वळनका निवससे बन्ध करता है जो इसका निवससे दो भागहोन अनुक्रुष्ट प्रदेशकन्य करता है। मानसंज्वलाका निवससे बन्ध करता है जो इसका निवससे साधिक ठेड्र भागहीन अनुक्ष्ट्र प्रदेशकन्य करता है। मावासंज्वलान, जोनसंज्वला और पुरुषवेदका निवससे सम्य करता है जो इनका निवससे सन्य करता है जो इनका निवससे वर्ष्ट प्रदेशकन्य करता है। हास्य, रात, भय और जुगुण्याका निवससे सन्य करता है जो इनका निवससे वर्ष्ट प्रदेशकन्य करता है। तामकमकी प्रकृतियाँका मङ्ग स्वस्थान सिकवर्षक समान है। इसी प्रकार आहारकरारीर आङ्गीपाङ्गको प्रस्थतासे सिन्धकर्ष कानमा चाहिए।

३४३. न्यमोषपरिमण्डलसंस्थानका ज्व्हृष्ट प्रदेशवन्य करनेवास्ता जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरावका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थात-

ता०प्रती 'वेबगदिसंगो । वेड॰' इति पाढः । २. ता०प्रती 'बादे॰ बीह् दि॰' इति पाढः ।
 ता०बा०प्रत्योः 'विद-सुम्मगणं व्यवति दिति पाढः ।

णि । संखेजितमान् णं वं । वीषानिद्धि ०३-मिच्छ ०-अषंताषु ०४ णि ० वं ० षि० उक्क । णिद्द-पयला-अट्टक०-अय-दु० णि० वं ० अणु० अणंतमान् णं वं ०। साहा ०-उषा० सिया० संखेजितिमान् णं व०। षद् संख० तिरिक्खनिदर्भनो । पुरिस० सिया० संखेजिनुणहीणं० वं ०। असादा०-इत्यि०-णांचे०-णींचा० सिया० उक्क०। षदुणोक० सिया० अणंतमान् णं वं ०। णामाणं सत्याणमंतो । एवं तिण्णसंठा०-चदुसंघ०।

३४४, वक्करि० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं० संखेकदिमागूणं वं०। थीणगिद्धि०३-[असादा०-] मिच्छ०-अर्णनाणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० सिया० उक्क०। णिद्दा'-पयला०-अपचक्खाण०४-भय-दु० णि० वं० तं० तु० अर्णतमागूणं वं०। सादा०-उचा० सिया० संखेकदिमागूणं वं०। पचक्खाण०^५४-णि० वं० अर्णतमागूणं वं०। चदुसंज० तिरिक्खगदिमंगो। पुरिस०-जस० सिया०

ता॰मती 'उनक॰ णिहा' इति पाठः । २. ता॰मती 'संनेज्ञदिमाने (गू॰) पण्डनकाण ४' इतिचाठः ।

संसेजस्वाहीः । यह गोकः सियाः तं तुः अणंतमाग् गं वं । गामाणं सत्थाणमंगो । ३७५. जिल्लाः विकारः प्रदेशाः प्रवासन्यस्य स्थानिकार्वे

३४६. णिरएसु आमिणि० उक्क० पदे०वं० चहुणा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०।

प्रदेशवन्य मी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य मी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका निषमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३४५. तीर्थक्ररप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाटा जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, देवगति, पश्चिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतरस्र-संस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुछपुचतुष्क, बिहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुरवर, आहेब, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अनन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, असाताबेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, हुम्य, रति, अरति और शोकका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अग्रुम और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसव्यक्तनका नियमसे यन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेड भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्यलन, लोभसंज्यलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे सख्यातगुणहीन अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। भय और जुगुष्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। बना:कीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगण-हीन अनुस्कार प्रदेशबन्ध करता है। नीचगोत्रका मङ्ग नपुंसकवेदकी मुख्यतासे कहे गये सन्निक्षके समान है। अर्थात् नपुंसकबेदका ब्लाइ प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका अन्य प्रकृतियों के साथ जिस प्रकार सन्तिकर्ष कहा है उसी प्रकार नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेबाछे जीवका अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष कहना चाहिए।

३४६, नारकियोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव बार

१, भा॰मतौ 'सोभसंज॰ णि॰' इति पाठः।

योणनिद्धिः ३-दोबंदः - भिच्छः - अणंताणु ०४-इस्थिः - णवुंसः - - जा । - सित्यः - [दोनोदः]
सियाः वं ः उक्षः । छदंसः - बस्सकः - अयः - ए। वं ः तं तुः अयंतभाग्णं वं ः ।
पंचणोकः सियाः तं तुः अणंतभाग्णं वं ः । दोनदिन्हस्संटाः - छस्संपः - दोआणुः दोवद्दाः - श्विराद्विष्ठयुगः सियाः तं तुः संखेजदिभाग्णं । पंचिदिः - विण्यिसरीरओराख्विः - अयोः - वण्ण ०४-अणुः ०४-सुसः ०४-थिमिः णिः वं ः तं तुः संखेजदिभाग्णं वं । एवं चदणाणाः - दोवेदणीः - पंचतः ।

३४७, णिहाणिहाण् उक्क० पहे० वं पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४पंचंत० णि० वं ० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० वं ० णि०
अणंतभाग् णं वं ० । दोवेदणी०-इस्थि०-ण्युंस०-मणुस०-मणुसाणु०-उजो०-दोगोद०
सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अणंतभाग् णं वं घंदि । सेसाणं जामाणं आमिणि०क्वानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उच्छि प्रदेशकचर,
करता है । स्थानपृद्धिकक, दो वेदनीच, मिस्याय, अनन्तायुक्यीचनुकक, क्वीचेद्र, नपुंसकचर,
करता है । स्थानपृद्धिकक, दो वेदनीच, मिस्याय, अनन्तायुक्यीचनुकक, क्वीचेद्र, नपुंसकचर,
करता है । स्थानपृद्धिकक, दो वेदनीच, सियमसे अन्ता है । यदि वन्य करता है । इत्का नियमसे उच्छ प्रदेशकच्य करता है । छन्द वह इनका अकुछ प्रदेशक्य भी करता है और अनुत्कष्ट प्रदेश-वन्य भी करता है । वित्त अनुत्कष्ट प्रदेशकच्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागदीन
अन्तकक प्रदेशकच्य करता है । पाँच नोक्यायक हिर्मोद्य वन्य करता है के स्वर्णाच क्या

बन्ध भी करता है। वार्ष अनुक्कष्ट प्ररेशक्य करता है तो इतका नियमसे अनन्तमागहीन अजुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। पाँच नोक्यायक करा है। यह अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट अक्ष्य करता है। यो गति, अष्ट संस्थान, छह संस्थान, दो आवुष्टी, दो विहायोगित और स्थिर आरि क्ष्य खुगळ्क करावित कर्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट अर्थेशक्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट अर्थेशक्य करता है। यदि अनुक्कृष्ट अर्थेशक्य करता है। क्षित् वह इतका उत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। क्षित् वह इतका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विस्त अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विस्त अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विस्त अनुक्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। विस्त अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। विस्त अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष वह वा इसिक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसि अनुक्ष प्रदेशक्य करता है। इसिक्ष करता है। इसिक्ष करता क्षेत्रक्ष अनुक्ष करता है। इसिक्ष करता है इसिक्ष करता है। इसिक

१. भा०प्रतौ 'जबुंस॰ उक्क॰' इति पाठः।

भंगो । णवरि तित्ययरं णत्थि । एवं दोदंसणा०-भिच्छ०-अर्णताणुवं०४–इत्थि०-णदुंस०-णीचा० ।

३४८. णिद्दाए उक्क० पदे०वं पंचणा०-पंचदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-सय-द ०-उचा०-पंचंत० णि० वं ० णि० उक्क० । दोबेदणी०-चद् णोक०-तित्य० सिया० उक्क० । मण्डस०-पंचिदि०-ओरालि० तेजा०-क०-समचद्द०-ओरालि०ध्रेगो०-बजार०-बण्ण०४-मण्डसाणु०-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिम० णि० वं ० णि० तं तु० संखेजदिमाग् णं वं ० । थिराथिर-सुमासुम-जस०-जनस० सिया० तं तु० संखेजदिमाग् णं वं ० । एवं पंचदंस०-बारसक०-सचणोक० ।

३४९, तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवर्दस० - मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर०-ओरा०आंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचत० णि० बं० णि अणु० संखेजदिमागूणं बं०। दो-वेद०-सचणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-उज्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० संखेजदि-

समान है। इतनो विशेषता है कि इसके तीर्थं हुए प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिध्यास्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, त्रोवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकीर्भुसुस्थतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४८. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, पाँच दर्शनावरण, वारह कपाय, पुरुपवेद, स्वय, जुरुपदा, उच्चमोन्न और पाँच अन्तरायका नित्यससे वन्न करता है जो इनका नियससे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो देनचा, चार नियससे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियससे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सुद्यान्य करां है। यदि वन्य करता है। तो इनका नियससे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सुद्यान्य अप्तान्य करां है। सुद्यान्य प्रदेशवन्य करता है। स्वर् अनुस्वर्ण प्रदेशवन्य करता है। स्वर्ण अस्तर नियससे संद्यातभागान्य करां करता है। स्वर्ण अस्तर, जुभ्म, अप्रान्य अप्तान्य संस्थान अप्तान्य करता है। स्वर्ण अस्तर, जुभ्म, अप्रान्य अप्रान्य करता है। स्वर्ण अस्तर, जुभ्म, अप्रान्य अप्रान्य करता है। स्वर्ण अस्तर, जुभ्म, अप्रान्य अप्रान्य करता है तो उन्कृष्ट प्रदेशवन्य अप्तान्य करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। स्वर्ण अस्त्यान्य करता है तो अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। स्वर्ण अस्त्य करता है तो इनका नियससे संस्थातभागान्य अप्तान्य अप्तान्य करता है तो प्रकृष्ण पर्यंच वर्शनाव्य अप्तानका नियससे संस्थातभागान्य अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो उनका प्रवान्य करता है तो इनका नियससे संस्थातभागान्य अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो प्रकृष्ण पर्यंच वर्शनावरण, वार्ष कराय और स्वरान्य करता स्वर्ण वर्ण स्वरान्य अप्तानका वर्ण स्वर्ण करता से सन्कृष्ट व्यवस्थान वर्ण करता है तो प्रकृष्ण पर्यंच वर्शनावरण, वार्ष कर्ण वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण वर्ण स्वर्ण स्व

२४९. तियंश्वायुका उक्तृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानाबरण, नौ दर्शनाबरण, मिध्यात्व, सोळह कथाय, भय जुगुप्सा, तियंश्वगति, पश्चिन्द्रजाति, तीन रारीर, औदारिकश्ररीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचलुष्क, तिर्वश्वगरवातुर्वी, अगुरुळ्यु, चलुष्क, त्रसचलुष्क, निर्माण, नीचगौत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागद्दीन अनुरुद्ध प्रदेशबन्ध करता है। दो चेदनीय, सात नोक्ष्याय, छह संस्थान, छह संह्मत, ष्योत, दो विद्यायाति और स्थिर आदि छह युगुळ्का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो

ता०प्रतौ 'सेसायं आभिणि०म'गो' इति पाठः ।

भाष्यं रं । मञ्जात ' उक्कः प्रदे ० वं व पंचणा - छदंस्या ० - माणुसम ० - भाणुसम ० - भाणु ० भाणु ०

३५०. तिरिक्ख०ै उक्क० पदे०बं० पंचणा०-बीणगिद्धि०३-सिन्छ०-अर्णतासु-बं०ध-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-सय-दु० णि० बं० णि० अर्णतमामणं वं० । दोवेदणी०-इत्यि०-णातुंस० सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अर्णतमामणं वं बं० । बामाणं सत्याणमंगो । एवं तिरिक्खाणु०-उओ० ।

३५१. मणुस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। बीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-भिच्छ०-अणंताणु०४-इत्यि०-गबुंस०-[दोगोद०] सिया०

इनका नियमसे संस्थातभागद्दीन अतुंकुट्ट प्रदेशबन्य करता है। मतुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्य करतेषाळा जीव पाँच क्षानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कथाय, भय, जुगुत्मा मतुष्यगित, पक्षित्रवाति, औदारिकशरीर, वेतसकारीर, कार्यणकारोर, औदारिकशरीर आङ्गीपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मतुष्याययातुष्की, अगुरुत्वपुष्ठ, उत्तरपुष्ठ, स्वाच्याययातुष्की, अगुरुत्वपुष्ठ, अस्वयुष्ठ, तिमाण और गाँच अन्तरायक्ष तियमसे यन्य करता है जो इनका नियससे संस्थातभागद्दीन अनुत्वष्ट प्रदेशकन्य करता है। स्थानगृद्धित्रक, दो बेदनीय, मिच्यात्य, अनन्तातुष्क्यीयुष्ठ, सात नोक्ष्याय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विद्यायोति, स्थिर आदि छह युग्य, तीयहर और दो गोत्रका क्राचित् वन्य करता है। यदि कम्ब करता है तो इनका नियमसे संस्थातमाहीन अनुतक्ष्य प्रदेशकन्य करता है।

१५०. विर्यक्षगतिका उत्कृष्ट प्रदेशकन्य करनेवाडा जीव पाँच झानावरण, स्त्यानगृद्धित्रक, मिश्यास्त, अनन्तातुबन्धीचतुष्क, नीचनोत्र जीर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। इह दर्शनावरण, बादह कथाय, अय और जुगुष्माका नियमसे अन्तरनागादीन अनुतकुष्ट प्रदेशकन्य करता है। दे वेदनीय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कराचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। दे वेदनीय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कराचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। सम्बन्धित अनुतकष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सम्बन्धित अन्तरनागादीन अनुतकष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समकर्मकी अनुतन्तरागादीन अनुतकष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समकर्मकी अनुतन्तरागादीन अनुतकष्ट स्त्रीय स्त्रीय स्त्रीय विर्यादिक स्त्रीय स

२५१. मतुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण और पाँच धन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्त्यान-शृक्षित्रिक, दो वेदनीय, मिष्यात्व, अनन्तानुबन्धीयतुष्क, स्त्रीवेद, नपुसक्वेद और दो गोत्रका कदायित् बन्च करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है।

ता०प्रतौ 'संस्तेजदिमागृवं। मलुसाद०' इति चाठः। १. ता०प्रतौ 'संस्तेजदिमागृ०। [प्रतिविद्यान्तर्गतः पाठः तावपत्रीवमृत्वमतौ पुनक्कोत्सि]। तिरिक्त इति पाठः। १ सा०प्रतौ 'लवुंत० स्विवा० सर्वत्रमागृवं वं° इति पाठः।

उद्यः । इदंसमा०-पारसक०-सय-दु० थि० वं० कि० तंतु० अणंतसम्पूर्णं वं०। पंचमोक० सिया० तंतु० अणंतमामृत्रं वं०। शासाधं सरवावसंगो ।

३५२. पॅचिंदि - जोराखि० - तेजा०-क० - समयद्० - जोराखि० जंबो० - वजार०-वन्ब०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्य०-सस०४-विहादितिन्वियुग०-सुमय - सुस्वर - जादे०-विमि० हेड्डा उवरिं मणुसगदिभंगो। गामाणं सत्याणकंगो। पंचसंठा०-पंचसंष० अप्पसत्य-दुमग-दुस्सर-अणादे० हेडा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो। गामाणं सत्याणकंगो।

३५२. तित्य उक्क पद्रे०वं० पंचका०-छदंसमा०-बारसक०-प्रुत्सि०-सय-दु०-उचा०-पंचत० णि० वं० णि० उक्क०। दोनेद०-चदुणोक० सिया० उक्क०। णामाणं सत्याणसंगो।

३५४. उचा॰ उक्क॰ पदे॰बं॰ पंचगा॰-पंचंत॰ णि॰ बं॰ णि॰ उक्क॰। धीर्णगिद्धि॰३-[दोवरणी॰]-सिन्छ॰-अगंताणु॰४-इस्थि॰-गवुंस॰-पंचसंटा॰-पंचसंघ॰-अप्पसत्य॰द्भग-दुस्सर-अणादे॰-तित्य॰ सिया॰ उक्क॰। छदंस॰-बाससक-मय-दु॰

छह दर्शनावरण, बारह क्वाय, भय और जुगुष्माका नियमसे बन्य करता है। किन्तु बह इनका उन्हेंछ प्रेराबन्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशबन्य भी करता है। यदि अनुन्कुष्ट प्रदेशबन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागद्दीन अनुरुष्ट प्रदेशबन्य करता है। पाँच नीकथायका क्दाचित् बन्य करता है और कदाचित् बन्य नहीं करता। यदि बन्य करता है तो उन्हेंच्ट प्रदेशबन्य भी करता है और अनुन्कुष्ट प्रदेशबन्य भी करता है। यदि अनुन्कुष्ट प्रदेशबन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागद्दीन अनुरुष्ट प्रदेशबन्य करता है। नाम कमकी प्रकृतियोक्त भक्ट स्वयान स्विकर्यक समात है।

२'१२. पश्चेन्द्रियजाति, जीदारिकसरीर, तैजसकारीर, कार्मणकरीर, समचतुरस्वसंखान, जीदारिकरारीर आङ्गोपाङ्क, वश्चवेमताराचर्सहमन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्वार्तुपूर्वी, अगुरुकपु, चतुष्क, प्रसन् विहायोगित, तसचतुष्क, स्वर क्षादि तीन वुग्वक, सुमग, सुस्वर, आदेव और विहायोगित, तसचतुष्क, स्वर क्षादि तीन पुग्वक, सुमग, सुस्वर, आदेव और वान्द्रि श्रक्ति श्रक्ति क्षाद्रे का सुक्ष मनुष्यगतिकी सुरुवता है न प्रकृतियाँका कहे गये सिष्कवर्षक समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका मङ्ग स्वरमान क्षाद्रे का स्वरमान क्षाद्रे का सुक्ष सुक्य सुक्ष सुक्य

२५२. तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशक्त्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह्न दर्शनावरण, बारह कथाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्ता, उचनोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और चार नोक्यायका कहाचित् बन्य करता है। यदि बन्य करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। जासकर्मकी प्रदृतियोंका मङ्ग स्वस्थान सिष्ठकर्षे समान है।

498. जबगोत्रका वस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण और पाँच भन्तरायका नियमसे वस्थ करता है जो इनका नियमसे व्यक्तस्य प्रदेशबन्ध करता है। स्यानगृज्ञित्रिक, दो वेदनीय, मिध्यास्त, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, क्षोवेद, नपुंसकदेद, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, अमरास्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और तीर्थक्कर प्रकृतिका कर्याचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे व्यक्कर प्रदेशक्तम करता णि॰ पं॰ षि॰ तं तु॰ अपंतभाष्णं वं॰। पंचणोकः सिया॰ तं तु॰ अपंतभाष्णं वं॰। सणुस०-पंचिदि॰-ओरालि॰-तेजा॰-कः[ओरालिअंगो॰-] वण्ण॰४-मणुसाषु॰-अगु०४-तस०४-णिमि॰ णि॰ वं॰ णि॰ तं तु॰ संखेजदिभाष्णं वं॰। समयदु॰-वजरि॰-यसत्य॰धिरादितिण्णियुग॰-सुभग-सुस्सर-आदे॰ सिया॰ तं तु॰ संखेजदि-भाष्णं वं०। एवं पदम-विदिय-तिद्यसु। चउत्थि-पंचमि-छट्टीए तित्थयरं वज्जितिः पाष्णं वं०। एवं पदम-विदिय-तिद्यसु। चउत्थि-पंचमि-छट्टीए तित्थयरं वज्जितिः पाष्पं वेश। णवरि मणुस-२ एसि जागच्छिद तेसि णि॰ उक्कः।

३५५. सत्तामाए आभिणि॰ उक्क॰ वं॰ चहुणा॰ पंचंत॰ णि॰ वं॰ णि॰ उक्क॰। थीणगिद्धि॰ रे-दोवेदणी॰-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इस्थि॰-णचुंस॰-मणुस॰-मणु साणु॰-उजो॰-दोगोद॰ सिया॰ वं॰ उक्क॰। इदसणा॰ वारसक॰मय-दु॰ णि॰ वं॰ णि॰ तंतु॰ अर्णतमामणं वं॰। पंचणोक्क॰ सिया॰ तंतु॰ अर्णतमामणं वं॰।

है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुल्ह प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायांका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करना है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रयजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आक्नोपाक्क, वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुछघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्हृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। य.द अनुत्रृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्र संस्थान, वज्रष्मनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगळ, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित बन्ध करता है और इदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनस्ष्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे मंज्यातभागहान अनुत्कृष्ट प्रदेशव ध करता है। इसी प्रकार अर्थात सामान्य नारिकयोंके समान प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथिवीमें जानना चाहिए। चतुर्थ, पद्धम और पष्ट पृथिवीमें तोर्थकर प्रकृतिको छोड़कर सामान्य नारिक्योंके समान भङ्ग है। इतनो विशेषता है कि मन्द्र्यगतिहिक जिनके आती है उनके नियमसे उत्कृष्ट होती है।

३५५. साववी प्रथिवोमें आमिनिवोधिकहानावरणका उत्त्रष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव वार हानावरण और पाँच अन्तरायका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे उत्स्रष्ट प्रदेशवन्य करने हैं। स्थानगृद्धि तिक, दो वेदनीय, मिण्यास, अनन्तावृत्वभीचतुष्क, क्षीवेद, न्युप्तकवेद, नृत्युप्तकवेद, नृत्युप्

१. ता॰भा॰प्रयोः 'भवदु॰ विमि॰ नि॰' इति पाटः ।

तिरिक्ख - उस्संठा - उस्संघ - तिरिक्खाणु - दोविद्दा - विगदिछ युग । सिया । तं तु ० संखे अदिमागूणं वं ०। पंचिंदि - ओरालि - तेजा - क - ओरालि - अंगो - वण्ण - ४ -अगु - ४ - तस - ४ - णिम - णि - वं ० तं तु ० संखे अदिमागूणं वं ०। एवं चहुणा -दोवेदणी - पंचेत ०।

३५६. णिदाणिद्वाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-अय-दु० णि० बं० णि० अर्णतभागूणं बं०। दोवेद०-इत्थि०-गन्तुंस०-उज्जो० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० वं० अर्णतभागूणं बं०। तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि'० णि० बं० तं तु० संखेजदिभागृणं वं०। छस्संठा०-छस्संघ०-दोविद्या०-थिरादिछयुग० सिया० तं तु०

करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो एकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुरुक्क प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुरुक्क प्रदेशबन्ध करता है तो इनका तियमसे अनन्त्रभागाद्दीन अनुरुक्क प्रदेशबन्ध करता है। विष्क्रात्म क्रह संस्थान, छह संहमत, तियंक्षात्मात्मुपूर्वी, दो विदायोगित और स्थिर आदि छह युगळका कशांचित बन्ध करता है और कदाचित्त बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो वर्कुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध करता है तो इस्का नियमसे संख्यातभागदीन अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध करता है। एक्षिन्द्रियजाति, औदारिकरारीर, वै.सदारीर, संख्यातभागदीन अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध करता है। विक्रत्म क्रिक्ट अने अने विक्रत्म करता है तो इस्का नियमसे संख्यातभागदीन अनुरुक्क प्रदेशबन्ध करता है। इस्का करका प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग-दीन अनुरुक्कट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ब्रानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायको सब्यतासे सरिक्वर्य करता वाहिए।

२५६. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच क्षानावरण, दो दर्शनावरण, मिध्यात, अननातुवन्योचतुष्क, नोचयोज और पाँच अनतायका निवससे बन्ध करता है को इनका निवससे वन्ध करता है जो इनका निवससे वन्ध करता है। यह दर्शनावरण, नायद क्याय, भय और जुनुष्साका निवससे वन्ध करता है जो इनका निवससे अनत्यभागदोन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय, स्रोवेद, नयुंसकदेद और उद्योतका क्यावित्त वन्ध करता है। यो नोकपायोंका कद्मावित्त वन्ध करता है। योद वन्ध करता है। अनुतक्ष अर्थेद निवससे वन्ध करता है। त्यावित्र करता है। स्वावित्र वन्ध करता है। स्वावित्र कर्मावित्र करता है। स्वावित्र कर्यावित्र स्वावित्र करता है। स्वावित्र कर्य स्वावित्र करता है। स्वावित्र करित्र करित्र करित्र करित्र करित्र कर्य स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स्वावित्र स

१. भा•पती 'बण्ण४ अगु॰ तसक णिमि॰' इति पाठः।

संसेजदिभामूवं वं । एवं बीमविद्धि ०३-मिन्छ०-अवंतापुर्व ०४-इ त्थि-बहुंस०-गीवा० ।

३५%. व्यदास् उक्क पदंबं पंच्याव न्यस्तिव-नासक्त-गुरिसव-अय-दुव-मणुसव-मण्डिक-अंग्रिस्टव-तेबाव-कव-समयदुव- ओरास्विव्यंगीव-वक्षरिव-सम्पवध-मणुसाणुव-अगुवश-पसत्यव-तसवश-सुभग-सुरसर-आदेव-णिमव-उच्चाव-पंचंतव जिव वंव जिव उक्कव। दोबेदणीव-चदुणोकव-विरादितिष्णियुमव सियाव उक्कव। एवं पंचं व दिसणाव-] बारसकव'-सम्योकव-मणुसमदिदुर्गव। सेसाणं चडिन्थमंगो। गवरि मिन्छन्त्रपाओग्गाणं तिरिक्सगदिदुर्गव व उक्काव।

३५८. तिरिक्खेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चटुणा० पंचंत³० णि० बं० शि० उक्क०। श्रीणिमिद्धि०३ दोवेदणी०-मिच्छ०-त्रणंताणु०४-इत्थि०-मधुंस०-वेउच्चिपछ०-आदाव दोमोद० सिया० उक्क०। अपचक्खाण०४-पंचणोक० सिया० तं तु० अणंत-मागुणं वं०। [छदंस०-] अइक०-मय-दु० णि० वं० णि० तं त० अणंतमागुणं वं०।

प्रदेशबन्य करता है तो इनका नियमसे सध्यातमागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। इसी प्रकार स्थानगृद्धित्वक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धोचतुष्क, स्रोवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ण जानना चाहिए।

३५७०. निर्दाका ब्लकुष्ट प्रदेशक्य करनेवाज जीव पाँच क्षानावरण, पाँच दर्शनावरण, वारह कथाय, पुरुपदेर, स्व जुगुप्ता, सतुच्याति, प्रझाँद्रवज्ञाति, औदारिकरारीर, तैजवस्परिर, कस्माण्यस्रीर, सम्बद्धुरुक्तस्या, औदारिकरारीर आङ्गोणक्ष, वक्षयंभनाराष्ट्रसहन, वणेचपुरुक्त, सम्बद्धुरुक्तस्या, लौदारिकरारीर अद्यावस्यात्यात्र्यी, अगुरुवजुष्टक, प्रस्ता विहायोगाति, प्रसम्बद्धक, सुम्मा, सुक्दर, आदेय, निर्माण, उच्चयोत्र और पाँच अन्तरावका निवससे बन्क करता है जो इनका निवससे उच्छुष्ट प्रदेशक्य करता है। दो वेदनीय, चार नोक्याय, और स्वर आदि तीन युगळका क्षयिष्ट, वस्य करता है। इस क्या है। इस क्या है। इस प्रकार पाँच द्रश्रावस्य करता है। इस प्रकार पाँच द्रश्रावस्य करता है। इस प्रकार पाँच द्रश्रावस्य करता है। इस क्या हमाण्यस्य करता है। इस क्या हमाण्यस्य करता है। इस क्या हमाण्यस्य करता हमाणस्य करता हम

३५८. विषेष्ठांमें आभिनिवीधिकक्षानावरणका उन्हाट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव चार क्षानावरण और र्राच अन्तरायका निवससे वन्न करता है जो इनका निवससे उन्हाट प्रदेशसम्य करता है। स्थानगृद्धिनक, रो बेदनीय, मिण्यादा, अनन्तातुवन्योचाएक, श्रीवेद, नयु वकवेद, वैक्षिधिकपट्ठ, आतथ और रो गोत्रका कराचित्र चन्य करता है। वार्द वन्य करता है तो इनका निवससे उन्हाट प्रदेशबन्य करता है। अप्रत्याव्यानावरणचतुक्त और रार्च नोकवायका कराचित्र वन्य करता है। अप्रत्याव्यानावरणचतुक्त और रार्च नोकवायका कराचित्र वन्य करता है और कराचित्र वन्य नहीं करता। विदेशक्त करता है तो उन्हाट प्रदेशबन्य भीकरता है और अनुस्थित प्रदेशकन्य करता है। वार्द अनुस्कृत्य प्रदेशकन्य करता है तो इनका निवससे अनन्तमाथाक्षीन अनुस्कृत्य करता है। किन्तु वह इनका उन्हाट प्रदेशकन्य भी करता है। किन्तु वह इनका उन्हाट प्रदेशकन्य भी करता है। किन्तु वह इनका उन्हाट प्रदेशकन्य भी करता है। वार्द अनुस्कृत्य भी करता है। वार्द अनुस्कृत्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य प्रदेशवन्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य प्रदेशवन्य भीकरता है। वार्द अनुस्कृत्य भीकरता है। वा

१. ता॰पती 'वृवं पंचेत [च]॰ बास्स॰' इति पाठः ।२. ता॰प्रती 'तिरिच्छगदिश्चवं॰' इति पाठः । ३.ता॰प्रती 'बहुषो॰ पंचेत॰' आ॰पती 'बहुषोक॰ पंचेत॰' इक्षि पाठः ।

दोगदि-चंचजादि-जोरालि०-छस्संठा०-जोरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उत्जो०-दोषिदा०-तसादिदसञ्चन० सिया० तं तु० संखेजदिमामूणं वं०। तेबा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० वं० णि० तं तु० संखेजदिमागूणं वं०। एवं चदुणा०-असादा०-यंचंत०।

२५९. बिहाणिहाए उक्क पदेव्यं पंचणाव्यदिस्माविक्यं 'अर्थतायुव्ध- पंचंत णिव यं प्राप्त प्रवास्थित प्रिया उक्क । स्वदंसव्यास्त्रक्व-स्पर्युव णिव यं अर्थतसम्पूर्णं यंव । दोवदणीव्यास्त्रक्व-स्पर्यक्वास्य अर्थतसम्पूर्णं यंव । दोवदि-यंचकादि-ओरास्विक-स्पर्यः ओरास्विक-स्पर्यः अर्थास्य वंव । दोवदि-यंचकादि-ओरास्विक-स्पर्यः ओरास्विक-अंगोव-स्पर्यक्वास्य । स्वया वंव । दोवदि-यंचकादि-ओराम्विक-स्पर्यः स्वया वंव । स्वया वंव । तेवाव-क्व-वण्णव्य-अयुव-उपविक्षायः प्राप्त वंव । तेवाव-कव्याव्य-अयुव-उपविक्षायः प्राप्त वंव । स्वया वंव वंव । स्वया विक्या विक्या

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकरारीर, छह संस्थान, औदारिकग्रारीर आक्षोपाङ्ग, छह संहतन, दो आजुपूर्वी, परागत, उच्छान, उद्योत दो विहायोगित और
असादि दस युगतका कदाचिन बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध में
करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध में करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका
नियमसे संख्यात भागहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। ती तसशरीर, कार्मणग्रारीर, वर्णचनुत्क, अगुरुत्वपु, उपपात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह वनका उत्कृष्ट
प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यदि अनुरुष्ट प्रदेशबन्ध करता
है तो इनका नियमसे संख्यातभागहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार
ज्ञानावरण, असाताबेदनीय और पाँच अन्तरावकी मुख्यतासे सांक्रकं जानना चाहिए।

ता०का॰ प्रत्योः 'दोवेवकां मिच्कु॰' इति पाठः । २. का॰प्रतौ 'उस्सा॰ दोविहा॰ इति पाठः ।

३६०. णिद्दाए उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पंचरंतमा०-पुरिस०-सय-दु०-देवग०-वेउच्वि०-समबद्द०-बेउच्वि०भ्रंगो०-देवाणु०-पतत्थ०-सुमग-सुस्सर-आदे०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेदणी०-अपवस्साण०४-चदुणोक० सिया० उक्क०। अङ्कक० णि० बं० णि० तं तु० अर्णतमागूणं वं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस्व०४-णिमि० णि० दं० अणु० संखेजदिमागूणं वं०। यिरादितिण्णिपु० सिया० संखेजदिमागुणं वं०। एवं पंचदंस०-सचणोक०।

३६१. सादा॰ उक्क॰ पदे०बं॰ पंचणा०-पंचत० णि॰ बं॰ उक्क॰। बीणगिद्धि० ३-मिच्छ०-प्रणंताणु०४-इस्थि०-णांचुत०-देवगदि०४-आदाव-दोगोद० सिया॰ उक्क॰। ब्रद्धस०-अद्वत०-सर-दु० णि० वं० णि० तं तु० [अणंतमागृणं वं०]। अपचक्खाण०४-पंचणोक० सिया॰ तं तु० अणंतमागृणं वं०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-इस्संठा०-ओरालि०-अंगो०-इस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-[उजो०-] पसत्थ०-तस०४-[गुग०-] थिरादितिण्णिगुग०-सुमग-सुस्वर०-आदे० सिया० तं तु० संखेजदिमागृणं वं०।

२६१. सात्रवेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण और पाँच मनतायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे क्कान्ट प्रदेशवन्य करता है। स्थानगृद्धित्रक, मिण्याव, अननतातुक्योचपुष्क, स्त्रीवेद, नांद्रसकदेद, देशवन्य करता है। स्थानगृद्धित्रक, मिण्याव, अननतातुक्योचपुष्क, स्त्रीवेद, नांद्रसकदेद, देशवन्य करता है। हा ग्रावेद व्यय करता है। त्रावेद व्यय करता है। हा नियमसे क्वान्य करता है। किन्तु वह इनका वक्तन्य प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतक्रष्ठ प्रदेशवन्य भी करता है। बाद अनुतक्रष्ठ प्रदेशवन्य करता है। विक्तु वह इनका वक्तन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्य करता है। बाद अनुतक्ष्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्य क्वान्य है। अभ्याख्याव्यानावरण चलुक्त और पाँच नोकपायांका क्वाचित्त वस्य करता है और कदाचित्त वस्य मी करता है। यदि अनुतक्रष्ट प्रदेशवन्य करता है। विद्यावन्य व्यवन्य विद्यावन्य करता है। विद्यावन्य व्यवन्य विद्यावन्य करता है। विद्यावन्य व

तेजा - क - वष्ण ० ४ अगु ० - उप ० पि० तंतु ० संखेजिदिमाग्णं वं ० । अप्पत्तत्य - दुस्तर ० सिया ० संखेजिदिमाग्णं वं ० । दूमग-अणादे ० सिया ० तंतु ० संखेजिदिमाग्णं वं ० ।

३६२. अपचन्छाणकोध० उक्त० पदे०चं० णिहाए संगो । णवरि अष्टक० णि० चं० णि० अणंतसाग्णं बं० । एवं तिष्णिक० ।

३६३. पचक्दोणकोघ० उक्त० पदे०बं० पंचणा० छदंसणा० सत्तक० पुरिस०-भय-दु०-देवगदि०४ उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्त०। सेसं णिहाए भंगो। एवं सत्तरणं कम्माणं।

३६४. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-बीणमिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु-बं०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-सय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतमामणं बं० । दोवेदणी०-देवगदि०४-दोगोद० सिया० उक्क० । चदुणोक०

वन्य करता है तो क्कुष्ट प्रदेशबन्य भी करता है और अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। ते इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। ते उनका नियमसे सम्ब ति करता है। किन्तु वह इनका क्कृष्ट प्रदेशबन्य भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है तो इनका नियमसे सख्यातभागदीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। अप्रशस्त विद्यायोगित और दुन्धरका कदाचित्त वन्य करता है। यदि बन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। दुर्भग और अनादेयका कदाचित्त वन्य करता है। व्यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य भी करता है। व्यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। व्यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है। व्यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्य करता है।

३६२. अश्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे जीवका भक्न निहाकी सुख्यतासे कहे गये साक्षकरेके समान है। इतनी विशेषता है कि यह आठ क्यायांका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागदीन अनुकुष्ट श्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अग्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन क्यायांकी सुख्यतासे सन्तिकत्व जानना चाहिए।

३६२. प्रत्याख्यानावरण कोषका उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सात नोकपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगतिचतुष्क, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है । शेष मङ्ग निदाकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकषेके समान है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण कोष आदि सात कमिकी मुख्यतासे सन्निकयं जानना चाहिए।

सिध्यास्त्र, अनिव्दका उत्कृष्ट प्रदेशकाच करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्यानगृद्धित्रक, सिध्यास्त्र, अनन्तानुक्योचिषुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे क्या करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशकाच करता है। छह दर्शनावरण, बारह कथाय, अय और जुगुप्ताका नियमसे अच्य करता है। हो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकाच करता है। विस् विषय करता है। विद विषय करता है। विद विषय करता है। विद विषय करता है। विद विषय करता है।

१- आ॰प्रतौ 'उप॰ णि॰' इति पाठः ।

सिया॰ अर्णतभागूणं बं०। दोगदि-ओरालि०-डुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-दोआणु०-अप्पतत्त्व०-धिरादितिष्णियुग-द्भग-दुस्सर-अणादे० सिया० संखेआदिभागूणं बं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेआदि-भागूणं बं०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्त्व०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० तं तु० संखेआदि-भागूणं बं०। उञ्जो० सिया० संखेआदिभागूणं बं०।

३६५, णबुंस० उक्क० पदे०वं० हेड्डा उवरि इत्थि०मंगो। णामाणं णिरयगदि०४-आदाव० । सिया० उक्क०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संय-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तस०४-[युग०-] थिरादितिष्णियुग०-दुमग-दुस्सर-अणादे० सिया० तं तु० संखेजदिमागुणं वं०। [तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-

३६४. नगुंसक्वेदका वक्ट प्रदेशकन्य करनेवाळे जीवके नामकर्ससे पूर्वकी और बादकी गुक्तियांकी मुख्यतासे सिंग्नकं स्त्रीवेदका वक्ट प्रदेशकन्य करनेवाळे जीवके इन प्रकृतियांकी गुक्यतासे कदे गये सिंग्नकंकं सान जानना चाहिए। यह नामकर्सक प्रकृतियांमेसे नरकाति चुक्त और आवषका करांचित्र करता है। यदि वस्प करता है वो नियससे इनका वक्ट प्रदेशकन्य करता है। दो गति, याँच जाति, औदारिक्जरीर, पाँच संस्थान, औदारिक् प्रदेशकन्य करता है। दो गति, याँच जाति, औदारिक्जरीर, पाँच संस्थान, औदारिक प्रदेशकन्य करता है। दो मान प्रवृत्तक प्रदेशकन्य करता है। स्तर्व प्रवृत्तक प्रदेशकन्य करता है। स्तर्व प्रदेशकन्य नियससे हैं और क्याचित्र कन्य करता है। स्तर्व करता है और क्याचित्र कन्य नदी करता है। यदि अनुक्क प्रदेशकन्य करता है की स्तर्क प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अनुक्क प्रदेशकन्य करता है वो स्तर्क प्रदेशकन्य भी करता है। स्तर्क प्रदेशकन्य करता है। स्तर्क प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अनुक्क प्रदेशकन्य भी करता है। स्तर्क प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अनुक्क प्रदेशकन्य भी करता है। स्तर्क स्वरक्ष स्व

ता॰प्रती 'जामार्था । जित्यगदि० ॥ सदाव०' इति पाठः ।

उप०-विमि० णि० वं० तं तु० संखेजदिभागूणं वं०।] समचदु०-पसत्थ०-सुमग-सुस्सर-आदे० सिया० संखेजदिभागूणं वं०।

३६६, णिरयाउ० उक्क० पदे०मं० पंचणा०-णबदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णधुंस०-अरिद-सोग-मय-दु०-णिरयगदिअद्वावीस-णीचा०-पंचंत० णि० मं० णि० अणु० संखेजदिमामूणं वं०। तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०मं० पंचणा०-णबदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-मय-दु०-तिरिक्ख० - ओरालि०-तेजा० - क०-चण्ण० ४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० अणु० संखेजदिमामूणं वं०। दोवेदणी०-सत्ताणोक०-पंचजादि-छस्संडा०-ओरा०अंगो० - छस्संघ० - पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसपुग० सिया० वं० संखेजदिमामूणं वं०। एवं मणुसाद्य०-देवाउ०। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादन्वाओ।

३६७, णिरयग० उक्क० पदे०वं० पंचणा० श्रीणिगिद्धि०२ असादावे० सिच्छ०-अर्णताणुवं०४ मणुंस० णीचा० पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । छदंसणा० न्वारसक०-अरदिस्तोग-सय-दु० णि० वं० णि० अर्णतभागूणं वं०। णामाणं सत्थाण० भंगो । एवं णिरयाणुक अप्यस्त्थ० दस्सर०।

विद्यायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित वन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातभावद्यान अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३६६. नरकायुका उरहुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानाबरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सीठह कथाय, नपुंसकवेद, अरित होक, भय, जुगुप्ता, नरकमित आदि अष्टाईस प्रकृतियों, नीचगोत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। निर्यक्षायुक्त उरहुष्ट प्रदेशवन्य करता है। निर्यक्षायुक्त उरहुष्ट प्रदेशवन्य करतेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सीलह कथाय, भय, जुगुप्ता, तिर्यक्षायात्व, वर्षाय, त्रात्व कथाय, भय, जुगुप्ता, तिर्यक्षायात्व, कर्ता है जो इनका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय, सात नोक्ष्याय, पाँच जाति, छह संस्थान, अदिष्ट, अवारक्ष्य, अवार, उर्थाव, विद्यायात, उर्व्यक्ष्य, आवर, उर्थाव, हो सिहायोगित और त्रसादि इस युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है विद्यायात अविद्यायात्व, अवार, उर्थाव, विद्यायात्व, अवार, उर्थाव, विद्यायात्व और दिवायुक्त सुख्यता संस्थातभागहोन अनुतक्ष्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुक्त सुख्यता सिक्षकथे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

३६७. नरकर्गातका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, स्थानगृद्धित्रक, असातावेदनीय, मिस्यास्त्र, अनन्तानुकर्याचनुषक, नयुंसकवेद, नीचगील और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है । छुद दर्शनावरण, बारह कथाय, अरति, सीक, भय, और जुगुप्ताका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकरण करता है। नासकर्मकी प्रकृतियाँका भन्न स्वस्थान सन्तिकर्षके समान है। इसी प्रकार नरकारणानुपूर्वी, अमरास्त विद्वायोगित और दुःखरको सुक्क्यतासे समान है। इसी प्रकार नरकारणानुपूर्वी, अमरास्त विद्वायोगित और दुःखरको सुक्क्यतासे समान है। इसी प्रकार नरकारणानुपूर्वी, अमरास्त विद्वायोगित और दुःखरको सुक्क्यतासे सम्मिक्य जानना चाहिए।

३६८. तिरिक्स० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-धीणगिद्धि०३-भिच्छ०-अणंताणु०४-मान्नंस०-णांचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० वं० णि० अणंतमामृणं वं०। दोनेदणी० सिया० उक्क०। चदुणोक० सिया० वं० अणंतमामृणं वं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं तिरिक्खगिदिकंगो मणुसमिद-पंचनादि-ओरासि०-तेना०-क०-हुंद०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त० - नण्ण०४-तिरिक्खाणु०-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउओ०-तस०४[युग०-] थिरादितिण्णियुग०-दभस-अणादे०-णिमि०। णवरि णामाणं अप्यप्पणो सत्थाण०भंगो कादन्नो।

३६९. देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा० उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-दोबेदणी०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इस्थि० सिया० उक्क०। छदंस०-अद्दक्ष०-सय-दु० णि० वं० णि० तं तु० अर्णतमागूणं बं०। अपचक्साण०४-पंचणोक्क० सिया० तं तु० अर्णतमागूणं बं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं देवगदि-भंगो बेउन्बि०'-समचद्द०-बेउन्बि०अंगो०-देवाणु०-पसत्य-सुभग-सुस्सर-आदे०।

१. ता॰प्रतौ देवगदिसंगो । वेउ०' इति पाठः ।

३७०. णग्गोघ० उक्त० पदे०बं० पंचणा०-श्रीणमिद्धि० ३-सिच्छ०-अर्णताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्त० । छदंस०-बाससक०-भय-दु० णि० बं० णि० अर्णतभागूणं बं० । दोबेदणी०-इत्थि०-णबुंस०-दोगोद० सिया० उक्त० । पंचणोक० सिया० अर्णत-भागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिष्णि०संठा० प्यंचसंघ० ।

े २७१. उचा० उक्क० पदे०बं॰ पंचणा०-पंचंत० णि० बं॰ उक्क०। श्रीणिगिद्धि०२-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताषु०४-इस्थि०-णबुंस०-देवगदि०४-चदुसंठा०-पंचसंघ० सिया० उक्क०। छदंस०-अड्डक०-मय-दु० णि० बं० णि० तं तु० अणंतभागूणं वं०। अपचक्खाण०४-पंचणोकसायं^र सिया० अणंतभागूणं वं०। मणुस०-[ओरालि०-] हुंड०-ओरालि०आंगो०-असंप०-मणुसाणु०-अप्पसत्थ० -थिरादितिणिग्रुग०-द्भग-दुस्सर-अणादे० सिया० संखेजदिभागूणं वं०। पंचिदि०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-तस०४-

वैक्रियिकशरार, समचतुरक्रसंस्थान, वैक्रियिकशर्गार आङ्गोपाङ्ग, देवगस्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्दायोग्यति, सुभग, सुस्वर और आदेवकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३५०. त्यामोधपरिमण्डलसंस्थानका उन्हृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, स्थानानृद्धित्रिक, मिय्यात्व, अनत्वानुबन्धी चनुष्क और पाँच अन्तरावशा नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्ह्रण प्रदेशवन्ध करता है। इह दर्शनावरण, वारह कथाय, भय और पुण्यात्माका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे अन्य करता है जो इनका नियमसे अन्य करता है वो इनका नियमसे अन्य करता है। यहि वह विश्व है। यहि वस्य करता है। स्थान करता है। इसी प्रकार तीन संस्थान और पाँच संहतनकी मुख्यासे सिन्धान और पाँच संहतनकी मुख्यासे सिन्ध स्थान सिक्स करता चाँचित्र ।

३०१. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे क्य करता है जो इनका नियमसे उद्घष्ट प्रदेशक्य करता है। स्थानगृद्धिज्ञक, दो वेदनीय, मिण्यास्त्र, अनन्तानुक्योचानुक, ज्ञीवेद, नणु सकवेद, देवानिक चतुक्क, जार संस्थान और पाँच संहननका कराचिन् क्य करता है। वेद क्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। छुर इहानावरण, आठ कथाय, अय और जुगुएसाका नियमसे क्य हुए सर्वाहि । किन्तु वह इनका स्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशक्य भी करता है। किन्तु वह इनका स्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। अप्रत्याख्यानावरण चतुक्क और पाँच नोकपायका कदाचिन् क्या इस्ता है। यदि क्य करता है। क्षा नियमसे अनन्तनभागहीन अनुकुष्ट प्रदेशक्य करता है। विवस्थ करता है। क्षा नियमसे अप्तनभागहीन अनुकुष्ट प्रदेशक्य प्य प्रदेशक्य प्रदेशक्य प्रदेशक्य प्रदेशक्य प्रदेशक्य प्रदेशक्य प्र

ता०आ०प्रत्योः पृषं चतुमठा०' हित पाठः । २. ता॰ आ०प्रत्योः 'ध्रपचन्साण ४ चतुणाकसार' ।
 इति पाठः ।

णिमि॰ णि॰ व'॰ णि॰ संखेजदिमागृणं व'॰। समचदु॰-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे॰ सिया॰ तं तु॰ संखेजदिमागृणं व'॰। एवं पंचिदि॰तिरिक्ख॰३।

३७२. पॉर्वेदियतिरिक्खअपज्ञ आभिणि उक्क पदे ०वं ० चहुणा ० ज्यवस्त ० मिच्छ ० सोलसक ० भय-हु ० पंचंत ० णि ० वं ० णि ० उक्क । दोवेदणी ० सत्त्रणोक ० आदाव दोगो ० सिया ० उक्क । दोगिद पंच जादि उससं ठा० औरालि ० इंगो ० उपसंघ ० व्हो आणु ० पर ० ज्या त्राच ० चे ले जाविक जिल्ला के लिए वं ० णि ० वं ०

३७३, इस्थि० उक्क० पदे०वं० पंचणा० णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक०-दोगोद० सिया० उक्क० । दोगदि-हुंडसं०-असंपत्त०-दोआणु०-उओ०-थिरादितिष्णियुग०-दूभग-अणादे० सिया० संस्वेजदि-

नियमसे संख्यातभागहान अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। समजनुरस्तर्सस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुखर और आदेयका कदाचित्त वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो प्रतका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार

पद्मेन्द्रियतिर्यद्मित्रिकमें जानना चाहिए।

२७२. श्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यादन, सीळह कवाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट महराबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोक्याय और दो गोत्रका कर्दाचित् बन्ध करता है। यो विकास करता है। तो इनका नियमसे अत्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। दो गाँत, हुण्डलंखान, असम्प्रासाम्पार्टकार्डहनन, दो आनुत्र्वी, ज्योत, स्थिद आदि तीन युगळ, दुर्थन और असन्त्रासम्बाद्ध विकास करता है। वो अन्तर्भ नियमके

मागूणं बं । पंषिदि ॰ जोरासि ॰ तैजा ॰ क ॰ जोरासि ० अंगो ॰ वष्ण ॰ ४ अगु ० ४ न्तर ० ४ -णिमि ॰ णि ॰ वं ॰ णि ॰ संखेजदिमागूणं वं ॰ । पंचसंठा ॰ पंचसंघ ॰ दोविहा ॰ सुमग-दोसर-आदे ॰ सिया ॰ तं तु ॰ संखेजदिमागूणं वं ० । एवं पुरिस ॰ ।

३७४. तिरिक्खाउँ० उक्क० पर्दे०वं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-मय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप० - णिप्ति०-णोचा०-पंचंत० णि० वं० णि० संखेजदिमागूणं वं० । दोवेदणी०-सत्तगोक०-[पंचजादि-] इसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० संखेजदिभागूणं वं०। ६वं मणुसाउ०। णवरि पाओभगाओ पगदीओ कादन्वाओ।

३७५. तिरिक्ख० उक्क० पद्दे०बं० पंचणा० गगदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णबुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । हेद्वा उवर्रि तिरिक्खगदिभंगो । इमाणं मणुसग०-पंचजादि-तिण्णिसरीर-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४- आदाउजो०-

संख्यातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पञ्चिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसझारीर, कामंणरारीर, औदारिकशरीर आङ्गीपाङ्ग, वर्णेचतुष्क, अगुरूब्युष्क, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे सन्ध्य करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहरन, दो बिहायोगित, सुमग, दो स्वर और आदेयका कराचित्त वन्य करता है और कराचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है और कराचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशवन्य करता दे। इसी प्रकार पुरुष-वेद्युष्ठ प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार पुरुष-वेद्युष्ठ प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार पुरुष-वेद्युष्ठ प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार पुरुष-

३०%. तिर्थेक्कायुका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाडा जीव पाँच क्कानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यास्त, सोल्वह कषाय, मय, जुगुस्ता, तिर्यक्काति, कौदारिक रारीर, तैजवसरोर, कामणवरीर, वर्णचतुरूक, तिर्यक्कात्यातुर्यी, अगुरुळ्यु, उत्पात, निर्माण, नीवगोज और पाँच अन्तरायक। नियससे बन्य करता है। किन्तु वह इनका संक्यातमाग्रहीन अनुरुळ्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय, सात नोक्याय, पाँच जाति, छह संस्त्रान, औदारिकश्चरीर आक्रोपाक्ष, छह संस्त्रान, परघात, उच्छुत्तस, आतर, उद्योत, दो विहायोगांत और क्षस आदि इस युगलका कराचित् बन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यानभागहीन अनुरुळ्ट प्रदेशवन्य करता है । इस एक्सप्ताक्ष्म करता है तो इसका नियमसे संख्यानभागहीन अनुरुळ्ट प्रदेशवन्य करता है । इस एक्सप्ताक्ष्म करता है तो इसके नियमसे संख्यानभागहीन अनुरुळ्ट प्रदेशवन्य करता है । इस एक्सप्ताक्ष्म करता है कि इसके प्रायोग्य प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

३७५. तिर्येक्षगितिका उन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाळा जोव पाँच झानावरण, नो दर्शनावरण, भिष्याव, सोलह कषाय, नयु सकवेद, भय, जुगुष्ता, नीवगोज और पाँच जनतायका निवमसे बन्ध करता है जो इनका निवमसे चन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकवाय का कहाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियससे अन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकमंकी प्रकृतियांका भक्क स्वस्थान सन्तिकषंके समान है। तथा इन प्रकृतियांकी कपेक्षा नामकमंत्री पृक्की और बादकी प्रकृतियांका भक्क विष्वद्याविके समान है। इन सनुप्तयांति पाँच जाति, तीन हारीर, हुण्डसंस्थान, औद्वारिककारीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तास्यांतिक सांत्र न तस०४[युग-] धिरादितिष्णयुग०-दुगग-अणादे०'-णिमि० णामाणं० अप्यपणो सत्याण-भंगो । पंचसंठा-पंचसंघ०-दोविहा०-युभग-दोसर-आदे० हेडा उनरिं सो वेष भंगो । णवरि इत्यि०-पुरिस०-उषा० सिया० उक्क०।

२७६. । उचा ं उक पदे ०वं ० पंचणा ० - णवरं स० - मिच्छ ० - सोलसक ० - भय-दु ० - पंचंत ० णि० वं ० णि० उक ० । दोवेद ० - सचणोक ० - पंचसं ठा० - पंचसं घ० - दो विहा ० - सम्बद्धार - पंचसं घ० - दो विहा ० - स्विक्षात्र ने स्वार जिल्ला के स्वार चित्र ० स्विक्षात्र ने स्वार चित्र ० स्वार चित्र ० स्वार चित्र चित्र चित्र विद्या चित्र चित

३७७, मणुसा०३ ओषं। देवेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-

वर्णवतुष्क, मतुष्यात्यात्पुर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, असचतुष्क युगळ, स्थिर आदि तीन युगल, दुभँग, अनादेय और निर्माण नामकर्मको प्रकृतियोका भङ्ग अपने अपने स्वस्थानके समान है। पाँच संस्थान, पाँच सहन्तन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आवेषकी मुस्यता पूर्वको और बादकी प्रकृतियाँका वहाँ भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्वीद, पुरुषवेद और उप्योगका कहाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उसकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो नियमसे

्रंथ, उच्चानिका उक्कृष्ट विदेशवन्य करनेवाला जोव पांच झानावरण, नी दशंनावरण, मिव्यात्व, सोलह क्याय, भय, जुगुस्मा और पांच अन्तरावहा नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे वरूप करता है। दो वेदनीय, सात नोक्याय, पांच सरवान, पांच सहतन, दो विद्यायित, सुम्मा, दो स्वर और आदेषका कदांचित वन्य करता है। यां वन्य करता है। यां वन्य करता है। विद्यायित, सुम्मा, दो स्वर और आदेषका कदांचित वन्य करता है। यांच वन्य करता है। यांच वन्य करता है। मनुष्याति, प्रझोन्यवाति, तीन झरीर, लोहारिकसरीर आहोपाझ, वणेचलुक, सनुष्यास्वायुव्ध, अगुनलबुचतुक, असमनुष्य और विमाणका नियमसे वन्य करता है। जो इनका नियमसे संस्थान, असमामस्थादिकासिहन, स्थिर आदि तीन युवात, दुम्में और अन्दियक करता है। इपडसंखान, असमामस्थादिकासिहन, स्थिर आदि तीन युवात, दुम्में और अन्दियक करता है। यदि वन्य करता है। इनका नियमसे संख्यातमागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशन करता है। स्थी प्रकार सव अपर्योप्त जोवांके तथा सव एकेन्द्रिय, विक्रजेन्द्रिय और पांच स्थादकायिक आदिका विद्या विद्यायित क्रिकेत और वायुक्कृष्टिक जीवांस सनुत्यगतिवकको छोक्कर सन्तिकर्ष करता है कि अभिनकायिक और वायुक्कृष्टिक जीवांस नियम्यगतिविकको छोक्कर सन्तिकर्ष वहरता है।

्र७७. तीन प्रकारके मनुष्योंमें ओषके समान भक्त है। देवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञाना-बरणका स्टक्ट प्रदेशवन्य करनेवाडा जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धीयतुष्क, स्रोवेद, नर्पुसक्वेद, आतप, तीर्यक्कर प्रकृति और दो गोत्रका

१. ता॰मा॰श्रत्योः 'तूभग दुस्तर क्रजाये॰' इति पाठः। २. ता॰प्रती 'जिमि॰। जामार्थे' इति पाठः। ३. ता॰प्रती 'सुमग सुस्तर कावेज' इति पाठः।

णबुंस०-आदाव-तित्थ०-दोगोद० सिया० उक्क० । छदंस०-वाससक०-सय-दु० णि० पं० णि० तं तु० अणंतभागूणं वं० । पंचणोक० मिया० तं तु० अणंतभागूणं वं० । दोगदि-दोजादि-छस्संघ०-ओरालि०श्रंगो०-छस्संघ० - दोआणु०-उओ० - दोविहा०-तस-धावर-धिरादिछयुग० 'सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं वं० । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४ वादर-पज्ज-पने०-शिमि० णि० वं० तं तु० संखेजदिभागूणं वं० । एवं चदणा०-दोवेद०-पंचंत० ।

३७८. णिहाणिहाण उक्क० परे०वं० पंचणा०-दोहंम०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। छदंस०-बारतक०-सय-दु० णि० वं० णि० अण् अर्णतभागूणं वं०। दोवेद०-इत्थि०-णगुंस०मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-णीचुचा० मिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० अर्णतभागूणं वं०। तिरिक्स०-दोजादि-छरसंठा०-आराजि०अंगो०-छरसंव०-तिरिक्साण्०-उजो० - दोविहा०-तस-थावर-

कटाचित क्रम करता है। यदि वस्य करता है तो इनका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेशवस्य करता है। छद् दर्शनावरण, सारह स्पाय, सय और जुनुष्ताका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य सा करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। तो इन हा नियमसे अनन्त्रसाग होन अनुस्कृष्ट श्रदेशवन्ध करना है। पाँच नोकपायका कदाचित् बन्ध करना है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशकाध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशकाध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशकाध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रभागतीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो गांत, दो जाति, छह संस्थान, ओदारिकश्रारीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो ानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित अन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। र्याद बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशपन्ध करता है तो इन । नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। ओदान्किशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वणचतुष्क, अगुरुलयुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थान गागहान अनुरक्तृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, दो बेदनीय और पांच अन्तरायको मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

१. आ०मती 'थावरादि छुयुग' इति पाठ. ।

थिसादिछयुग०' सिपा० तं तु० संखेजदिभाग्णं बं०। ओरालि०-तेजा --क०-वण्ण०४-ज्ञसु०४-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि० वं० णि० तं तु० संखेजदिभाग्णं बं०। एवं दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णयुःस०-णोचा०।

३७९. णिद्दाए ० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक०-तित्य० सिया० उक्क० । मणुमग०-पंचिदि०-समचदु०-ओरा०अंगो०-बज्ञा०-मणुमाणु०-पसत्य०-तस०-सुमगो-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संसेज्जदिमागूणं वं० । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादग-पज्जन-पने०-णिमि० णि० वं० संसेज्जदिमागूणं वं० । थिरादि-तिण्णियुग० सिया० संसेजजदिमागूणं वं० । एवं णिद्दाए मंगो पंचदंस०-बारसक०-मचणोक० ।

३८०. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-सिच्छ०-अणंताणु०४-

... इह युगालका कहाचित् बन्ध करता है और कहाचित् बन्ध नहीं करता। यहि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यहि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यहि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यहि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अभि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अभि श्रीदारिककारीर, तेजसारीर, कामेणवरीर, वर्धवन्तक, अगुरुक्तचुन्तुक, शहर, पर्यात, प्रदेशक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इन्हा उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। किन्तु वह इन्हा उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। किन्तु वह इन्हा वह प्रदेशबन्ध करता है। वह तो प्रकार हो तो इन्हा नियमसे संख्यातभावहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार हो दिस्तावरण, मिथ्याल, अवस्तावर्ष चत्रका नियमकोद और तीचरावर्ष मुख्य प्रदेशवर्ष वहन्त नावस्कृष्ट अर्थाणका मुख्याल करता है। इसी प्रकार हो दहनावरण, मिथ्याल,

३०%. निद्राका उक्कृष्ट प्रदेशकन्य करनेवाला जीव पाँच हानावरण, पाँच दर्शनावरण, वाग्रह क्याय, कुरुपेद, भय, जुगुरसा, उरुवनीप्र और पाँच अन्तरायका नियमसे सक्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। सानावेदनीय, असानावेदनीय, चार नोक्याय और तांथक्ष्म प्रकृतिका कराचित्र वस्य करता है। सान्येदनीय, असानावेदनीय, चार नोक्याय और तांथक्ष्म प्रकृतिका कराचित्र वस्य करता है। यदि वस्य करता है तो इनका नियमसे फरुष्ट प्रदेशकन्य करता है। सित्रुप्तात, प्रकृतिका कराचित्र कराच करता है। साम्युरुष्ट प्रकृतिका कराचित्र कराचित्र कराचित्र कराचित्र कराच क्षेत्र कराचित्र कराचि

२८०. स्त्रीवेदका उरहेष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, स्त्यातमृद्धिन्नक, निध्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो इनका

१. चा॰प्रती 'धावरादि छयुग॰' इति पाठः । २. जा॰प्रती 'पसत्य॰ सुसग' इति पाठः ।

पंचंत० णि० चं० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भयन्दु० णि० वं० णि० अर्णत-भागूणं वं० । दोवंद०-मणुस०-मणुसाणु०-दोगोद० सिया० उक्क० । [बदुणोक० सिया० अर्णतमागूणं० वं० ।] तिरिक्ख०-हुड०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-यिरादितिण्णियुग०-दूमग-अणादे० सिया० संखेजदिभागूणं वं० । पंचिदि०-ओरालि०अंगो०-तस० णि० वं० णि० तं तु० संखेजदिभागूणं वं० । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-वादर-पज्जन-पन्च०-णिमि० णि० वं० णि० संखेजदिभागूणं वं० । पंचसंडा०-छरसंष०-दोविहा०-सुमग-सस्स-इस्स-आदे० सिया०तं त० संखेजदिभागुणं वं० ।

३८१. दोआउ० णिस्यगदिशंगो

३८२. तिरिक्खग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-णबुंस० णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-अय-द० णि० वं० णि० अर्णतभागूणं बं० । सादासाद० सिया० उक्क० । चदुणोक्क० सिया० अर्णत-भागूणं वं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-तिण्णिसरीर-

नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कवाय, भय और जगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानपूर्वी और दो गोत्रका कदाचिन बन्ध करता है। यदि बन्ध करना है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकपायका कदाचित वन्य करना है। यदि वन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है । तियंद्भगति, हण्डसस्थान, तियंद्भगत्यानुपूर्वी, उद्योत, स्थिर आदि तीन यगल, दर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागतीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। प्रक्रोन्द्रयज्ञाति, औदारिकशरीरआक्षोपाङ और त्रमका नियमसे बाध करता है। किन्तु वह इनका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुखपुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो उनका नियमसे संख्यात-भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन, दी विहायीगति, सुभग, सरवर, टास्वर और आदेखका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। याद बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृत प्रदेशयन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृत प्रदेशयन्य करता है।

३८१. दो आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार नरकगतिमें नार्राकरोंमें कह आये

हैं उस प्रकार है।

 हुंहर्सः - बष्ण ० ४-तिरिक्खाणु ० - अगु ० ४-आदा बुझो ० -थावर '-बादर - पञ्जन-पत्ते ० -थिरादि-तिष्णियुरा ० न्दुभग-अणादे ०-णिमिण चि ।

३८३. मणुस० उक्क० षदे०बं० पंचणा०-पंचतं ० णि० वं० णि० उक्क०। धीणमिद्धि०३-सादासाद० मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णांस० दोगो० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक-भय-दु० णि० वं० णि० तं तु० अणंतमागूणं वं०। पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतमागूणं वं०। णामाणं कत्थाण०भंगो। एवं मणुसगदिभंगो पंचिदि०-समबद्द०- औरालि०अंगो०-बजारि० - मणुसाणु० - पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-जादे०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

३८४. षागोधः उक्कः पदेव्वं पंचणाः-तिष्णिदंसव-निम्छः-अणंताणु०४-पंचतः णिः वं णिः उक्कः । छदंसव-नासक्षक-भय-दुः णिः वं णिः अणंत-भागूणं वं । दोन्नेदणी - इत्थि-णवुंसव-दोगोदः सियाः उक्षः । पंचणोकः सियाः

तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्येखगरयानुपूरी, अगुन्छयुननुष्क, आतर, वद्योग, स्थायर, बाहर, पर्याप्त, प्रश्येक, स्थिर आदि तीन मुगल, तुभग, अनादेव आर्गनर्माणका मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

२८२. म्युष्यमिका वर्ट्ड प्रदेशसम्ब कर्मनेशाला जाव पाँच क्षामाराच्या कर्मा क्षामाराच्या नियमले वर्ष्य करता है जो इनका नियमले एस्ट्रेड प्रदेगभ्यम करता है। स्थानमृद्धिंत्रक, सातावेदनीय, समातावेदनीय, प्रिष्यार, अगरातावृत्यांचायुक्क, खेंचर, मृथुंसबंदर
और दो गोशका बदाचित वर्ष्य करता है। यदि वर्ष्य करता है जो इनका नियमले उरहुष्ट
प्रदेशकम्ब करता है। छह द्वानावरण, नारह क्याय, भय और जुरुष्धाना नियमले वर्ष्य करता है।
[किन्तु वह इनका उल्ह्रुष्ट प्रदेशवर्ष्य भी करता है।
यदि अनुक्कृत प्रदेशवर्ष्य भरता है। इनका नियमले अगरातावादीन अनुस्कृत प्रदेशवर्ष्य करता है।
यदि अनुक्कृत प्रदेशवर्ष्य भरता है। इनका नियमले अगरातवादीन अनुस्कृत प्रदेशवर्ष्य करता है।
है। प्रीच नोकागयका कदाचित्र वस्य करता है और प्रदाचित वस्य नहीं करता। यदि बस्य
करता है तो उल्ह्रुप्ट प्रदेशवर्ष्य भी करता है। आर अनुस्कृत प्रदेशवर्ष्य करता।
है। नामक्रमकें। प्रदेशवर्ष्य भी करता है। अगरातविक वस्यान च्रावेद्याया करता।
है। नामक्रमकें। प्रदित्योका भङ्ग स्वस्थान सांत्रवर्ष्य समान है। इस प्रकार सनुष्यातिक
समान पञ्चोत्रयवाति, समस्वपुक्तसंस्थान, ओदारिकशरीर आङ्गीपक्ष, प्रकारनागचार्सहनन,
सनुष्यात्यातुप्ती, प्रशस्त वहार्यामाति, अस, सुन्यन, सुरुष्य और प्रमान है। समस्वमले प्रकृति क्रिकृत

३८४. न्यमोधपरिमण्डल संस्थानका व्स्कृष्ट प्रदेशक ध कानेवाला जीव पाँच झानावरण, तीन दर्शनावरण, भिष्यास्त्र, अनलानुश्यांचतुष्क और पाँच अन्तराया नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे विद्युष्ट प्रदेशकाय करता है। जुई दर्शनावरण, वारह क्याय, अय और जुगुस्साका नियमसे वस्त्र करता है। बाहन नियमसे अनत्वभागहांन अपुत्कृष्ट प्रदेशवस्य करता है। यो देने स्वत्या है। यो देनेवास, अय और जुगुस्साका नियमसे अन्तर्भ करता है। यदि वस्त्र है। यो देनेवास, अयो दे

आ०प्रती 'असु० ४ यावर' इति पाटः। र. ता०प्रती 'प० यं० पंचता० (पचणाः) पंचत्व०' इति पाटः। १. ता०प्रती 'अखंतभागू०। अयंचणोक० सिया० तं० तु० अखंतभागू- ৪ [चिद्वान्तर्यतपाटः प्रनरुकः भतीयते]। जामार्थे इति पाटः।

अर्णतभागूर्ण वं । णामाणं सत्थाण०भंगी । एवं णम्गोधभंगी तिण्णिसंठा० '-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ।

३८५. तित्थ॰ उक्क० पदे०वं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० | सादासाद०-चदुणोक्क० सिया० उक्क० | णामाणं सरवाण०भंगो |

३८६. उचा० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पंचंत० णि वं० णि० उक्क० । श्रीण-गिद्धि०३-दोवेदणो०-निच्छ०-अर्णताणु०४ - इत्थि०-णवुंस०-अप्पसत्थ० - चदुसंठा०-पंच-संव०-दृमग-दुस्सर-अणादे०-तित्थ० सिया० उक्क० । छदंस०-वारसक०-भय-दु० णि० वं० णि० तंतु० अर्णतभागणं वं० । पंचणोक० सिया० तंतु० अर्णतभागणं वं० । मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-तस० णि० वं० तंतु० संखेआदिभागणं वं० । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-वादर०३-णिमि० ं णि० वं० णि०

बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रमाग्रहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामक्रमेक (अकृतियांका जङ्ग स्वस्थान सृत्रिकरिक समान है। इसी प्रकार न्ययोष-परिमण्डल सस्यानक समान तान संस्थान, पाँच संहत्तन, अप्रशस्त विद्दोषोगति और दुःस्वरकी मुख्यनासे सन्त्रिक्ष ज्ञानना चाहिए।

२८५. तीश्रह्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेशाला जीव पांच ज्ञानावरण, छह् दरानावरण, धारह कामम, पुरावेदर भयः जुगुष्ता, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है भी इन्का नियमसे अरुष्ट प्रदेशवन्य करता है। सातावेदनीय, असावावेदनीय और चार नोक्यायका कहाचित्र क्या करता है। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। जानकांश प्रकृतियोक शकु स्माननसिक्षप्रके समान है।

२८६, उच्चगंत्रिका उत्क्रष्ट प्रदेशक्त्य दरनेदाला जीव पाँच झानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध कन्ता है जो इनका नियमसे उत्क्रुप्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्यानगृद्धित्रकः हो वेश्नीयः, गिथ्यात्वः अनन्तान्य-धीचतुष्कः, स्वीवेदः, नपुंसकवेदः, अप्रशस्त विहासोगिति, चार सन्धान, पॉच संहनत, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और तीर्थङ्कर प्रातिका कदाचित बन्ध करा। है। याद बन्ध काता है तो इनका नियमसे अरुष्ट प्रदेशबन्ध करना है। छह दर्शनावरण, दारह क्याय, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनका एरक्रष्ट प्रदेश वन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट अदेशवन्ध भी करता है यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तरागर्हान अनत्त्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कहाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है नो प्रकृष्ट प्रदेशवाय मा करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तं। इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुरक्तप्र प्रदेशयन्य करता है। मनुष्यगति, पश्चेन्द्रिय जाति, औदारिय शरीर आङ्कापाङ्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और असका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अतुरक्रष्ट प्रदेशपन्य करता है नो इनका नियमसे संख्यानभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। ओदारिकशरीर, तैतसशरीर, कार्नगरारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बारात्रिक और निर्माणका नियमसे बन्ध काना है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन

१. ता॰प्रती 'णस्मोद्भंगो । तिष्णि रंठा' इति पाठः । २. ता॰प्रती 'दुरसर॰ तिरथ॰' इति पाठः ।

संखेअदिभागूणं बं० । समबदु०-वअरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० बं० तं तु० संखेअदिभागूणं बं० । हुंडसं०-थिरादितिष्णियु० सिया० संखेअदिभागूणं बं० । एवं भवण०-वाणवें०-जोदिसि० । णवरि तित्थ० वज । मणुस०-मणुसाणु० एसिं आगच्छदि तेसिं सिया० रे उक्क० ।

३८७. सोघम्मीमाणे देवोधं । सणकुमार याव सहस्सार नि णिरयोघं । आणद् याव णवगेवजा नि सहस्सारभंगो । जवार तिरिक्खगदि०४ वज । अणुदिस याव सच्वद्व नि आभिणि० व उक्क० पदे०वं० चदुणा०-उदंस०-वाससक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०--क०-समचदु०-औरालि०अंगो०--वज्जरि०-वण्ण४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तम०४-समग-मुस्सर-आदे०-णिमि० णि० वं० णि० तं तु०

अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। समचनुरङ्गसंस्थान, वज्जयंभनाराचसंहनन, प्रभान विहायं।पाँत,
सुभग, सुगग और आदेषका कराचित्र वन्य करता है और कराचित्र वन्य नहीं करता। यदि
वन्य करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। यदि
अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग्रहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता
है। हुण्डसंखान आर स्थिय आदि तोग युगकका कराचित्र वन्य करता है। यदि वन्य करता
है। हुण्डसंखान आर स्थिय आदि तोग युगकका कराचित्र वन्य करता है। यदि वन्य करता
है। हुण्डसंखान अंगर स्थायनाग्रहोंन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थात्
सामान्य देवांके समान भवनवासी, व्यवन्य और व्योतिषी देवांम जानाना चाहित्र। इतर्ता
बिद्योग्या है कि इनमें तीर्थक्क प्रदित्ति हो उनके कराचित्र वन्य होता है और कराचित्र वन्य
नहीं होता। यदि वन्य होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य होता है आर कराचित्र वन्य

दे ... सीयमं और ऐतानकल्यमं सामान्य देशंके समान भन्न है। सनरकुमारसे लेकर सहस्रार कर तरक देशंम सामान्य तार्यक्रशं समान भन्न है। सनरक तरके देशंम सामान्य तार्यक्रशं कर ना सेयक तरके देशंम सहस्रार कर तरके देशंम सहस्रार कर ते समान भन्न है। इननी विशेषता है कि इनमं विशेषता के कर नो सेयक तरके देशंम सहस्रार कर ते साह क्ष्मान कर है। इननी विशेषता है कि इनमं विशेषता का लाइ कपाय, का इत कपाय, क्षार कर सन्त कर ते है। अपने कर ते सेयक कर ता है जो इनका तियमसे अरक्ष वर्दा सामान्य कर ता है जो इनका तियमसे अरक्ष वर्दा स्थापत कर ता है। यदि वन्य कर ता है तो नियमसे अरक्ष प्रदेश कर ता है। यदि वन्य कर ता है तो नियमसे अरक्ष प्रदेश कर ता है। यदि वन्य कर ता है तो नियमसे अरक्ष हम ते सेयक कर ता है। यदि वन्य कर ता है। विशेषता कर ता है। यदि वन्य कर ता है। विशेषता विशेषता

^{1.} ता॰पतौ 'तेसिंसा (सि.) या॰' इति पाठः। २. ता॰प्रतौ 'णवक्वेज सि' इति पाठः। ३. ता॰प्रतौ 'सम्बद्धत्ति । आभिणि॰' इति पाठः।

संखेजदिमागूणं वं । थिरादितिण्णियुग० सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं वं० !

३८८. मणुसाउ० उक्क० पदे०वं० धुविगाणं० णि० वं० संखेजदिभाग्णं वं० । सादा०छयुग०-तित्थ० सिया० संखेजदिभाग्णं वं० ।

३८९, मणुसगदि० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-छदंस०-बाससक०-पुरिस०-मय-दृ०-उचा०-पंचत० णि० वं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० ! जामाणं मत्थाण०भंगो० । एवं मणुसगदिभंगो सव्याणं णामाणं ।

३९०. तित्य० उक्क० पदे०बं० हेट्टा उविर मणुसगदिर्भगो । णामाणं अप्पष्पणा सन्धाणवर्भगो ।

३९१. पॉर्चिदि०-तस-पञ्जस-पंचमण०-पंचयचि०-कायजोषि० ओघर्भगो। ओरालियकायजोषि० मणुसगदिभंगो। ओरालियमि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० ६० णि० उक्क०। धीणिपिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इस्थि०-णजुंस०-आदाव-तिस्थ०-णोचुचा० सिया० उक्क०। छदंस०-बाससक०-मय-दु० णि०

भी करना है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे सख्यावमागद्दान अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करना है। इसी प्रकृष्ट इस बीजपदके अनुनार नामकर्मके अतिरिक्त पृवींक सब प्रकृतियोकी मुख्यतासे सन्तिकर्प जानना चाहिये।

२८८. मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव प्रृववन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागद्दीन अनुरुद्ध प्रदेशबन्ध करता है। साता आदि छह नुगल अर्थात् साता-असाता, हास्य-शोक रित अर्थात्, स्थिर आदि गीन युगल और तीयङ्करणकृतिका कराधित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यान-भागद्वीन अनुकृष्ट प्रदेशक्ष करता है।

३८९. मनुष्यगतिका उच्छा प्रदेशकण्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शना-वरण, बारह रुपाय, पुरुषवर, भय, जुगुप्ता, उरुवगांत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे बच्या करता है जो इनका नियमसे उच्छा प्रदेशकण करता है। सातावेदनीय, असानावेदनीय और चार नोक्यायका कराचिन् बच्या करता है। यदि बच्या करता है तो इनका नियमसे उच्छा प्रदेशकण करता है। नामकर्मकी प्रहतियाँका भङ्ग स्वस्थानसन्त्रिकणेके समान है। इस प्रकार मनुष्यगतिके समान नामकर्मकी यहां वैधनेवाळी सत्र प्रकृतियाँको मुख्यवासे सन्तिकणे जाना। चाहिए।

३९०. तीर्थक्रुरम्हातिका उत्कृष्ट प्रदेशवश्य करनेवाले जीवके नासकर्मसे पूर्वकी और बादको प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिको मुख्यतासे कहे गये सन्तिकवेके समान है। यामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थानसन्तिकवेके समान है।

२१. पक्केंट्रिय, पक्केंट्रियपवीत, त्रस, त्रसपवीत, पाँच मनोघोगी, धाँच वचनयोगी आर्थे कायसेगी जीवोम ओषके समान श्रम्न है। औदारिककावयोगी जीवोम अपिक समान श्रम्म है। औदारिककावयोगी जीवोम व्याप्तिक अर्थात मनुष्यों के समान श्रम्भ है। औदारिकक्षित्रकाययोगी जीवोम आमितिकोषिकक्षानावरण का उत्कृष्ट प्रदेशक्य करतेवाला जीव चार क्षातावरण और पाँच अत्यरावश्वा तियससे यन्य करता है जो इतका त्रियससे उदाष्ट्र प्रदेशक्य करता है। स्यानपृद्धित्रक, वो देशीय, सिम्यास्थ अननाव्यवस्थीन्त्रक, बोवेद, त्रसंद प्रतुप्तकेवद, आत्य, तीर्थक्ष, नोवगोत्र और उक्ष-गोत्रक कर्याचित्रक्य करता है। यदि वस्य करता है नो इतका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशक्य

वं० णि० तं तु० अणंतभागूणं वं०। पंचणोक्क सिया० तं तु० अणंतभागूणं वं०। तिणिगमिद-पंचजादि-दोण्णिभीए०-एस्संघ० - तिण्णिभीए०-एर्र॰ उस्सा०-[उज्जो०-] दोविद्या०-तमादिदसयुग० मिया० तं तु० संस्वेज्जदिभागूणं वं०। तेजा०-क्र०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० वं'० णि० तं तु० संस्वेजदिभागूणं वं०। एवं चदणा०-सादासाद०-पंचत०।

३९२. णिद्दाणिदाग् उकः पट्टेचं ० पंचगा०-दोदंन०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-पंचंत० णि० चं ० णि० उक्क० । छदंग०-बाससक०-अय-दु० णि० चं ० णि० अर्णत-भागूणं वं ० । दोबेदणी०-इत्थि०-जन्नुंस०-आदाब०दोगोद० स्थिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अर्णनभागूणं वं ० । दोगदि-पंचनादि-पंचसंठा०-ओरास्ति० यंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्य० तसादिचदुयुग० - धिरादितिण्णिचुग० - दूभग-

करता है। इह दर्शनावरण, यारह कथाय. भय और जुगुप्ताक निगमसे वन्य करता है। विक्तु वह इनका उद्धार प्रदेशवन्य भी करता है आदि अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है। उनका नियमसे सम्यानभागतीन अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है। विकरणान, उपियम्पिक वणनदुष्क अनुरुष्ट, उत्याव अने भी करता है। विकरणान, उपियम्य करता है। विकरणान, उपियम्य करता है। विकरणान, उपियम्य करता है। विकरणान, उपियम्य करता है। विकरणान, अनुरुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। विकरणान, उपियम्य विकरणान है। विवस्त अनुरुष्ट प्रदेशवन्य परता है। विवस्त अनुरुष्ट प्रदेशवन्य वाद्याव है। विकरणान, विवस्त स्वयावसानभागतीन अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है। विवस्त अनुरुष्ट प्रदेशवन्य वाद्याव हो। वाद्याव अनुरुष्ट प्रदेशवन्य वाद्याव वाद्य

१. आ॰प्रती 'उप० वि० वं॰' इति पाठः।

दुस्सर-अषादे० सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं वं०। तिण्णिसरीर-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिभि० णि० वं० तं तु० संखेजदिभागूणं वं०। समबद्द०-पसत्थ०-सुमग-सुस्सर-आदे० सिया० संखेजदिभागूणं वं०। एवं दोदंस०-भिच्छ०-अणंताणु०४-ण्युंस०-णीचा०।

३९३. णिहाए उक्कः पदे०चं ० पंचणा०-पंचरंत०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं ० णि० उक्कः । दोवेदणी०-चदुणोक०-तिस्थ० सिया० उक्कः । देवगदि०४-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्तर-आदे० णि० वं ० तं तु० संखेजदिभाग्णं वं ० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० वं ० संखेजदिभाग्णं माग्णं वं ० । थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेजदिमाग्णं वं ० । एवं पंचदंस०-वारसक०-सचणोक० ।

३९४. इस्थि० उक्क० पदे०चं० पंचणा० श्वीणिमिद्धि०२-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचत० णि० चं० णि० उक्क० । छदंस०-चारसक०-मय-दु० णि० चं० णि० अणंत-करता । यदि वन्ध्य करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य करता है। वीन शरीर, वर्णचलुष्क, अगुत्कृष्ठु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्ध्य करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य भी करता है यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य करता है। समचनुरस्त्रसंत्र्यान, शशस्त विद्यायोति, सुमग, सुस्वर और आदेखका कहाचित्त वन्ध्य करता है। वित्त वन्ध्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध्य करता है। इसी प्रकार होतावरण, सिध्यास्य, अननतानुबन्धीचतुष्क, नपुसकवेद

39% स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशकच्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्थानगृद्धि त्रिक, मिथ्यास, अनन्तातुक्वधीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशकच्य करता है। छह दरानावरण, बारह क्वाय, भय और जुगुस्वाका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे अनन्त्रभागाहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकच्य भागूणं बं ॰ । दोनेदणी० दोगोद० सिया० उक्त० । चटुणोक्त० सिया० अर्णतमागूणं बं ॰ । दोगदिसमचदु० हुंड० – असंपत्त० दोआणु० - उज्जो० पसत्य० - थिरादिपंचयुग० -सुस्तर० सिया० संखेजदिभागूणं बं०। पं चिंदि० ओरालि० नेजा० क्त० - ओरालि० -अंगो० - वण्ण० ४-अगु० ४ -तस० ४ - णिम० णि० वं ० णि० संखेजदिभागूणं वं ० । चदुसंठा० - पंचसंय० - अप्यत्यथ - दुस्सर० सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं वं ० ।

३९५, आउ० अपजनमंगो । णवरि याओ पगदीओ बंघदि ताओ णियम्^र असंखेजगुणहोणं बं० सिया० संखेजगुणहोणं० ।

३०६. तिरिक्ख० उक० पदेव्वं० पंचणा०-श्रीणिविद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-णवुंस० णीचा०-पंचत० णि० उक०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० वं० अर्णत-भागूणं वं०। दोवेदणी० सिया० उक०। चदुणोक० सिया० अर्णतभागूणं वं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं तिरिक्खगदिभंगो मणुस०। पंचजादि '-तिण्णिसरीर-पंचसंठा०-

करता है। दो बेदनीय और दो गोत्रका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उन्नुष्ट प्रदेशवन्ध करता है। चार नोहपायका कदाचिन् बन्ध करता है। चार नोहपायका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। गोत, समब्दुत्क्षसंखान, षुण्डसंखान, असन्यातामुगादिकासंहनन, दो आनुप्दीं, ज्यांत, प्रशस्त विद्यायोगित, रिथर आदि पाँच युग्छ और मुस्वरका कदाचिन् बन्ध करता है। राखेल्य वाद क्षाच करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थानभगवदीन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध करता है। यद्धिन्य कार्या है। यदि बन्ध करता है। यो इनका नियमसे संस्थानभगवदीन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध करता है। प्रक्रियज्ञाति, औदारिकशरीरम, तैनसवरीर, कामणशरीर, औद्दिक्शतीरआङ्गोपङ्ग कर्मचनुक और तुम्बरक कर्माचिन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध करता है। चार सम्यान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुम्बरक कदाचिन् बन्ध करता है। विस्तु वह इनका क्राइप्य स्थान करा हो। विस्तु वह इनका कराचिन करा है तो वह इनका नियमसे संस्थानभगविन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध से करना है। विस्तु वह इनका कराचिन से तो वह इनका नियमसे संस्थानभगविन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध से करना है। विस्तु वह इनका कराचिन से तो वह इनका नियमसे संस्थानभगविन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध से वह वह करा है। विस्तु वह इनका कराचिन से तो वह इनका नियमसे संस्थानभगविन अनुन्छ्य प्रदेशवन्ध से ता है।

३५५. आयुक्सका भङ्ग अपयोग जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंको नियमसे बाँधता है उन्हें असंस्थानगुणहीन बाँधता है और जिन प्रकृतियोंको कदाचित् बाँधता है उन्हें संस्थातगुणहोन बाँधता है।

३९६. तिर्यक्रगीतका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, स्थानगृद्धित्रक, मिण्यात्व, अन्तनातुक्वयांचतुष्क, नायुंगकवेद, नोचयोत्र और पाँच अन्तरात्वका नियमंसे नय्य करता है हो इन दुर्शनावरण, वारह कप्याय, भय और जुगुसाका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट अदेशवन्य करता है। हो देदनीयका कहाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि वन्य करता है। वार नोकषायका कहाचित् वन्य करता है। वार नोकषायका कहाचित् वन्य करता है। वार नोकषायका कहाचित् वन्य करता है। इसे वन्य करता है। वार नोकषायका कहाचित् वन्य करता है। इसे वन्य करता है। वार नामक्रमका प्रकृतिक समान वे। इसीजकार विश्वक्यां से समान सन्यस्थातिक समान सन्यस्थातिक मुक्तवासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए। याँच जाति, तीन

१. ता० वर्तो 'मणुस० पंचजादि' इति पाठः ।

ओरालि०ब्रंगो०-छस्संष०-बण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउजो०-अप्पसत्थ०-तसादि-चदुयुगल०-धिरादितिष्णियुग०-दूभग-दुस्तर-अणादे०-णिमि० हेट्टा उवरिं तिरिक्खगदि-भंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो । णवरि चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्तर० इत्थि०-णबुंस०-उचा० सिया० उक्क० । पुरिस० सिया० अणंतभागृणं गं० ।

३९७. देवग० उक्क० वं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं देवगदि० १८ ।

३९८. तित्थ० हेट्टा उवरि देवगदिभंगो । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

३९९. उचा० उक्क० पदे०चं० पंचणा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०२ सादासाद०-मिच्छ०-अर्णताणु०४ - इत्थि०-णवुंस०-चरुसंठा० - पंचसंपं-अप्यत्स्थ०-दुस्सर० सिया० उक्क० । उदंस०-बारसक०-सय-दु० णि० वं० णि० तं तु० अणंतभाग्णं वं० । पंचणो० सिया० तं तु० अणंतभाग्णं वं० । मणुस०-ओरालि०- रारार, पाँच संस्थात, औदारिकशरोरआङ्गाणाङ्ग, छह संहतन, वर्णचतुन्छ, स्वर आदि तीन युगल, पुगल, दुश्वन, अग्रशस बिहोगित, यस आदि चार युगल, स्वर सादि तीन युगल, दुश्वर अनादेश और निर्माणको मुख्यतासे नामकमको अक्वतियोको पूर्वकी और वारको अक्वतियोका मङ्ग विश्वक्षातीको मुख्यतासे नामकमको अक्वतियोका नङ्ग विश्वक्षातीको मुख्यतासे नामकमको अक्वतियोका नङ्ग विश्वक्षातीको मुख्यतासे नामकमको अक्वतियोका नहीं । तथा नामकमको अक्वतियोका भङ्ग अपने अपने सथान स्वर्मनकपके समान है। इतने विश्वक्षातीको मुख्यता अर्थका अर्थका प्रदेशका कर्वकृष्ट प्रदेशका करता विश्वकाता जीव स्वीवेद, नपुंसकवेद और उच्चयोगका कर्दाचत् वन्य करता है जो इसका नियमसे अन्तनामहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशका कराणित कराणित वन्य करता है जो इसका नियमसे अन्तनामहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशका क्वा है।

रिएक देशातिका उन्हरूप प्रदेशवन्य करती है। देश देशातिका उन्हर्स स्वाप्त करानावरण, छह दर्शनावरण, मारह कथाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्ता, उन्हर्गात्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इतका नियमसे उन्हरूप प्रदेशवन्य करता है। सागवेदारीय असातावेदनीय और चार सोक्यायका कहाचित्त वय करता है। यदि वस्य करता है। हो सागवेदारीय असातावेदनीय और वार सोक्यायका कहाचित्त वय्य करता है। सागवेदारीय करका है से इस्तर व्यवस्थान सिक्यप्रकेस साग है। इसी प्रकार देशाविक करता है। नामकसंखी प्रकृतियांका भक्क संस्थान सिक्यप्रकेस साग है। इसी प्रकार देशाविक

चतुष्कको मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

३९८. तीर्थेङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके नामकर्सेसे पूर्वकी ऑर बाइको प्रकृतियाँका मक्क देवातिको सुध्यतासे कहे गये सन्निकर्पके समान है। नामकर्सकी प्रकृतियाँका मक्क प्रवाद्यान सन्तिकर्पके समान है।

३९५. उच्चगोत्रका उस्कृष्ट प्रदेशकन्य करतेवाला जीव पॉच झानावरण ओर पॉच क्षानावरण ओर पॉच क्षानावरण तियमसे उस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। स्यानगृद्धित्रक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिण्यात्व, अनन्तानुकर्याचनुषक, स्विद, न्युंसकवेद, चार संख्यान, पॉच संहतन, अग्रास्त विद्यायोगित और दुःसरका कराचित्र वन्ध करता है जो इनका नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है। छह दर्शनावरण, वारह क्याय, भय ओर जुगुप्साका नियमसे बच्च करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशकन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तमागाहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशकन्य स्व

हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-मणुसाणु०-धिरादितिष्णियु०-दूभग-अणादे० सिया० संखेआदिभागुणं बं०। देवगदि०४-समबदु०-पसत्थ०-सुमग-सुस्सर-आदे० सिया० तं तु० संखेआदिभागुणं बं०।[पंचिदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेआदिभागुणं बं०]। तित्थ० सिया० उक०।

४००. वेउव्वि०-वेउव्वि०मि० देवोघं । आहार०-आहारमि० सव्बद्ध०भंगो ।

णवरि अप्यप्पणो पाओग्गाओ पगदीओ कादच्वाओ ।

४०१. कम्मइ० आभिणि० उक्त० पदे०बं० चदुणा ०-पंचंत० णि० बं० णि० थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्त०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं०तं तु० अणंतभागृणं वं । पंचणोक शिया । तं तु । अणंतभागूणं । वं । तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यर्गात, औदारिकशरीर, हुण्डसस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहतन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचिन बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त बिहायोगीत, सभग, सस्वर और आदेयका कराचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। पञ्चिन्द्रियज्ञानि, तैजसञ्जरीर, कार्मणश्चरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्युचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थक्करप्रकृतिका कर्दा चत् बन्ध करता है। यदि अन्ध करता है तो इसका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४०० वैकिथिककाययोगी और वैकिथिकसिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवांके समान भक्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके

देवोंके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

४०१. कार्मणकाययोगी जीजोंमें आभित्रिभोधिकञ्चानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करतेवाळा जीच वार्य झानावरण और पांच अन्तरावळा नियमसे बच्च करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्वानगृद्धिक, सावावेदनीय, असातावेदनीय, प्रित्यावर, अननतानुबन्धीचतुष्क, ज्ञोवेद, नपुंसकवेद, आतप और दो गोत्रका करावित् वन्य करता है वा इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण, जारह कवाय, भव और जुगुस्साका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह दक्तका अक्कष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका त्रक्रिक प्रदेशवन्य करता है तो अनुका प्रदेशवन्य करता है तो इनका करता है तो अनुका प्रदेशवन्य भी करता है और अनुकारण्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुकारण्ट प्रदेशवन्य भी करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो हो ता नियमसे अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो हो हो ता विषय से अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो हो हो ता विषय से अनन्तभागहीत अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे करता है तो इनका नियमसे अन्तर्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तर्य करता है तो इनका नियमसे करता है तो इनका नियमसे अन्तर्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तर्य करता है तो इनका नियमसे अन्तर्य करता है तो इनका नियमसे करता है तो इनका नियमसे

१. भाः प्रती 'पदे०बं॰ पंचणा॰' इति पाठः।

छस्तंठा०-दोअंगो०-छस्तंघ०-तिष्णिआणु०-पर०-उस्ता०-उज्ञो०'-दोबिहा० -तसादिदस-युग०-तित्थ० सिया० तं तु० संखेजदिमागूणं च'० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० च'० तं तु० संखेजदिमागूणं च'०।एवं चदु णाणा०-दोवेदणो०'-पंचत०।

४०२. णिडाणिहाए उक्क० पदे०वें० पंचणा०-होर्दसणा०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । एवं ओरालियमिस्स०भंगो ।

४०३. णिहाण उक्क० पदे०वं ० पंचणा०-पंचदंस०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० उक्क० ।
मणुसम०-ओरालि०-ओरालि०-झंगो०-मणुसाणु०-धिरादितिण्णियुग० सिया० संखेळदिमागुल वं० । देवगदि०४-बजरि०-तित्य० सिया० तं तु० संखेळदिभागूणं वं० ।
[पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस४-णिमि० णि० वं० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समचु०-पसत्य० सुभग-सुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेळदिभागूणं वं०]
समच्यान त्रांचान विक्षान सुम्सर-प्रकार विक्षान कराणि हे और कराचित वर्ण नहीं करता है विक्षान निममसं संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। ति सन्य स्वर्णच्यान अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य मी करता है। किन्तु वह इनका व्यक्ष्यप्रदेशक्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। विक्रित्य सुक्कान्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विक्रित्य सुक्कान्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विक्रित्य सुक्कान्य वर्ण करता है। विक्रत्य वर्ण करता है। विक्रत्य निष्किष्ठ नानना चाहिए।

८०२. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशनम्ब करनेवाला जीव पाँच झानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात, अननतानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार यहाँ औदारिकमिश्रकाययोगां जीवांक

आ॰पती 'उस्सा॰ ब्राहाउजो॰' इति पाठः । २. श्रा॰प्रती 'चदुणोक॰ दोवेदणी॰' इति पाठः ।

वं ० । एवं चदुदंस०-बारसक०-सत्तणोक० ।

४०४. इत्थि० उक्क० पदे०चं० पंचणा० थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-पंचंत० णि० चं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-सय-दु० णि० चं० अर्णतभागूणं चं० । दोचेद०-दोगोद० सिया० उक्क० : चदुणोक० सिया० अर्णतभागूणं चं० । दोगदि-दोसंठा०-असंपत्त०-दोआणु०-उओ०-पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० संखेजदिभाग्णं चं० । चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० तंतु० संखेजदिभाग्णं चं० । सेसाणं णियमा संखेजदिभाग्णं चं० ।

४०५. तिस्क्ति उक्क पदेव्यं व पंचणाव्यीणिसिद्धे हे - मिच्छ० - अणंताणु० ४-णयुंसव-पीचाव-पंचंतव णिव यं व णिव उक्क । छदंसव-माससक - भय-दुव णिव यं व णिव अणंतभाग्णं यं व । दोनेदणीव सियाव उक्क । चद्णोक सियाव अणंत-

है। किन्तु बह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करना है और अनुकृष्ट प्रदेशवन्य भी करना है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करना है तो इनका निवससे संख्यानभागहीन अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करना है। इसी प्रकार चार दर्शनावरण, बारह क्याय, और सात नोकशयकी मुख्यनासे सर्जिक्य जानना चाहिए।

४०%. स्त्रीवेदका उरकुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, स्थानगृद्धित्रक, स्थानवाल, अनननातुक्यांचलुष्ठ ऑर पांच अनवायका निवससे वन्य करना हो जो इनका निवससे उत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण, बारह कागय, भय और जुगुष्याका नियससे वन्य करता हो जो इनका निवससे अननन्त्रामाण्डीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करना हो दो वेदनीय और हो गोत्र का कदाचिन बन्य करता है। यदि यस्य करता है तो इनका निवससे उन्दुष्ट प्रदेशवन्य करता है। यदि अन्य करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका उन्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका उन्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका उनकृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका उनकृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। विषयसे संख्यातमाण्डीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। विषयसे संख्यातमाण्डीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है।

8º4. तिर्यक्षपतिका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करतेवाला जीव वाँच जानावरण, स्यानपृद्धिकित प्रियास, अनतनातुक्योचानुकः, न्युंसकदेद, नीचगोत्र और पाँच अनतायका तिवससे अन्य करता है जो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। छह दर्शनावरण, बाग्ह कवाय, भय और जुणुरासका नियससे क्या करता है जो इनका नियससे अनतनामाहीन अनुतक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि वय्य करता है वाद करता है। यदि वय्य करता है तो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। नाम निवससे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि वय्य करता है। यदि वय्य करता है। यदि वय्य करता है। वाद वय्य करता है। वाद वय्य करता है। वाद वय्य करता है। वाद करता है। इसी प्रकार मनुष्यातिका नियससे अनतमामाहीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। वास करका प्रवृद्ध व्यवस्थानसात्र करता है। वास करता है। इसी प्रकार मनुष्यातिका नियससे अनतमामाहीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। वास कर्मका प्रकृतियोका भक्ष स्वयानसात्र करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यातिका नियससे अनतमामाहीन अनुतक्ष प्रकृतियोका भक्ष स्वयानसात्र करते हैं।

१. आ॰पतो 'सिया॰ संखेजदिभागयां' इति पाठः ।

भाग्णं बं । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं मणुसग० । पंचजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०व्यंगो०पंचसंघ०-दोत्राणु०-पर०-उस्सा०-आदाउजो० - अप्पसत्थ०-तसादिचदु-युगल-थिरादिनिष्णियुग०-द्भग-दुस्सर-अणादे० हेद्वा उवरिं० तिरिक्खगदिभंगो । णवरि चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० इत्थि०-णबुंस०-उच्चा० सिया० उक्क० । पुरिम० मिया० अणंतभाग्णं बं ० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

४०६. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा० बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोबेदणी०-चदुणोक० सिया० उक्क०। वेउच्चि-०समचदु०-वेउच्चि०अंगो०-देवाणुपु०-पसत्यवि०-सुभग-सुस्सर-आदेअ० णियमा उक्करसं। एवं देवगदिभंगो वेउट्वि०-समचदु०-वेउच्चि०अंगो०-देवाणु०-पसत्य०-सुभग-सुस्सर-आदे०।

४०७. तित्य० उक्क० पदे०चं ० हेड्डा उवर्सि देवगदिमंगो । णामाणं सत्याण०भंगो। ४०८. उचा० उक्क० पदे०चं० पंचणा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । थोणग़िद्धि०२-दोवेदणी०-मिच्छन्त०-अणंताण्व०४-इत्थि०णवंस०-चदसंटा०- पंचसंघ०-

मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। पाँच जाति, औद्दारिकशरीर, पाँच सस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपङ्ग, पाँच संहतन, दो आयुष्ट्यी, परधात, उच्छुस, आतप, उद्योन, अप्रशान विहायोगी, तमादि चार युगल, स्थिरादि तीन युगल, दुर्भग, दुःश्वर और अनादेखी पृथ्यनासे नामकर्म, पूर्वक्षी और बाइकी प्रकृतियाँका सङ्ग विश्वज्ञातिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संस्थान, पाँच संहतन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःश्वरका उच्छुण प्रदेशक्य करती है तो इनका नियमसे उच्छुण प्रदेशक्य करता है। पुरुष-वर्षक करता है। यदि बन्य करता है तो इनका नियमसे उच्छुण प्रदेशक्य करता है। पुरुष-वर्षक कदाचित् वन्य करता है। विह वन्य करता है तो इनका नियमसे उच्छुण प्रदेशक्य करता साहीन अनुकुष्ट प्रदेशक्य करता है। समकर्मकी स्कृतियोक। सङ्ग स्वस्थान सिक्यफर्क समान है।

४०६. देवगितका उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह काग्रस, पुरुषेवर, भय, जुगुस्सा, रूच्याोत्र और पांच अन्तरावका नियससे वन्ध करता है जो इनका नियससे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कराविन वन्ध करता है। याद वन्ध करता है। याद वन्ध करता है। याद वन्ध करता है। विकिषकरारीर, समचतुरक्तसंख्यान, विकिषकरारीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशन्त विहायोगिति, सुभाग, सुखर और आदेवका नियससे वन्ध करता है । इसी प्रकार देवगितके समान वैकिषिकरारीर, समचतुरक्रसंख्यान, वैकिषकरारीर आङ्गोपाङ्ग, रोक्षार विहायोगित, सुभाग, अङ्गोपाङ्ग, देवगितके समान वैकिषक शरीर, समचतुरक्रसंख्यान, वैकिषकरारीर आङ्गोपाङ्ग, देवगितके समान वैकिषकर्यार सम्यन्त स्वरं और आदेवकी सुख्यतासे सिन्नकर्य समझना चाहिए।

४००. तीर्थक्ट्रप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भक्क देवगतिकी मुख्यतासे इन प्रकृतियोंके कहे गए सन्निकर्पके समान है। नामकर्मका भक्क स्वस्थान सम्निकर्षके समान है।

४८८. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्त-रायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्थानगृद्धित्रक, दो वेदतीय, मिध्यास्त, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अपपसत्थ - दुस्सर । सिया | उक्क | छदंस - चारसक ॰ भय-दु । णि० बं० तं तु ० अणंतमामूणं बं० | पंचणोक ॰ सिया । तं तु ० अणंतमामूणं बं० | पंचणोक ॰ सिया । तं तु ० अणंतमामूणं बं० | पंचिदि ॰ तेजा ॰ कि० चण्ण ॰ ४ अणु ० ४ तस्व ७ ४ जिण । संके अदिभागूणं बं० | भणु न ॰ अग्रे ति ० जुंच ० ०

४०९, इत्यिवे० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा० पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। धीणमिद्धि०३-अणंताणु०४-इत्थि०-णार्चंस०-णित्य०-णित्याणु०-आदान०-तित्य०-दोगोद० सिया० उक्क०। णिहा-पयला-अट्टक०-छण्णोक० सिया० तं तु० अर्णंत-भागृणं वं०। चदुसंज० णि० वं० णि० तं तु० अर्णंतभागृणं वं०। पुरिस०-जस०

अप्रशस्त विद्वायोगति और द:स्वरका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कवाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तेभाग-हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे इनका अनन्त्रभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चिन्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतव्क, अगर-लघचतप्क, त्रसचतष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात-भागहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मनुष्यगित, औदारिकश्ररीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासपाटिका संहतन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर आहि तीन वगल. दुर्भग और अनादेयका कदाचित बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। देवगतिचत्वक, समचत्रस्थान, वस्त्रवभनाराचसंहतन, प्रशस्त विहायो गति. सभग, सस्वर आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४०९. स्रीवेदी जोवांमं आमिनवोधिक ज्ञानावरणका उत्तर प्रदेशवन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और याँच अनतायका निवमसे वन्य करता है जो इनका निवमसे उत्तर प्रदेशवन्य करता है। स्वानगृद्धिविक, अनतातुक्वधीचृत्यक, कोवन, नपुंसकवेद, नारकारित, नरकास्यातुपूर्वी, आतप, तीधेट्टर और दो गोत्रका करावित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इनका निवमसे उत्तर प्रदेशवन्य करता है। निर्मा, प्रचल, आठ कपाय और छह नोकपायका कराचित्त वन्य करता है और कराचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो उत्तर प्रदेशवन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वार स्वच्य करता है। वार स्वच्यकता निवमसे अनतभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। चार संव्यक्रवान निवमसे अनतभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। वार संव्यक्रवान निवमसे वन्य करता है। वार संव्यक्रवान निवमसे वन्य करता है।

१. ता॰का०पत्यो: 'बं॰। चदुयोक॰' इति पाठः। २. बा॰प्रती 'अर्थातभागृयं बं॰ मणुस॰' इति पाठः।

सियाः तं तुः संखेअगुणहोणं वं । तिष्णिगदि-पंचनादि-पंचनिराश्रस्ताः-तिष्णिश्रंमो ०-इस्संघ ०-वःण ०४-तिष्णिआगु ०-अगु ०४-उजो ०-दोविहा ०-तसादिणवयुग ०-अजस०-णिमि० सियाः तं तुः संखेजदिमागुणं षं ०। एवं चटुणा०-पंचंतः ।

४१०. णिद्दाणिद्दाण् उक्क० पदे०चं० तिरिक्खगदिमंगो । णवरि पुरिस०-जस० सिया० संखेजगुणहीणं० वं० । एवं० दोदंस०-मिच्छ०-अर्णताणु०४ ।

४११. णिहाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पयला०सय-दु०-पंचंत० णि०चं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि०चं० अणंतभाग्णं बं०। साहासाह०-अपचक्खाण०४-चदुणोक०-वअरि०-तित्थ० सिया० उक्क०। पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंत-भाग्णं बं०। चदुसंज० णि० गं० णि० तं तु० अणंतभाग्णं बं०। पुरिस० णि०

अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तमागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषवेद और यहाः कीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कराचित् वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वेत अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वेत अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वेत गति, पोच जाति, पोच शारीर, छद संस्थान, तेत आङ्गोशङ्ग छद संहत्तन, वर्णवतुष्क, तेत आनु-पूर्वी, अगुरु कपुत्वतुष्क, व्योत, दो विद्यायोगित, त्रसादि नी युगक, अवशक्ति और तिमीणका कद्राचित् वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार चार क्षानावरण और पोच अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। इसी प्रकार चार क्षानावरण और पोच अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार चार क्षानावरण और पोच अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार चार क्षानावरण और पोच अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य स्वता चित्र ।

४१०. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका भङ्ग विर्यक्क्षगतिमें इस प्रकृतिकी मुख्यतासे कहे गये मानिक वर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि यह पुरुषवेद और यसाः कीर्तिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणा हो। अलुक्कष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार तो इर्रानावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चुलक्की मुख्यतासे सानिकर्य जानना चाहिए।

१११. निद्वाका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव गाँच झानावरण, प्रचला, भय, जुगुत्ता और गाँच अनतायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश-वन्य करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे वन्य करता है। जो इनका नियमसे अनन्त-भाग्रहीन अनुतकृष्ट प्रदेशय्य करता है। सातावेदनीय, अस्तावावेदनीय, अप्रसायव्यानावरण-चतुक्क, चार नोक्याय, वज्रपंभनाराच संहनन और तीर्थङ्कराम्हितका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि वन्य करता है। वाद कर्याचित् वन्य करता है। वाद कर्याचित् वन्य करता है जो उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। वाद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। वाद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुत्वष्ट प्रदेशक्य करता है। संवक्तनचुक्क का नियमसे वन्य करता है। वाद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। विषय करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है।

बं॰ संखेजगुणहीणं बं॰। मणुस॰-त्रोरालि॰-त्रोरालि॰अंगो॰-मणुसाणु॰-धिराधिर-सुभासुभ-अजस॰ सिया॰ संखेजदिभागणं बं॰। पंचिदि॰-तेजा॰-क॰-वण्ण॰४-अगु०४-तस०४-णिमि॰ णि॰ वं॰ संखेजदिभागणं वं॰। समबदु॰-पसत्थ॰-सुभग-सुस्सर-आदे॰ णि॰ वं॰ णि॰ तं तु॰ संखेजदिभागणं वं॰। देवगदि०४-आहार०२ निया॰ संखेजदिभागणं वं॰। जस॰ सिया॰ संखेजगुणहोणं वं॰। एवं पयला॰।

४१२. चक्सुर्दे० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिष्णिदंस०-सादा०-चदु संज०-उचा०-पंचंत० णि० चं० णि० उक्क०। पुरिस०-जस० णि० वं० णि० तं तु० संखेजगुणहीणं वं०। हस्स-दि-भय-दु०-तिस्थ० सिया० उक्क०। वेउन्वि०४-आहार०२-समचदु०-पसन्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० तं तु० संखेजदिभाग्णं वं०। पंचिद्द०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-तस०४-धिर-सुम०-णिमि० सिया० संखेजदिभाग्णं वं०। एवं तिष्णिदंस०।

मनुष्यगित, औदारिकक्षरीर, औदारिकक्षगीर आङ्गोगाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अञ्चल, और अयरा,क्षोतिक करावित क्या करता है। यदि वन्य करता है। विवास सम्मान्यवान अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि वन्य करता है। विवास सम्मान्यवान अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। पद्मित्य वाचित्र से स्थान करता है। अज्ञलक्ष्य अर्गान करता है। अज्ञलक्ष्य अर्गान करता है। जो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। किन्तु वह इनका उन्नेष्ठ प्रदेशक्य भागता है। अस्य अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। विवास अर्गान करता है। विवास अर्गान कर्मान है जो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। विवास स्थान मान्यवान करता है। विवास स्थान अर्गान है तो इनका नियमसे संख्यानभागद्दीन अनुक्कष्ट प्रदेशक्य करता है। विवास स्थान स्थान करता है। विवास स्थान स्थान करता है। विवास स्थान स्थान करता है। विवास स्थान करता है। विवास करता है। विवास स्थान स्थान करता है। विवास स्थान स्थान

४१२. वशुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन त्रंगनावरण, सातावदनीय, चार संज्ञवतन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे बन्ध करता है तो इतका नियमसे बन्ध अर्थ करता है तो इतका नियमसे बन्ध अर्थ करता है तो इतका नियमसे संज्यातगुण हीन अव्यक्त अर्थ करता है। यदि अनुक्तक प्रदेशवन्य करता है तो इतका नियमसे संज्यातगुण हीन अव्यक्त करता है। विच वन्य करता है तो तियमसे वक्त प्रदेशवन्य करता है। विच वन्य करता है तो तियमसे वक्तक प्रदेशवन्य करता है। विकायक वक्त अवाधित वन्य करता है। विकायक वक्त विकायक विकायक

४१३. साद० उक्कः पदे०वं० आमिणि०मंगो। णवरि णिरयगदिवगदीओ वस ।

अप्पसत्थ०-द स्सर० सिया० संखेजदिमागणं बं०।

४१४. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा० पंचत० णि० बं० णि० उक्क० । थोणागिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाब०-तित्थ०-दोगोद० सिया० उक्क० । चद् दंस० णि० बं० णि० अणु० अर्णतभाग्णां बं० । दोण्णदंस०-चद् संज०-भय-दु० णि० वं० णि० तं तु० अर्णतभाग्णां बं० । अङ्कक०-चद् णोक० सिया० तं तु० अर्णतभाग्णां बं० । पुरिस०-जस० सिया० संखेजदिगुण-होणां० । तिण्णिगदि-पंचजादि'-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उजो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अजस० सिया० तं तु० संखेजदिमाग्णां बं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० णि० तं तु० संखेजदिमाग्णां बं० ।

४१२. साताबेदनीयका चकुष्ट प्रदेशकप्य करनेवाले जीवका सङ्ग आभिनियाधिक ज्ञानावरणकी सुरुवातासे कहें गये सांक्रकपेके समान है। इतनी विशेषता है कि नरकगित सम्बन्धी प्रकृतियोक्ते होड़ देना चाहिये। तथा अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका कराविन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इतका नियमसे संख्यातभागदीन अन्तकष्ट प्रदेशक्य

करता है।

१८४. असानावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्यानगृद्धित्रक, भिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्वावेद, नपंमकवेद, नर्कगति, नरकगत्यानु-पूर्वी, आतप, तीर्श्रक्कर और दो गोत्रका कर्दाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है ती इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्त्रभागहीन अनुस्क्रष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कपाय और चार नाकपायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता हैं तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पुरुपवेद और यशःकीतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है नो इनका नियमसे संख्यानगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जानि, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गापाङ्ग, छह संहतन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छवास, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस आदि नौ यगल और अयझःकीर्तिका कराचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो एरकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करना है और अनुस्कुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमागडीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसदारीर, कार्मणदारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलवु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु यह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि भनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करना है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

^{1.} भा०प्रतौ 'तिष्णिगदि चदुजादि' इति पाठः।

४१५. अपचक्खाणकोघ० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-णिहा-पयला-तिष्णिक०भय-दु०-पंचंत० णि० वं० उक्क० । चदु दंस०-अहुक० णि० वं० णि० अर्णतमागृणं
वं० । पुरिस०-जस० णि० वं० णि० संखेजदिगुणहीणं० । णविर जस० सिया० ।
सादासाद०-चदु णोक०-[वजारि०-] तित्थ० सिया० उक्क० । मणुस०-जोरालि०जोरालि०अंगो०-मणुसाणु०-पिरासिर-सुमासुम-अजस० सिया० संखेजदिमागृणं वं० ।
देवगदि०४ सिया० -तं तु० संखेजदिमागृणं वं० । पंचिंद०नेजा०-क०-वण्ण०४अगु०४-तस०४-णिम० णि० वं० संखेजदिमागृणं वं० । समचदु०-पसत्थ०-सुम्मसुस्सर-आदे० णि० वं० णि० तं तु० संखेजदिमागृणं वं० । एवं तिण्णिक० ।
पवस्वाणकोघ० उक्क० अपवन्साणमंगो । णविर मणुसगदिपंचगं वज्ञ । एवं तिण्णिक० ।
४१६. कोधसंज० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-तिण्णसंज०-उचा०-पंचंत० णि०

४१६. कांधसंज उक्क पदंब्ब पचणाव्नाताण्णसंजव्ज्ज्ञ्चाव्यप्तत्व णव् यं णिव उक्क । णिद्दापयलान्दोबेदणीव्युजोकव्नियव सियाव उक्क । चतुर्दसव

४१५, अवत्याख्यानावरण कोधका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाछ। जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रवस्ता, तीन कवाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और आठ कपायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्क्रष्ट प्रदेशवन्ध करता है। परुषवेद और यश:कीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात गुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, वळ्यभनाराचसंहनन और तीर्थहर प्रकृतिका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकश्रीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशः कीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात-भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। देवर्गातचतुष्कका कर्ताचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है आर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पद्धन्द्रयजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। समचतरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त विद्वायोः गति, सुभग, सुखर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुतर्ख्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुत्कुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरणकोधके उत्रुष्ट प्रदेशबन्धकी मुख्यतासे सिक्नकर्ष अप्रत्याख्यानावरणकोधकी मुख्यतासे कहे गए सिन्तकपके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपद्भक्तको छोड़कर यह सिक्रकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रस्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सिन्न कर्ष कहना चाहिए।

%१६. कोषसंज्यकनका उत्कृष्ट प्रदेशवरूप करनेत्राळा जीव पाँच क्रानावरण. तीन संज्य-ठन, च्यांत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, चार नोकपाय और तीर्थक्कर प्रकृतिका फहाचित्र बन्ध करता है। यदि बन्ध करना है तो इनका नियमसे उद्देष्ट प्रदेशवन्य करता है। चार ाणे० चं० णि०तं तु० अणंतभागूणं वं० । पुरिस० णि० चं०तं तु० संखेजदिगुणहीणं० । देवगदि०४-आहार०२-समचद्द०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० वं० तं तु० संखेजदिगुणहीणं०। संखेजदिभागूणं वं० । पंचिदि०-तेजा०-फ०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-थिराधिर-सुभासुभ-अजस०-णिमि० सिया० संखेजदिभागूणं वं० । जस० सिया० तं तु० संखेजगुणही० । एवं तिण्णिसंज० । इत्थि०-णवंस० तिरिक्ख०भंगो । णवरि जस० सिया० संखेजगुणहीणं० ।

४१७. पुरिस उक्कः पदेव्यंव पंचणाव-चदुदंसव-सादाव चदुसंजव-जसव-उचाव-पंचंतव णिव बंव णिव उक्कः।

४१८, हस्स० उक्क० पदे०बं० पंचणा० रहि-भय-दु०'-उचा०-पंचत० णि० बं० णि० उक्क०। णिहा-पयला-सादासाद०-अपचक्ताण०४-वक्कति०-तित्थ० सिया०

दर्णनावरणका नियमसे बन्ध करता है किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातराणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवर्गातचतुष्क, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनु-राष्ट्र प्रदेश बन्ध काता है। पुद्ध निरुष जाति, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुरक, अगर-लघु चतुरुक, त्रसचतुरुक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है । यश कीर्तिका कराचित बन्ध करता है और कराचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्क्रप्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मान आदि तान संव्यलनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्वावेद और नपसक्रवेदकी मुख्यतासे सिन्नवर्ष निर्यक्षोंमें इनकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान जानना चाहिए। इतना विशेषता है कि यश:कीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

११७. पुरुषबेदका उत्कृष्ट प्रदेशांकि करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संख्वलन, यशकीर्ति, उद्योगित्र और पाँच अन्तरायका निषमसे बन्ध करता है जो इतका तिस्पर्स वक्तक प्रदेशकण करता है।

४१८. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशबन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, रति, भय, जुगुप्सा, उद्याग्न ऑर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट शरेशवन्य करता है। विहा, प्रचल, सावविद्याग्न, अन्यताविद्याग्न, अन्यताव्याग्न, अन्यताव्याग्न, कर्मां करता है। विह सन्य करणा है ले

^{1.} ता॰प्रती 'रा (र) दिभयदु॰' इति पाठः। २. ता॰प्रती 'वज्रारि॰। तिरथ॰' इति पाठः।

उक्तः । चदुदंसः -चदुसंजः विश्वं वं जिं तं तु अणंतभागूणं वं । प्रबस्याणः ४ सियाः तं तुः अणंतभागूणं वं । पुरिसः णियमा संखेअगुणहीणं वं । मणुसः -ओरालिः -ओरालिः अंगोः -मणुसाणुः -धिराधिर-मुमासुम-अजसः सियाः संखेअदिमागूणं वं । देवगदिः ४-आहारः २ सियाः तं तुः संखेअदिमागूणं वं । पंचिदिः -तेजाः -कः -चण्णः ४-अगुः ४-तसः ४-णिमिः संखेअदिमागूणं वं । जसः सियाः तं तुः संखेअगुणहीः । एवं रदीए ।

४९९. अरदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिहा-पयला-सोग-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । चदुदंस० णि० वं० अणंतभाग्णं वं० । दोवेद०-अपचक्खाण०४-तित्थ० सिया० उक्क० । पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंतभाग्णं

इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और चार सञ्बलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्रेष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे अनन्तभागहीन अनु-लुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करना है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग-हीन अनुतक्कष्ट प्रदेशवस्य करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूत्री, स्थिर, अस्थिर, ग्रुभ, अग्रुभ और अवशार्श्वार्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनत्कर प्रदेशबन्ध करना है। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकका कराचित् वन्ध करता है और कराचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्क्रष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुरक्षष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे सख्यातभाग-हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चन्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुख्य चतुष्क, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार रातको मुख्यतासे सन्निकप जानना चाहिए।

४१९. अर्रातका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, शोक, भय, जुगुप्सा, उद्योग और पाँच अन्तरायका नियससे कन्य करता है जो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। यार दशानवरणका नियससे वन्य करता है जो नियससे अन्तरन्त भागदीन अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय, अश्रवाध्यानावरण चतुष्क और तींग्रहूर, प्रकृतिका कर्याचित्र क्ष्य करता है। येद वन्य करता है तो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशन्य क्षया है। येद वन्य करता है तो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशन्य क्षया है। जीर कहाचित्र वन्य नियस करता है। योद वन्य करता है। जीर कहाचित्र वन्य निर्मा करता है। अर्थक्ष वन्य करता है। अर्थक प्रदेशन्य मार्थक करता है। योद अनुतकुष्ट प्रदेशन्य मार्थक करता है। योद अपने करता है। योद अनुतकुष्ट प्रदेशन्य मार्थक करता है। योद करता ह

१. ता॰प्रती 'णिसि॰ सिया॰ संखेकदिसा॰' इति पारः ।

बं०। चदुसंज्ञ० जि० बं० जि० तंतु० अर्जनभागूणं बं०। पुस्सि० जि० संस्थेज-गुणही०। णामाणं ओघमंगो। णवरि वजरि०-तिस्थय०े सिया० उकस्सं०। एवं सोग०।

४२०. णिरयाउ० उक्क० पंचणा०-णवदंत्त०-असाद०-भिच्छ०-सोरुसक०-पंचणोक०-णिरयगदिअद्वावीस-णीचा०-पंचंत० णि० संखेआदिआगणं बं०। एवं तव्वाउनाणं। णवरि ृरिस०-जस० सिया० संखेआगुणही०। तिण्णिमदि-पंचजादि० सव्वाओ णामपगदीओ पंचिदियतिरिक्सभंगो। णवरि जस० एसि० आगस्छिदि तेसिं संखेआगुणहोणं बं०।

४२१. देवग० उक्क० पदे०वं० पंचणा० उचा० पंचंत० णि० उक्क० । थीण-गिद्धि० २-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु० ४-इत्थि०-आहार० २ सिया० उक्क० । णिहा-पयला-अडुक०-चदुणोक० सिया० तंतु० अणंतभागुणं वं० । [चदुर्दम० णि० वं०

भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। बार संउवलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्स्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। बार अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उत्तर अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उत्तर अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उत्तर अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उत्तरेव का नियमसे बन्ध करता है। उत्तरेव का नियमसे बन्ध करता है। उत्तरेव का नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकाबी प्रकृतियोक्त भक्क आपके समान है। इतनी विशेषता है कि वक्षपैमनागचसंहनन अंश तंशक्ष हमान है। इतनी विशेषता है कि वक्षपैमनागचसंहनन अंश तंशक करता है। विशेषता है कि विशेषता है तो विशेषता है कि विशेषता है तो विशेषता है कि विशेषता है तो विशेषता है। विशेषता है तो विशेषता है। विशेषता है तो विशेषता है तो विशेषता है तो विशेषता है। विशेषता है तो विशेषता है। विशेषता है तो विशेषता है तो विशेषता है। विशेषता है।

४२०. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशवरण करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, अमानावेदनीय, मिस्यास्त्र, सांजद कथाय, पाँच नोकवाय, नरकाति आदि अद्वादेस प्रकृतियाँ, नांचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातमारहाँन अनुत्कृष्ट प्रदेशवर्ष्य करता है। इसि प्रकार सब आयुओं की मुख्यतासे सिक्क ये जानना चाहिए। इतनो विशेषता है कि पुरुपवेद और यशाकीर्तिका कदाचिन वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इतका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुतक्ष्य प्रदेशवर्ष्य करता है। यदि वन्य करता है तो नामि और पाँच जाति आति स्वाता आदि सब नामकर्मकी प्रकृतियांका सङ्ग पञ्चित्रय तर्यक्रांके समान है। इतनी विशेषता है कि यशाकीर्ति जिनके आती है उनका संख्यातगुणहीन अनुतक्ष्य करता है।

प्रश्ते. देवगतिका उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव वाँच झानावरण, उश्चगोत्र और गाँच अन्तरायका निवससे बन्ध करता है जो इनका निवससे उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। स्थानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, निध्धास, अनन्तानुवन्धीचुण्क, स्त्रीवेद और आहारकदिकका कर्राचिन् वन्य करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। निद्रा, प्रवत्ता, आठ क्याय और चार नोक्चायका कराचिन् बन्ध करता है और कराचिन् वन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियससे अनन्तभाशहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। चार दुनेनावरणका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। चीर व्यक्तिकट प्रदेशवन्य भी करता है। विद अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। विद अनुस्कृष्ट

१. ता॰मती 'वज्ररि॰ । तिरथय॰' इति पादः ।

णि० तं तु० अर्णतभाम् णं ।] पूरिस०-जस० सिया० संखेज्जमुणहीर्ण० । [बहुसंज०-] भय-दु० णि० षं० णि० तं तु० अर्णतमाम् णं वं० । णामाणं सत्याण०भंगो ।

४२२. आहार० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-सादा०-चदुसंज०-इस्स-दि भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० वं० उक्क० । णिदा-पयला सिया० उक्क० । चदुदंन णि० वं० णि० तंतु० अणंतभागूणं वं०। [पुरिस० णि० वं० णि० संखेजसुणहीणं |] णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं आहारंगो० ।

४२३. वजारि० उक्क० परे०वं ० पंचणा०-पंचंत० णि०वं० णि० उक्क० । थोणगिद्धि०३-[दोवेदणी०-] मिच्छ०-अर्णताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुसंठा०-णीचुचा० सिया० उक्क० । णिद्दा-पयला-अपचक्काण०४-[भय-दु०-] णि० तं तु० अर्णतभाग्णं वं०। चदुदंस०-अद्वका० णि० वं० णि० अणु० अर्णतभाग्णं वं०। पुरिस०-जस०

करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है। पुरुषवेद और यहाः कीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे सल्यानगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। चार संज्वतान, भय और जुणुप्ताका नियमसे बन्ध करना है। किन्तु वह इनका उन्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करना है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करना है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इन का नियमसे अन्तभागहीन अनुरुकृष्ट प्रदेशवन्ध करना है। नामकम्बर्ण प्रकृतियोंका भङ्ग सन्धान संभिक्ष्यंके समान है।

४२२. आहारकशरीरका उच्छप्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, साला-वंदाीय, चार संववलन, हास्य, रित्ते, स्व. जुगुप्ता, उच्चरांव और पाँच धनतरावका नियमसं यन्य करता है वो इनका नियमसं उच्छप्ट प्रदेशक्य करता है। निद्रा और प्रचलाक कराधिन, अन्य करता है। यदि चन्य करता है। हेन्सु नियमसं उच्छप्ट प्रदेशक्य करता है। चार त्रशंनावरणका नियमसं कन्य करता है। हिन्तु नह इनका उच्छप्ट प्रदेशक्य भी करता है। जार और अनुक्ष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुक्ष्य प्रदेशक्य करता है तो इनका नियमसं अनन्तभागाहीन अनुस्दृष्ट प्रदेशक्य वरता है। पुरुषवेदका नियमसं वन्य करता है। जी तियमसं संस्थातगुणहीन अनुक्ष्य प्रदेशक्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोका मङ्ग वस्थान सन्निकर्षय समान है। इसी प्रकार आहारकश्चरीर आङ्गीयाङ्गकी सुख्यनासे मन्निकर्ष जानना चाहिए।

 सिया० संखेजसुणहोणं। चदुणोकः० सिया०तं तु० अर्थतमामूणं वं०। णामाणं सत्याण०र्भगो।

४२४. तित्य० उक्क० प०बं० पंचणा०-अय-दु०-उचा०-पंचंत० वि० बं० णि० उक्क०। विदा-पयला-दोवेदणी०-अपचक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क०। चदु-दंस०-चदुसंज० णि० बं० वि० तं तु० अणंतभागूणं बं०। पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंतभागूणं०। पुरिस० णि० बं० संखेजगुणही०। जस० सिया० संखेज-गुणही०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

४२५. उचा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। धीणगिद्धि०२-दोवेदणी०- भिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०- णबुंस०- चदुसंठा०-चदुसंघ०-तित्य० सिया० उक्क०। णिदा-पयला-अद्वक०-छण्णोक० सिया० तं तु० अणंतभागूणं बं०। चदुदंस०-चद्संज० णि बं० णि०तं तु० अणंतभागूणं बं०। पुरिस०-

करता है। चार नोकपायका कहाचिन् बन्ध करता है और कहाचिन् बन्ध नहीं करना। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागति अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका भक्ष स्वयुक्त सन्निक्षके समान है।

प्रश्ट. तीर्थक्ट्र प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच हानावरण, भय, जुगुप्सा, उच्चांगा और पाँच अन्तरायका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। निर्दा, प्रचला, दो वेदनीय, अप्रत्याक्यानावरणच्युक्क और चार नोक्याक करांचित्त क्या करता है। वार उद्येनावरण और चार संख्वकलका नियससे वन्य करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। वेद अनुकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। वाद अनुकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। वाद अनुकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। वाद अनुकृष्ट प्रदेशक्य करता है। इस्थाक्यानावरणचुक्कका करांचित्त वन्य करता है। अस्याक्यानावरणचुक्कका करांचित्त वन्य करता है और कर्याचित्त वन्य नहीं करता। यदि वस्य करता है। इस्थाक्यानावरणचुक्कका करांचित्त वन्य करता है और कर्याचित वन्य नहीं करता। यदि वस्य करता है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशक्य करता है। नियससे अनन्तभागाहोन अनुकृष्ट प्रदेशक्य करता है। व्यवस्था कर्याच्या सामक्षक समान है।

प्रश्य. वरूवगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण और पाँच अन्त-रायका नियमसे वस्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। स्यान-पृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानुक्योचनुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसक्वेद पर संस्थान, प्रास्त संहत्वन और तीयङ्क्षर प्रकृतिका कदाचित् क्य करता है। यदि क्य करता है तो इनका नियमसे वस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कवाब और छह नोक्कायका कदाचित् सम्य करता है और कदाचित्त वस्य नहीं करता। यदि क्या करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशक्य दोक्कानियमसे अनन्तमागद्दीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है। चार दर्शनाव्य और कार संक्वलनका नियमसे क्या करता है। किन्तु वह वस्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुतकृष्ट जस० सिया० तं तु० संसेजगुणहोणं०' वं०। मणुस०-पॅचिदि०-त्रोरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-जोरालि० त्रंगो०-त्रसंपत्त०-वण्ण०४-मणुसाणु०- अगु०४-जप्पसत्थ०-तस०४-थिरादितिष्णिषुम०-दूभग-दुस्सर-जणादे०-जजस०-णिमि० सिया० संस्रेजदिभागूणं यं०। देवगदि सद्द गदात्रो छप्पगदीजो समबदु०-[वजरि०-] पमत्य०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० तं तु० संस्रेजदिभाग्णं यं०। णीवागोटं जोषं। णवित चदुस्ज० कोधसंज०भंगो। एवं इत्यिददेशंगो पुरिस-णहंसगेनु। णविर आमिणि० उकक० पदे०वं० तित्यु० सिया० तं तु० संस्रेजदिभागूणं वं०। एवमेदेसि तित्युयरं आगच्छदि नेतिं एदेण कमेण णेदच्यं। अणगदवे० जोषं०।

४२६, कोधकसाईस आभिणि० उक्क० पदेव्यंव इत्थिवेदभंगोे । णवरि

प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुःकुष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग-हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशयन्थ करता है। पुरुषवेद और यशःकोतिका कशाचित् बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुरक्ष्ष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुरकुष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मनुष्यगति, पश्चतित्रयजाति, औदारिकशरीग, तैजसकरीर, कार्मणकरीर, हण्डसंस्थान, ओदारिकशरीर आङ्गोपाङ, असम्प्राप्तास पाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरु छघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायागित, जसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनाद्य, अयशःकीनि और निर्माणका कदाचित बन्ध करता है। र्याद बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागशीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देव-गतिके साथ वॅघनेवाली छह प्रकृतियाँ देवगति, वैकियिक शरीर, आहारकशरीर, वैकियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, समचतुरस्थांस्थान, वज्रप्रमनाराचसहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, मुख्यर और आदयका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनत्कप्र प्रदेशबन्ध करता है। नीचगीत्रकी सुख्यतासे सन्निकष आधके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका भङ्ग कोधसंज्वलनके समान है। इसी प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके समान पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमे जानना चाहिए । इतनी विक्रोपता है कि आर्भिनियाधिक ज्ञान।वरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव तीर्थकर-प्रक्रांतका कदाचित् बन्ध करना है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार जिनके तीर्थक्कर प्रकृति आती है उनका इसी कमसे सिक्रकर्ष छे जाना चाहिए। अपगतवेदी जीवाम ऑघके समान भक्त है।

४२६. क्रंभक्कायवाले जीवांग आर्थितवीषिक झानावरणका व्लष्ट प्रदेशकृष्य करने-बाले जीवका सङ्ग कीवेदी जीवाके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्यालयका नियमसे सन्य करता है। किन्तु वह दनका व्लष्ट प्रदेशकृष्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशकृष्य भी

ताकझार प्राची 'सस्केमियुणहोयां इति पाठः। २. तावपती 'सहगा (ग) दाओ' इति पाठः।
 ताकझार प्रत्यो 'पदेव्यं पदमदंदओ इत्यिवेदभंगी' इति पाठः।

जि० णि० वं० णि० तं तु० दुभागूणं वं०। तित्था० सिया०तंतु० |दिभागुणं वं०।६वंचद्णा०-पंचत०।

४२७. थीणगिद्धि०३ दंडओ इस्थिवेदभंगो । णविस् संज द् माग्णं । णिहा-संघओ इस्थिवेदभंगो । णविस् चदु संज एणि दु माग्णं वं रे । वजारिक ज्ञामिणि०भंगो । चक्खुदं उक्क पदे० दं रुस्थिवेदभंगो । णविस् चदु संज र तं तु रु माग्णं वं । एवं तिष्णं दंस । सादा रु उक्क पदे०वं रुस्थि । । णविस् चदु संज ०णि० वं र तु रु दु माग्णं । तिस्थक्तं सिया र तु तु रु दिसाग्णं वं र । असद रु इस्थि०भंगो । चदु संज ०णि० दु भाग्णं वं र । रु सिया र तु र संखेजिदमाग्णं वं र । अहक रुस्थि०भंगो । णविस् चदु संज ०

है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे दो भागदीन अनुस्कृष्ट त्य करता है। तीर्थं कुर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेश हरता है तो इसका नियमसे संस्थातभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार गानावरण और पाँच अन्तरायकों मुख्यतासे सक्षित्रच जानना चाहिए।

४२७. स्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भङ्ग स्रावेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि ज्वलनका दो भागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। निद्रा और प्रचलाका उस्कृष्ट न्ध करनेवाले जीवका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंक समान है। इतनी विशेषता है कि यह चार निका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुतकुष्ट प्रदेशबन्ध है। वज्रष्मनाराचसंहनन और नीर्थङ्कर प्रकृतिका मङ्ग आमिनिबोधिक ज्ञानावरणके है। चक्षदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका भक्न स्वीवेदी जीवोंके है। इतनी विशेषना है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट न्ध करता है तो इनका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार श्रीनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध ाले आंबका भक्क स्त्रीवेदी जीवोंके समान हूं। इतनी विशेषता है कि वह चार संज्यासका से बन्ध करता है। किन्तु इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध रता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करना है नो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट ान्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट म्ध करता है। असातावेदनीयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदी जीवांके समान है। वह ंश्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है और फदाचित बन्ध नहीं करना। यदि करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। ानुत्रुष्ट बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता आठ कवायोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष स्वीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता

^{1.} आ॰प्रती 'सिया॰ संवेजदिभागूणं' इति पाठः। २. ग्रा॰प्रती 'सिया॰ सवेजदिभागूणं' पाठः।

है कि वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वक्षपंभनाराचसंहनन और तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग आर्मिनियोधिक झानावरणके समान है। क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उद्यगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तीन संज्वलनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद और नपंसकवेदकी मुख्यतासे सिक्नकर्ष स्त्रीवेदी जीवाके समान है। इतनी विशेषता है कि वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृत्ट प्रदेश-बन्ध करता है। पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशयन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। हास्य रिनदण्डककी मध्यतासे सान्नकर्ष स्त्रीवेदी जीवाके समान है। इतना विशेषता है कि चार संज्वलनांका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। व अर्पभनारा वसंहतन और तीर्थ दूरप्रकृतिका सङ्ग आभिनिवाधिक हानीके समान है। इसी प्रकार पाँच नोकषायाँकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार आयुआंकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोफे समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यानगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जिनके पुरुषवेद और यशकीर्त आती हैं उनका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे सख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। नामकर्म और गोत्रकर्मकी प्रष्टितियोंका भक्क ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वस्नका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुकृत्व प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीतिका कर्दााचन बन्ध करता है या नियमसे बन्ध करता है। बन्धक समय इनका संस्थातराणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इतनी और विशेषता है कि यराः-

ता॰प्रती 'कोयसंब॰ व॰ (द॰) सं॰' इति पाठः। २. ता॰घा० प्रत्योः 'पंचंत॰ णवरि व॰
कि॰' इति पाठः। ३. ता॰प्रती 'चदुसंजवा (क्षण) खें आःश्रती 'चदुसंजवा(वें इति पाठः। १. ता०प्रती
'वुर्भ (भागू॰)। वजरि॰ इति पाठः। ५. ता॰प्रती 'चदुआव॰ सीदिसंगी (१) णवरि' चा०प्रती
'चदुभाव॰ सीदिसंगी। णवरि' इति पाठः। ३. आ॰प्रती 'प्ति पुरिस० पुरिस०' इति पाठः।

सिया० वा विषयमा वा संखेजगु० । णवरि जस०-उचा० उक्क०° चदुसंज० वि० तं तु० दुभामूणं र्व० ।

४२८. माणकप्राईसु आभिणि० उक्क० वं० चतुष्णा०-संचंत० णि० बं० उक्क० । थोणियिद्ध्य २ - दोचेद्द्य - मिच्छ० - अणंताणु० ४ - इत्यि० - णणुंत्त० - णिरयाणु० - आदाव० - दोचेद्द्य - स्था० उक्क० । णिद्दा-पयला-अड्डक० - ख्रष्णोक० सिया० तं तु० अणंतभागूणं वं० । कोधसंत्र० सिया० तं तु० अणंतभागूणं वं० । कोधसंत्र० सिया० तं तु० दुभागूणं वं० । तिण्णियाण णि० वं० णि० तं तु० विद्यालपदिदं वं० संक्षेत्रिक्षियाग्रहीणं वं० सादिदेयं दिवहुभागूणं वं० । पुरिस० - त्रसः स्या० तं तु० विद्यालपदिदं वं० संक्षेत्रिक्षियाग्रहीणं वं० सादिदेयं दिवहुभागूणं वं० । पुरिस० - त्रसः स्या० तं तु० संवक्ष्युणाही० । तिण्णियाद-पंचनादि-पंचनादि-प्रानिका० - त्रसादिणवस्त्राण्ड-पर० - उस्सा० - ज्रसंघ० - तिण्णियाणु० - पर० - उस्सा० - ज्रसो० । - त्राविकाव । - त्राविकाव । व्याप्तिकाव । विद्याल । त्राविकाव । - त्राविकाव । - त्राविकाव । - त्राविकाव । - त्राविकाव । विद्याल । त्राविकाव । - त्राविकाव । - त्राविकाव । व्याप्तिकाव । विद्याल । त्राविकाव । - त्राविकाव । विद्याल । त्राविकाव । - त्राविकाव । विद्याल । त्राविकाव । - त्राविकाव । विद्याल । त्राविकाव । विद्याल । विद्य

कीर्ति और ऊँचगोत्रका उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करतेवाला जीव चार संन्यक्रनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उन्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो नियमसे दो भागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है।

४२८. मानकपायवाळे जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करने-वाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इतका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रक, दो बेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, क्षीबेट, नपंसकवेट, नरकगति, नरकगत्यानुपर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे ब्लुब्ध प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कवाय और छह नोकवायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागद्वीन अनुस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्क्रप्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रीधसंज्वलनका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित ब ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्यालनोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो स्थान पातत अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, संख्यात भागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। पुरुपवेद और यशःकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, हह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परपात, उच्छास, उद्योत, दो बिहायोगति, त्रस आदि ना युगल और अयशःकोर्तिका कदाचित बन्ध

ता०व्रा०प्रत्योः 'गामागोदाखं ओधभंगो । पुरिस० जस० सिवा० वा णियमा वा संखेळगु० । णवरि चतुर्दस० णि बं० दुभागृखं बं० । णवरि चतुरसंज उचा० दक्क० दिस पाटः ।

तु० संसेजादिमागूणं मं० । वेउच्वि०-आहार०२-[वण्ण४-अगु०-उप०-] णिमि०-तिस्थ० सिया० तं० तु० संसेजादिमागूणं वं० । वेउच्वि०अंगो० सिया० तं तु० सादिरेयं दिवहमागूणं वं० । एवं चदणाणा०-पंचंत १० ।

प्ररेष, जिहाजिहाए उक्क० पदं ०वं ० पंचणा ० दोहंस० - मिच्छ० - अणंताणु० ४-पंचंत० णि० चं ० णि० उक्क० । छदंस० - अहक्क०- भय-दु० णि० चं ० अणंतभाग्णं ० वं० । दोवेदणी ० - इत्थि० - णावुंस० - वे उिव्यिष्ठ० - आदाव० दोगोद० मिया० उक्क० । कोधसंज ० णि० वं ० णि० अणु० दुभाग्णं वं०। तिण्णिसंज ० णि० वं० णि० सादिरेषं दिवहमाग्णं वं०। पुरिस० - जस० सिया० संखे जगुणहीणं ० । चदुणोक० सिया० अणंतभाग्णं वं०। दोगदि पंचजादि - ओरालि० - इसंटा० - ओरालि० अगंगो० -छस्संघ० - दो आणु० - पर० - उस्सा० - उजो ० [दोविहा० -] तसादिणवयुग ० - अजस० - सिया०

करता है और कदाचित् बन्य नहीं करता। यदि बन्य करता है तो उन्हुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है। वैकियवहरारी, आहारक इक्त वर्णचपुष्ट, अगुरुबधु, उपपान, निर्माण और तीयद्वस्थातिक करावित्त वन्य करता है और कदाचित्त बन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो उरहुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो उन्हुष्ट प्रदेशवन्य करता है। विभाव करावित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो उन्हुष्ट प्रदेशवन्य करता है और कराचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो उन्हुष्ट प्रदेशवन्य करता है और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो उन्हुष्ट प्रदेशवन्य करता है और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव है। इसी प्रकार चार हानावर करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता विभाव करता विभाव करता है। इसी प्रकार चार हानावर करता है कार हान हो।

४२९. निहानिहाका उक्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच जानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यास्त, अनतातुक्यचीचतुष्क और पाँच अन्तरावका निवससे वय्य करना है जो इनका नियससे अवस्था प्रकार करना है जो इनका नियससे उक्कृष्ट प्रदेशक्य करना है। इह दर्शनावरण, आठ कपाय, स्व और जुगुप्साका नियससे वय्य करना है। वो वेदनीय, क्षीवेद, नपुसकवेद, वैक्षियकपटक, आत्र और दो गांत्रका कदाचित्त वय्य करना है। वेदनीय, क्षीवेद, नपुसकवेद, वैक्षियकपटक, आत्र और दो गांत्रका कदाचित्त वय्य करना है। वो तियससे वय्य करना है। तो त्यस्त करना है। वो तियससे वय्य करना है। वो त्यस्त व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना करना व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना व्यवस्था वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था विवस्था करना व्यवस्था विवस्था करना है। वाद व्यवस्था विवस्था व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था करना है। वाद व्यवस्था व्यवस्था करना व्यवस्था व

^{1.} ता॰ आ०प्रत्योः 'बदुषोकः पंचंतः' इति पाठः ।

तं तु० संखेजदिभागूणं वं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि०े बं० णि० तं तु० संखेजदिभागणं बं० । एवं दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ।

४३०. णिहाए उक्के पदेवबंव पंचणाव-पयला-भय-इव-उचागीव-पंचंतव णि० बं० णि० उक्त०। चदुदंस० णि० बं० णि० अणंतमागृणं बं०। दोवेदणी०-अपचक्खाण०४-चदणोक० सिया० उक्क०। पद्यक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंत-भागूणं बं०। कोधसंज ० णि० बं० दुभागूणं बं०। तिण्णिसंज ० णि० बं० सादिरेयं दिवह्रभागृणं बंघदि । पुरिस० णि० संखे अगुणही० । मणुस०-ओरालि०-ओरालि०-अंगो ० मणुसाणु ० धिराथिर सुभासुम अज ० सिया ० संखे अदिभागूणं बं ० । देवगदि-बेउन्बि - आहार - आहार - श्रंगो - देवाणु - तित्थ - सिया - तं तु - संखे अदिभागूणं बं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वणा०४ अगु०४-तस०४-णिमि० णि०

हैं तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसक्तरीर, कार्मणक्तरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिध्यात्व और अनन्तानवन्धी चतष्ककी मह्यतासे सन्निक्ष बहुना चाहिए ।

४३०, निद्राका उत्रृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, प्रचला, भय, जगुष्सा उबगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्त-भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो बेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकपायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। प्रत्याक्ष्यानावरणचतुष्कका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है ता उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागशीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करना है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मन्ष्य-गति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अशुभ और अयश:कीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यावभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, आहारकशरीर आक्कोपाङ्क, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कहाचित् बन्ध नहीं करता। यहि बन्ध करता है तो उत्कृप्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यहि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातमागद्दीन अनुत्कुष्ट प्रदेशबन्य करता है। पञ्चीन्द्रयजाति, वैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचलक. अगस्त्रसम्बद्धक. त्रस्वतक और निर्माणका नियमसे यन्त्र करता है जो इतका

आ॰पतौ 'सिया॰ संखेजदिभागृखं' इति पाटः । २. ता॰ पतौ 'णिमि॰ णिमि॰ (?) णि॰' इति पाठः । ३. ता॰प्रती 'किहाए जहर (उ॰) बं॰' इति पाठः । ४. ता॰प्रती 'बेड॰ [अंगो०] भाहारंगो॰' भावपती 'वेडिया भाहारवसंगोव' इति पाठः।

संखेअदिभागृषं बं०। समबदु०-पसत्थ०-सुमग-सुस्तर-आदे० णि० वं० तं तु० संखेअदिभागृषं वं०। वेउच्वि०अंगो० सिया० तं तु० सादिरेयं दुमागृणं वं०। वजारि० सिया० तं तु० संखेजदिमागृणं वं०! जस० सिया० संखेजगु०। एवं पयना०।

४३१. चक्खदं उकः पदेव्बंव पंचणाव-तिण्णिदंमव-सादाव-उचाव-पंचंतव णि० वं ० णि० उक्त । कोधसंज ० सिया० तं तु० संखे अगु० । तिण्णिसंज ० णि० वं ० णि० तं तु० विद्वाणपदिदं० संखेजदिभागूणं बं० सादिरेयं दिवहुभागूणं बं०। पुरिस०-[जस०] सिया० तं तु० संखेजगणही० । हस्स-रदि-भय-द० सिया० उक्क० । देवगदि०-वेउच्वि० - आहार०-समचद् ०--आहारंगो०-देवाणु० -पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-नियमसे सख्यातभागडीन अनुस्टब्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायी-गति, सुभग, सरवर और आहेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है नो इनका नियमसे संख्यातभागद्वीन अनुस्टब्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैकिथिकशरीर आङ्गोपाङ्ग का कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। वक्रवमनाराचसंहननका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यद अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यश:कीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलकी मुख्यतासे सक्रि-कर्ष जातना चाहिए।

४३१. चहुरक्षंनावरणका उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव वाँच हानावरण, तीन द्र्यानादरण, सातावेदसीय, क्यांगेत्र जीर वाँच अन्तरायका नियमसे वस्य करता है जो इतका नियमसे वस्य करता है जो इतका नियमसे वस्य करता है और कराधित् कर्मावत् करता है। क्षेत्र कराधित् वस्य करता है। कि क्राधित् वस्य करता है। कि क्राधित् वस्य करता है। कि क्राधित् अर्थक्ष्य प्रदेशवन्य भी करता है। कि अर्थक्ष्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। कि संव्यावत् वाण्या कराय है। कि जु वह इनका अरुक्ष्य प्रदेशवन्य भी करता है। वीन संव्यावत् प्रदेशवन्य करता है। विश्व अरुक्ष्य प्रदेशवन्य करता है। कि अर्थक्ष्य प्रदेशवन्य करता है। विश्व कर्माव्याव कराय है। विश्व अरुक्ष्य प्रदेशवन्य करता है। विश्व कराय करता है। विश्व कराय है। विश्व कराय करता है। विश्व कराय है। विश्व कर्म करता है। विश्व कराय है। विश्व कर्म करता है। विश्व कर्म करता है। विश्व कर्म करता है। विश्व कर्म करता है। विश्व क्यांवित् कर्म करता है। विश्व क्यांवित् कराय करता है। विश्व क्यांवित् कर्म करता है। विश्व क्यांवित् क्यांवित् अरुक्ष्य प्रदेशक्य करता है। विश्व क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् स्वमात्र अरुक्ष्य प्रदेशक्य करता है। विश्व क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् क्यांवित् करायांवित् स्वमात्र अर्थक्यांवित् स्वमात्र अर्थक्षयांव्य करता है। विश्व क्यांवित् वस्य करता है। विश्व क्यांवित्व कर्या करता है। विश्व क्यांवित्व क्यांवित् क्यांवित् कर्यांवित् वस्य करता है। विश्व क्यांवित्व क्यांवित्व क्यांवित्व कर्यांवित्व क्यांवित्व क्या

[.] १. ता-पत्ती 'बेडम्बि॰अंगो॰ सिषा॰ तं तु॰ संखेबदिमा॰। उस्स॰' इंति पाटः। २, ता॰पती 'झाहारगो॰। देवाणु॰' इति पाढः।

आदे०-तित्य० सिया० तं तु० संखेळादिभाग्णं बं०। पंचिंदि०नैजा०-क०-नण्ण०४-अगु०४-तस ४-थिरं-सुभ०-[णिमि०] सिया० संखेजदिभाग्णं बं०। बेउव्वि०अंगो० सिया० तं तु० सादिरयं दुभाग्णं०। एवं तिष्णिदंस०।

४३२. सादा^{०र} आभिणि०मंगो । णवरि णिरय०-णिरयाणु० वजा । अप्यसस्थ०-दुस्सर० सिया० संखेजदिभाग्णं च ० ।

४२२. असादा० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०२-मिच्छ०-अर्णताणु०४ - इत्थि० - णर्धुत०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-दोगोद० स्था० उक्क०। णिदा-पयला-भय दु० णि० वं० णि० तंतु० अर्णत-भागूणं वं०। चदुदंस० णि० वं णि० अर्णतभागूणं वं०। अहुक०-चदुणोक०

और छद्दाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका तियमसे संस्थातभागहीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तो इसका तियमसे संस्थातभागहीन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। व्यक्तित्व वर्गात, वैज्ञतसर्थार, कार्मणसर्थार, वर्णचनुष्क, अगुम्तस्युचनुष्क, त्रसचनुष्क, स्थिर, क्रुभ और निर्माणका कराचित्त वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इनका निवससे संस्थातभागहोन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो क्रकृष्ट प्रदेशबन्ध करता। यदि वन्ध करता है तो वक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। यदि वन्ध करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। वेत वन्ध करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। हे तो इसका निवससे सार्थिक दो भागहोन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। है तो इसका निवससे सार्थिक दो भागहोन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। है तो इसका निवससे सार्थिक दो भागहोन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। है तो इसका निवससे सार्थिक दो भागहोन अनुक्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता। है। वाहिष्

४३२. सातावेदनीयकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग आभिनियाधिकहानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि नरकगति और नरकगत्वातु-पूर्वीको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। अप्रशस्त विहायोगित और दुस्वरका कहाचिन् बन्ध करता है। यदि यन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यानभगदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है।

भ्देर, असातावेदनीयका उस्कृष्ट भ्रदेशायन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । स्यानगृद्धित्रिक, मिम्यास्त्र, अनत्नतानुवर्षो जुक्क बोदर, नव्हंबक्केदर, नरकाति, तस्कारमायुपूर्वी,
आतप और दो गोत्रका कराचिन वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे
असुष्ट भ्रदेशक्च करता है। निद्रा, प्रचल, भ्रय, और जुगुष्टाका नियमसे वन्ध करता है।
किन्तु वह इनका उस्कृष्ट प्रदेशक्च भी करता है और अनुस्कृष्ट भ्रदेशक्च भी
करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशक्च करता है तो इनका नियमसे
अनुस्कृष्ट प्रदेशक्च करता है। वार दर्शनक्च करता है तो इनका नियमसे वन्ध करता है
जो इसका नियमसे अनन्तनभागद्दीन अनुस्कृष्ट भ्रदेशक्च करता है।
जो इसका नियमसे अनन्तनभागद्दीन अनुस्कृष्ट भ्रदेशक्च करता है।
जो इसका नियमसे अनन्तनभागद्दीन अनुस्कृष्ट भ्रदेशक्च करता है। जाठ कथाय और

१. श्रा॰ प्रती 'तस थिर' इति पाठः । २. ता॰प्रती 'तिष्णिदंस॰ साद॰' इति पादः । ३. ता॰आ० प्रत्योः 'भादाव तिस्थ दोगोद्द॰' इति पाठः ।

सियाः तं तुः अषांतभाग्णं बंः। कोधसंत्रः णिः बंः णिः दुभाग्णं बंः। तिण्णिसंत्रः णिः वंः णिः सादिरेयं दिवहुभाग्णं बंः। पृत्सिः-जतः सिथाः संखेजगुः। तिण्णादि-पंचजादि-दोम्ररीर-अस्तराः-दोश्रंगोवंगः-उस्संघः-तिण्णि-आखुः परः-उस्साः-उजोः-दोविहाः-तसादिणवयुगः-अजः सियाः तं तुः संखेजदिः भाग्णं बंः। तेजाः-कः-वण्णः-४-अगुः-उपः-णिमिः णिः बंः णिः संखेजदिः भाग्णं । तिस्थः सियाः तं तुः तं संखेजदिः भाग्णं। तिस्थः सियाः तं तुः संखेजदिः भाग्णं। तिस्थः सियाः तं तुः संखेजदिः भाग्णं। तिस्थः सियाः तं तुः संखेजदिभाग्णं वः ।

४३४. अपचक्ताणकोध० उक० पदे०्य'० पंचणा०-णिदा-पयला-तिण्णिक०-भय-दू०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस०-पचक्खाण०४ णि० बं० णि० अणंतभागृणं। दोवेद०-चदुणोक० सिया० उक्क०। कोधसंज० णि० बं० दभाग णं। तिर्णिसंज ० णियमा सादिरेयं दिवहूभाग णं । पुरिस० णियमा संखेजगुणहीणं । मणुस०-[ओरालि०]-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु० थिराथिर-सुभासुभ-प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्र भगहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। कोध-संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भाग-हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यज्ञःक्षातिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है इनका नियमसे संख्यातगुणहान अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पोंच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो शरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परचात, उच्छास, उद्योत, दो बिहायोगति, जस आदि नी युगल और अयश:कार्तिका करास्त्रित बन्ध करना है और कदाचित बन्ध नहीं करना। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहान अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तेजसहारीर, कार्मणशारीर, वर्णवतष्क, अगुरुख्य, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कुष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता! यदि बन्ध करता है तो उल्क्रप्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है।

४३१. अत्रत्याख्यानावरण कोषका व्हहुष्ट प्रदेशवस्य रहनेवाला जीव पाँच हाना-वरण, निहा, प्रचला, तीन कपाय, भय, जुपुत्वा उच्चगांत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वरण करता है जो इतका नियमये उकुष्ट प्रदेशवस्य करता है। चार दर्शनावरण और प्रत्या-व्यानावरण चुत्कुका नियमसे वर्ष्य करता है जो इतका नियमसे अनन्त्रभागाहीन अनुकुष्ट प्रदेशवस्य करता है। रो वेदनीय और चार नोक्ष्यावका क्वाचित् वस्य करता है जो इतका नियमसे चुत्रकुष्ट प्रदेशवस्य करता है। कोध्यांव्यक्तका नियमसे वस्य करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवस्य करता है। तीन संव्यक्तका नियमसे वस्य करता है जो इतका नियमसे साधिक डेड भागहीन अनुकुष्ट प्रदेशवस्य करता है। पुरुष्येवस्का नियमसे वस्य करता है जो इनका नियमसे संव्यवात्मणहीन अनुकुष्ट प्रदेशवस्य प्रदेशवस्य करता है। मनुष्यागीन, औदारिकशांत्र, औद्योग्विकशांत्र, औद्याग्विकशांत्र, आहेगाव्यक्त

९ ता॰प्रती 'झगु॰ ४ डप॰ णि॰ व॰' इति पाटः । २, ता॰प्रती 'कोथसंत्रः णिय॰ साहिरेये'

अजसक सियाक संखेजिदिमाग् णं बंक। देवगदिक्ष वज्जरिक-तिरथक सियाक तं तुक संखेजिदिमाग् णं बंक। पंचिदिक-तेजाक-क्रव्यणक्ष-अगुरुध-तसक्ष-णिमिक णिक बंक संखोज्जदिमाग् णं बंक। समचद्रक-पसत्थक-सुमग-सुस्स-आदेक णिक बंकणिक तं तुक संखोज्जदिमाग् णं बंक। जसक सियाक संखेजगुणहोक। एवं तिण्णिकक। एवं चेव प्रचम्खाणक्ष्णे। णवरि मुजसगदियंच्या वजा।

४२५. कोधसंज्ञ उक्कः पदेव्बं व पंचणाव-चदुदंसणाव-सादाव-जसव-उचाव-पंचतः णिव बंव णिव उक्कः । तिण्णिसंज्ञव णिव बंव णिव संखेजदिभाग्णं ।

४३६. माणसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस्०-मादा०-दोसंज०-जस०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । एवं दोसंज० ।

४३७. इत्थि॰ ' उक्क॰ पदे॰बं॰ पंचणा०-श्रीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। द्वमतिचतुष्क, विश्वपंभनाराचसह्तन और तीर्थह्नर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। याद बन्ब करता है तो उरहत्व प्रदेश बन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ना इनका नियमसे संख्यातमागढीन अनुस्कष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चन्द्रियजाति, तेजस-शरार, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, असुकतुबुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमागहान अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्र• संस्थान, प्रशस्त विद्वायोगाति, सुभग, सुस्वर और आद्यका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशक्ष भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्ष भी करता है। यदि अनु-रकुष्ट प्रदेशयन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। यज्ञाःकांतिका कदाचित बन्ध करना है। यदि बन्ध करता है तो इसका निथमसे संख्यात-गुणहोन अनुस्कुष्ट प्रदशवन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कपायोका मुख्यनासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी मुख्यतास सन्नि-कप इसी प्रकार जानना चाहिए। इननी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर सन्नि-कर्ष जानना चाहिए।

४२५. क्रीधसंड्यध्नका उत्कृष्ट् प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सानादेदनीय, यश्काति, उच्चगात्र और पांच अन्तरायका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करना है। नोन सञ्चलनका नियमसे बन्ध करना है जो इतका नियमसे संख्यानभागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशयन्य करना है।

४६६. मानसंब्यलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पांच झानावरण, चार दर्शना-वरण, सातावेदनीय, दो संब्यलन, यझ कीर्ति, उच्चगोत और पांच अनतरायका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो संब्यलनकी सुख्यता सन्निक्ष जानना चाहिए।

४२०. स्रोवेरका उत्कृष्ट प्रदेशयन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, स्यानगृद्धिनिक, मिध्यात्य, अनत्यानुबन्धोचनुष्क और पांच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

१, आ०पती 'दोदंस० । इत्थि०' इति पाठः।

पंचंत शि बं शि वं शि उक्क । छदंस ०-अइक ०-अय-दु शि वं शि अणु ० अणंत भागू शं थं । दोबेदणी ०-देवगदि ०४-दोगोद ० सिया ० उक्क । कोघसंज ० शि व दु भागू णं वं ० । तिश्विसंज ० शियमा वं ० सादिरयदिवह भागू णं वं ० । च दु गोक ० सिया ० अणंत भागू णं वं ० । च दो जो एक ० सिया ० अणंत भागू णं वं ० । दो जो एक ० सिया ० अणंत ०-अणंत ०-विराधिर-सुभास भट्ट मा अणा दे ०-अजा ० सिया ० सिया ० सिया वं तो णं पंच संठा-पंच संव ०-पस्थ ० सुभग-सुस्सर-आदं ० सिया ० तं ते ७ । वं च वं ० । पंचिंदि ०-तेजा ० क ०-वणा ० ४ अगु ० ४-तस ० ४ - शिम ०] णि ० संखे अदिभागू णं वं ० । पंचिंदि ० नेजा ० क ०-वणा ० ४ अगु ० ४-तस ० ४ - शिम ०] णि ० संखे अदिभागू णं वं ० । वस ० सिया ० संखे अगु ण हो ० ।

४३८. णचुंस० उक्क० पदे०वं० पंचणा० शीणगिद्धि०३-मिच्छ० अर्णनाणु०४-पंचंत० णि० उक्क० । सेमाणं इत्थि०मंगो । णवरि णामाणं ओघमंगो ।

४३९. पुरिस॰ उक्कः पदे०बं० पंचणा०-चद्दंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत०

नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। छह दर्शनावरण, आठ वर्षाय, भय ओर जुगु-साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका निममसे अनन्त्रभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, देवगतिचतुष्क और दो गीत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यांद अन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । कोधसंख्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डंड भागहान अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकपायका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहान अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो गति, औदारिकशरीर, हण्डसंस्थान, ओदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योन, अप्रशस्त विहासीगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयश:कोर्तिका कदा-चित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करना है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशधन्ध करना है। पाँच संस्थान, पाँच सहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्त्रर और आदेशका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुर प्र प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनु-त्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहान अनुत्रृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पक्क न्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलयुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यानभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यश:कीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४३८. नपुंसकवेदका उस्कृष्ट प्रदेशयन्य करनेवाला जीव पाँच झातावरण, स्यानपृद्धि-त्रिक, मिध्यास्त, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और पाँच अन्तरायका निवससे वन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। शेष प्रकृतियाँका सङ्ग स्रोवेदी जीयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी प्रकृतियाँका सङ्ग ओघके समान है।

४३९. पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो णि० चं० णि० उक्क० । कोधसंज्ञ० णि० चं० दुभागूणं चं० । तिष्णिसंज्ञ० सादिरेयं दिवङ्कभागूणं चं० ।

४४०. इस्स० उक्क० पदे०वं० पंचणा० रित-भय-दु०-[ज्वा०-] पंचंत० णि० वं० उक्क० । णिदा-पयला-दोदेद०-अपवनस्वाण०४ सिया० उक्क० । चदुदंस० णि० वं० णि० तं तु० अर्णतभागृणं वं० । प्रवस्ताण०४ सिया० तं तु० अर्णतभागृणं वं० । कोघसंज्ञ० णि० वं० णि० दुभागृणं वं० । तिण्णिसंज्ञ० णि० वं० णि० दुभागृणं वं० । तिण्णिसंज्ञ० णि० वं० सादिरंपं दिवहुभाग्णं वं० । पुरिस० णि० संख्ञगुणही० । मणुसावि-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-अरेशालि-जंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-चिराधिर ने सुभासुभ-अजस०-णिपि० सिया० संख्ञादिभाग्णं वं० । देवग०-वेजन्व०-आहार०-सम्बद्द०-आहार०-अरो०-वेजपि०-देवाणु०-[पर्यथ०-] सुभग-सुस्सर-आदे०-तिस्थ० सिया०

इनका नियमसे उरहृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुरहृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे साधिक डेंद्र भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करना है।

४४०. हास्यका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, रति, भय, जगप्सा, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उरक्कप्ट प्रदेशवन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कराचित वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शना-वरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तमागर्हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशयन्य करता है। प्रत्याख्यानायरणचतुष्कका कदाचित् यन्य करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसञ्ज्ञलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। तीन संवव-लनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करना है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहोन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यर्गात, पञ्च न्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकश्रारीर आक्रोपाङ्क, वर्णचतुष्क, मन्त्र्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुत्तपुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अग्रुम, अयराकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैकिथिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, आहारकरारीर आङ्गोपाङ्ग, वश्चर्यमनाराच-संहतन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

ता॰प्रती 'दिवङ्गगो॰ (भागृण्ं)। पुरि॰' हित पाठः। २ भा॰प्रती 'तस थिराथिर' हित
 पाठः। ३. ता॰प्रती 'समच॰ अ (आ) हार॰ अंगो॰' इति पाठः।

तं तु॰ संखेजदिमागूणं चं॰ । बेउच्वि॰ग्रंगां० सिया॰ तं तु॰ सादिरेयं दुभागूणं० । जस॰ सिया॰ संखेजगुणहीणं० । एवं रदि-भय-दु॰ ।

४४१. अरदि० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-सोग-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । चहुदंस० णि० वं० अणंतभाग्णं वं० । दोवेद०-अपचक्खाण०४ सिया० उक्क० । पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंतभाग्णं वं० । कोधसंज्ञ० णि० दुभाग्णं वं० । तिण्यासंज्ञ० णि० सादिरंयं दिवहुभाग्णं वं० । पुरिस० ज्ञस० सिया० संखेजगुणही० । णविर पुरिस० णि० । णामाणं हस्सभंगो । णविर वंठिक्वि अंगो० सिया० तं तु० संखेजदिभाग्णं वं० । पंचिदियादिपगदीओं

वैकियिक शरीर आक्नोपाक्षका कदाचित् यन्ध करता है और कदाचित् यन्ध नहीं करता। यदि यन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशयन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इतका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुस्कृष्ट देश बन्ध करता है। यशकोतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संस्थातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार रित, भय आंग जुगुप्तार्थी मुख्यतासे साम्बर्ध जानता चाहिए।

४४१, अर्रातका उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, शीफ, भय, जगुप्सा, उबगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो उनका नियमसे अनन्तभागद्वीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हो बेदनीय और अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्कका कराचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इतका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचिन वन्ध करता है और कदाचिन वन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेश-वन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनुन्तभागहीन अनुस्टष्ट प्रदेशवन्ध करता है। कोध अंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनका नियमसे साधिक डेड भागडीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रस्प-वेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्य करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगणहीन अनुस्क्रष्ट प्रदेश बन्ध करना है। इननी विशेषता है कि पुरुषवेदका नियससे बन्ध करता है। इसके नामकमंकी प्रकृतियोका भक्क हाग्य प्रकृतिकी मुख्यतासे कहे गये स्टिनकपके समान है। इतनी विशेषता है कि यह वैकिथिकशरीर आङ्गोपाङका कटाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्क्रप्रप्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यह अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहान अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तथा यह पद्ध न्टियजाति आदि प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। इसी प्रकार शोककी सख्यतासे सन्तिक्षयं जानना चाहिए।

ता०प्रती 'पुरि विया (?) । णामार्गं का०प्रतः 'पुरिस० सिया० । णामाणं' इति पाठः ।

४४२. णिरयाउ० उक्क० पदे०चं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-वारसक०-णवुंम०-अरदिन्मोग-भय-दु०-णिरयगद्विअड्डाबीम-णीचा०-पंचंत० णि० चं० अणु० संखेअदिभाग्णं चं०। चदुसंज० णि० चं० णि० संखेअगुणही०। तिण्ण-माउगाणं अोधभंगो।

४४३. णिरयगदि० उक्त० पदे०बं० पंचणा० श्रीणिगिद्धि०३-असादा०ै-मिन्छ०-अर्णताणु०४-णाउंम०-पीचा०-पंचंत०ै णि० बं० णि० उक्त०। छदंस०-अहुक०-अरिद-मोग-भय-दु० णि० बं० णि० अर्णतभाग्णं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुआग्णं बं०। तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवहुआग्णं बं०। णामाणं सन्धाण०भंगो। एवं णिरयाणु०-अप्यस्त्थ०-दुस्सर०।

४४४. तिरिक्ख० उक्क० पदे०वं ० पंचणा० श्रीणिमिद्धि०३-मिन्छ० अर्णनाणु०४-णवंस०-णीचा०-पंचत० णि० वं ० जि० उक्क०। छ्दंस०-अङ्कक०-भय-दु० णि० चं० णि० अर्णनभागुणं वं०। [दोवेदणी० सिया उक्क०।] कोधसंब० णि० वं ० दुभागुणं०

१४२ नरकायुका उद्धृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जोत्र पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, अमानावेदनीय, मिण्यास्त, बारह कपाय, नपुंसकवेद, अरिन, शोष्ठ, भय, जुगुप्ता, नरकार्गत आदि अद्वाईस प्रकृतियों, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करना है जो इनका नियम से संख्यानभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करना है। गार संज्ञ्छनका नियमसे वन्य करना है। नीन आयुआंकी समान है। वीन आयुआंकी मुख्यनासे सिकिक्ष ओयके समान है।

४४२. नरकमिका उन्हर प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्थानगृद्धिविक, भमाताबेदनीय, मिण्यास्त, अनन्तानुबन्धी सनुष्क, तर्मुसकदेद, तीचनीव और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। ज्ञाद दक्षा नियमसे उन्हर प्रदेशवन्य करता है। ज्ञाद दक्षा नियमसे अन्तरायका भाठ कपाय, अरित, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। ज्ञाद क्षा नियमसे अनन्तमाताहीन अनुन्कट प्रदेशवन्य करता है। क्षायसंव्यतनका नियमसे वन्ध करता है जो इसका नियमसे वन्ध करता है। ज्ञाद करता है। नाम करता है जो इनका नियमसे वन्ध करता है। नाम करता है जो इनका नियमसे वन्ध करता है। नाम कर्मको अनुन्तरायक्षा भाव स्वयास स्ययास स्वयास स्वयास

प्रश्नश्च. तिर्युक्चातिका अकृष्ट प्रदेशवन्य करतेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, स्थानपृद्धित्रक, मिध्यास्त्र, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नधुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे वस्त्र कर्याय, भ्रम अंशि जुगुप्साका नियमसे वस्त्र करता है जो इनका नियमसे वस्त्र करता है जो इनका नियमसे वस्त्र करता है जो नियमसे वस्त्र करता है। यदि वस्त्र करता है। तो वेदनीयका कर्याचन् वस्त्र करता है। यदि वस्त्र करता है तो तियमसे उस्कृष्ट प्रदेशन

ता०आ०प्रत्योः 'सम्रेक्कपुणहो०। एवं निष्णमाउगायं हित पाठ। २. ना०द्या०प्रत्योः 'श्रास्तादि०२ सादा०' हित पाठः। ३. रा०पती 'णीचा० एवं (१) पंचत०' सा०प्रती 'णीचा० एवं पंचत०' हति पाठः।

बं । तिण्णिसंज णि वं । सादिरेषं दिवहभाग्णं वं । चदुणोक सिया अणंतभाग्णं वं । णामाणं सत्याणमंगो । एवं तिरिक्खगिदमंगो मणुसगिद पंचाति-ओरालि -तेजा -क -पंचसंद्रा - ओरालि व् अंगो - पंचसंघ - वण्ण - ४-दो आणु - अगु - ४ -[आदाव - उक्को -] तसादिच दुयुग - भिराधिर सुभासुभ - दूमग - अणादे व् व्यक्तम - णिमि । णवरि च दुसंद्रा - चदु संघ ० इत्यि - णासुंस - उक्क । पुरिस ० सिया ० संखे अगणही ० । णामाणं अप्यप्यणो सत्याणभंगो ।

४४५. देवस० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-उचा०-पंचंत० णि० घं० णि० उक्क० । थीणमि०३-[दोवेदणी०-] मिच्ड०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० उक्क० । णिदा-पचला-अदक-चदुणोक० सिया० तं तु० अणंतमागुणं वं० । चटुदंस०-अय-दु० णि० वं० तं तु० अणंतमागुणं वं० । कोधसंज० णि० वं० दुसागुणं० । तिण्णसंज० सादिरेयं

भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक हेंद्र भागहीन अनुरुद्ध प्रदेशबन्ध करता है। वार नोक्ष्यायका कर्राषिन् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इत्तका नियमसे अन्यत्माशाहीन अनुरुद्ध प्रदेशबन्ध करता है। उपि नामकर्मको प्रकृतियांका भङ्ग स्वध्यानस्त्रिक्षके समान है। इसी प्रकार विश्वक्षमांतिकी सुरुपतासे कहे गये सन्तिकक्षके समान मतुष्धाति, पीच चाति, औदाधिक्षरारी, तीजस्वारीर, कामणाशीर, पाँच संस्थान, औदारिक्षरारीर बाली कामणाशीर, पाँच संस्थान, औदारिक्षरारीर बाली हो। स्वक्षमांत्र कामणाशीर, पाँच संस्थान, अविदार, दुर्भा, अनुरुपत्ती, अवार्ध, दुर्भा, अनार्द्य, अवस्थ, सुभ, अशुभ, दुर्भा, अनार्द्य, अवस्थ, सुप्ति, स्वस्थ, सुप्ति, सु

ता॰का॰प्रस्थोः 'ब्रगु०४ ब्रम्पसम्ब॰ तसाहिचहुयुग॰' इति पादः । २. ता॰क्रा०प्रस्थोः 'वृभग दुस्सर क्रणादे' इति पाटः ।

दिवहुमागूणं बं । एरिस० सिया० संखेजगुणही०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं देवाणु०। एवं हेट्टा उवरिं देवगदिमंगो इमेसि वेउच्चि०-समचदु०-वेउच्चि०अंगो०-वजरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०। णामाणं सत्थाण०भंगो। णवरि णबुंस०-णीचा-गोदं पि अत्थि।

४४६. आहार० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-सादा०-हस्स-रि-भय-दु०-उचा०-पंचत० णि० वं० णि० उक्क०। दोदंस० सिया० उक्क०। चदुर्दस० णि० वं० णि० तं तु० अणंत०भाग्णं वं०। कोधसंज० णि० वं० दुभाग्णं वं०। तिष्णिसंज० णि० वं० सादिरयं दिवहुभाग्णं वं०। पुरिस०-जम० णि० वं० णि० संखेजगुणहो०। णामाणं सत्याण०भंगो। [ण्वं आहारंगो०]।

४४७. तित्थ० उक्त० पदे०वं० पंचणा०-भयन्दु०-उच्चा०-पंचत० णि० पं० णि० उक्त०। णिहा-पयला०-दोवेद०-अपचक्साण०४-चदुणोक्त० सिया० उक्त०।

साधिक हेट् भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषवेदका कशाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो इसका नियमसे संख्यानगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। नामकर्षकी प्रकृतियाँका अङ्ग स्वस्थानसिष्ठकिये समान है। इसी प्रकार देशव्यानयुपूर्वीकी प्रवस्थानयुप्त विकार सम्बन्ध क्रिकृतियाँकी अपेत्र वादकी प्रकृतियाँकी अपेक्षा देवातिकी सिक्त विकार कार्यक्र प्रकृतियाँकी अपेक्षा देवातिकी सुरुपता से स्वप्ता कर्षित्र करिया विकार क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र विकार क्षेत्र क्

४४६. आहारकशरीरका उन्हार प्रदेशकम्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, सातावेद-तीय, हास्य, रित, भय, जुगुप्ता, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका तियससे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्हार प्रदेशकम्य करता है। दो दशेनावरणका कश्चित्त प्रभा करता है। यदि वन्य करता है। इनका नियमसे उन्हार प्रदेशकम्य करता है। चार दशेनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्हार प्रदेशकम्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य भी करता है। विश्व अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग-होन अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है। कोधसंज्वतनका नियमसे वन्य करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है। तीन संज्वतनका नियमसे कम्य करता है जो इनका नियमसे साधिक डेट्ट भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है। युक्षवेद और यशाकीर्तिका नियमसे साधिक डेट्ट भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशकम्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका मङ्ग स्वस्थान सक्षिकके समान है। इसी प्रकार आहा-रकशरीर आङ्गीराङ्गकी प्रकृतयाँका सङ्ग स्वस्थान स्विकके समान है। इसी प्रकार आहा-

४४०. तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाला जीव पाँच हानावरण, भय, जुगुप्ता, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट अदेशकन्य करता है। निद्रा, प्रचला, हो वेदनीय, अस्त्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकवायका कराचित् बन्ध करता है। याद बन्ध करता है तो इनका नियमसे चत्कष्ट प्रदेशकन्य चदुदंस० णि० वं० णि० तं तु० अणंतमागूणं० वं०। पवक्खाण०४ णि० वं० तं तु० अणंतमागूणं०। कोघसंज० णि० वं० दुआगूणं०।, तिष्णिसंज० णि० वं० सादिरेयं दिवहमागूणं०। पुरिस० णि० वं० संखेजगुणही०। णामाणं सत्याण०र्मगो।

४४८. उच्चा े उक्क पदे वं ० पंचणा - पंचंत ० णि० वं ० णि० उक्क । धीणागिद्धि ०३-सिच्छ०-अणंताणु ०४-इत्थि ०-णवुं स०-चदुं संठा०-चदुं संघ० सिया० उक्क । णिदा-पयला-अह्वक०-छण्णोक० सिया० तं तु० अणंतमागूणं वं ० । को घसंज ० सिया० तं तु० दु आगूणं० । तिण्णिसंज ० णि० वं ० णि० तं तु० सादिरेयं दिव हु- भागूणं० चदु आगूणं० । पुरिस०-जत० सिया० तं तु० संखे अगुणहीणं० । मणुसग०-पंचिंदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओराहि०-असंवच०-चण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-

करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट मदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतर्क्षट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तमाशादीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रशासकानावरणचुन्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुरर्द्ध प्रदेशवन्ध भी करता है। की अनुरर्द्ध प्रदेशवन्ध भी करता है। की अनुरर्द्ध प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागदीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। को धर्मा नियमसे अनुकृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। को धर्मा नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे अन्य करता है जो इनका नियमसे अन्य करता है। तो इनका नियमसे अन्य करता है जो इनका नियमसे साथक करता है। अनुरुद्ध प्रदेशबन्ध करता है। वुरुप्यदेशका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे साथक करता है। जो इनका नियमसे साथक करता है। जो इसका नियमसे साथक करता है। जो इसका नियमसे साथक करता है। वामकर्मको प्रकृतियोका भक्क स्वर्धानसिक्षकर्षक साम है।

४४८. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पॉच ज्ञानावरण और पाँच अन्तराय का नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रक, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान और चार संहननका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है ता इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। निदा, प्रचला, आठ क्याय और छह नोकपाय का कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वास्त्र का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुकृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे साधिक हेढ भागहीन और साधिक चार भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पुरुषवेद और यहा:-कोर्तिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशयन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुगहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पक्रोन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दुण्डसंस्थान, औदारिकश्वरीर आक्रोपाक्ष, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहतन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी अगुरुखघुषतुष्क,

१. ता॰बा॰प्रस्थोः 'कोबस'ज॰ वि॰ वं॰ दुमागृबं॰' इति पाठः ।

अप्पसत्थ०-तस०४-षिराधिर-सुमासुभ दूभग-दु स्तर-अणादे०-अजस०-णिमि० सिया० संखेजदिभागृणं०। देवगदि-येउच्चि०-आहार० समक्दु०-दोश्रंगो०-वजरि०-देवाणु०-पसत्थ०-सुमग०-सुस्सर-आदे०-तित्थ० सिया०तंतु० संखेजदिमागृणं०।णीचा० ओषं।

४४९. मायकसाईस आभिणि ब्हंडओ माणकसाइभंगो। जबरि कोघसंज ० सिया वतंतु हुआग्रणं । माणसंज ० सिया वतंतु ० सादिरेयं दिवङ्गभाग्रणं वं ॰ संस्टेजदिमाग्रणं वा । माया-सोमाणं जिल्बं ० णि ० तंतु ० संस्टेजदिमागहीणं वा संस्टेजगुणहोणं वा । एवं चद्णा०-पंचंत ० ।

४५०. णिदाणिदाए दंडओ माणकसाइभंगो । जविर कोधसंज० णि० वं० दुभागा जंबं। माणसंज० जिल्सादिरेयं दिवहभाग जंब। मायसंज० लोभसंज० णि० वं० संस्थेत्रमणही०। एवं दोदंसणा० सिन्छ० अर्जनाण० थ ।

अप्रशस्तिबिह्यांगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, ब्रुभ, अञ्चभ, दुभँग दुभ्वर, अनादेय, अयाश्मिति और निमाण का कदाचित् बन्ध करता है। यंत्र बन्ध करिकाशोर, आहारकरारीर, संस्थातभगादीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवाित, बेचित्रभारीर, आहारकरारीर, समचतुरक्तसंथान, दो आङ्गोपाङ्ग, वक्षपंभनागचसंदनत, देवगस्थानुतूर्वी, प्रशस्त विद्दायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्कपष्ठितका कराचित्त बन्ध करता है और कदाचित्त बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उक्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागदीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है नो इनका नियमसे संस्थातभागदीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । तीच्योत्रक्षी सुरुवा से सिक्षर ओष्ट्रके स्थान है।

४१९. मायाकवायवाले जीवोंमें आभिनवंशिषकरण्डकका भङ्क मानकपायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां आभिनिवंशिषक झानावरणका उन्छन्न प्रदेशकर करता बाला जोव को अध्यस्वयस्य करता बाला जोव को अध्यस्वयस्य करता बाला जोव को अध्यस्वयस्य करता है। यदि व्यय्य करता है तो उन्हाल प्रदेशकर में करता है। यदि व्यय्य करता है तो उन्हाल प्रदेशकर में करता है। यदि व्यय्य करता है तो उन्हाल प्रदेशकर करता है। यदि व्यय्य करता है। मानसंज्यतनका करावित वस्य करता है। यदि व्यय्य करता है। यदि व्यय्य करता है। यदि व्यव्यक्त करता है। यदि व्यव्यक्त अदि वस्य करता है। यदि व्यवस्थ अदि वस्य करता है। इसी प्रकार चार झानावरण और पाँच अन्तरायकी सुक्यता सिक करवा जानावा चारिए।

%५०. निद्रानिद्रादण्डकका अङ्ग मानकषायवाले जोवंकि समान है। इतनी विशेषता है कि इसका अक्कृष्ट प्रदेशकन्य करतेवाला जीव कोघसंज्वलनका नियमसे कन्य करता है जो इसका निवमसे दो भागहोन अनुतकृष्ट प्रदेशकन्य करता है। मानसंज्वलनका नियमसे वन्य करता है जो इसका नियमसे साधिक डेड्र भगाडीन अनुतकृष्ट प्रदेशकन्य करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियससे वन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यालगुणहीन अनुतकृष्ट प्रदेशकन्य करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, सिध्यात्य और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मुख्यतासे संख्यक जातना चाहिए। ४५१. णिहाए इंडओ माण०भंगो । णवरि कोघसंत्र० णि० दुभाग्णं०। माणसंत्र० सादिरेयं० दिवद्वभाग्णं०। माया-लोभे० पुरिस० णि० संखेआगुणहो०। एवं पयला०।

४५२. चक्खुदं०दंडओ माणकसाइसंगो। णविर कोघसंज० सिया० तं तु० दुमागूणं०। माणसंज० सिया० तं तु० संखेजभागहीणं० वा सादिरेयं दिवहभागूणं०। माया-लोभ ० णि० बं० तं तु० संखेजगुणहीणं वा दुभागूणं वा तिभागूणं वा। पुरिस० सिया० तं तु० संखेजगुणहीणं०। जस० णि० तं तु० संखेजगुणहीणं०। एवं ति।च्णदंस०।

४५३. सादं माणकसाइभंगो । णवरि चदुसंज ० आभिणि ० भंगो । आसाददंडओ

४२ िनद्रादण्डकका भङ्ग मानकपायवाले जोवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशकन्य करनेवाला जीव कीयसंज्यलनका नियमसे बन्ध करना है जो इसका नियम से दो भागहीन अनुकुष्ट प्रदेशकन्य करता है। मानसंज्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधक हे भागहीन अनुकुष्ट प्रदेशकन्य करता है। मायासंज्यलन, लोमसंज्यलका और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुकुष्ट प्रदेशकन्य करता है। साथासंज्यलन, लोमसंज्यलका और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुकुष्ट प्रदेशकन्य करता है। इसी प्रकार प्रचलकों सुख्यता से सन्निवर्ष जानना चाहिए।

४५२. चक्षदर्शनावरणदण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवांके समान है । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट प्रदेशयन्य करनेवाला जीव कोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशयन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे दो भागहीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंब्वछन का कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यात भागहीन या साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। मायासंख्वलन और लोभ-संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका संख्यातगुणहीन या दो भागहीन या तीन भागहान अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है । पुरुषवेदका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदे वन्य करता है। यदा कीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है ता इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अचक्षदर्शनावरण आदि तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५२. सानावेदनीय दण्डकका भङ्ग मानकपायवाळे जांबंकि समान है। इतनी बिरोयता है कि चार संज्ञवलका मङ्ग आभिनियोधिक होनाबरण्ये समान है। अर्थात् वहाँ पर आभिनि-योधिक होनावरणका उक्तष्ट प्रदेशक्य करनेवाळे जीवके चार संज्ञवलका जिस प्रकार सिन्नक्ष कहा है उसी प्रकार सानावेदनीयका उत्तष्ट प्रदेशक्य करनेवाळे जीवके जानना चाहिए। असानावेदनीयरण्डकका भङ्ग मानकपायबाळे जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है माणकसाहमंगो । णवरि चदुसंजल्लाणं णिद्दाए भंगो । अपबक्खाण०४-पबसाण०४-दंडओ माणकसाहभंगो । णवरि चदुसंज० णिद्दाए भंगो ।

४५४. कोघसंब उक्क प्रेवं प्रेचणा - चदु दंस - साद - जसा - उचा - पंचंत । णिव वं वि एवं वि एवं से सार - जसा - उचा - पंचंत । णिव वं वि एवं वे वि एवं वि एवं वि ए

४५५. इत्थि०-णबुंस० माणमंगो । णविर कोधसंज० णि० बं० दु भागूणं० । माणसंज० णि० सादिरंपं दिवहुभागूणं० । माणा-लोभसंज० णि० संखेजगुणही० । पुरिस० माणभंगो । णविर चदु संज० इत्थि०भंगो । छण्णोक० माणकसाह मंगो । णविर कि बार संववतनका भङ्ग निवाके समान है । अर्थात् यहाँ पर निवाका व्यक्तप्र अस्वाके वाळे जीवके चार संववळनका जिससकार साम्रकक्षं कहा है इसी प्रकार असावोवनीयका व्यक्तप्र वर्शकन्य करनेवाळे जीवके जानना चाहिए । अराखाद्यावावरणव्यक्त और प्रयाख्यानावरणव्यक्त अप्रेत्र प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्रयाख्यानावरणव्यक्ति अक्तप्रकृतिक समान है । अर्थात् वर्षा पर निवाक व्यवस्थान वरणविष्ठ प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्राचित्र प्रयाख्यानावरणव्यक्ति प्रयाख्यानावरणविष्ठ प्रयाख्यानावरणविष्य प्रयाख्य

४५४. कोघसंज्यलनका उत्कृष्ट प्रदेशनय करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशकीर्ति, ज्यानेत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्ध्रुष्ट प्रदेशवन्य करता है। मानसंज्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे चार भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सावासंज्यलन और लोभसंज्यलन का नियमसे चन्ध करता है जो इनका नियमसे संन्यावर्गणहीन अनुरुक्ष्ट प्रदेशवन्य करता है। सानसंज्यलनका जत्कष्ट प्रदेशवन्य करता है। सानसंज्यलनका जत्कष्ट प्रदेशवन्य करता है। सानसंज्यलनका जत्कष्ट प्रदेशवन्य करता है। सानसंज्यलनका जियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सावासंज्यलनका व्यवस्थ करता है। सावासंज्यलनका व्यवस्थ करता है। इनका नियम वन्ध करता है जो इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सावासंज्यलनका व्यवस्थ करता है। क्षावासंज्यलनका ज्याद प्रदेशवन्य करता है। अवस्थ अवस्थ अवस्थ करता है। अवस्थ अवस्थ अवस्थ अवस्थ अवस्थ अवस्थ अवस्थ करता है। अवस्थ अवस्थ अवस्थ करता है। अवस्थ अवस्थ अवस्थ करता है। इसी प्रकार लोभसंज्यलनको सुक्यता से सिक्षक जानना चाहिए।

१४५. खोवेद और नपुंसक्वेदका अङ्ग मानकपायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका उठ्छ प्रदेशक्य करनेवाला जीव कोधसंज्यकनका नियमसे बन्ध करता है जी इसका नियमसे वाप करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। मानसंज्यकनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधक डेढ़ भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। मायासंज्यकन और लोभसंज्यकनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संस्थातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट वन्ध करनेवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट वन्ध करनेवाले जीवके चार संज्यकनका भद्ध भीवदकी प्रस्थातमे कहे गये सिन्धकर्षक समान है। इसनी विशेषता है नियमसे समान है। इसनी विशेषता

चदु संजरुषाणं विद्यार मंगो । चत्तारिआउ० ओषो । वामाणं सन्त्राणं माणकसाहमंगो। णवरि कोषसंज० वि० द् मागूणं०। माणसंज० सादिरेगं दिवहभागूणं। माया-लोमसंज० वि० वं० संखेजगुणही०। व्यति जस० वं० चदुसंज० चक्खुदंस०भंगो। लोमकसाईसु मुलोषं।

४५६. बहि॰ सुद्द आर्मिण उक्क पदे०दं बहुणा॰ णवदंस०-बिच्छ०-सोलसक०-अय-दु०-पंबंत० णि० दं णि० उक्क । सहासाद०-समणोक०-वेउन्वियछ०-आदाब-दोगो० सिया० उक्क । दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-इस्संटा०-ओरालि०-अंगो०-इस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसपु० सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं वं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० तं तु० संखेजदिभागूणं वं०। पर०-उस्सा० सिया० तं तु० संखेजदिभागुणं०'। एवं चहुणा०-णवदंसणा०-सादा-

है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीवके चार संज्वलनका भङ्ग निश्व मुख्यतासे कहे,
गावे सांक्रकचेंक समान है। चार आयुआंको मुख्यतासे सांक्रकचेंका भङ्ग ओघके समान है।
नामकर्माकी सब्द प्रकृतिवांको मुख्यतासे सांक्रकचेंका भङ्ग ओघके समान है।
विश्वेषता है कि इनका वरक्कट प्रदेशकम्य करनेवाला जीव कोधसंख्यलनका निवससे वन्ध करना
है जो इसका निवससे हो। भागदीन अनुरुष्ट प्रदेशकम्य करना है। मानसंश्वलनका निवससे
बन्ध करना है जो इसका निवससे साधिक देह भागदीन अनुरुष्ट प्रदेशकम्य करना है। मानस्थान सज्जवन और लोभसंख्यलका निवससे साधिक देह भागदीन अनुरुष्ट प्रदेशकम्य करना है। मानस्थान अनुरुष्ट प्रदेशकम्य करना है। नामकर्याको प्रकृतियाँ से से इतनी और विश्वेषता है कि यश-कीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीवके चार संज्यलनांका भङ्ग स्वपुर्शनावरणकी मुख्यताले कही गते सांक्रकों के समान है। लोभकपायवालोंसे मुलोकके समान भङ्ग है।

४५६. मस्यज्ञानी और श्रताज्ञानी जीवोमें आभिनिवेधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोखह कपाय, भय, जुनुष्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, वैक्रियिक छह, आतप और हो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्क्रह प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्कोपाङ, छह संहनन, दो आतुपूर्वी, उद्योत, दो बिहायोगित और जसादि दस युगलका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्प्रक्र प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबंन्ध भी करना है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुरुक, अगुरु-लघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्कुष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ता इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। परवात और उच्छवासका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार चार

१. ता॰पती 'सिया॰ संस्रेजदिभागूवां' इति पाठः ।

साद ०-मिच्छ ०-सोलसक ०-सत्तवोक ०-पंचंत ० । जबरि सादा ०-हस्स-दीवां विश्य ०-विश्याणु ० वज ० । अप्पसत्व ०-इस्सर ० सिया ० संखेजदिशागणं वं ० ।

४५७. इत्थि॰ उक्क॰ परे॰ यं॰ पंचणा॰ जनदंषणा॰ निमन्छ॰ सोलसकः अप-दुः पंचतः णि॰ गं॰ णि॰ उक्क॰]। दोनेद॰ चतुः णोकः न्देनगदि॰ ४-दोगोद॰ १ सिया॰ उक्क॰ । दोगदि-जोरालि॰ हुंद॰ -जोरालि॰ अंगो॰ -असंप॰ दोआछु॰ -उजो॰-अप्पसत्थ॰-धिरादितिष्णिधुग॰ -द्भग-दुस्सर-अणादे॰ सिया॰ संखेजदिभाग्णं । पंचिदि०-तेजा॰ क॰ नण्ण॰ ४-अगु॰ ४-तस॰ ४-णिभि॰ णि॰ गं॰ संखेजदिभाग्णं वं गं॰। पंचसंठा॰-पंचसंप॰ -पसत्थ॰ -सुभग-सुस्सर-आदे॰ सिया॰ तंतु॰ संखेजदिभाग्णं । एवं पुरिस०।

४५८. णिरवाउ० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-[णवदंस०-असोदा०-मिच्छ-सोल] स०-णबुंस०-अरदि-सोग-अय-द ०-णिरयगदिअद्वावीस ै-शीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० ै

ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, सातावेदनीय, अधातावेदनीय, सिप्यात्व, सोळह कथाय, सात नोकपाय और पाँच अन्वरायकी मुख्यनासे सिन्नकर्य ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, हास्य और रिवर्डी सुख्यतासे सिन्नकर्य कहते समय नरकगित और नरफारयानु-पूर्वीको छोड़कर सिन्नकर्य कहते नाहिए। तथा इनका उत्कृष्ट प्रदेशवस्य करनेवाळा जीव अप्रशस्तविद्योगित और दुस्वरका कहाचिन् वन्य करता है। यदि वन्य करना है तो इनका नियमसे संस्थानसामहीन अनुकुष्ट प्रदेशवस्य करता है।

४५७. स्रोवेदका उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिश्याद, सोलह कपाय, भय, जुगुप्ता और पाँच अन्तरायका नितयसे वन्य करता है जो इनका नियमसे वन्त्र करता है जो इनका नियमसे वन्त्र कर करता है । दो देनीय, वार नोकपाय, देवातिवातुष्क और हो नियमसे वन्त्र करता है। दो देनीय, वार नोकपाय, देवातिवातुष्क और हो। तो नियमसे उस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। दो गति, जोदारिकरारीर, हुण्डसंयान, औदारिकरारीर आङ्गीपाइ, असम्प्राताहरू-पाटिकासंहनन दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थिर आदि तीन सुगळ, दुर्भग, दुःवर और अनादेयका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है वो इनका नियमसे संक्शावभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। यदि वन्य करता है वो इनका नियमसे संक्शावभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् वन्य करता है और कदास्वित् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है वो इनका नियमसे संक्ष्यातभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है और कदास्वत्र वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है वो उसका प्रदेशवन्य भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सांच संस्थान, प्रशस्त करता है वो इनका वन्त्र हो। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है वो दसका नियमसे संक्यातभागदीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है वो इनका वन्त्र सांच करता है। वा अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वा स्थानन सांच स्थानन सांच अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। वा स्थानमा माहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकृत प्रकृत्य करता है वो इनका नियमसे संक्यातभागाहीन अनुस्कृष्ट

४५८. तरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोखह कवाय, तपुंतकवेद, अरति, शोक, भय, जुरुप्सा, तरकाति आदि अद्वाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

१. ताअप्रती 'पंचला०'''' क्रोधोवेद० चहुणोक० देवगदि० ४] दोमो०' क्षाअप्रती 'पंचला० जावदंसणा०''' को दोधेद० चहुणोक० देवगदि०४ दोगोद०' हित पाटः । २. ताअप्रती 'पंचला०''''' जिल्लाक स्वादक कोल्लाक अपरि सोगामपद्द०] जिल्लादिनहाबीसं' काअप्रती 'पंचला०''''' ज्विक्ष कार्यक सोल्लाक कार्यक प्रति सोगामपद्द०] जिल्लादिनहाबीसं' काअप्रती 'पंचला०''''' ज्विक्ष कार्यक सोल्लाक कार्यक प्रति पाटः । ३. वाअप्रती 'मि० [बं०] जिल्लाक कार्यक प्रति पाटः । ३. वाअप्रती 'मि० [बं०] जिल्लाक कार्यक प्रति पाटः ।

संखेजदिभाग गं० । एवं तिष्णं आउगाणं अप्पप्पको पगदीहि घेदच्या ।

४५९, णिरय० उक्क० पदे०वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-भिच्छ०-सोल-सक्क०-णवुंस०-अरदि-सोग-अय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। णामाणं सत्याण०-भंगो। णामाणं हेट्टा उविरि णिरयगिदिमंगो। णामाणं अप्पप्पणो सत्याणभंगो कादच्बो। णविर देवग० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ० सोलसक०-अय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। सादासाद०-छणोक० सिपा० उक्क०। णामाणं सत्याण०भंगो। एवं देवगदि०४। णविर वेउविव०दुगस्स णवुंस० णीचापांद पि अत्यि। समचदु० उक्क० पदे०चं० देवगिदिमंगो। एवं पसत्यवि०-सुमग् सुस्सर-आदेआणं। चहुसंडा०-पंचसंघ० उक्कर्सा प०वंचंतो सादासादा०-सचणोक०-णोचुच्चागो० सिपा० उक्क०। दोगोदं तिरिक्सगिदिमंगो०। विसेसो जाणिदच्चो। एवं विभंग०-अक्शव०-भिच्छा०-असिण्य चि।

नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुस्कृष्ट प्रदेशदन्य करता है। इसी प्रकार शेष तीन आयुओंकी मुख्यतासे अपनी-अपनी प्रकृतियोंके साथ सन्तिकृष जान छेना चाहिए।

४५९. नरकगतिका अक्रष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नीचगात्र भार पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भक्क नरकगतिकी मुख्यतासे इन प्रकृतियोंके कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जगण्या, उश्वगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और छह नोकषायका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगति चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालेके नपुंसकवेद और नीचगोत्र भी है। समचतुरहासंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान भक्न है। इसी प्रकार प्रशस्त विद्वायोगित, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार संस्थान और पाँच सहननका उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, नीचगोत्र और उद्यागित्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्व तिर्यञ्चगतिमें इनकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उसके समान है। जो विशेष हो वह जान लेना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् मत्यहानी जीवोंके समान विभङ्गजानी, अभव्य, मिध्यादृष्टि और असंजी जीवोंमें जातता चाहिए।

ता॰ष्का॰प्रत्योः 'ग्रवरि ''''स० सिच्छ॰ दृति वादः। २. ता॰प्रती 'सादासाद० लोछ॰'
 प्रा०पती 'सादासाद सचनोकः' दृति वादः। ३. ता॰प्रती 'आदेआखं चतुसंद्यः। पंचसंद्य॰ दृति वादः।

४६०. आभिणि०-सुद्द०-ओघि० आभिणि०-दंदओ ओघो। णिहाए उक्क० पदे०चँ० पंचणा०-चदुदंसणा०-उचा०-पंचंत० णि० चं० णि० संखेजिदिसाग्णं चं०। पयला-सय-दु० णि० चं० णि० उक्क०। सादा० सिया० : संखेजित्साग्णं चं०। प्यला-स्य-दु० णि० चं० णि० उक्क०। पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंत-माग्णं०। कोघसंज० णि० चं० णि० दुभाग्०। माणसंज० सादिरंग दिवक्रमाग्णं०। मापासंज०-जोमसंज०-पुरिस० णि० दंभाग्०। माणसंज० तो तिण्जिसरी-दोज्ञंगी०-जारि०-दोज्ञाणु०-धिराधिर-सुभासुम-जजस० तित्य० सिया० तं तु० संखेजिदिमागूणं०। पंचिदि०-तेजा०-क्र०-समचदु०-जणा०४-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुभा सुस्वर-जादै० णिम० णि० चं० णि० तं तु० संखेजदिमागुणं०। वेडिव्य०अंगो० सिया० तं तु०

४६० आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी, और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञाना-वरणदण्डकका भङ्ग भोघके समान है। निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रचला, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीयका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोक्ष्यायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतष्कका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनु-स्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। कोधसञ्बलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायामंज्यलन, लोभसञ्चलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, तीन शरीर, दो आक्रोपाक, वक्कपेमनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, श्रम, अश्रम, अयशःकीर्ति और तीथक्ररप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो सकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसकारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरु-लघुचतुष्क, प्रशस्तविद्वायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुखर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। बैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक हो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशः कीर्तिका कहाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध

१. ता०भा० प्रत्योः 'संखेजदिभागूषं' इति पाठः । २. ता०प्रती 'म्रादे० णि० वं०' इति पाठः ।

सादिरेयं दुभागृणं । जस० सिया० संखेजगुणहो० । एवं पयला० ।

४६१. असादा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुर्तसणा०-उबा०-पंचत० णि० बं० संखेआदिभाग्णं०। णिदा-पयला-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। अपन्चसाण०४-चदुणोक० तिया० उक्क०। पष्यस्खाण०४ तिया० तं तु० अणंतभाग्णं। चदुसंज०-पुरिस० सभ्वाओ णामाओ णिदाए भंगो कादभ्वो। एवं अरदि-सोगाणं।

४६२, अपचक्खाण०४-पचक्खाण०४ णिहाए भंगो । णवरि अप्पप्पणो तिण्णिकः '-भय-दुः णि० वं० णि० उक्० । चहुसंज०-प्रुत्सि० मूलोघो । दोआउ० ओघो । णवरि पाओम्गाओ कादब्बाओ ।

४६३, मणुसग० उक्क० पदे०बं० पंचणा० - चहुदंस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेजदिभागूणं०। णिहा-पयला-अपचन्खाण०४-भय-दु० णि० वं० णि० उक्क०।

करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाकी सुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६? असाताबेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उद्यागेत्र और पाँच अत्तरायका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे स्थासभागदीन अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। निद्रा, प्रचला, भय और जुगुप्साका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे वन्न्य करता है जो इनका नियससे वन्न्य करता है जो इनका नियससे वन्न्य प्रदेशक्य करता है। प्रयालयानावरण चार और चार नोक्ष्यायका कराचिन बन्य करता है। यदि वन्य करता है और कहाचिन वन्य निर्देशक्य अप विद्यालय करता है तो उत्तक प्रदेशक्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। विद अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। विद अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। वार संव्यवक्त, पुरुषवेद और नामकर्मकी सब प्रकृतियाँका भङ्ग निद्राकी सुक्ष्यतासे कहे गये सिक्षकर्ष जानना चाहिए।

४६२. अग्रत्यास्यानावरणचतुष्क और प्रत्यास्यानावरणचतुष्ककी मुख्यतासे सिक्रकर्षे तिद्राची मुख्यतासे कहे गये सिक्रकर्षे समान जानना चाहिए। इतना विश्वेषता है कि दन होना प्रतासकी कपायोंकी विवक्षित कोशादि हो-दो कपायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसम्य करने-वाला जीव अपने अपने तीन क्याय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशसम्य करता है चार संव्वकन और पुरुषवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष मुखोपके समान है। हो आयुआंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने प्रायोग्य प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

४६२. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, उद्यागत्र और गाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यात भगादीन अनुरुक्त प्रदेशवन्य करता है। निद्रा, प्रचल, अप्रत्याख्यानावरणचुक्क, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियस उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। प्रस्याख्याना-वरणचनुष्कका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियस अनन्तभगाद्दीन अनुकृष्ट प्रदेशवन्य

^{1.} ता॰प्रतौ 'अप्यस्पयोः । तिश्लिकः' इति पाटः ।

४६४, इस्स॰ उक्क॰ पदे०वं॰ ओघं। एवं रदि-सय-दु॰। णामाणं हेड्डा उविरें मणुसगदिभंगो। णामाणं अपपपणो सत्याण-अंगो। णविर देवगदिआदीणं णिहा-पयला-अपचक्खाण०४ सिया॰ उक्क०। पचक्खाण०४ सिया॰ तं तु॰ अर्णत-भागुणं॰। एवं आभिणि॰भंगो ओघिदं॰-सम्मादि॰-सहग॰-उनसम॰।

प्रदेश, मणपजन आसिणिंद्दं औं जोचो । णिहाए उक्क पर्दे व्यंवणाव्यदुर्दसणाव-उद्याव-पंचंत विण्यं के संखेजिदिमागूणं । पयला-सय-दु णिव यं व उक्क । सादा व सियाव उक्क । सियाव उक्क । सियाव उक्क । करता है । कोपसंज्यक्षनका नियमसे क्या करता है जो इसका नियमसे साधिक उद्याव करता है। सामसंज्यक्तमका नियमसे स्वयं करता है जो हसका नियमसे साधिक वंद्र मागहीन अनुक्रष्ट प्रदेशक्य करता है जो सायावंज्यक्त, लोभसंज्यक्त और पुरुषेद्रस्था करता है जो इसका नियमसे साधिक वंद्र मागहीन अनुक्रष्ट प्रदेशक्य करता है जो हमाजावंज्यक्त लोग पुरुषेद्रस्था नियमसे स्वयं करता है जो इसका नियमसे नियमसे स्वयं करता है। नियमसे स्वयं करता है। नियमसे संस्थानगण्डीन अनुक्रष्ट प्रदेशक्य करता है। नामकसंखी प्रकृतियांका मङ्ग स्वयान सनिकष्ठे समान है। इसी प्रकार अर्थात सनुष्यगतिकी मुख्यातं करे साम औदारिकरारीर आदारिकरारीर आहोपाङ्ग, व अर्थभनारायसंद्रन्त और सनुष्यगत्यायुपुर्वीको मुख्यतासे सन्तिकष्ठे जानता चाहिए।

४६४. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करतेवाले जीवकी मुख्यतासे सन्तिक्षे ओपके समान है। इसी प्रकार रित, भय और जुगुरमाकी मुख्यतासे सन्तिक्षे जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियों में से विवक्षित प्रकृतिका उत्कृतिका उत्कृतिका उत्कृतिका उत्कृतिका जिल्ला का नामकर्म पूर्व और वादकी प्रकृतियों का भङ्ग मनुष्यातिकी मुख्यतासे कहे गये सनिकर्णके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियों का भङ्ग अपने अपने स्वस्थानसिक्षक्ष्येके समान है। इतनी विवेषता है कि देवगति आदिका उत्कृति प्रकृतियां का प्रदेशावन्य करतेवाला जीव निद्वा, प्रवला और अप्रयावस्थानावरण चतुक्कका कराचित् वन्ध करता है। यति वन्ध करता है। यति वन्ध करता है। यति वन्ध करता है। यति वन्ध करता है। विवेषता वाज्यत्वक्षका कराचित् वन्ध करता है। अत्रवाक्ष्या करता है। विवेष अनुत्वष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। अत्रवाक्ष्य अन्तिका अनुत्वस्थ करता है। यदि अनुत्वस्थ करता है। विवेष अनुत्वस्थ करता है। विवेषता है। इसी प्रकृतका अनिविधिकक्षानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यव्यक्ष, ख्रायिकसम्यव्यक्ष और अवक्षाससम्यव्यक्षि जीवोंके जानना वाहिए।

र्धः मनःपर्यवक्षांनी जीवोंमें आभिनियोधिकक्षानावरणदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। निद्राका च्कुष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच क्षानावरण, चार दशनावरण, क्षागोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे क्ष्म करता है जो इनका नियमसे संस्थातभागदीन अनुक्ष्म प्रदेशक्य करता है। प्रचला, भय और जुगुप्ताका नियमसे वश्य करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। सावावेदनीयका कराचित्र क्ष्म करता है। यदि वस्य करता है तो इसका नियमसे संस्थातभागदीन अनुक्ष्म प्रदेशक्य करता है। असावावेदनीय और चार नोकष्माका कराचित्र वस्य करता है। यदि बस्य करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है।

१. ता॰प्रती 'अञ्चतभा०७ (१) कोपसंज॰' इति पाटः। २. ता॰प्रती 'उबसम॰ मणपजाव० । स्रामिणिदंडमो' इति पाठः। ३. ता॰प्रती 'बं॰ उ॰ साद॰ सिया॰' इति पाठः।

चहुसंज अोघो । पुरिस० णि० संखेआगुणही० । देवग०-पंचिदि०-तिष्णिसरीर-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-ग्रुमग-ग्रुस्सर-आदे०-णिमि० तं तु० संखेआदिमागूणं । आहारदुग-धिराधिर-ग्रुमाग्रुम-अजस० सिया० तं तु० संखेआदि-मागूणं । वेउ व्वि०अंगो० सिया० तं० तु० सादिरेगं दुमागूणं० । तित्थ० सिया० उक्त० । जस० सिया० संखेआगुणही० । एव पयला० । एदेण कमेण सन्वाओ पगदीओ णादव्याओ । एवं संजदाणं ।

४६६. सामाइ०-छेदो० आभिषि० है उक्त० पदे०बं० पंचणा०-चहुदंसणा०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्त०। णिदा-पयला-सादासाद०-छण्णोक०-तित्य० सिया० उक्क०। कोधसंज्ञ० सिया० तं तु० द आगुणं०। माणसंज्ञ० सिया० तं तु०

चार संज्वलन का भक्क ओधके समान है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चिन्द्रयजाति, तीन शरीर, समचतरकासंस्थान, वर्णचतुरक, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुखघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, ग्राम, अग्रम और अयशः क्रीतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्रुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमागर्हान अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैकियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह उसका साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। तीर्थद्वर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगणहीन अनत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इस कमसे सब प्रकृतियांका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका सन्निकव जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात मन:पर्यक्षानी जीवोंके समान संयत जीवोंमे सन्तिकर्ष जानना चाहिए ।

४६६ सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवों में आभिनिवोधिक झानावरणका अर प्रशेशक्य करनेवाला जीव पीच झानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोग्न और पीच अनत्यायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे उच्चछ प्रशेशक्य करता है। निहा, प्रचला, सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोक्ष्यय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कराधित् वन्य करता है। हो तहा, प्रचला, सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोक्ष्यय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कराधित् वन्य करता है। विदे वन्य करता है तो रहाधित् वन्य करता है। विदे वन्य करता है तो रहाध्य प्रशेशक्य में करता है और अनुकृष्ट प्रदेशक्य मी करता है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशक्य करता है। यदि अनुकृष्ट प्रदेशक्य करता है। यानसंज्यलका कदाधित् वन्य करता है। सानसंज्यलका कदाधित् वन्य करता है। सानसंज्यलका कदाधित् वन्य करता है। सानसंज्यलका कदाधित् वन्य करता है। विद क्ष्यलक्ष्य प्रदेशक्य में करता है। सानसंज्यलका कदाधित् वन्य नहीं करता। दे वीर कनुकृष्ट प्रदेशक्य मी करता है। यदि क्ष्यलुक्ष्य प्रदेशक्य मी

ता॰प्रती 'एवं संजदायं सामा॰ झेदो॰। ग्रामिणि॰' इति पाठः।

सादिरेयं दिवङ्गमाण्णं संस्केजदिभाग्णं वा । मायसंज सिया तं तु संस्वेज-गुणही दुभाग्णं तिमाग्णं वा । अथवा मायाए सिया तं तु विहाणपदिदं यं प्रसंकेजदिमागहीणं संसेजगुणहीणं वा । होभसंज िण वं तं तु तंस्रेज-गुणही । पुरिस्व सिया तं तु संसेजगुणही । देवगदिजादीणं सत्वाणं णामाणं सिया तं तु संसेजजदिमाग्णं । वे उध्वित्यं सेणां सिया तं तु सादिरेयं दुभाग्णं । जस तिया तं तु संसेजगुणहीणं । एवं चद्णा सादा -उचा -पंचत ।

४६७. णिहाए उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पयला-भय-द्०-उचागो०-पंचंत०

इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन या संख्यातभागहीन अनुरःष्ट प्रदेशबन्ध करता है। माबा संज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहोन, दो भागहीन या तीन भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अथवा मायाका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे द्विम्थानपतित बन्ध करता है या संख्यातभागहीन या संख्यातगणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छोभ संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित बन्ध करता है और कराचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। याद अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति आदि सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैकियिक-शरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित बन्ध करता है और बदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो अकुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे सख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान चार झानावरण, साताबेदनीय. उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सम्बद्ध जानना चाहिए।

४६७. निद्राका व्हरूष्ट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, प्रचला, भय, जुगुस्सा उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका निययसे वन्य करता है जो इनका नियससे वत्कुष्ट प्रदेशकन्य णि॰ चं॰ णि॰ उक्त॰ । चदु दंस॰ णि॰ चं॰ अणंतभाग्णं। सादासाद०-चदु णो॰-तित्य॰ सिया॰ उक्त॰ । कोघसंज॰ णि॰ चं॰ दु भाग्णं॰ । माणसंज॰ णि॰ सादिरेयं दिवडुभाग्णं॰ । मायासं॰-छोभसं॰-पुरिस॰ णि॰ चं॰ संखेजगुणहीणं भं॰ । देवगदिअड्डावीसं णि॰ चं॰ तं तु॰ संखेजदिभाग्णं॰ । णवरि वेउन्वि॰अंगो॰ णि॰ तं तु॰ सादिरेयं दुभाग्णं॰ । आहारदुग-चिराधिर-सुभासुभ-अजस॰ सिया॰ तं तु॰ संखेजदिभाग्णं॰ । जस॰ सिया॰ संखेजगुणही॰ । एवं पयला॰ ।

४६८. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० वं० अणंतभागूणं०। चदुसंज०-चिदुणोक०ी णिहाए भंगो । पुरिस० णि० संखेजगुणहीर्ण०। णामाणं णिहाए भंगो। एवं करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय और तीर्थङ्करप्रकृति का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। कोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करता है। मानसंज्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृत्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, छोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। देवगति आदि अहाईस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्क्रट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अग्रुभ, और अयशाकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुःकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवका सिम्नकष कहना चाहिए।

४६८. असाताचे इतीयकां चरुक्ट प्रदेशवश्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचल, भय, जुगुप्सा, ज्वागांत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इतका नियमसे वर्च्य करता है जो इतका नियमसे अरुष्ट प्रदेशवश्य करता है। बार दर्शनावरणका नियमसे वर्च्य करता है जो इतका नियमसे अन्तरमायद्वीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवश्य करता है। बार संवच्छन और चार, नोक्यायका भक्क निद्राका वरकृष्ट प्रदेशवश्य करनेवाले जीवके बहे गये सन्त्रिक्षकर्षक समान है। पुरुषेद्रका नियमसे बन्य करता है जो इसका नियमसे संव्यातगुण्हीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवश्य करतेवाले जोवके कहा स्वयं स्वयं करता है। इसके नामकर्मकी प्रकृतियांका भक्क निद्राका वरकृष्ट प्रदेशवश्य करनेवाले जोवके कहा गये साम्वयं करता है। इसके नामकर्मकी प्रकृतियांका भक्क निद्राका वरकृष्ट प्रदेशवश्य करनेवाले अतिवर्क्षक स्वयं वर्षकर्मा वर्षकर्मा वर्षकर्म करतेवाले अतिवर्क्षक स्वयं वर्षकर प्रदेशवश्य करनेवाले अतिवर्क्षकर स्वयं वर्षकर स्वयं वर्यकर स्वयं वर्षकर स्वयं वर्यकर स्वयं

१. ता०भ्रा०प्रत्योः 'संखेजदिभागूणं' इति पाठः ।

छण्णोकः । णवरि अरदि-सोगाणं आहारदुगं वज्र ।

४६९. चक्खुदं० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिष्णिदंस०-सादा०-उच्चा०-पंचत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुसंज० आभिणि०भंगो। पुरिस०-जस० सिया० तं तु० संखेजगुणही०। णवरि जस० णि०। णामाणं सच्चाणं मणपजनभंगो।

४७०. जस०' उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुरंस०-सादाबेद०-उचा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । कोधसंज० सिया० तं तु० दुभागृणं० । माणसंज० सिया० तं तु० सादिरेयं दिवडुभागृणं वा चदुभागृणं वा । मायासंज० सिया० तं तु० संखेआगुणही० दुभागृणं० तिभागृणं वा । लोभसंज० णि० बं० तं तु० संखेआगुणही० । पुरिस०

करनेवाले जीवका जिस प्रकार सिन्नकों कहा है इसी प्रकार छह नोकपायोंका उत्पृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जोवका सिन्नकों कहना चाहिए। इननी विशेषता है कि अरति और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके आहारकद्विकको छोड़कर सिन्नकों कहना चाहिए।

४१९. चक्षुर्दर्शनावरणका उल्कुष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच क्षानावरण, तीन र्द्रशनावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्हें प्रदेशकर्य करता है। चार संज्वलनका मङ्ग आमिनिबोधिकक्षानी तोवांके जिस प्रकार कह आये हैं उस प्रकार है। पुरुषयेद और यहा-कीर्तिका कराचित्त वन्ध करता है और कराचित्त वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है ती उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुरुष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुरुष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यानगुणहीन अनुरुष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि वह यहाःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। नामकर्मको सब प्रश्लियोंकी ग्रुख्यतासे सिन्तवर्ध मनावर्धयवाली जीवांके समान है।

४७०. यराःकीर्तिका उन्ह्रण्ट प्रदेशवन्य करतेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शना-वरण, सातावेदर्नाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे उन्ह्रण्ट प्रदेशवन्य करता है। कोबसंज्वलनका कराचिन वन्य करता है और करा-ह्रण्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो वह इसका नियमसे दो भागाई।न अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। सानसंज्वलनका कराचिन् बन्य करता है और कराचिन् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो वन्ह्रष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है। तो वह इसका नियमसे साधिक ढेद भागाई।न या चार भागाई।न अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। माया-संज्वलका कराचिन् वन्य करता है और कराचिन् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता तो उन्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है तो वह इसका संक्यातगुणाई।न या दो भागाई।न या तीन भागाई।न अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। किनु वह इसका कन्कुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। विन्तु वह इसका कन्नुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। विन्तु वह इसका कन्नुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। विन्तु वह इसका कन्नुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुतकुष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है। वीन्यस्थ संख्यातगुणाई।न अनुत्कुष्ट प्रदेशवन्य करता है। विन्तु वह इसका

१. ता०बा०प्रत्योः 'मणपञ्जवभंगो । जन्नरि जस॰' इति पाठः ।

सिया॰ तं तु॰ संखेअगुणही॰ । एवं सेसाओ वि पगदीओ एदेण कमेण णेदच्याओ । णामाणं हेट्रा उवरि णिदाए संगो । णामाणं सत्याण०मंगो ।

४७१. परिहारेसु आभिणि॰ उक्क॰ पदे०बं॰ चदुणा॰-छदंस०-चदुसंज॰-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा॰-पंचंत॰ णि॰ बं॰ णि॰ उक्क॰। सादासाद॰-चदुणोक॰-तित्य॰ सिया॰ उक्क॰। देवगदिअडावीसं॰ णि॰ बं॰ तं तु॰ संस्रेअदिभागुणं॰। णवरि वेउन्त्रि [अंगो॰] सादिरेयं दुभागुणं॰। आहासदुग-धिरादितिष्णियुग॰ सिया॰ तं तु॰ संस्रेअदिभागुणं। एवं चदुणा॰-छदंस०-सादा०-चदुसंज॰-छष्णोक॰-उच्चा॰-पंचंत॰।

४७२. असादा॰ उक्कः पदेव्वं आभिणिव्मंगी । णवरि आहारदुगं वजा ।

पुरुषचेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उच्छुष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुकुष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनु-स्ट्रेष्ट प्रदेशक्य करता है तो बह इसका नियमसे संख्यातनुग्रहोन अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियाँको मुख्यतासे भी इसी क्रमसे सन्तिकवं छेजाना चाहिए। मात्र नामकसंसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियाँका भक्क निदाकी मुख्यतासे कहे गए सन्तिकवंके समान है। तथा नामकमंकी प्रकृतियाँका भक्क स्वराग सन्तिकवंके समान है।

४७१. परिहारविश्वद्विसयन जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, वरुचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्क्राट प्रदेशबन्ध करता है सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोक्याय और तीर्थक्टर प्रकृतिका कटाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति आदि अहाईस प्रकृतियांका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो उनका वह नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। इतनी विज्ञेषता है कि वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका वह नियमसे साधिक दो भागहीन अनस्कष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक और स्थिर आदि तीन युगलका कदानिस बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्क्रुष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो वह उनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, छह नोकषाय, चन्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए। अर्थीत जिस प्रकार आभिनि-बोधिक झानावरणका उरहष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्षकहा है उसी प्रकार इत प्रकृतियोंका एस्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका सन्निकृष कहना चाहिए।

४७२, असाताबेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके आभिनिवोधिक झाना-बरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके कहे गये सन्तिकवेके समान सन्तिकवे कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकडिकको छोड़कर यह सन्तिकर्ण कहना चाहिए।

ता॰प्रती 'पंचंत असाद॰' इति पाठः ।

वेउव्व [अंगो०] णि० तं तु० संखेजदिभागृणं० ।

४७३. देवाउ० ओर्घ । सन्वाओ पगदीओ संसेजदिभाग णं० ।

४७४. देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा० छदंस० चदुसंजै० 'पुरिस० भय दु०-उचा० पंचंत० णि० बं० उक्क० । सादासाद० चदुणोक्क० सिया० उक्क० । णामाण सत्थाण० भंगो । एवं सञ्चाणं णामाणं हेट्टा उवर्रि देवगदिभंगो । णामाणं अप्पपणो सत्थाण० भंगो ।

४७५. सुदुमसंप० ओघमंगो। संजदासंजदेसु आमिणि० उक्त० पदे०वं० चदुणा०-छदंसणा०-अद्वक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्त०। सादासाद०-चदुणोक०-तित्य० सिया० उक्त०। देवगदिपणुवीसं० णि० वं० तं तु० संखेजदिमाग्णं। थिरादितिणियु० सिया० तं तु० संखेजदिमाग्णं वं०। एदेण

तथा वह बैंकिथिकशरीर आङ्कोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कारन प्रदेशवन्ध भी करता है ओर अनुरह्म्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुरक्ष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो वह इसका निययसे संस्थातभागहीन अनुरक्ष्ट प्रदेशवन्ध करता है।

४७३. देवायु १। उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवके ओघके समान भक्क है। मात्र

वह सब प्रकृतियोंका संख्यातभागहीन अनुत्कृट प्रदेशवन्ध करता है।

४०४. देवगितका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाला जोव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, यार संज्वलन, पुरुषदेद, भय, जुतुप्ता, उच्योज और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जरूर करता है। ज्ञानिवर्गाय करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका अङ्ग स्वयान सांत्रकृष्य समान है। इसी प्रकार सव नामकर्मकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाले जीवके जिस प्रकार स्व मानकर्मकी प्रकृतियोंका सङ्ग देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाले जीवके जिस प्रकार स्व मानकर्मकी प्रकृतियोंका मङ्ग देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशनम्य करनेवाले जीवके जिस प्रकार स्व मानकर्मकी प्रकृतियोंका सङ्ग अपने स्वस्थान सिक्षकर्षक समान है।

४५४. सुद्दमसाम्यरायसंयन जीवों में ओपके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवों में आभिन्नोपिक हानाबरणका उन्नुष्ट पृरेशक्य करनेवाला जीव चार हानावरण, छह दर्शनावरण, अठ कथाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उबगोव और याँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे वन्ध करता है। हम कि नियमसे वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे उन्हुष्ट अहेतका कराचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे उन्हुष्ट अहेतका कराचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे उन्हुष्ट अहेतका कराचित् वन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो वह इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो वह इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। त्याद अपित क्षेत्र करता है तो वह इनका नियमसे संस्थातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करता है। त्याद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य स्थाव अपित करता है तो उन्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है और अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो उन्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो उन्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद से संस्थातभागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद से संस्थात्यापाणीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद से संस्थात्यापाणीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो त्याद से संस्थात्यापाणीन अनुतकृष्ट प्रदेशक्य करता है तो हम से स्थाप स्थापाणीन स्थापाणीन से स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्थापाणीन स्यापाणीन स्थापाणीन स्थापाण

१. ता॰आ॰ प्रत्योः 'छ्दंस॰ सादा॰ चतुस'ज॰' इति पाटः ।

कमेण सञ्चपगदीओ जेदन्याओ ।

४७७. णिहाए उक्कः पदेव्वं वंचणा-पंचदंस-वाससक-पुरिस्त-मय-दुव-उचा-पंचतः णिव् बंव णिव् उक्कः । दोवेदणीव-चदुणोकः सियाव उक्कः ।

उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराके उनकी मुख्यतासे सन्निकर्घ हे जाना चाहिए। ४०६. असंयतोंमें आमिनियोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार जानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रवेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रक, दो वेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानवन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकर्गात, नरकरात्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी वरता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगरुलघ, उपचात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। शेष प्रकृतियोंका कराचित् बन्ध करता है और कहाचित बन्ध नहीं करना। यदि बन्ध करता है तो उरकष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार चार झानावरण, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवके सन्तिकर्ष जानना चाहिए। स्यानगृद्धित्रिकदण्डकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्येख्वगति भार्गणामें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्ष के समान जानना चाहिए।

अ००. निद्राका उत्क्राट प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कपाय, पुरुवेद, भय, जुगुध्या, उच्चांगत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे क्या करता है जो इनका नियमसे उक्कट प्रदेशक्य करता है। दो देवरोच और वार नोकवायका कराचित् क्या करता है। यदि क्या करता है तो इनका नियमसे उत्क्राट प्रदेशक्य करता है। समुख्याति,

ता॰प्रती 'प्यं चहुणो॰ । असाद॰' आ॰प्रती 'प्यं चटुणोक॰ असाद॰' इति पाठः । २. ता॰ प्रती॰ 'पंचंत॰ पीणगिदिद' देशो' इति पाठः ।

मणुस० [ओरालि०-] ओरालि० झंगो० - मणुसाणु० - विरादितिष्णियुग० सिया० तं तु० संखेजदिमाग् णं० । देवगदि नेउन्नियद् गु०- नजरि०-देवाणु-तित्य० सिया० तं तु० संखेजदिमाग् णं० । पंचिदि० नेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-शियामि० णि० वं० णि० संखेजदिमाग् णं० । समवद् ०-पसत्य०-सुमग्रसस्यत्यद् ० णि० वं० णि० तं तु० संखेजदिमाग् णं० । एवं पंवदस०-वाससक०-सुन्नोक० ।

४७८. सादार उक्क० पदे ० वं ० पंचणा ० संचंत० णि० वं ० णि० उक्क० । योणगिद्धि ० इ.भिच्छ० '- अणंताणु ० ४ इत्थि ० - आदाब - दोगोद ० सिया ० उक्क० । छदंस० - वारसक ० - अय-दु ० णि० वं ० णि० तं तु० अणंतभाग्णं ० । पंचणोक्क० सिया ० अणंतभाग्णं ० । तिर्णणादि - पंचजादि - दोसरोर - इस्संघ० - दोशंगो ० उस्संघ० - तिर्णणआणु ० पर ० - उस्संघ० - तिर्णणआणु ० पर ० - उस्संघ० - तिर्णण आणु ० संसेष अदि - सिया ० तं तु० संसे अदि

जीहारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मतुष्यगरयातुपूर्वी और स्थिर आदि तोन युगलक करावित, वन्य कराव है। यदि बन्य करावो है। देवाति, वैक्रियकिंद्रिक, वज्रवेशनारायसंहर्तन, देवात्यापूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका कर्राचित् वन्य करावो है और कराचित् वन्य नहीं कराव। यदि बन्य करावो है तो उक्कट प्रदेशक्य भी करावो है। विदेश अतुत्कृष्ट प्रदेशक्य भी करावो है। यदि अतुत्कृष्ट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसागाहीन अनुतक्रट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसागाहीन अनुतक्रट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसागाहीन अनुतक्रट प्रदेशक्य करावो है। किन्य वह करावो है। इसम्बद्धरक्ष संस्थान, प्रशस्त विद्यायोगित, सुप्रमा, सुन्यर और आहदक्य तिवससे सम्य करावो है। किन्य वह कराव कराव करावो है। कराव वह अतुक्रट प्रदेशक्य भी करावो है। यदि अनुक्रट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्याका वस्कृष्ट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्याका वस्क्रट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्याका वस्कृष्ट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्याका वस्क्रट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्याका वस्कृष्ट प्रदेशक्य करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्यावसाय करावो है। विद्यावसाय करावो है। विद्यावसाय अर्थात् निद्यावसाय करावो है। विद्यावसाय और स्थावसाय करावो है। विद्यावसाय है। विद्यावसाय करावो है

४५८. मातावेदनीयका उन्हरूट प्रदेशवन्य करतेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच जनतायका तियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे वन्क्रट प्रदेशवन्य करता है। स्थानगृद्धितिक मिण्यान, अनन्यनावृश्योचनुष्कः, कोवेद, नपुंसकवेद, आतप और दोगोत्रका कराणित्व वन्य करता है। कुछ दश्येनावरण, बारह कषाय, भय और जुएप्याका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनका वश्श्र्य प्रदेशवन्य भी करता है और अनुष्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। किन्तु वह इनका वश्श्र्य करता है। किन्तु वह इनका वश्र्य करता है। विश्व क्ष्य प्रदेशवन्य करता है। विश्व विषय भी करता है। विश्व विषय करता है। विश्व विश्व विषय करता है। विश्व व

ताश्मती 'उक्कः शीणः ३ सिन्छ' इति पाढः । २. आश्मती 'पंचणाः सियाः' इति पाढः ।
 ताश्माश्मत्योः 'इस्तंघः उज्जोः ' इति पाढः ।

भागाणं। अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेजिदिभागणं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप० णि० वं० णि० तंतु० संखेजिदिभागणं। एवं एदेण बीजेण सच्वाओ पगदीओ णेदच्याओ।

४७९. चक्खु०-अचक्खु०ओघं। किण्ण-णील-काउ० असंजदर्भगो। णवरि किण्ण-णीलाणं तित्थयरं हेद्दिम-उवस्माणं सिया० वं० उक्क०। णत्थि अण्णो विगय्यो।

४८०. तेऊए आसिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणिमिद्धि०३-मिच्छ०-अर्णताणु०४ -सादासाद०-इस्थि०-णुबंस० - दोगोद० सिया०' उक्क० । छदंस०-चहुसंज्ञ०-मय-दु० णि० तं तु० अर्णतमागूणं । अङ्कक०-पंचणोक० सिया० तं तु० अर्णतमागूणं० । तिण्णिमदिन्दोज्ञादिन्दोसरीर-आहार०दुग-छस्संठा० - दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-उज्ञो० -दोविहा० - तस-थावर-थिरादि-

करता है वो उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। इनका नियमसे संख्वानभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। अपन्नस्त विहायोगित और दुःवरका करान्ति वा त्या है। यदि वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि वन्य करता है। वह निवाससे संख्वानभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। ति तसग्रति, कामणग्रति, वर्णचनुत्क, अगुरुबबु और उपधानका नियमसे बन्य करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुतक्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। है। हमने विषयसे संख्यातभागहीन अनुतक्कृष्ट प्रदेशवन्य कराके वस्ता देव । इसी वीजवर्क अनुसार अन्य सव प्रकृतियोक्षा उत्कृष्ट प्रदेशवन्य कराके वनको मुख्यताये स्त्रिकर्ष के जाना चाहिए।

४०९. वश्चदर्गनवाठे और अवश्चदर्शनवाठे जोधोंमें ओपके समान भङ्ग है। हुरुगठेदरा, नीलतेदया और कारीतठेदयाबाठे जोधोंमें असंस्वत जीधोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कुण और नीकठेदयामें अध्यतन और वर्षादम प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाठा जीव तीयेद्वस्प्रकृतिका कदाबित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे

उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अन्य विकल्प नहीं है।

ता॰प्रती 'बीख्ति०३''''[सादासाद् इत्थि णबुंस० दोगो०] सिया० इति पाठः।

ङयुग०-तिस्थ० सिया० तं तु० संखेजदिभाग्णं । तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-बादर-पजन-पत्ते०-णिमि० णि० बं० तं तु० संखेजदिभाग्णं । एवं चटुणा०-पंचंत० ।

४८१. णिदाणिदाए उक्क० पदे०चं०' पंचणा०-दोदंस०-सिच्छ०-अणांताणु०४-पंचत० णि० वं० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-सय-दु० णि० वं० अणंतमान् ग्रं०। दोवद०-इत्यि०-णवुंस०-दोगदि०-सेउच्चि०-[वंउच्चि०-] असो०-दोआणु० - आदाय०-दोगदि० सिया० उक्क० । [पंचणोक० सिया० अणंतमान् ग्रंच०]। तिरिष्वः दोजादि-ओराङि०-छसंठा०-ओराङि०अंगो०-छस्तंय०-तिरिक्सणु०-[उको०-]दोषिदा०-तस-पावर-धिरादिछयुन० सिया० तं तु० संखेआदिभाग् ग्रं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-४-अगु०४-वादर-पजन-पचे०-णिमि० ग्रंण० तंत्त० संखेआदिभाग् ग्रं०। एवं दोदंस०-

बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशन घ भी करता है और अनुक्तृष्ट प्रदेशन बन्ध भी क्राता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशनन्य करता है तो इनका निवससे संस्थानभाष्टीन अनुरुक्ष्ट प्रदेशनन्य करता है । वेजसहारार, कार्मणहारार, वर्णबनुष्क, अमुहस्कृषनुष्क, जादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माण का नियससे वन्ध करता है। किन्तु बह इनका उत्कृष्ट प्रदेशनन्य भी करता है और अनुक्कृष्ट प्रदेशनन्य भी करता है। यदि अनुक्कृष्ट प्रदेशनन्य करता है तो इनका नियससे संस्थानभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशनन्य करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अनस्तायकी सुध्यतासे साम्रकृष्ट जानना चाहिए।

 निद्वानिद्वाका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, दो दर्शनावरण, मिध्यात्व, अनुन्तानबन्धीचत्रक और पाँच अन्तरायका तियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनत्कष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, खीवेद, नपंसकवेद, दो गांत, वैकियिकझरीर, वैकियिकझरीर आङ्गोपाङ, दो आनुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। र्याद् बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहान अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यक्रगति, दो जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहतन, तियेख्वगत्यान-पूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगळका कदाचित् बन्ध करता है और कड़ाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तै असकारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलय-चतुष्क, बादर, पर्यात, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निदानिज्ञाका एतक्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सिमक्षके समान दो दर्शनावरण,

^{1.} ताः प्रती 'तं तुः।'''''[ए॰ उक्क॰ पदे॰] बं॰' ब्रा॰प्रती 'तं तु॰''''ए॰ उक्क॰ पदे॰बं॰' इति पाठः। २. ता०प्रती 'अगु॰श''''[बन्न क्रमांकरहितः ताढपत्रीस्ति] जिमि॰' ब्रा॰प्रती 'अगु॰श'''' जिमि॰' इति पाठः।

मिच्छ०-अणंताणु०४।

४८२. णिहाए उक्क० पदे०वं० पंचणा०-पंचरंस०-पुरिस०-सय-दु०-उक्षा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । सादासाद०-अपवनस्वाण०४-च्हुणोक० सिया० उक्क० । पवनस्वाण०४ सिया० तं तु० अणंतमाग्णं। चटुसंज० णिय० तं तु० अणंतमाग्णं। दोगदि-दोण्णिसरोर-दोअंगो०-वजिर०-दोआणु०-तित्य० सिया० तं तु० संसेजिदिमाग्णं०। पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४४-अगु०४-पसत्य०-तस०४-सुभग-सुस्स-आदे०-णिमि० णि० तं तु० संसेजिदिमाग्णं०१। वेउच्चि०अंगो० सिया० तं तु० संसेजिदिमाग्णं०। णविर तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-वादर०२-णिमि० णि० तं तु० संस्थेजिदिमाग्णं०। एवरि तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-वादर०२-

मिध्यास्य और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका सिन्नकर्ष कहना चाहिए।

. ४८२. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, पाँच दर्शनावरण, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उन्नगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकपायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेश बन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशयन्य करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे अतन्तभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्थ करता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्कोपाङ्क, वऋषभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चनित्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरुलघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैकियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचिन् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागद्दीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादरत्रिक और निर्माण इन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होकर भी 'तं तुं' पठित बन्ध नहीं होता । औदारिकशरीर और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुतकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये

१. 'मा॰ प्रती तेजाक॰ वण्ण॰ ध' इति पाढः। २. ता॰प्रती 'णि॰ [सं तु॰] संस्रेजादि भा॰' इति पाठः।

भागू मं। एवं० पंचदंस०-सत्तणोक०। एदेण कमेण पोइव्यं।

े ४८३. एवं पम्माए । णवरि एइंदि०३ वज । सुकाए आभिणि०दंडओ मुलोधं । णिहाणिहाए उक्क० पदे०वं० पंचणा० चदु इंसणा० पंचंत० णि० वं० णि० संखेजादि- साग् ण्वं। दोहंस०-सिच्छ०-अर्णताणु०४ णि० वं० णि० उक्क० । णिहा-पराला- अहक०-सप-दु० णि० वं० अर्णताग्युण्। दोवेदणी०-छण्णोक०-दोगादि -दोसरीर- पंचसंठा०-दोअंगो०-इस्संघ० -दोआणु०-अप्पसत्थ०-दुभग-दुस्सर-अणादे०-[दोगोद०] सिया - उक्क० । कोधसंज० णि० वं० हुमाग्णं। माणसंज० णि० वं० सादिरंथं दिवङ्गभाग्णं। माणसंज० णि० वं० सादिरंथं दिवङ्गभाग्णं। मापसंज० णि० वं० सादिरंथं सिक्कमुण्वं। मापासं- लोभसं० णि० वं० णि० संखेक्कमुणही० । पुरिस० सिया संखेक्कमुण् । पंचिदि० -तेजा०-क०-वण्ण ०४-अगु०४-तम०४-णिमि० णि० वं० णि० तं तु० संखेक्कभाग्णं। समचदु०-विजरितः] पसत्थ०-धिरादिदोण्णियुग० - समयदु०-विजरितः]

उक्त सिन्नकपेके समान पॉच दर्शनावरण और सात नोकवायोंका उत्कृष्ट प्रदेशवस्य करनेवाले जीवका सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी क्रमसे अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य कराके उनकी अपेका सिन्नकर्प ले जाना चाहिए।

४८३. इसी प्रकार अर्थात् पीतलेडयाके समान पद्मलेडयामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति त्रिकेको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। शुक्कुछेश्यामे आभिनि-बोधिकज्ञानावरणदण्डकका भक्त मछोघके समान है। निदानिद्वाका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दशनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे सख्यातभागधीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो दर्शनावरण, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका नियमसे बन्ध वरता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुष्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, दो गति, दो शरीर, पाँच संस्थान, दो आङ्कोपाङ्क, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। र्याद बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्क्रष्ट प्रदेशवन्ध करता है। क्रांधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसञ्बलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेड भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्यलन और छोमसंज्यलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात-गुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पद्मेन्द्रियजाति, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उस्क्रष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट प्रदेशक्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, वजर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्तिविहायोगिति, स्थिर आदि दो युगल, सभग, सस्वर, आदेय और अयशःकीर्तिका कदाचित

ताव्यती 'क्रबंतभागुणं। दोगदि' बाव्यती 'अवंतभागुवं।''''''दोगदि' इति पाटः।
 म्राव्यती 'दोभंगोव पंचसंघव' इति पाटः। ३, आव्यती 'खोभयंव णिव बंव णिव संखेळानुमहोव। पॉर्चिदिव' इति पाटः।
 म्राव्यतिकानुमानं 'विद्यादितिकानुमाव' इति पाटः।

सुस्सर-आदे०-अजस० सिया० तं तु० संखेजिदमाग्णं०। जस० सिया० संखेज-गुणद्दी०। एवं०' श्रीणगिद्धि०३-भिन्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०'-णीचा०। णविर इत्थि०-णवुंस०-णीचा० मणुसगदिपंचग० णि० वं० णि० उक्क०। पंचसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दुभग-दुस्सर-अणादे० सिया० उक्क०। अद्वविससंजुत्ताओ धुवियाओ पगदीओ णि० वं० संखेजिदमागृणं०। याओ परियत्तमाणियाओ ताओ सिया० संखेजिदमाग्णं०। देवगदि०४ वजा। एदेण बीजेण णेदव्याओ मर्वति।

४८४. भवसि॰ ओघं। बेदगस० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणाणा छदंस०³-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेद० अपचक्खाणा-वरण०४-[बद् लोक०] सिया०³ उक्क०। दोगदि-तिण्णिसरीर-दोश्रंगो०-वजरि०-

बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करना। यदि बन्ध करता है तो उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यात-गणडीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यास्त्र, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ओर नीचगात्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्प कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशयन्ध करनेवास्त्रा जीव मनुष्यगतिपञ्चकका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। र्याद बन्ध करता है तो नियमसे उस्क्रप्ट प्रदेशवन्ध करता है। अट्राईस प्रकृतिसहित प्रवयन्ध-वाली प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागद्वीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जो परावर्तमान श्कृतियाँ हैं उनका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है ता उनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मात्र देवगतिचतुष्कको छोड देना चाहिए। इस बीज पदके अनुसार शेप सब सन्निकर्ष जान लेना चाहिए।

8८४. भन्योंमें भोषके समान भङ्ग है। वेद्कसम्बग्दिष्ट जीवांमें आभिनिवोधिक हानावरणका उक्कट प्रदेशकम्य करनेवाळा जीव चार हानावरण, छह दर्शनावरण, पुरुषदेद, भय जुगुप्सा, ज्वगोत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उन्हष्ट प्रदेशकम्य करता है। दो वेदनीय, अत्रत्याख्य नावरणखुष्क और चार नोश्चपावक कदाचित्त सम्य करता है और कदाचित्त बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियम से उन्हष्ट प्रदेशकम्य करता है। दो गति, तोन झरीर, दो आङ्गोषाङ्ग, वश्वपंसनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगळ और तीयङ्कराकृतिका कदाचित्त बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उक्कट प्रदेशकम्य भी करता है और

ता॰क्षा॰प्रत्योः 'संस्थादि॰ । पुत्रं हित पाठः । र. ता॰प्रतौ 'मिस्कड'*** [इत्यि॰] गपुः'
 इति पाठः । ३. आ॰प्रतौ 'बदुगोक॰ चुत्रंस॰' हति पाठः । ४. ता॰प्रतौ 'खपख [क्खाणादरण॰४-] सिया॰'
 इति पाठः ।

दोजाणु०-थिरादितिष्णियुग०-तित्थ० सिया० तं तु० संखेजदिभागूणं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समनदु०-वष्ण०४-अगु०४-पसत्य०- तस०४ - सुभग-सुस्सर - आदे०-णिमि० णि० बं० तं तु० संखेजभागूणं। वेउन्वि०अंगो० सिया० तं तु० सादिरेयं दुभागूणं। पचक्खाण०४ सिया० तं तु० अणंतमागूणं०। चदुसंज० णि० बं० णि० तं तु० अणंतभागूणं०। एवं षेदन्यं।

४८.५. सासणे आभिणि उक्कः पदेव्यं चदुणाः-णवदंसः-सोलसकः'-भय-दुः-पंचतः णिः वं णिः उक्कः । दोवेदणीः-छण्णोकः-दोमदि-वेडन्थिः-वेडन्थित्अंगोः-दोआणुः-उज्जोः-दोगोदः सियाः उक्कः । तिस्म्खिः-ओरालिः-पंचसंठाः-ओरालिः-अंगोः-पंचसंघः-तिरिम्खाणुः - दोविहाः-धिरादिछगुगः सियाः तं तुः संखेजदिभागुणंः । पंचिदिः-तेजाः-कः-वण्णः४-अगुः४-तसः४-णिमिः

४८५. सासादनसम्बर्गष्ट जीवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणका उत्तर्षष्ट प्रदेशकच्य करनेवाला जीव वाद ज्ञानवरण, नो दर्शनावरण, सोलह कपाय, स्वय, जुगुस्सा और पौंच अन्तरावका नियमसे सम्ब करता है जो इनका नियमसे वच्छ करता है जो इनका नियमसे वच्छ करता है। दो वेदनीय, छह नोक्ष्याय, दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आजुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कहाचिन् वच्च करता है और कहाचिन वच्च नहीं करता। विद वच्च करता है। दो नियक्रगति, वौदारिक स्वराह के से इनका नियमसे करहा करता है। विव्यक्रगति, वौदारिक शरीर, पौंच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहमन, विव्यक्रगति, वृद्ध विद्यक्रगति करता। विद्यापान करता। विद्यापान करता है। विद्यक्रपति कच्च नहीं करता। यदि वच्च करता है तो उन्क्रष्ट प्रदेशकच्च करता। विद्यक्ष विद्यक्ष करता है वीर अनुस्क्रष्ट प्रदेशकच्य भी करता है वीर अनुस्क्रष्ट प्रदेशकच्य भी करता है। वादि अनुस्क्रष्ट प्रदेशकच्य भी करता है। वादि अनुस्क्रष्ट प्रदेशकच्य भी करता है। वादि अनुस्क्रष्ट प्रदेशकच्य भी

^{1.} ता॰आ॰प्रत्योः 'बहुणा॰'''''सोकसक॰' इति पाठः। २. श्रा॰प्रती 'ऋगु॰ पसत्य॰ सस०७ गिमि॰' इति पाठः।

णि० चं० तं तु० संस्वेऋदिमागूणं०। एवं चदुणाणा०-दोवेदणी० वावदंस०-सोलसक०-अद्वणोक०-दोगोद०-पंचंत०। णवरिणीचा० देवमदि०४ वज । एवं एदेण वीजेण णेदच्वाओ ।

४८६, सम्मामि० आभिणि० उक्क० पदे०वं० चदुणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० वं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक०³-दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु० सिया० उक्क० । पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्य०⁸-तस०४-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि० वं० तंतु० संखेजदिभागूणं० । थिरादितिण्णियु० सिया० संखेजभागूणं० । आहार० ओयं० । अणाहार० कम्महगमंगो ।

एवं उक्तस्सपरत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

४८६. सम्यग्गिप्यादृष्टि जोवोंमें आभिनियोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करते वाळ जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साह क्याय, पुरुषदेर, भय, जुगुत्या, उच्च-गोत्र और वंज अन्तरावका नियमसे वस्य करता है जो इतका नियमसे उन्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है। रो वेदनीय, चार नोक्याय, रो गाँत, रो शारी, रो आङ्गीपङ्ग, वक्षपंत्रनारावर्यहेनन कीर हो आउपुर्विका कदावित् वस्य करता है तो इतका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इतका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है तो इतका नियमसे उत्कृष्ट अगुरुष्टिक करा है। पक्षित्रयाति, त्रेतवस्युष्ट, सुभग, सुम्वर, आदेश और तिमाणका नियमसे वस्य करता है। किन्तु वह इतका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य अगुरुष्ट, आदेश और अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है। किन्तु वह इतका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करता है और अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है और उत्पाद्ध अगुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है और अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता है और कर्मावन्य करता है। अध्यक्ष तीन विषय स्वायवित् वन्य करता है और कर्मावन्य करता है जो इतका नियमसे संस्थातभागहोन अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता । यदि वन्य करता है जो इतका नियमसे संस्थातभागाहोन अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता । यदि वन्य करता है जो इतका नियमसे संस्थातभागाहोन अनुरुष्ट प्रदेशवन्य करता । बाह्मरक मार्गणामें ओवके समान अन्न है और अनाहारण्ट मार्गणामें आविष्ट

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१. मा॰प्रती 'चदुणोड़॰ दोवेदणो॰' इति पाठः। २. ता॰प्रती 'पृत्रं जा॰''पृरेख' इति पाठः। ३. चा॰प्रती 'उच्च॰। चदुणोड़०' इति पाठः। ४. आ॰प्रती 'भगु॰ पसस्य' इति पाठः।

४८७. एचो णाणापगिदिवंश्वसिण्णकासस्स साधणत्यं णिदिसिणाणि वचहस्सामो। मूलपगिदिविसेसो पिंडपगिदिविसेसो उत्तरपगिदिविसेसो' एदे तिण्णि विसेसा आवलियाए असंखेजदिमा० । किं पुण पवाइअंत्रेण उवदेसेण मूलपगिदिविसेसोण कम्मस्स
अवहारकालो योवो । पिंडपगिदिविसेसोण कम्मस्स अवहारकालो असंखेजगुणो ।
उत्तरपगिदिविसेसो कम्मस्स अवहारकालो असंखेजगुणो । अण्णेण उवदेसोण
मूलपगिदिविसेसो आविलियवगम् सुलस्स असंखेजिदमागो । पिंडपगिदिविसेसो पिलदोवमस्स वग्गमूलस्स असंखेजिदिमागो । उत्तरपगिदिविसेसो पिलदोवम् असंखेजिदमागो ।
एदेण अद्वरदेण उक्तस्परत्थाणसिणकासस्स साधणपदा णादञ्चा । मिच्छत्तस्स मागो
कसाय-णोकसाएस गच्छिद । अर्णताणु०४ मागो कसाएस गच्छिद । मूलपगिदीओ
अह । उत्तरपगिदीओ पंचणाणावरणादि०। पिंडपगिदीओ वंषण वसीदिविसेसोस्तरस्य
४,२१,२२ एवं याव तीसं० । सचिवधंधगस्स० २४,२५ एवं याव तीसं० । छिव्वधवंधगस्स० २८,२९ एवं याव तीसं० । पादिविसेसो णादञ्चाओ ।

४८८. जहण्णपरत्थाणसण्णिकासे पगर्द । दुविघो णिदेसो—अघेण आदेसेण य । ओघेण आभिणि० जहण्णपदेसम्मं बंधंतो चटणा०-णवदंस०-मिन्छ०-सोलसक०-सय-द०-

४८७. आगे नाना प्रकृतियोंके बन्धके सन्निकर्षकी सिद्धि करनेके लिए उदाहरण बतलाते हैं-मृतप्रकृतिविशेष, पिण्डप्रकृतिविशेष और उत्तर प्रकृतिविशेष ये नीन विशेष आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। किन्तु प्रवर्तमान उपदेशके अनुसार मूळप्रकृति विशेषसे कर्मका अवहारकाल स्तोक है। पिण्डप्रकृतिविशेषसे कमका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। उत्तरप्रकृतिविशेषसे कर्मका अवहारकाळ असंख्यातगुणा है। अन्य उपदेशके अनुसार मुलप्रकृतिविशेष आविलके प्रथम वर्गमलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। विण्डप्रकृति-विश्लेष परुषके वर्गमुळके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्तरप्रकृतिविश्लेष परुषके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस अर्थ पदके अनुसार उत्कृष्ट परस्थानसन्निकर्षके साधनपद जानने चाहिए। मिथ्यात्वका भाग कवायों और नोक्षायोको मिळता है। अनन्तानुबन्धोचतुष्कका भाग कपायोंको मिलता है। मुलप्रकृतियाँ आठ हैं। उत्तर प्रकृतियाँ पाँच ह्वानावरणादि रूप हैं। पिण्डप्रकृतियाँ—बन्धन, बारीर संघात, शरीर आक्रोपाक, वर्ण पाँच, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श ये पिण्डकृतियाँ हैं। आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके चार इक्षीस और बाईससे लेकर तीस प्रकृति तक, सात प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाले जीवकें चौबीस और पच्चीस प्रकृतियोंसे लेकर तीस प्रकृतियों तक और छह प्रकारके कर्मीका बन्ध करनेवाले जीवके अट्टाईस और उनतीस प्रकृतियोंसे लेकर तीस प्रकृतियों तक प्रकृति-विशेष जानना चाहिए।

४८८. जघन्य परस्थान सन्तिकर्षका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश। ओपसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जपन्य प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव चार

ता॰प्रती 'उत्तरवगदिविसेसा' इति वाटः। २. बा॰प्रती 'विसेसेण अवहारकालो' इति वाटः।
 ता॰प्रती 'अस खेळगु॰ [को]उपदेलेण' इति वाटः।
 ता॰प्रती 'उत्तरवगदीए एंचणाणा-वरणादि० पि॰ कंचण' इति वाटः।

पंचंत • णि • बं • णि • जह • । दोबेह • '-सचणोक - आहाब-दोमोह • सिया • बंधगो सिया • अबंधगो । यदि बंधगो णियमा जहण्णा । दोगदि-पंचजादि-छस्संटा • ओरालि • अंगो • छस्संघ • दोजालु • पर • उस्सा • उजा • दोबिहा • तसादिदसपुग • सिया • तं तु • जहण्णा वा आजहण्णा वा आजहण्णा वा आजहण्णा संख्यज्ञादमाम्महिएं बंधदि । ओरा लि • तं तु • संख्यत्मा माम्महिएं वंधदि । ओरा लि • तं तु • संख्यत्मा माम्महिएं वंधदि । यर्ष वा • वा निकार • वा निकार • वा निकार • वा निकार • विवार • वा निकार • वा

४८९. णिरपाउ० जह० पदे०बं० पंचणा० गवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णजुंस०-अरदि - सोग-भय - द०-पंचिंदि०-बेउन्बि०-तेजा०-क०-हुंड०-बेउन्बि०अंगो०-

शानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जगुण्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो बेदनीय, सात नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहत्तन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, उद्योत, दो विहायोगित और त्रसादि दस युगलका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेश-बन्ध भी फरता है। यदि अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है तो वह अपने जवन्यकी अपेक्ष् संस्थातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। औदारिकशरोर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो अपने जघन्यकी अपेक्षा संख्यातभाग श्राधक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात आभिनिवोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये एक सन्तिकर्षके समात चार ब्रानावरण, नी दर्शनावरण, दो वेद-नीय, मिध्यात्व, सोलह कृषाय, नौ नोक्षाय और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्तिकर्ष जातना चाहिए। इतनी विशेषता है स्वीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके एकेन्द्रियजाति, विक्लेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर आदि तीनको छोडकर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा इतनी और विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगतिद्विक, उद्योत, दो वेदनीय, चार नोकपाय और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४८९. नरकायुका जयन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच झानाबरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिष्यात्त्र, सोखह कपाय, नयुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुस्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, वैजसशरीर, कार्भणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क,

^{1.} ता॰पती 'सोलस॰भ [यदुगुं॰] ''दोबेद' क्या॰प्रती 'सोलसक॰ अयदु॰ ''''दोबेद॰ इति पाठः । २. क्या॰पती 'बदुणो॰जवदंस॰'इति पाठः । ३. ता॰क्या॰प्रस्थोः 'मिच्छ' '''प्यंत॰' इति पाठः ।

वण्ण०४-अगु०४-अप्पसस्प्र०'-तसादि०४-अधिरादिछ०-णिमि०-णीचा० - पंचंत० णि० वं० णि० अजहण्णा असंसेजगुणन्महियं०। णिरयगदि-णिरयाणु० णि० वं० णि० जह०। एवं णिरयगदि-णिरयाणु०।

४९०. तिरिक्खाउ० चह० पदे०वं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्खा०-ओरालि०-तेजा०-क० -वण्ण०४-तिरिक्खाणु०- अगु०-उप०-णिमि०-णीचागो०-पंचंत० णि० वं० णि० अजह० असंखेजगुणव्यहियं० । दोवेद०-सचाणोक०-पंचजा०-छस्संठा० अन्योरालि० अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० असंखेजगणव्यहियं० ।

४९१. मणुसाउ० जह० पदे०वं० पंचणा०-णवर्दस०-मिच्छ०-सोल्लसक०-भय-दु०-मणुसगह-पंचिदि०-औरालि० - तेजा०-क० - औरालि०व्यंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु० -अगु०-उप०-तस-बादर-पच०-णिमि०-पंचत० णि० अजह० असंखेकगुणक्मिहर्य० । दोवेद०-सचलोक० इस्संडा०-इस्संघ०-पर०-उस्सा० - दोविहा०-पज्जनापज्जन०-धिरादि-क्यग०-दोगोठ० सिया० अर्णतगणक्मिहर्य० ।

अगुरु अपुचनुष्क, अप्रशस्त विहायोगाति, त्रस आदि चार, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगीत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। नरकगति और नरकगत्यानुवृचीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार अर्थात् नरकायुका जयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार अर्थात् नरकायुका जयन्य प्रदेशक्य करता नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार अर्थात् नरकायुका जयन्य प्रदेशक्य करता नियम करकाति और नरकगत्यानुपूर्वीका जयन्य प्रदेशक्य करतीना के जीवके करिना काहिए।

प्रशेष्ट निर्वेश्वायुका जपन्य प्रदेशकन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्याव, सालह कपाय, भय, जुगुस्ता, विवंश्वाति, औदारिकहारीर, तैजसबरीर, कार्मणहारीर, वर्णवर्जुक, विवंश्वास्तातुष्ती, अगुरुल्लु, उपग्रात, निर्माण, नीवरात्र और पाँच अन्तराक्षाति समसे कन्य करता है जो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। दो वेदनीय, सात नोकपाय, पाँच जानि, छह संस्थान, औदारिकहारीर आङ्गोपाङ्ग, छह संस्थान, परात, जच्छवास, आवत, जचीत, हो हिहायोगिति और प्रस आदि इस युगळका कराचित्र वन्य करता है और कदाचित्र वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है।

88 श. मनुष्यायुक्त जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, सिध्यात्व, सांवह कषाय, भय, जुरुप्यात, मनुष्याति, पृक्किंद्रवज्ञाति, जीवर्रारकरारिर, तैजलसरीर, कार्मणशरीर, जीदारिकश्चरीर आङ्गोपाङ्ग वर्णचनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुख्यु,
उपचात, प्रम, बार्द, प्रस्थेक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका
नियमसे असल्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। दो वेदनीय, सात मोकषाय,
छह संस्थान, छह संहनन, परचात, उच्छवास, दो विदायोगति, पर्योग, अपर्योग, स्थिर आदि
छह युगाळ और दो गोत्रका कदाचिन् वन्य करता है और कदाचिन् वन्य वन्य सरता। यदि
वन्य करता है तो इनका नियमसे अनननगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है।

[,] आ०प्रती 'अगु०४ पसत्य॰' इति पाठः । २- ता॰बा॰प्रत्यो॰ 'शिरय''''तिरिक्वाउ॰' इति पाठः । ३. आ॰प्रती 'पंकवा० पंचसंठा॰' इति पाठः । ४. ता॰प्रती 'मणुस [गइ]''वणा॰४ मणुसणु॰' आ॰प्रती 'सणुस्यतः'''''बणा॰४ मणुसालु॰ हित पाठः ।

४९२, देवाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-सादा०-मिच्छ०-सोलसक०-इस्स-रदि-भय-दु०-देवगदि-पंचिदि०-वेउन्बि०-तेजा०-क० - समच० - वेउन्बि०अंगो०'-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ-तस०४-थिरादिछ-उचागोद० णि० वं० णि० असंखेअ-गुणन्महियं०^व । इत्थि०-पुरिस० सिया० असंखेआगुणन्महियं०।

४९३. तिरिक्स ॰ जह ॰ पदे ॰ वं॰ पंचणा ॰ गवदंस ॰ मिच्छ ॰ सोल्सक ॰ भय-दु॰ - णीचा ॰ पंचंत ॰ णि ॰ वं ॰ णि ॰ जह ॰ । दोवेद ॰ सत्तणोक ॰ सिया ॰ जह ॰ । णामाणं सत्याण ॰ भंगो । एवं तिरिक्स गदिभंगो मणुसगिदि ॰ पंचजादि-तिण्यितीर-छस्संटा ॰ जोगालि ॰ अंगो ॰ छस्संघ ॰ वण्ण ॰ ४-दो आणु ० - अगु ० ४ - आदा उजो ० - दोविहा ॰ तसादि ॰ ससुग ० - णिमि ॰ हेट्टा उवरिं०। णामाणं अपप्पणो सत्थाण ॰ भंगो। मणुसगिद-दुगस्स दोगोद ॰ सिया ॰ जह ॰ । चटुजादि-आदाव-थावरादि ० ४ जह ० पदे ॰ वं थं ॰ इस्थि ॰ परिसवेद । णांचळाति ।

४९२. देवायुका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्याव्य, सीलह कृषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पद्मीन्द्रगजाति, विकिष्यकशारी, तीजसशारीर, कार्मगण्डात्य, रेवगत्यान्य, विकिष्यकशारीर, तीजस्यारीर, कार्मगण्डात्य कार्यक्र, देवगत्यान्य, पूर्वी, अगुत्तलखुचतुष्क, प्रवस्त विहायोगित, प्रसचतुष्क, सिथर आदि छह और उच्चगोप्तका नियमसे बन्ध करता है जो हस्ता नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। सीवेद और पुरुषदेशका करता है। सीवेद और पुरुषदेशका करता है। सीवेद और इसका नियमसे असंख्यातगणा अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। सन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगणा अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है।

९९२. तिर्यक्कातिका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाळा जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोळह कषाय, भय, जुगुस्मा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वचन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और सात नोकपायका करावित्त वस्म करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और सात नोकपायका करावित्त वस्म करता है तो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका भङ्ग स्थयान सिंग्न कर्षके समान है। इसी प्रकार निर्वक्षमांत्रका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका भङ्ग स्थयान सिंग्न क्षण्यात्रक अपन्य प्रदेशवन्य करता हो। इसी प्रकार निर्वक्षमांत्रक अपन्य प्रदेशवन्य करता हो। इसी प्रकार निर्वक्षमांत्रक अपन्य प्रदेशवन्य करता हो। इसी प्रकार निर्वक्षमांत्रक अपन्य प्रदेशवन्य करता हो। इसी प्रकृतियाँका सिंग्न कर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका सिंग्न कर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका सिंग्न कर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका स्वाप्त कर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका स्वाप्त कर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियाँका स्वाप्त यदिवन्य करता है। इसी विद्यापाति इस्त वाप्त य प्रदेशवन्य करता वाज विद्यापाति कर्ष समान है। इती विद्यापाति है। तथा चार जाति, आतत्र और स्थावर आदि हो। तथा चार जाति, आतत्र और स्थावर आदि वापका वापत्र महित करते।

आ-वती 'तेजाकः वेडिकाः भंगो० इति पाटः। २, ताऽप्रती 'पिरादिख्'''' असं० गुण्या आप्रती 'पिरादिख्युगः दोगोदः तियाः असं खेळगुण्यादियं इति पाटः। ३, ताऽप्रती 'तिरिक्तावियंगो ।''' सियां आऽप्रती 'त्रारः। अताऽप्रती 'त्रारः। अताऽप्रती 'त्रारा व्याप्राप्ता । अस्य प्राप्ता । अस्य । अस्य प्राप्ता । अस्य ।

४९४. देवगदि० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-मय-दु०-पुरिस०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० अजह० असंखेअगुणम्महियं०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० असंखेआगुणम्महियं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं वेउन्वि०-वेउन्वि०कांगो०-देवाणु०।

४९५. आहार० जह० पदे०वं० पंचणा०-खदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० अजह• असंखेजगुणन्म० । णामाणं सन्याणा०संगो ।

४९६, तित्यवर जहरु पदेव्यं र पंचणाव-छदंसणाव-बाससक-पूरिसव-भय-दुव-उचाव-पंचंतव णिव वंव णिव अजहरु असंखेआगुणव्यव | दोवेदव-चदुणोकः सियाव असंखेआगण्यत्य | णामाणं सत्याणवर्भगो |

४९७. उचा० जह० पदे०वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल्सक०-भय दु०. पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक० सिया० जह० । मणुसग०³-मणुसाणु०

४९४. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्य करनेवाला जीव पीँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कणाय, भय, जुगुप्सा, पुरुषदेद, उद्यागित्र और पाँच अन्तरावका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्य करता है। वी वेदनीय और जारा नोकपायका कदाचित् वन्य करता है की वेदनीय और जारा नोकपायका कदाचित् वन्य करता है और कदाचित्र वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतिका क्षम्य प्रदेशबन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतिका क्षम्य प्रदेशबन्य करता है। सामकर्मकी अर्थालाका अन्न स्वस्थान सिक्तविक साम है। इसी प्रकार अर्थात् देवगितका ज्ञमन्य प्रदेशबन्य करतेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्तिकवेद सामा वैक्रियकरारीर, वैक्रियकरारीर आङ्गोपाङ्ग और देवगरवाल्यवीकी मुख्यतासे सन्तिकचे जानना चाहिए।

8९५. आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव पाँच ज्ञानावरण, छह्। वर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संववतन, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, ज्वकीष्ठ और पाँच अतरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोका भक्त स्वयानसन्तिकष्ठ समान है।

४९६. तीर्थं हुर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानाबरण, छह् दर्शनावरण, वारह कथाय, पुरुववेद, भय, जुगुप्ता, जबगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और वार नोक्यायका कराबित् वन्य करता है और कराबित् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करात है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता। है। नामकर्मको प्रकृतियोंका भन्न स्वस्थान सन्तिक्कि समान है।

४९७. उद्योत्रका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यास्य, सोलह कथाय, भय, जुगुष्मा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और सात नोकषायका कदाचिन्

ता॰प्रती 'दुस्सिवेदाणा गर्छाता। देवग॰' आ॰प्रती 'दुस्सिवेदायां गच्छित । देवगदि॰' इति पाठः ।
 ता॰प्रती 'णामा [यां सत्थायार्मगो]तित्य॰' इति पाठः ।
 ता॰प्रती 'णामा [यां सत्थायार्मगो]तित्य॰' इति पाठः ।

णि बद्द । पंचिदि - ओरालि - तेजा - क- ओरालि - अंगो - नण्ण - ४ - अगु० ४ -तस० ४-णिमि - णि वं अजह - संखेजमागन्म । इस्संटा - उस्संघ - '-दोविहा -थिरादि छुपुग - सिया - संखेजमागन्म हियं चंघदि - ।

४९८. आदेसेण घेरहण्सु आभिणि० जह० पदे०चं० चदुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-मय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक०-मणुस०-मणुसाणु०-उक्को०-दोगोद० सिया० जह०। तिरिक्ख०-ध्वस्तंठा-इम्संघ०-तिरिक्खणु०-दोविहा०-धिरादिङ्युग० सिया० तं तु० संखेजआगम्बिर्धण पंचिदि०-कोरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अजह० संखेजदिमाग्नग० । एवं चटुणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत०। णवरि उचागो० तिरिक्खगदितिगं वज मणुसगदिदुगं

बन्ध करता है और कहाचित् चन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे ज्ञान्य प्रदेशकाय करता है। मनुष्याति और मनुष्यगरामुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। को इनका नियमसे वन्ध करता है। क्षान्त्रिय कार्ति को प्राप्ति कार्य प्रदेशकाय करता है। क्षान्त्रिय तीत, औदारिकहारीर, जैक्सकारीर, कार्मणहारीर, जैक्सकारीर, आक्षापाङ्ग, वर्णचनुष्क, अगुरुठशुष्तुष्क, प्रत्य जुरुक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजयन्य प्रदेशकाय करता है। हह संस्थात, छह संइनक, दो विहायोगिति और स्थिर आदि छह युगलका कहाचित् बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजयन्य प्रदेशकाय करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजयन्य प्रदेशकाय करता है।

४९८. आहेरासे नारिकचों में आभिनिबोधिक झानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव बार झानावरण, ती दर्शनावरण, मिध्यात्व, सीलह क्याय, भय, जुगुत्वा और वाँव अन्तरायका निवससे वन्य करता है। वो इनका नियससे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। वो वेदनीय, सात नोकपाय, मनुष्यात्व, मनुष्यात्वानुष्वी, ज्योत और दो गोत्रका कदाचित्त वन्य करता है और कदाचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है वो इनका नियससे जयन्य प्रदेशवन्य सरता है। विश्वक्षाति, छह सस्थान, छह सहनन, विश्वक्षात्वानुष्वी, दो विहायोगित और स्थित आदि छह जुगलका कदाचित्त वन्य करता है और कदाचित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है और कदाचित्त वन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। वर्ष अजयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्य अभिक्ता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्य अग्रक्त अनुस्वति अत्यादि अग्रति सामिणका नियससे वन्य करता है। इसो प्रकार अपीत आभिनिबोधिक झानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करते और निर्माणका नियससे वन्य करता है। इसो प्रकार अपीत आभिनिबोधिक झानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करते वाले जीवके कहे। यो उक्त सिक्वरेस नाम वार झानावरणक। जयन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवके कहे। यो उक्त सिक्वरेस नाम वार झानावरण, नो दर्शनावरण, हो वेदनीय, मिथ्याद्व, सोलह कवाय, नी नोक्याय, दो गोत्र और पर्याद्व अग्रत्व (वाल्यक्त स्वात्व क्राव्यत्व स्वात्व हो। विद्याद्व स्वात्व हो विद्याद्व सामित्व क्राव्यत्व स्वात्व हो विद्याद्व सामित्व क्राव्यत्व स्वात्व हो विद्याद्व साम्यक्त क्राव्यत्व स्वात्व हो विद्याद्व सामित्व क्राव्यत्व स्वात्व हो विद्याद्व सामित्व क्राव्यत्व स्वात्व हो विद्याद्व साम्यक्त क्राव्यत्व सामित्व क्राव्यत्व सामित्व हो विद्याद्व सामित्व हो विद्याद्व सामित्व सामित्व हो विद्याद्व सामित्व सामित्व

ता श्रती संखेळसागरूक । " [ब्रस्टंडा]क ब्रस्टं घट े आक्रमती संखेळसागरूक । "
 "ब्रस्टंडा० ब्रस्टंडाट | इति वाडः । न, ता श्रती 'क्रस्ट किमिक कि क्रिकंडा | क्रिकंडा - 'संखेळादि-सागरूक 'साम्बर्कंडा क्रिकंडा के स्वाप्त क

णि॰ वं॰ णि॰ जह॰ । चुनियाणं' पंचिदियादीणं णि॰ संखेजदिमागब्म॰ । परियत्ति-याणं सिया॰ संखेजदिमागब्म॰ ।

४९९. तिरिक्खाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि० -तेजा० -क०-ओरालि०खंगो० -वण्ण०४-तिरि-क्खाणु०-अगु०४-तम०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेअ-गुणब्म०ै। दोवेद०-सचणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-उञ्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० असंखे०गुणब्म०।

५००. मणुसाउ० जह० पदे०वं० धुवियाणं सम्मत्तपगदीणं णि० वं०। तित्थ० सिया० असंखेजगुणन्म०। श्रीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविद्दा०-थिरादिछयुग०-दोगोद० सिया० असंखेजगुणन्महियं०।

५०१. तिरिक्तः जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-

जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योगिका जघन्य प्रदेशकन्य करनेवाला जीव तियञ्चगतित्रिककी छोड़कर मनुष्यगनिष्टिकका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशक्य करता है। तथा पञ्चित्रियज्ञाति आदि ध्रुषकन्यवाली प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध करता है। तथा नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। परावर्तमान प्रकृतियोंका कराचित् बन्ध करता है और कराचित् बन्ध नहीं करता। यदि यन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयनन्य प्रदेशकन्य करता है।

४९९. तिर्थक्कायुका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कथाय, भय, जुगुत्सा, वियक्कार्यत, राक्किन्यज्ञाति, औवारिकशरीर, तैजल- सारीर, कार्मणशरीर, अमिरारिकशरीर आङ्गोपङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यक्कारसानुपूर्वी, अगुरुक्रपुष्चतुष्क, जसचतुष्क, नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजधन्य 'प्रदेशबन्य करता है। दो वेदनीय, सात नोकपाय, छह संस्थान, छह संहत्मन, उद्योत, दो (बहायोगित और स्थिर आदि हह युगळका कहाचिन् बन्ध करता है और कहाचिन् वन्ध नहीं करता। दे और कपायन्य प्रदेशवन्य करता है वो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशवन्य करता है।

५००. मतुष्वायुका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव भूववन्यवाली सम्यक्त्यसम्बन्धे प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है । तथा तीयेक्क्रुम्फ्रकृतिका कराचित् वन्ध करता है और कदाचित वन्ध करता है और कदाचित वन्ध नहीं करता। यदि इसका बन्ध करता है तो भूववन्यवाली मकृतियोंके साथ इसका नियमसे असंस्थातरागुण अधिक अजधन्य प्रदेशवन्ध करता है। स्थानगृद्धित्रक, तो वेदनीय, मिण्यात्व, अनन्तानुवन्धीयतुष्क, सात नोक्याव, छह संस्थान, छह संहनन, दो विद्यायोगिति, स्थिर आदि छह युगल और दो गोजका कराचित् वन्ध करता है और कदाचित्र वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशवन्ध करता। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशवन्ध करता।

५०१. तिर्यक्रगतिक। जधन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-

१. स्ना॰प्रती 'मणुसगदिदगं॰ नि॰ बं॰ धुवियायां' इति पाठः।

२. ता॰ प्रती॰ 'पंचंत॰ [ँणि॰ वं॰ णि॰ बज॰] असंखेजगुर्वान्भ॰' इति पाठः ।

भय-दुः-णीचा०-पंचंत० णि० चं० णि० जह०' । दोवेद०-सचणोफः० सिया० जह० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं सञ्चाणं णामाणं हेद्द्वा उनिर्दे तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो । णवरि मणुसगदिदगस्स दोगोदं अत्यि ।

५०२. तित्यं बह० पदे०वं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-सय-दुशुं०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० अजह० असंखे०गुणस्महियं०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० असंखे०गुणस्महियं०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

५०२. एवं सत्तसु पुदवीसु । णविर विदिय-तिदय॰ [सादा०] जह० पदे०बं० पंचणा० वेन्द्रसंसणा०-बारसक०-अय-दुगुं० - मणुस०-पेचिदि० - ओराल्लि०न्तेजा० - क०-ओराल्लि०झंगो०-बष्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० वं० णि० अजह० असंखे०गुणन्म० । बीणगिद्धि०२-दोवेद०-मिच्छ० वे-अर्णताणु०४-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछसुग०-दोगोद० सिया० असंखेआगुणन्म० ।

वरण, सिध्यात्व, सोछह कपाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। दो बेदनीय और सात नोकपायका कदाचित सन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। दो बेदनीय और सात नोकपायका कदाचित सन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। नामकर्मकी प्रकृतियांका भक्क स्वथान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार नामकर्मकी सब प्रकृतियांमेंसे विबक्तियांका प्रकृतियांका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियांका भक्क विष्याप्रतिका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाले जीवके कहें गये उक्त सन्तिकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियांका भक्क अपने-अपने स्वथान सिक्रकर्षके समान है। इसी प्रकृतियांका समुख्य प्रदेशक्य करनेवाले जीवके कहें गये उक्त सन्तिकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियांका भक्क अपने-अपने स्वथान सिक्रकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिदिकका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाले जीवके हो गोजका यथायोग्य बन्ध होता है।

५०२. तीर्थक्कर प्रकृतिका जयन्य प्रदेशक्य करनेवांका जीव पाँच झानावरण, छह दर्शना-बरण, बारह कपाय, पुरुषवेद, भय जुगुरमा, वरुचागेत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनक्ष नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है | दो वर्दनीय और चार नोकपायका कराचिन् वयन करता है और क्रदाचिन वस्प नहीं करता | पाँच वस्प करता है तो इनका नियमसे असंख्यानगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है।

नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निक्ष्वे समान है।

५०३. इसी प्रकार अर्थात् सामान्य नारिकवाँमें कहे गये उक्त सिन्नकर्षके समान सातां प्रथिवाँमें आना पाइए। इननी विशेषता है कि दूसरी और तीसरी प्रथिवाँमें साता-वेदनीयका जमन्य प्रदेशक्य करनेवां जा जांच पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कराय, भय, जुगुप्या, मनुष्याति, प्रक्षेत्रियजाति, औदारिकारीर, तैजसहारीर, कार्मणकरीर, औदारिक हारीर आक्षोपाङ्ग, वर्णचनुष्क, मनुष्यात्मातुप्यात्ति, अगुरुकश्च चुक्क, ससचतुष्क, तिमाण और पाँच अनतायका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे असंख्यातगुणा अधिक अजपन्य प्रदेशक्य करता है। स्थानगृद्धिकिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनतानुक्योचनुष्क, सात नोक्याय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विद्यायोगित, स्थिर आदि छह गुगढ और दो गोजका कराचित् कर्य करता है और कराचित् कर्य नहीं करता। विदे कर्य करता है तो इनका नियससे कराचित् वन्य करता है तो इनका नियससे

ताठप्रती 'लीचा० [पंचंत० णि० चं० णि०] जह०' इति पाठः। २. ता०प्रती 'तिह्य''
[जह० परे०] वं० पंचणा०' चा०प्रती 'तिह्य० जह० परे०व'० पंचणा०' इति पाठः। ३. आ०प्रती
'थीणगित्रि ६ मिथ्यु०' इति पाठः।

तित्थ० सिया० जह०। तित्थ० जह० पदे०वं० मणुसाउ० षि० वं० णि० जह०। सेसाणं धुवपगदोणं णि० वं० णि० अजह० असंखे०गुणम्महि०। सत्तमाए मणुस० जह०' पदे०वं० सम्मत्तपाओग्गाणं धुवियाणं णि० वं० णि० अजह० असंखेजगुणम्भ-हियं०। परियत्तमाणिगाणं सिया०' असंखे०गुणम्महियं। एवं मणुसाणु०-उचा०।

५०४. तिरिक्ख०-पंचिंदि०तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्खपजनः जोणिणीसु ग्रेगो। णविर जोणिणीसु णिरयाउ० जह० पदे०वं० णिरय०-वेउव्विठ-वेउव्विठ-अंगो०-णिर-याणु० णि० जह०। सेताणं णि० वं० णि० अजह० असंखेजगुणक्महियं०। देवाउ० जह० पदे०वं० देवगदि-वेउव्विठ-वेउव्विठ-अंगो०-देवाणु० णि० वं० णि० जह०। सेताणं णि० अजह० असंखेजगुणक्मिएं। परियत्तमाणिगाणं सिया०

असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कहाश्वित् वन्य वरता है और कहाश्वित् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इसका नियससे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। तोर्थक्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। तोर्थक्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। तोर्थक्कर प्रकृति जघन्य प्रदेशवन्य करता है। तेर्थक्कर प्रकृति के जघन्य प्रदेशवन्य करता है। सेष्ठ प्रवचन्यवाठी प्रकृतियांका नियससे वन्य करता है। सातवीं प्रधिवीमें मतुष्यातिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव सम्प्रक्त्यायोग्य प्रवचन्यवाली प्रकृतियांका नियससे वन्य करता है। सातवीं प्रधिवीमें मतुष्यातिका जघन्य हैरोवन्य करनेवाला जीव सम्प्रक्त्यायोग्य प्रवचन्यवाली प्रकृतियांका कराचित्र वन्य करता है। साववीमा असंक्यातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशवन्य करनेवा है और कराचित्र वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियससे असंक्यातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थान् मतुष्यातिका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थान्य मतुष्यातिका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। उसी प्रकार अर्थान्य मतुष्यातिका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थान्य मतुष्यातिका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जावक समान मतुष्यात्यात्र पूर्व अर्थन करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना व्यक्ति वाल्य विषय करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना व्यक्ति वाल्य विषय करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना व्यक्ति वाल्य वाल्य प्रदेशवन्य करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना व्यक्ति वाल्य वाल्य वाल्य प्रदेशवन्य करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना व्यक्ति वाल्य वाल्य वाल्य वाल्य वाल्य वाल्य वाल्य करतेवाले जावक सम्प्रकृत्य जानना वाल्य वाल

५०%. सामान्य तिर्वेक्क, पक्कोन्द्रय तिर्वेक्क, पक्कोन्द्रय तिर्वेक्क पर्याप्त और पक्कोन्द्रय तिर्वेक्क यात्रिमी जीवामे जीवामे के समान भक्क है। इतनी विवेधता है कि पक्कोन्द्रय तिर्वेक्क योतिनयों से नत्कायुका जयन्य प्रदेशस्य करनेवाला जीव नत्कर्गात, वीक्रियक रागीर, वीक्रियक करता है। देश प्रकृतियाँका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे असंख्यात-गुणा अधिक अजयन्य प्रदेशस्य करतेवाला जीव देशाति, वीक्रियकक्षरीर, वैक्रियकक्षरीर, वैक्रियकक्षरीर, वैक्रियकक्षरीय, वैक्रियकक्षरीय, वैक्रियकक्षरीय, वैक्रियकक्षरीय, वैक्रियकक्षरीय, वैक्षरियकक्षरीय अपनेवाला जीव देशाति, वीक्रियकक्षरीय, वैक्षरियकक्षरीय, वैक्षरियकक्षरीय, विकर्णय प्रदेशस्य करता है। त्रियावर्चिक क्षरा करता है। त्रियावर्चयक्षरा करता है। त्रियावर्चयक्षरा इत्राचित्र वन्य करता है। व्यव्वदेक्ष कराविष्य करता है। व्यव्वदेक्ष कराविष्य करता है। क्षर पुत्ववेद्ष्य कराविष्य करता है। क्षर पुत्ववेद्ष्य करावित्व वन्य करता है। क्षर पुत्ववेद्ष्य करावित्व वन्य करता है और करावित्व वन्य प्रदेशस्य करता है। क्षर पुत्ववेद्ष्य करावित्व वन्य नहीं करता।

असंखेजगुणस्मः । इस्थि-पुरिसः सियाः असंखेजगुणस्महिः । एवं देवगदि-देवाणुः । वेउच्यिः जदः पदेःवंः दोआउः-दोगदि-दोआणुः सियाः जदः । वेउच्यिः अंगोः णिः जदः । सेसं दगदिमंगो । एवं वेउच्यः वेदच्यः अंगोः ।

५०५. पंचिदि वितिस्ख्यपञ्च स्व्वयपञ्चताणं एर्ट्दिय-विगर्लिदिय-पंचकायाणं च स्रलोधं । णवरि तेज०-वाउ० मणुसगदि०४ वज्र ।

५०६. मणुस०-मणुसपजत नमणुसि० ओघो। णविर मणुसिणीसु देवाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चहुसंज०-हस्स-रिह-भय-हुगुं०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-पसत्य०- थिरादिछ०-णिमि०'-उचा०-पंचत० णि० बं० णि० अजह० असंखेजगुणन्म०। थीणगि०३-मिच्छ०-बारसक०-इत्यि०-पुरिस० सिया० असंखेजगुणन्म०। देवगदि०३ णि० वं गंण० तं गु० संखेजदिमागन्महियं०। आहारहुग-तित्य० सिया० जह०। बेउन्वि० अंगो० णि० वं

यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अज्ञघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थात् देशायुका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके समान देशाति ऑर देशास्त्रापुर्वीका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके सिक्रफ जानना चाहिए। वैकिएकन्य स्परेशवन्य करनेवाला जीव हो आयु, दो गति और दो आयुप्पीका कदाचिन् वन्य करता है आरे कदाचिन् वन्य करता है। यात्र वन्य करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। वैकिएकन्य प्रदेशवन्य करता है। वैकिएक स्वाप्त क्याय प्रदेशवन्य करता है। इसि प्रकार अर्थात् वैकिएक स्वाप्त है। इसी प्रकार अर्थात् वैकिएकरारीरका अञ्चल दो गतिक समान है। इसी प्रकार अर्थात् वैकिएकरारीरका जघन्य प्रदेशवन्य करता है। वैकिएकरारीरका मङ्ग दो गतिक समान है। इसी प्रकार अर्थात् वैकिएकरारीरका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवके समान वैकिएकरारीरका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवके समान विकिएकरारीरका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवके समान वीकिएकरारीरका जघन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवके सामन वाहिए।

५०५. पद्मेन्ट्रिय तिर्पक्ष अपर्याप्तक, सब अपर्याप्तक, एकेन्ट्रिय, विकलेन्ट्रिय और पाँच स्थायरकायिक जीवोंमें मूलीपके समान भड़ है। इतनी विशेषता है कि अन्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यातिचनुरुकको छोड़कर सन्निकर्ष करना चाहिए।

५०६. सनुष्य, सनुष्यपर्याप्त और सनुध्यित्यों सं ओषके समान सङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अनुध्यित्यों में देवायुका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह इर्शना-वरण, सातावेदनीय, चार संज्वकन, हास्य, रित, भय, जुगुस्ता, पञ्चित्रियत्ताति, तैजसझरीर, कामंणदारीर, समचतुरक्तसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुक्त चुन्तुष्क, त्रमसनुष्क, प्रशस्त विद्यायोगित, स्थिर आदि हु युगल, निर्माण, उद्योगित्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका तियमसे असंस्थातगुणा अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। स्थानगृद्धित्रिक, सिस्थात्व, वारह कथाय, क्षीवेद और पुरुष्यदेवका कदाचित् वन्ध करता है। ते क्षाव्य वन्ध नत्य नहीं करता है। वारह कथाय, क्षीवेद और पुरुष्य करता है। किन्तु वह इनका जयन्य प्रदेशकम्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। किन्तु वह इनका जयन्य प्रदेशकम्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। विस्ति अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। विस्ति क्षावित् वन्ध करता है। वाह का नियमसे संस्थातात्राण अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् वन्ध करता है। अहार क्षावित् वन्ध करा नियमसे संस्थातात्रा अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् वन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातात्र अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् क्षावित् हु ना नियमसे संस्थाता अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् हु ना नियमसे संस्थाता अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् हु ना नियमसे संस्थाता अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् हु ना नियमसे संस्थाता अधिक अजयन्य प्रदेशकम्य करता है। अहार क्षावित् हु ना नियमसे संस्थाता वित्र क्षावित्व वन्ध करता है। अहार क्षावित्व हु ना नियमसे संस्थाता अधिक क्षावित्व वन्ध करता है। अहार क्षावित्व हु ना नियमसे संस्थाता है स्वावित्व वन्ध करता है। स्वावित्व हु ना है। क्षावित्व क्षावित्व क्षावित्व वित्र का वित्र का वित्य करता है। वित्र का वित्य क्षावित्व हु ना नियमसे स्वयंत्व क्षावित्व वित्य क्षावित्य क्षावित्य वित्य क्षावित्य क्षावित्य वित्य क्षावित्य क्षावित्य क्षावित्य क्षावित्य वित्य क्षावित्य वित्य

१. घा॰पती 'बण्णः तस॰ ४ पसत्थः थिरादिखयुगः णिमि॰' इति पाठः ।

२. ता॰ आ॰ प्रत्योः 'देवगदि० ४ जि॰' इति पाठः । ३. ता॰ प्रा॰ प्रत्योः 'वेउन्ति जि॰' इति पाठः ।

षं० णि० तंतु० सादिरेयं दुभागव्यहिषं०। वे उन्वि० जह० पदे०षं० देवाउ०-देवग०-आहारदुग-देवाणु०-तित्य० णि० षं० णि० जह०। वेउन्वि०अंगो० णि० जहण्णा। एषं वेउन्वि०अंगो०। आहार० जह० पदे०षं० देवाउ०-देवग०-वेउन्यि०-वेउन्वि०-स्रंगो०-आहार०अंगो०-देवाणु०-तित्य० णि० षं० णि० जहण्णा। एवं आहारंगो०।

५०७. देवगदि० देवेसु³ भवण०-वाणवें०-जोदिसिय० पदमपुद्रविभंगो । सोधम्मीसाणेसु आभिणि० जह० पदे०वं० चदुणा०-पंचंत० णि० वं० जहण्णा । धीगमिद्धि०२-दोवेदणी०-मिच्छ०- जणंताणु०४-इत्थि०- णबुंस०-आदाव० - तित्थ०-दोगोद० सिया० जहण्णा । छदंस०-वारसक०-भय-दु० णि० वं० तं तु० अणंत-भागन्भहियं० । पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतभागन्भहियं० । दोगदि-दोजादि-

५०७. देवातिमें देवोंमं तथा अवनवासी, त्यन्तर और व्योतिषा देवोमे पहली पृथिवीके समान अङ्ग है। सीधर्म और ऐसान करवके देवोंमें आिमिनवीधिक झानावरणका जयन्य पृदेशक्षक स्वतंत्राला जीव चार झानावरण और पाँच अन्तरायका तियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जया करता है जो इनका नियमसे जया करता है जो इनका नियमसे जया करता है जो इक्ता नियमसे अव्यादक स्वतंत्र है अत्यादक स्वादक करता है। स्वतंत्र कर करता है तो प्रवादक करता है तो प्रवादक करता है तो इक्ता नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। इन्हांचित कर्य करता है। इन्हांचित कर्य करता है। यह अव्यादक स्वतंत्र करता है तो इनका जयन्य प्रदेशकन्य करता है। स्वतंत्र क्रा करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तमाग अधिक अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है और अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है और अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है और अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य प्रदेशकन्य करता है। यह अवयन्य करता है। यह अवयन्य करता है। यह अवयन्य करता है। यह अवयन्य करता है। यह यह करता है। यह यह विकाय क

३. ता०प्रसौ 'एवं बाहारंगो० देवगदि । देवेसु' इति पाठः ।

छस्तंठा०-ओरालि० मंगो०-छस्तंघ० - दोञाणु०-उजो० - दोबिहा० - ततःथावर - थिरादि-छयुग० रे सिया० तं तु० संखेजदिभागन्महियं । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जन-पत्ते०-णिमि० णि० तं तु० संखेजदिभागन्भ० । एवं चदुणा०-सादासाद०-पंचंत० ।

५०८. णिदाणिद्दाए बद्द० पदे०बं० पंचणा०-अददंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० बहण्णा। दोवेदणी०-सत्त्रणोक०-आदाव०-दोगोद० सिया० बहण्णा। तिरिक्ख०-दोजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-दोविद्दा०-तस-धावर-धिरादिछयुग० सिया० तं तु० संखेजदिभागम्भिद्द्यं०। मणुसग०-मणुसाणु० सिया० संखेजभागम्भिद्दयं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पजन-पत्ते०-णिमिणं णियमा० वं० तं तु० संखेजदिभागम्भिद्दयं०।

इरोर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो बिहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कहाषित् रन्ध करता है और कदाचित्त वन्ध नहीं तरता । यदि वन्ध करता है तो जधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशवन्ध करता है तो दनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजजन्या प्रदेशवन्ध करता है। वीद्यारिकारीर, तैजसक्षरीर, कार्मणक्षरीर, वर्णचतुष्क,अगुमलपु चतुष्क, बादर, पर्याह, प्रत्येह और निवस्थ प्रदेशवन्ध करता है। किन्तु हमका जयन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजजन्य प्रदेशवन्ध करत है तो दनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभित्वोधिक ज्ञानावरणका जधन्य प्रदेशवन्ध करतवाहे जीवकं समान चार क्षानावरण, साववेदनीय, असाववेदनीय और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्ध करतवाहे जीवकं समान चार क्षानावरण, साववेदनीय, असाववेदनीय और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्ध करतवाहे जीवकं साववेदनीय, असाववेदनीय और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्ध करनवाहे जीवकं सावविद्वीय, असाववेदनीय और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्ध करनवाहे जीवकं सावविद्वीय, असाववेदनीय और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्ध करनवाहे जीवकं सावविद्वीय, असाववेदनीय करतवाहे जीवकं सावविद्वीय जानावाहण ।

५०८. निद्रानिद्राक्ष जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, आठ दर्शना-तरण, सिम्बाद्य, सील्ड क्याय, भय, जुगुत्सा और पाँच अन्तरायका नियससे बन्ध करता है जो इनका नियससे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। ते वेदनीय, सात नोकवाय, आतप और दो गोत्रका क्दाचित्त बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियससे जयन्य प्रदेशबम्ध करता है। तिर्वेद्धार्गात, दो जाति, छह संस्थान, औदारिक-शरीर आङ्गायाङ्ग, छह संहत्तन, निर्वेद्धारयानुपूर्वी, क्यांत, दो बहाविगाति, जस, स्थावर और स्थर आदि छह सुराक्षका कताचित् वन्ध करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। बन्ध करता है तो जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियससे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेश-वन्ध करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगरायानुपूर्वीका कदाचित्त बन्ध करता है। स्वाद अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचनुष्क, अगुक्तसु-सनुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक्ष और निर्माणका नियससे सम्बादभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। अदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणश्चरित्व है। कन्तु इनका जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्ध करता है। इसी

१. आ॰प्रती 'तसादि थावरादिख्युग॰' इति पाठः । २ आ॰प्रती 'तसथ।वराहिख्युग॰' इति पाठः ।

एवं ॰ अष्टदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवाणोक०-णीचागोदं। णवरि इत्थि०-पुरिसवे ॰ अह० वंघ० एइंदियतिगं वजा । उज्जोव० मिन्ना० जहण्णा ।

५०९. दोञाउ० णिरयभंगो । णवरि तिरिक्खाउ० जह० पदे०बं० एइंदियतिग० सिया० असंखेजराणकाहियं० ।

५१०. तिरिक्स० जह० पदे०बं० पंचणा०-णबदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णियमा बं० णियमा जहण्णा। दोबेदणीय-सत्तणोकसायं सिया० जहण्णा। णामाणं सत्याण०भंगो। एवं तिरिक्खगदिसंगो एहंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाण०-आदाउजोब-अप्पसत्य०-यात्रर-दसग्-दस्स-अणादे०।

५११. मणुसग० जह० वं० पंचणा०-उचा०-पंचंत० णियमा० वंध० णियमा जहण्णा । छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु० णि० वं० णि० अजह० अणंतभाग-ब्महियं० । दोवेदणी० सिया० जहण्णा । चरुणोक० सिया० अणंतभागव्महियं ।

प्रकार अर्थात् निट्टानिट्टाका जयन्य प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके समान आठ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोल्ड् कपाय, नी नोकपाय और नीचगोत्रका जयन्य प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके सन्तिकर्ष जानना चाहिए। इननी विशेषता है कि स्नीवेद और पुरुषवेदका जयन्य प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके एकेन्द्रियज्ञाति आदि नीनको लोक्कर सन्तिकर्ष करना चाहिए। वह उद्योगका कराचित् बन्य करना है भीर कराचित् बन्य नहीं करना। यदि बन्य करना है नो इसका नियमसे जवन्य प्रदेशबन्य करना है नो

५०९. दो आयुओंका जघन्य प्रदेशकाय करनेवाले जीवके सन्तिकचे जिस प्रकार नारिकयोंसे कह आये हैं उसी प्रकार यहीं भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नियञ्जायुक्त जघन्य प्रदेशकाय करनेवाला जीव एकेन्द्रियजातित्रिकका करायित यस्य करता है और करायित्वस्य नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंस्थातगुणा

अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२०. तिर्यक्क्षमतिका लघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, सीलह कपाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जचन्य प्रदेशबन्य करता है। दो वेदनोय और सात नोक्ष्यायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जचन्य प्रदेशवन्य करता है। नामकर्मको प्रकृतियोका मङ्ग स्वस्थान सन्तिकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यक्क्ष्मगतिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके समान पकेटिन्यजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, तिर्यक्क्षमश्चातुष्वी, आतप, ज्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, दुर्मग, दुःस्वर और अनादेयका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके सन्तिकर्ष जानना चाहिए।

णामाणं सस्थाण ० भंगो । एवं मणुसाणु ० - तित्थ ० ।

५१२, पंचिदि० जह०े पदे०बं० पंचणाणावरणी०-पंचंत० णियमा बंध० णियमा जहण्या। श्रीणगिद्धि०२-दोवेदणी०-मिच्छ०-त्रणंताणु०४-इत्थि०^२-णवंत०-दोगोद० सिया० जहण्या। छदंसणा०-वारसक०-भय-दुर्गु० णियमा बंध० तं तु० अणंतमागन्महियं०। पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतमागन्महियं०। णामाणं स्थाण०भंगो। एवं पंचिदियजादिमंगो तिण्लिसरीर-समचदु०-ओरालि० अंगो०-वजारिस०-वण्ण०४-अगु०४-सस्थ०-तस०४- थिरादितिण्णियुग०- सुमग-सुस्सर -आदे०-णिमि०। एरेण बीजेण याव सन्बद्ध चिणेदव्यं।

५१३, पंचिदिय-तस०२ मूलोयं । पंचमण-तिष्णिवचि० अामिणि० जह० पदे-चं- चदुणा-पंचतं । णियमा वं ाषियमा जहण्णा । श्रीणमिद्धि०३-दोवेदणीय-

है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यातिका जचन्य प्रदेशकस्य करनेवाळे जीवके समान मनुष्यात्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका जचन्य प्रदेशकस्य करनेवाळे जीवके सत्निकर्ष जानना चाहिए।

५१२. पञ्चन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता है। यदि बन्ध करता है तो उनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अज्ञधन्य प्रदेशबन्य भी करता है। यदि अज्ञधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्य करता है। पाँच नोकपायका कदाचित बन्ध करता है और कहाचित बन्ध नहीं करता । यांद्र बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्त स्वस्थान सन्तिकर्षके समान है। इसी प्रकार प्रक्रोन्टियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान तीन शरीर, समचतरक्रसंस्थान, औदारिकशरीर आक्रोपाक, वक्रवंभनाराच-संहतन, वर्णचतुष्क, अगुरुख्यु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगळ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा आगे सर्वार्थसिद्धिके देवों तक इसी बीज पदके अनुसार अर्थात सौधर्म-ऐशान वरूपमें जिस प्रकार कहा है उसे ध्यानमें रखकर सन्तिकर्ष है जाना चाहिए।

५१३. पञ्चन्द्रियद्विक और त्रविद्विकों मूळोचके समान भङ्ग है। पाँच मनोयोगी और तीन बचनयोगी जीवोंमें आभिनिवोधिकक्षानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरावका निवससे बन्ध करता है जो इनका निवससे जपन्य प्रदेशवन्य करता है। स्वानगृद्विजिक, दो बेदनीय, मिस्यास, अनन्तावुकन्यीचतुर्क, स्रोवेद,

[.] ता॰प्रती 'मसुतासु॰। तिस्य॰ पंचंत॰ जद्द॰' आ॰प्रती मसुतासु॰ तिस्य॰। पंचंत॰ जद्द॰' इति पाडः । र. आ०प्रती 'देशिदगी॰ अस्त्रतासु॰ध इस्पि॰' इति पाडः । र. आ॰प्रती 'पंचमण॰ पंचायि॰ तिभिजविषि॰' देति पाडः ।

भिन्छ ०-अर्णताणु ०४-इत्थि ०-गर्डुम ०-चदु आउम ०-णिरयम ० ०- णिरयाणु ०-आदाव-दोगोद ० सिया ० जह ० । छदंसणा ०-चटु संज ०-सय-दृ ० णियमा ० चं० तं तु ० अर्णतमामन्महियं वंधि । अष्टुक ०-पंचणोक ० सिया ० तं तु ० अर्णतमामन्महियं वंधि ति । तिगदि-पंचणादि ० तिण्णमरी रं छस्सं ठाणं दोश्रंमोवं गं छस्सं चडणं तिण्णमणु पृथ्वि ० पर ० उस्सासं उज्जोवं दोविदा ० तसादिद स्पुगलं तियथ रे सिया ० तं तु ० संख्ये अदि मान्य मियं चंदि । तेजा-कम्महग०-यण्ण ०४-अगु ० उप०-णिमि० णियमा वंधि तं तु ० संख्ये अदि । वेजन्वि ० अर्थो ० मिया ० तं ० तु ० विद्वाणपदिदं वंधि दे संख्ये असागन्महियं वंधि । वेजन्वि ० अर्थो । मिया ० तं ० तु ० विद्वाणपदिदं वंधि दे संख्ये असागन्महियं वंधि संख्ये असागन्महियं वंधि । वेजन्वि ० अर्थो विद्वाणपदिदं वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि । स्वाणि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि । स्वाणि वंधि वंधि । स्वाणि वंधि । स्वा

५१४. णिहाणिहाग् जह० पदे०बं० पंचणाणा०-अहदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुर्गु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-णिरयग०-

नपुंसकवेद. चार आयु, नरकगित, नरकगस्यानुपूर्वी, आतप और दो गोन्नका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करना है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनका जबन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजबन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अज्ञधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ क्याय और पाँच नोक्यायका कदाचित बन्ध करता है और कताचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशवन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त्रभाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, दो आह्रोपाङ, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, उद्यात, दो विहायोगित, त्रम आदि दम ग्राल और तीर्थकरप्रकृतिका कराचित बन्ध करता है और कराचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेश-बन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अज्ञाचन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशर, वर्णचतुष्क, अगुरुखव, उन्धात और निर्माणका नियमसे बन्ध करना है। किन्तु वह इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आक्रोपाङ्गका कराचित बन्ध करता है और कहाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उसका जघन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो उसका दिस्थान पतित बन्ध करता है, संख्यातभाग अधिक बन्ध करता है या संख्यातगणा अधिक बन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिवीधिकज्ञानावरणका जधन्य प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवके समान चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके मित्रकर्ष जानना चाहिए।

५१%. निद्रानिद्राका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, आठ रर्शना-वरण, प्रिप्यास, सीलह क्वाय, अय, जुगुरसा और पाँच अन्तरायका निवससे बन्ध करता है जो हनका नियससे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो बेर्निय, सात नोक्वाय, चार आयु, नरकाति, नरकात्यानुपूर्वी, आतप और हो गोत्रका क्हाचित् बन्ध करता है और णिरयाणु०-आदाब-दोगोद० ' सिया॰ जह० । तिस्मिष्ठ०-पंत्रजादि-जोरालि०-छस्संठा०-ओराखि०अंगो०-छस्संघ० -तिरिक्खाणु०-पर०-उस्मा० - उज्जो० - दोविहा० ^र-तसादिदस-युग० सिया० संखेजदिमागन्महियं बंबदि । दोगदिनेवेडिन्व०-दोआणु० सिया० संखेजदिमागन्महियं वं० । तेजा०-कः णि० संखेजदिमागन्महियं बं० । वण्ण०४-जगु० '-उप०-णिषाण वं० तंतु । संखेजदिमागन्महियं बं० । वेउित्व०-धंगो० सिया० बं० सिया० अवं० । यदि बं० अजह० संखेजगुणन्महियं० । एवं णिहा-णिहाए' भंगो० अष्ट्रदंस०-मिच्छ०-सोल्यमक०-भय-द०।

५१५. साढा० आभिणि०भंगो । णवरि णिरयगदितिगं वस ।

५१६, असादा० जह० पदे०बं० पंचणा०पंचंत० णि० बं० णि०^इ जह० । श्रीणतिद्धि०३ - मिळ्ड० - अणंताण०४ - इत्थि० - णवंम०-तिष्णिआउ०-णिरयादि०२-

कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्युद्धगति, पाँच जाति, औदारिकश्रारीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गी-पाक. छह संहत्तन, तिर्युक्तगस्यानपवी, परधात, उच्छास, उद्योत, हो विहायोगित और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करना है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, वैकियिकशरीर और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करना है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे सल्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणकारीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे सस्यातमाग अधिक अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है। बैक्रियिकशरीर आक्रोपाक्का कराचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणा अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार निदानिहाका जधन्य प्रदेश-बन्ध करनेवाले जीवके समान आठ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्याय, भय और जगुष्साका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सम्निकर्ष जानना चाहिए।

५१५. साताबेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्य करनेवाळे जोवका सम्रिक्षं भङ्ग आधिनि-शोधिक झानाबरणका जघन्य प्रदेशबन्य करनेवाळे जीवके समान है। इतनी विशेषता है कि तस्कातिजिकको लोडकर सन्तिकके कहता वाहिए।

५१६. असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशक्य करता है। स्यानगृद्धित्रिक, मिष्याल, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्रोवेद, तपुंसकवेद, तीन आयु, नरकग्राति-

र. तावप्रती 'किरवायुक का'''गोहर' आव्यती 'किरवायुक होगोहर' हति वाटः। २. आव्यती 'वस्ताव होशिहर' हति वाटः। ३. ताव्यती 'वेदक्तिक [होआयुक]'' संस्थित्राहर हति वाटः। ४. ताव्यती 'वेदक्तिक होरे कि किर्मा क्ष्यति वाटः। ४. आव्यती 'वेद किहाय' हति वाटः। ४. ताव्यती 'वेद किहाय' हति वाटः। ४. ताव्यती 'वेद कहाय' हति वाटः। ४. ताव्यती 'वेद व व वंदति किर्म होरे किर्म किरम किर्म किरम किर्म किरम किर्म किरम किर्म किरम किर्म किरम किर्म किरम किर्म किर्म

आदाब ०-तित्था ०-[दोघोद ०] सिया ० जह ० । छदंस० बारसक ०-भय-दु० थि० १ तं तु० अर्णतभागव्यिहर्ष ० । पंचणोक ० सिया ० तं तु० अर्णतभागव्यिहर्ष वं० । दोगिद ^१-पंचजादि-ओराज्ञि०-छस्संठा० - ओराज्ञि० अंगो०-छस्संघ० - दोआणु० - पर० - उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसपुग० सिया० तं तु० संखे अदिभागव्यिहर्ष वं० । तेजा०-क० णिहाए भंगो । वण्णा०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० तं तु० संखे अदिभागव्यिहर्ष वं० । वेउच्वि०-वेउच्वि०अंगो० विस्तार संखे अगुणस्मिहर्ष वं० ।

५१७. इत्थि॰ जह॰ पदे॰वं॰ पंचणा॰ जदंत॰ मिन्छ०-सोलसक॰ अय-दु॰-पंचंत॰ णि॰ वं॰ णि॰ जह॰ । दोवेदणी॰ चरुणोक॰ तिष्णिश्राउ॰ उजो॰ ^इरोगोद॰ सिया॰ जह॰ । तिरिक्स ॰ ओरालि॰ जस्संठा॰ ओरालि॰अंगो० कस्संघ॰ तिरिक्साणु॰-

द्विक, आतप, तीर्थक्स और दो गोत्रका कर्ताचत बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शना-वरण, बारह कथाय, भय और जगण्याका नियमसे बन्ध करता है। किन्त इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका अनन्त्रभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। हो गति, पाँच जानि, औदारिक-शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्क, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, उद्यांत, दो विहायोगित और त्रस आदि दस युगलका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका भन्न निदाका जधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके इनका जिस प्रकार सन्निकर्ष कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। वर्णचतुष्क, अगुरुख्य, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशवन्य करता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातराणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

प्रथ. स्त्रीवेरका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिप्रयात्व, सोल्ड क्याय, भय, जुगुप्सा और पाँच कन्तरावका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। वेदनीय, चार नोक्वाय, तीन आयु, व्योत और दो गोत्रका कदाचित् वन्य करता है। और कदाचित् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है जी इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। विविद्यागित, औदारिक-शारीर, छह संस्थान, औदारिकशरारि, आहोपांक, छह संहनन, नियम्रात्वातुपूर्वी, दो विहायोगांति

१ ता प्रति 'ख्रृ [दंसणा० णि० व ०] णि०' झा प्रती 'ख्रूपंस '''' णि०' हति पाठः । २. झा प्रती 'तं तु० । दोगदि०' इति पाठः । ३. झा प्रती 'विठीवि० सिवा० वेडव्वि०अंगो०' इति पाठः । ४. ता०प्रती 'भषदु० [पंचदंस०] '''''जिओठे झा प्रती 'भष-तु० पंचदंस ''''' उस्सेट' हति पाठः ।

दोविहा-भिरादिछयुगः सियाः तं तुः संखेजदिभागन्महियं गंः। दोगदि-वेउन्निः-दोजाणुः सियाः संखेजदिभागन्महियं गंः। पंचिदिः-नेजाः-कः-वण्णः ४-अगुः ४-तसः ४-णिमिः णिः गंः तं तुः संखेजदिभागन्महियं गंः। णवरि तेजाः-कः तं तुः णित्यः। वेउन्निःअंगोः सियाः संखेजदिभागन्महियंः संखेजगुणन्महियंः। पुरिसः इस्थिःभंगोः।

५१८. णबुंस० जह० पदे०बं० पंचणा०-णबदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-हु०-पंचंत०' णि० बं० णि० [जह०]। दोवेद०-चदुणोक०-तिण्णिआउ०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाब०-दोगोद० सिया० जह०।तिरिक्ख०-पंचजादि-औरालि०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-उजो०-दोविहा०-तसादिदसपुग० सिया० तं तु०

और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है। दो तो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। पक्क न्दियक्ष नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। पक्क नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह दनका अगुरुक्य कुत्कुक्त अस्वतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह दनका अगुरुक्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है तो इसका नियमसे सस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। इतने विशेषका है कि तीजतरारीर और कार्मणश्रादेशका नेतु बन्ध नहीं होता। वीक्षित्मकरारी आङ्गाध्यक्ष कर्दाचित्र वन्ध करता है और कर्यान्य प्रदेशक्य करता। विशेषकारी आङ्गाध्यक्ष कर्दाचित्र संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता। विशेष क्ष संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता। विशेषका है। यह प्रस्थान अपने अपने अर्थन करता। विशेषका जीवका सन्तिकर्य अङ्गल्य करता है। पुरुष्वेदका जयन्य अरेशक्य करता है। विशेषका जीवका सन्तिकर्य अङ्गल्य करता है। पुरुष्वेदका जयन्य अरेशक्य करता है। विशेषका जीवका सन्तिकर्य अङ्गल्य करता है। पुरुष्वेदका जयन्य

4१८. नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशकच्य करनेवाला जांव पाँच झानावरण, नी दर्शना-बरण, प्रिध्यात्म, सोलह क्याय, भय, जुगुप्ता और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशकच्य करता है। दो वेदनीय, चार नोक्वाय, तीन आयु, नरकार्गाह, नरकारवालुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कहाचिन बन्ध करता है और कहाचिन बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जबन्य प्रदेशकच्य करता है। वियञ्जगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गो-पाइ, छह संहनन, वियञ्जगत्वालुपूर्वी, परघात, उच्छुम्स, ज्यात, दो बिहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कहाचिन बन्ध करता है और अजयन्य प्रदेशकच्या कर्षण करता है। विश्वायाम्य प्रदेशकच्या कर्षण करता है।

१, सा॰प्रतौ 'इत्थि॰' पंचंत॰' झा॰प्रतौ 'इत्थि॰ भंगो॰ ।''''पंचंत॰' इति पाठः ।

संखेजभागन्महिय' बं० । मणुस०-वेउच्वि०-मणुसाणु० सिया० संखेजदिभागन्महिय' ब'० । तेजा०-क० णियमा संखेजदिभागन्महिय'० । वण्ण०४-अगु०-उप० णिमि० णि० बं० तं तु० संखेजदिभागन्महिय' बं० । वेउन्वि०ग्रंगो० सिया० संखेजदि-भागन्महिय' बं० । अरदि-सोग० णबुंसगभंगो` । हस्स-रदि-भय-दु० णिदाए भंगो ।

५१९. णितयाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-मय-दृ०-णिरय०-णिरयाणु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जहण्णा। पंचिंदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-हुंह०-वण्ण०४-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४-अधिरादिछ०-णिमि० णि० संखेजदिभागन्महियं०। वेउन्वि०अंगो० णि० सादिरेयंदुभागन्महियं बं०।

५२०. तिरिक्खाउ० जह० पदे० वं पंचणा० णवदंसणा० सिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा० पंचंत० णि० वं ० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक०-आदा० सिया० वन्ध करता है। मतुष्यगति, वैक्रियिकशरीर और मतुष्यगत्यातुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कराचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैजनशरीर और कार्मणकरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। वर्णवतुष्क, अगुम्लघु, वपवात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जयन्य प्रदेशबन्ध मी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। विज्विपकरारार आकृते दनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आकृते पाकृता कर्ताचित् बन्ध करता है और कराचित् वन्ध निर्मा करता है। वर्षा अधिक करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। अर्रात और शांकका जयन्य प्रदेशबन्ध करतेबाळे जावक सन्तिकर्ष का भक्क न्युचेकबेदका जयन्य प्रदेशबन्ध करतेबाळे जावके समान है। हास्य रांत, भय और जुगुप्साका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेबाळे जावके सामान है। हास्य रांत, अय और जुगुप्साका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेबाळे जावके साम्तकर्षका भक्क तिहाका जयन्य प्रदेशबन्ध करतेबाळे जावके समान है।

4१९. नरकायुका जघन्य प्रदेशनन्य करनेवाला जांव पाँच झानावरण, जो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यास्त्र, साल्द्र कथाय, नयुंतकवेद, अर्रात, शोक, भय, जुगुस्ता, नरकाति, नरकात्य, नरकात्यनायुप्ती, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे अच्य करता है जो दनका नियमसे जचन्य प्रदेशवन्य करता है। पक्षान्त्र प्रजाति, विक्रियकरार्शर, तैजसरारार, कार्मण-रार्शर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुल्यु चतुष्क, अप्रकार विद्वायोगांत, त्रसचतुष्क, अस्थर आदि छुद्ध और निर्माणका नियमसे सन्य करता है जो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। विक्रियकरारीर आङ्गोपाङ्कका नियमसे सन्य करता है जो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है।

५२०. तिर्वञ्चाणुका जधन्य प्रदेशवस्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नो दर्शनावरण, मिष्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियससे बन्ध करता है जो इनका नियससे जधन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय

श. ता॰प्रती 'स्विया'ं [संकेजविभाः]'''णबुंसकभंगो' आ॰प्रती 'सिया॰ संकेजविभागकपिद्यं व'॰।'' णबुंसमभंगों दृति पाडः। १. ता॰प्रती 'स्वादियं दुवागुणिदः (ग्रम्भादियं) यूवं ग्रिय॰ १ । तिरिक्षाउ॰ वेशा प्रती 'सादियं दुवागुणिदः । एवं ग्रिय॰। तिरिक्षाउ॰ दृति पाठः। १. ता॰प्रती 'णियाः। १. ता॰प्रती 'णीयाः (पंचतः । १. ता॰प्रती 'णीयाः (पंचतः । १. ता॰प्रती 'णीयाः (पंचतः । १. ता॰प्रती 'णीयाः)' ।

जहरु । तिरिस्ख-जोरालि०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० वं तं तु० संखेजिदि-भागम्ब्रहिषं वं० । पंचजादि-इस्संठा०-जोरा०वंगो०-इस्संघ०-पर०-उस्सा०-उजो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं तु० संखेजदिभागम्बर्हिष[ा] वं० । तेजा०-क०-णि० वं० संखेजदिभागम्बर० ।

५२१. मणुसाउ० जह० प०बं० पंचणा० ै-पंचत० णि० बं० णि० जह०। थीणगिद्धि २३-होबेद०-मिच्छ०- अणंताणु०४-इत्थि०-गुन्नंस०-अपज्ञ० - तित्थ०-दोगोद० सिया० जह० । छदंस०-बास्सक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं तु० अणंतभागन्महिय बं०। पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतभागन्महियं बं०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु० - अगु०-उप०-तस-बादर - पत्ते०-णिमि०

और आतपका कहाचित् बन्ध करता है और कहाचित् बन्ध नहीं करता। यहि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशकम्य करता है। तियक्ष्यांत, औदारिक्करांर, वर्ण- चल्दक, अगुरुक्तु, उपपात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनका जयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। का अजवन्य प्रदेशकन्य भी करता है। यहि अजवन्य प्रदेशकन्य भी करता है। यहि अजवन्य प्रदेशकन्य करता है। यहि अजवन्य प्रदेशकन्य करता है। पीच जाति, छह संस्थात, अविश्वरिकरांरी आङ्गोपाङ्ग, छह प्रदेशकन्य करता है। पीच जाति, छह संस्थात, औदारिकरांरी आङ्गोपाङ्ग, छह प्रदेशकन्य करता है। पीच जाति, छह संस्थात, औदारिकरांरी आङ्गोपाङ्ग, छह प्रदेशकन्य करता है। यश्चित्रका करांचित्र वन्ध करता है और अजयन्य महेशकन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है तो दसका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशकार्य प्रदेशकार्य करता है। विस्तासरांर और कांग्रेणसरारेका नियमसे संस्थातभाग करता है। इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशकार्य करता है।

५२१. मनुष्यायुका जपन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव वीच झानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। स्यानपृद्धिलिक, हो वेदनीय, मिथ्याल, अनन्तानुक-योचनुक, स्रोवेद, नपुंसकवेद, अपवांम, तांथंकूर
और दो गोत्रका कदाचित्त वन्य करता है और कदाचित्त वन्य नहीं करता। यदि
वन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण,
वारह कपाय, भय और जुगुराक्षा नियमसे वन्य करता है। छह दर्शनावरण,
प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अवन्तभाग अधिक अवधन्य प्रदेशवन्य करता है। यदि अवधन्य
प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अवन्तभाग अधिक अवधन्य प्रदेशवन्य करता है।
थान नीक्षणवका कदाचित्त वन्य करता है और कदाचित्त वन्य करता है।
थान नीक्षणवका कदाचित्त वन्य करता है और अवधन्य प्रदेशवन्य भी करता है।
अवधन्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अवधन्य प्रदेशवन्य
करता है। मनुष्यगति, एक्कान्ट्रियजाति, आंदारिकशरांर, औदारिकशरांर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचनुरुक, मनुष्यगत्यानुर्भुत, अगुरुकछु, अपपात, त्रस, बादर, प्रदेशक और निर्माणका नियमसे
भा करता है। विद्व वह इनका जमन्य प्रदेशवन्य करता है और अवधन्य से स्वाप्त अवस्थ अवस्थ स्वाप्त स्वयस्थ स्वयस्य स्वयस्थ स्वयस्थ स्वयस्य स्वयस्थ स्वयस्य स्वयस्थ स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस

^{1.} ता∘µतो 'सिया∘ ∵[तंतु∘] संखेजदिभा∘' द्वा∘µतौ 'सिया तंतु∘ संखेजदिभागःभदियं' इति पाठः। २. ता∘प्रतौ 'ज० [पदे॰ यं∘] पंचणा॰' इति पाठः।

णि० तं तु० संखेजदिमागम्महियं बं०। तेजा०-क० णि० संखेजदिमागम्महियं बं०। समचदु०-वजरि०-[पर०-उस्सा०-]पसत्थ०-पजन०-धिरादितिण्णियुग०-सुमम-सुस्सर-जादे० सिया० तं तु० संखेजदिमागम्महियं बं०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्या०-[अपजन-]दमग-दस्सर-अवादे० सिया० संखेजदिमागम्म०।

५२२. देवाउ० बहु० पदे०बं॰ पंचणा०-सादा०-[उचा०-] पंचतरा० णि० बं० णि० जहु० । धोणमिद्धि०३-सिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० जहु० । छदंसणा०-चदुसंज०-इस्स-रिद-सय-दु० णि०। बं० तं तु० अणंतमागम्मिद्धे वं० । अङ्करू० पुरिस० सिया० तं तु० अणंतमागम्मिद्धेयं वं० । देवगदि-वेउन्वि०-तेजा०-क०-देवाणु० णि० तं तु० संखेजदिमागम्मिद्धयं । पंचिदि०-समचदु०-चण्ण०४-अगु०४-पमत्थ-तस०४-पिरादिछ०-णिमि० । ले० ले० अजहु० संखेजदिमागम्मिद्ध० । वेउन्वि०-तम

अजमन्य प्रदेशनम्य करता है। तैजसरारीर और कार्मणहारीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजमन्य प्रदेशनम्य करता है। सम्बद्धस्यसंख्यान अक्षयं भारापासंहर्गन, परमान, उच्छात, प्रहान्त विद्यायोगति, पर्याप, स्थिर आदि तीन युगठ, सुभग, सुम्बर और आदेशका क्रशांचित्त बन्ध करता है और क्दाचित्त चन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है तो इनका जमन्य प्रदेशनम्य भी करता है और अजमन्य प्रदेशनम्य भी करता है। यदि अजमन्य प्रदेशनम्य करता है तो इनका नियमसे संख्यान भाग अधिक अजमन्य प्रदेशनम्य करता है। पाँच संख्यान, पाँच संह्वनन, अग्रशस विद्याये-गति, अपर्याप्त, दुभंग, दुभवर और अनादेशका क्दाचित्त बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यानभाग अधिक अजमन्य प्रदेश-

५२२. देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानाधरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेश-बन्ध करता है। स्यानगृद्धित्रक, मिध्यास्त्र, अनन्तानबन्धीचतुष्क और खीवेदका कराचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । बदि बन्ध करता है ता इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वछन, हास्य, रांत, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कपाय और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तमाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिक-शरीर, तैजसगरीर, कार्मणकारीर और देवगत्यातुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशक्त्य भी करता है और अजघन्य प्रदेशक्त्य भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजधन्य प्रदेश-बन्ध करता है। प्रक्रोन्द्रयजाति, समचतरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है

१. आ॰प्रतौ 'थिरादिक्यु • जिमि॰' इति पाठः।

अंगो॰ णि॰ तं तु॰ सादिरेयं द्भाग॰ संखेजदिमागन्भ० । आहारद्गं मिया॰ तं तु० संखेजदिमागब्महियं । तित्य । सिवा । संखेजदिमागब्म ।

५२३. णिर्य० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णबुंस०-अरिद-सोग-भय-द०-णिरयाउ०-णिरयाणु०-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० पंचिति ०-वेउन्वि ०-तेजा०-क०-हंड०-वण्ण०४-अग्०४-अप्पसत्थ०-तम०४-अधिरादिछ० णिमि० ' णि० संखेजदिभागव्म० । वेउव्वि०अंगो० णि० संखेजग० ।

५२४. तिरिक्ख जह पदेव्बंव पंचणाव-णवदंमणाव-मिच्छव-सोलसकव-भय-द ०-तिरिक्खाउ०-ओरालि०२-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उक्रो०-तम०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक०-चढजादि-इस्संठा०-इस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० जह०। तेजा०-क०°

जो इतका नियमसे संख्यानभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उसका जधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अज्ञान्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यांद्र अज्ञान्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक हो भाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है या संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित बन्ध करता है और कदानित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जबन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघत्य प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयस्य प्रदेशवन्य करता है। नीर्थद्वर प्रकृतिका कदाचित वन्ध करता है और कदाचित श्रम्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२३. नरकगतिका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्त्र, सोलह कषाय, नवंसकवेद, अरति, शोक, भय, जगप्सा, नरकाय, नरक्रात्यातुपूर्वी, नीचगात्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे ज्ञचन्य प्रदेशकम्य करता है। पञ्चिन्द्रयजाति, वैक्रियिकतरीर, तैजसक्षरीर, कार्मणक्षरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु वतुष्क, अप्रशस्त विहासोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छड और निर्माणका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैकियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशवन्ध करता है।

प्रथ. तिर्यक्क्यातिका जधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्मा, निर्यक्काय, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर-आक्रोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुत्तधुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगात्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, द्वीन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक चार जाति, छह संस्थान, करावित । राज्यान वार्ता कार्या कार्या कार्या कर करावित कर

भाश्यतो 'अधिरादिख्यु॰ णिमि॰' इति पाठः। २. सा॰मा॰ प्रस्थोः 'तिरिक्खाउ० भोराबि॰' इति पाठः । ३. आ॰प्रती 'सिया॰ तं तु॰ । तेजाकः'इति पाठः ।

णि० च'० णि० संखेजदिमागन्म० । एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंह०-असंप०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-जप्पसत्थ०-दमग-दुस्सर-अणादे० ।

५२५. मणुसग० जह० पदे०वं० पंचणा०-[मणुसाउ०-] पंचिदि०-[ओराखि०-] ओराखि०अंगो०-वजरि०-वण्ण०४-मणुसाणु० -अगु०४-पसत्य० - तस०४ - सुभग-धुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह०। छदंस०-वारसक०-पुरिम०-भय-दृ० णिय० अर्णतमागन्भ०। दोवेदणी०-धिरादितिष्णयुग० सिया० जह०। चदुणोक० सिया० अर्णतमागन्महि०। तेजा०-क० णिय० संखेजदिभागन्म०।

५२५. मनुष्यगतिक। जयन्य प्रदेशवन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, मनुष्यायु, पञ्जिन्यजाित, औदारिकशरीर, आदारिकशरीर आङ्गीपाङ्ग, वज्रपंभनारापसंहत्नन, वण-चतुन्क, मनुष्यगत्यातुन्धी, अगुरुलपुचनुत्क, प्रश्नात विदायोगिति, त्रसचतुष्क, सुम्मग, सुम्वर, आद्र्य, निर्माण, तीर्थुङ्कर, उच्चयोग और पाँच अन्तरायका नियमसे चन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। इह दर्शनावरण, बारह कथाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्ताका नियमसे अन्य करता है जो इनका नियमसे अनन्त्रमाग अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। दो वेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् वन्ध करता है अर्थ करता है। चार नोक्ययका कदाचित् वन्ध करता वियमसे अन्य प्रदेशवन्य करता है। चार नोक्ययका कदाचित् वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है। जिससो क्षेत्रकरा करता है। अर्थ करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है। अर्थ करता करता करता करता है। अर्थ करता करता है। अर्थ करता करता है। अर्थ करता करता करता है। अर्थ करता करता करता है।

५२६. देवगिनका जपन्य प्रदेशनम्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, सातावेदनीय, देवायु, देवगरवाजुप्बी, उरुप्योग्न और पाँच अन्तवावका नियससे बन्ध करता है जो इनका नियससे जपन्य प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण, चार सज्वलन, पुरुपवेद, हास्य, रात, भय और जुणुप्ताका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे अनन्तभाग अधिक अजपन्य प्रदेशवन्य करता है। आठ कपायका कदाचित वन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है। जोठ कपायका कदाचित वन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है। वो इनका नियससे अनन्तभाग अधिक अजयन्य प्रदेशन्वस्य करता है। प्रश्नीन्द्रय जाति, समयनुरुक्षसंस्थान, वर्णवतुष्क, अगुरुक्कपुष्त, प्रशास विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर जाति हो। विक्रियकहरीर, तैजस इनका नियससे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। वैक्रियकहरीर, तैजस

१. आ०पसौ 'बजहर असंखेजदिमागर' इति पाठ: ।

तेजा० क णि० तं तु० संखेजदिमा० । आहार०२ सिया० जह० । वेउव्वि० जंगो० णि० तं तु० सादिरेयं दुभागव्म० । तित्य० णियमा० संखेजदिभागव्म० । एवं देवाणु० ।

५२७. एइंदि॰ जह० पदेव्यं॰ पंचणा॰ णवदंस॰ मिच्छ० सोलसक॰ णवुंस॰ मय-दुर्गु॰ चावर०-शीचा॰ पंचत० णि॰ यं॰ जह० । दोवेद०-चदुणोक०-आदाव० सिया॰ जह० । तिक्कियादिसंजुताओ णि॰ यं॰ संखेजदिमागन्म० । उज्जो॰ थिरादि-तिकिणयुग० सिया॰ संखेजदिमा॰ । एवं आदाव-यावर० ।

५२८. बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० हेटा उविरं एइंदियमंगो । णामाणं सन्धाण०मंगी ।

५२९, पंचिंदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-जोरालि०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-

शरीर और कार्मणशरीरका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जायन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यांत्र अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यांत्र अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकिदिकका कहाचित्त बन्ध करता है। आहारकिदिकका कहाचित्त बन्ध करता है। आहारकिदिकका कहाचित्त बन्ध करता है। आहारकिदिकका नियससे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। विकास करता है। विकास करता है। विकास करता है। किन्त हसका जायन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। अंति अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। विवास करत

५२. एकेन्द्रियजातिका जयन्य प्रदेशवन्य कानेवाला जांच पाँच झानावरण, नी दर्शना-वरण, प्रिष्यास्त्र, सीलह क्षाय, नयुंक्कदेर, भय, जुगुप्सा, स्थावर, नांचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वस्य करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। रो वेदनांच, चार नोक्षाय और आवषका करांचित वन्य करता है और करांचित वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। तियंक्क-गतिसंकुक प्रकृतियांका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे सस्व्यतभाग अधिक अज्ञयन्य पदेशवन्य करता है। उचोत और स्थिर आदि तोन युगलका करांचित वन्य करता है और करांचित् वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे संस्थात भाग अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार एकेन्द्रियजातिका जयन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जोवक कहे गए उक्त सहितक्षेत्र समान आनय और स्थावरका जयन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जोवक स्त्रिकर्ष जानना चाहिए।

५२८. द्वीन्द्रयज्ञातः, त्रीन्द्रयज्ञाति और चतुर्तान्द्रयज्ञातिका जघन्य प्रदेशवन्ध घरनेवाळे जीवके नामकस्से पूर्वको और बादकी प्रकृतियांका भङ्ग एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशवन्य घरनेवाळे जीवके इन प्रकृतियांके कहे गए सिक्रके समान जानना चाहिए। तथा नामकर्मको प्रकृतियांका मङ्ग स्वस्थान सक्षिकर्णके समान है।

५२९. पक्के न्द्रियजातिका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, जीदारिकरारीर, औदारिकरारीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुखपुष्तुष्क, त्रसञ्चुष्क, निर्माण अगु०४-सस०४-चिमि०-पंचंत० णि० वं० णि० वह० । थीणगि०२-दोवेद०-मिच्छ०-अर्णताणु०४-इत्थि०-चांग्रेस०-दोआउ०-दोगदि-छस्संठा० - ब्रस्संघ० - दोआणु०-उजो०-दोविहा०-चिरादिछयुग०-तित्थ०-दोगोद० सिया० जह० । छदंस०-चारसक०-भय-दुगुं० णि० तं तु० अर्णतभागन्भ० । पंचणीक० सिया० तं तु० अर्णतभागन्भ० । तेजा०-क० णि० संख्यदिभागन्भ० । एवं-पंचिदियजादिभंगो० समचदु०-वज्यति०-पसत्थ०-सुमग-स्सर-आदे०-जोरालि०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-चिरादितिष्णयुग०-णिमि०' एदाणं पंचिदियभंगो ।

५३०, बेउब्बिं बहु० पदेव्बं० पंचणा०-सादा०-देवाउ०-देवग०-आहार०-तेजा०-क०-दोअंगो०-देवाण०-उचा०-पंचत णि० बं० णि० जह०। छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-इस्स-रदि-भय-दु० णि० बं०ै अणंतभागम्भ०। पंचिदि०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०ै-तित्य० णि० बं० णि० अजह०

और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशवन्ध करता है। स्यानगृद्धि तीन, दो वेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धा चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसक-बेद, दो आयु, दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहासोगित, स्थिर आदि छड यगल, तीर्थक्कर और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। याद बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नौकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पद्धोन्द्रयजानिका जधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गए सिन्नकर्षके समान समचतुरस्रसंस्थान, वक्रवंभनाराच-संहतन, प्रशस्त विहायोगति, सभग, सस्वर, आदेय, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आहो-पाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुखबुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युग ग और निर्माण इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सिन्नकष जानना चाहिए।

५२०. बैक्कियिकदारीरका जयन्य प्रदेशबन्य करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, साता-वेदनीय, देवायु, देवगति, आहारकाशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गाभाङ्ग, देव-गस्यानुपूर्व, ज्वगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संश्वळन, पुरुषवेर, हास्य, रनि. भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। एक्केन्ट्रियजाहित, समचतुरक्षसंख्यान, वर्णचतुष्क, अगुरुकत्युचतुष्क, प्रश्नात विद्यामीति, अस चतुरुक, स्थर आहि छह, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी

९. ता॰मती 'सस॰ किमि॰' इति पाटः। २. आ॰प्रती 'ददि कि॰ यं॰' इति पाटः। ३. आ॰प्रती 'थिरादिख्युः किमि॰' इति पाटः।

संखेजदिभागन्भः । एवं आहार०-तेजा०-कः '-दोअंगो० । चदुसंठा०-चदुसंघ० तिरिक्खगदिसंतो । णवरि पंचिंदि० धुव० ।

५३१. सुहुम० जह० पर्टे०चं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-सय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० चं० णि० जह० । दोवेद०-चटुणोक०-साधार० सिया० जह० । तिरिक्खाउ० णि० जह० । तिरिक्छ०-ण्इंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-चण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-[धावर०-पञ्जच०-] द्भग-अणादे०-अजस०-णिमि० णि० अजह० संखेजदिमागन्भहियं । पत्तेय०-धिराधिर-सुभाषुभ० सिया० संखेजदि-भागन्भ० । एवं साधार० ।

५३२. अपञ्ज० जह० पदे०बं० पंचणा० णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक० णबुंस०-भय-दु०-पीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोबेद०-चटुणोक०-दोञ्राउ० सिया० जह० । दोमदि-चदुजादि-दोञ्राणु० सिया० संखेजदिमाग्टम० । ओरालि०-तेजा०-क०-

प्रकार अर्थात् बैक्रियिकरारीरका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके कहे गये एक सांक्र कथेके समान आहारकक्षरीर, तैजसकारीर, कार्मणकारीर और दो आङ्गोपाङ्गका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका कहना चाहिए। चार संस्थान और चार संहतनका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवका सिक्रका तिर्यञ्ज्यातिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाल जीवके कहे गये समान करनेवाल जीवके कहे गये समान करनेवाल जानना चाहिए। किन्तु इतनी विद्योषना है कि पञ्जीन्त्रयज्ञातिका नियमसे वन्य करता है।

प्रशेत हूं... सूक्ष्मकर्मका जयन्य प्रदेशक्य कानवाला जीव पींच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सीलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुत्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य प्रदेशक्य करता है। दो वेदनीय, चार नीसपाय अधेर सार्थाप्यक करावि है। दो वेदनीय, चार नीसपाय और साध्याप्यक करावि है। दो वेदनीय, चार नीसपाय और साध्याप्यक करावि है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। नियम्रायुका नियमसे क्या करता है है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। नियम्रायुका नियमसे क्या करता है और इसका नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। नियम्रायुका नियमसे क्या करता है है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। नियम्रायुक्ति, अगुरुठजुक्तिक, जीवसरार्यार, कामणकारार, हुण्डसंखान, वर्णचलुक्त, नियम्रायायुक्ती, अगुरुठजुक्तिक, जीवसरार्यार, कामणकारार, हुण्डसंखान, वर्णचलुक्त, नियमकागतुक्ती, अगुरुठजुक्तिक, व्यावर, प्रयाद, प्रयाद, क्या करता है। प्रतेक, स्थिर, अस्थर, अस्याद, अस्थर, अस्यर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर, अस्थर

५३२. अपयोतका जयन्य प्रदेशकम्य करनेवाला जीव पींच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सीलह क्याय, नपुंसकवेद, अय, जुगुस्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे जन्म करता है । दो बेदनीय, चार नोकषाय और राज है जो इनका नियमसे जमन्य प्रदेशकम्य करता है। दो बेदनीय, चार नोकषाय और रो आयुका कर्राचित बन्ध करता है और कर्राचित सम्बन्ध मार्च करता। याद कम्य प्रदेशकम्य करता है और कर्राचित, वार जाति और रो आयुक्ति करता है। दो गति, वार जाति और रो आयुक्ति कर्याचित वन्ध करता है। दो गति, वार जाति और रो आयुक्ति कर्याचित वन्ध करता है और कर्राचित् कम्य नहीं करता। याद वन्ध करता है और कर्राचित् कम्य नहीं करता। याद वन्ध करता है और कर्राचित् कम्य नहीं करता। याद वन्ध करता है और कर्राचित् कम्य नहीं करता है। और विजयस्थारिक स्वाचित्र करता है और कर्राचित्र करता है। और विजयस्थारिक स्वाचित्र करता है। और विजयस्थारिक स्वच्यातमार्ग अधिक अञ्चय्य प्रदेशकम्य करता है। और विजयस्थारिक स्वच्यातमार्ग अधिक अञ्चयन्य प्रदेशकम्य करता है। और विजयस्थारिक स्वच्यातमार्ग

१. ताञ्जती 'ब्राहारः । ते वकः' इति पाठः ।

हुंड ०-ओरालि० झंगो०-असंप०-क्षण०४-अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते० - अथिरादिपंच०-णिमि० १ णि० अज्ञह० संखेजदिमागम्भ० ।

५३३, तित्य ० मणुसमदिर्भगो । उषा० जह० पद्दे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । धीणगिद्धि०३-दोवेद०-भिच्छ०-अणंताणु०४-इस्थि०-णवुंस०-दोआउ० सिया० जह० । छदंस०-चहुसंज०-भय-दु० णि० वं० तं तु० अणंतभागन्मिहयं । अडक०-पंचणोकः० सिया० तं तु० अणंतभागन्मिहयं । अडक०-पंचणोकः० सिया० तं तु० अणंतभागन्मिहयं। दोर्भाने०-चअरि०-दोष्ट्राणु०-पसत्य०-धिरादिर्तिण्णयुग०-सुम्सग-सुस्सर-आदे०- तित्य० सिया० तं तु० संखेआदेभागन्मिहयं। [पंचिदि०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिम० णि० वं० णि० अजह० संखेजभागन्मिहयं वं०]। पंचसंत्रा०-पंचसंघ०-जपसर्थ०-इभग-इस्सर-अणादे० सिया० संखेजभागन्मिहयं वं०]। पंचसंत्रा०-पंचसंघ०-जपसर्थ०-इभग-इस्सर-अणादे० सिया० संखेजभागन्मिहयं० । वेउन्वि०अंगो०

कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, ओदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्यातास्रपाटिका संहतन, वर्णवतुष्क, अगुरुतपुर, उपघात, त्रस, बादर, शरोक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करना है जो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५३३. तीर्थद्भर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष मनुष्यगतिका जवन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्तिकषक समान जानना चाहिए। उसगात्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रक, दो बेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपंसकवेद और दो आयुका कदाचित बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजबन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और पाँच नोकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनुस्तभाग अधिक अज्ञायन्य प्रदेशबन्य करता है। हो गति, तीन शरीर, समचतरस्र-संस्थान, दो आङ्कापाङ्क, वज्जर्यभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगीत, स्थिर आदि तीन यगल, सभग, सस्तर, आदेय और तीर्थद्भर प्रकृतिका कराचित बन्ध करता है और कराचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चित्द्रयजाति, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु:स्वर और अनादेयका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। विकिथिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजवन्य

१. ता० प्रती० 'स्रथिराहिपंच० णि० णिमि०' इति पाठः ।

सिया॰ तं तु॰ सादिरेयं दुभाग॰ संखेजदिभागन्भहियं वा ।

५२५. विचजो०-असबमोसविच० तसपजनमंगो। णवरि दोआउ०-वेडव्वियछ० जोलिणि०मंगो। आहारदुर्ग तिरव० ओषं। कायजोगि० ओषं। ओरालियका० ओषमंगो। णवरि सुदुनपढससमयसरीरपजनयस्स सामिनादो सण्णिकासो कादव्यो। चदुआउ०-वेडव्विचछक-आहारदुग-तिरवयराणं सह याओ पगदीओ आगच्छति ताओ असंखेजसुणाओ एदेण बीजेण णेदव्वाओ सम्बपगदीओ। ओरालियमि० ओपं। णवरि देवगदिपंचगं मणुसमंगो। बेडव्वियका०-वेडव्वियमि० सोधम्ममंगो।

५२५. आहार०-आहार०मि० आभिणि० जह० पदे०वं० चदुणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंब०-पुरिस०-इस्स-रदि-मय-दुगुं०-देवाउ०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह०। देवगदि'-पंचिंदि०-वेउन्ति०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउन्त्रि०अंगो०-गण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० वं० णि० तं तु० संसेअहि-

प्रदेशबन्ध करता है या संख्यातभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है।

4३४. वचनयोगो और असरयहणावचनयोगी जीवोमें उसपयोग जीवोक समान भङ्ग है । इतनी विहोसता है कि दो आयु और वैक्वियकरहरूका जमन्य प्रदेशकरन्य करनेवाले जीवोक समान सह सित्तकर्य भङ्ग प्रक्वेट्रिय तिर्वेद्ध योगिनो जीवोंके समान है। तथा आहारकद्विक और तीर्वेद्धर प्रकृतिका सङ्ग अोचके समान है। काययोगो जीवोंमें आयके समान भङ्ग है। ऑदारिककप्य योगी जीवोंमें भी ओचके समान भङ्ग है। हतनी विहोषना है कि शरीरपर्याप्त होकर जो सुर्म जीव प्रथम समयमें स्थित है वह यथायोग्य अर्हाव्यक्ते जयन्य प्रदेशकर्यका स्थामी होता है, इसिल्य वहाँ इस बातको ध्यानमे रखकर सिन्तक करना चाहिए। तथा बार आयु, वैक्रियक पर्दक, आहारकद्विक और तीर्थेद्धर प्रकृतिये साथ जो अकृतियों आती है वे नियमसे अस्त्रियात गुणी अजयन्य प्रदेशवन्यवाली होती हैं। इस वीजपदके अनुसार सब प्रकृतियों जा सिन्तकर्ष ले जाना चाहिए। औरार्विक स्थापी जीवोंमें आधाके समान भङ्ग है। इतनो विद्येषता है कि द्वयातिपक्कक्त मङ्ग मनुष्यों समान है। वैक्रियिककाययोगी जीवों से आप के समान भङ्ग है। इतनो विद्येषता स्थापी जीवोंमें आप के समान भङ्ग है। इतनो विद्येषता स्थापी जीवोंमें भी स्थापन स्थाप है स्थापन स्थापी समान है। वैक्रियककाययोगी और वैक्रियक्रिकश्चर योगी जीवोंमें सीचयन स्थाप हमके देखांके समान है। वैक्रियककाययोगी और वैक्रियक्रिक स्थापोगी स्थापन स्यापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्था

५२५. बाहारककाययोगां और आहारकिमिश्रकाययोगां जीवांसे आर्मितथोधिकक्षाना-बरणका जमन्य प्रदेशसम्य करनेवाला जीव चार झानावरण, छह रहांनावरण, सातावेदनीय, चार संचळत, पुरुषदेद, हास्य, रति, मय, जुन्यान, होता, उच्चांत्र और पीच अनदारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पद्धोन्द्रय-जाति, वैक्षिकहरारोर, तैतसहारीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंखान, वीक्ष्रविकहरारोर आङ्गी-पाङ्ग, वर्णचनुष्क, देवनारसानुपूर्णी, अगुरुक्कपु चनुष्क, प्ररास्त विहायोगति, जसचनुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशकन्य स्था करता है और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। वित् अजयन्य प्रदेशकन्य करता है तो इनका नियमसे संस्थातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। तीर्थहर प्रकृतिका कराचिन् बन्ध करता है और कराच्य प्रदेशक्य करता है। तीर्थहर प्रकृतिका

१. ता भरती 'जहू वेबगदि' इति पादः ।

भागन्भ० । तित्य० सिया० जह० । एवं चदुषा०-छदंस०-सादा०-चदु संज्ञ०-पंचणोक०-देवाउ०-उषा०-पंचंत० ।

५२६. असादार् जहर पदेर्च पंचणार छदंसर चद् संजर-पुरिसर-मय-दु र-देवगदि-पंचिदिर ने उच्चिर-तेजार कार समयदु र वे उच्चिर अंगोर क्षणार ४-देवाणुर-अगुरु ४-पसत्य र तसर ४-सुभग-सुस्सर-आदेर-णिमिर-उच्चार-पंचेत्र णिर बंर णिर अजहरु संखेज भागन्य । इस्स-दि धिर-सुभ-जसर-तित्य र सियार संखेजदिभागन्य । अरदि-सोगर सियार जहरू । अधिर-असुभ-अजसर सियार तं तुरु संखेजदिभाग । एवं अरदि-सोगाणं ।

५२७. देवग० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-इस्स-रदि-भय-दु०-देवाउ०-पंचिद्दि०-वेउच्चि०-तेजा० - क०-समचदु० - वेउच्चि०झंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्य०-नतस०४-धिरादिछ०[°]-णिमि०-तित्थ०-उचा०-पंचंत०

नियमसे जघन्य प्रदेशबन्य करता है। इसी प्रकार अर्थान् आभिनिबोधिकह्मानाबरणका जघन्य प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके कहें गये उक्त सिनिकषेके समान चार झानाबरण, छह् दशनावरण, साताबेदनीय, चार संज्वलन, पॉच नोक्याय, देवायु, उच्चगोत्र और पॉच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्य करनेवाले जीवके सन्तिकर्ष जानता चाहिए।

'२१६ असातावेदनांयका जघन्य प्रदेश वन्य करतेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, वार संस्वत्रन, पुरुषंदर, भय, जुगुध्सा, देवगित, एक्क न्द्रियजाित, चिंकिषिक गरीर तेजस्यारीर, कार्मणश्रारीर, सम्बतुरस्वसंधान, वैकिषिकश्रारीर आङ्गोपाङ्ग वर्णचतुष्क, देवगत्यातुर्यं, अधुक्रजुष्वतुष्क, प्ररास विह्ययोगिति, तस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, भादेव, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। हास्य, रित, स्थिन, हुस्य, यशःकींति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित्त् वन्य करता है। हास्य, रित, स्थिन, हुस्य, यशःकींति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित्त् वन्य करता है। हास्य, रित, स्थिन, हुस्य, यशःकींति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित्त् वन्य करता है। अरित और होशंकका करावित्त् वन्य करता है। अरित और होशंकका करावित्त्र वन्य करता है और करावित्त्र वन्य करता है तो इनका नियमसे जम्य प्रदेशकन्य करता है। अरियर, अश्चुम और अश्वशःकीरिका करावित्त्र वन्य करता है तो उपन्य प्रदेशकन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशकन्य भी करता है। इसी प्रकार अर्थान असाताबेदनी-एक जनव्य प्रदेशकन्य करतेवाले जीवके कहा यारे उक्त सिक्तकर्य प्रमान अरित और कोक्तकर्य ज्ञानना चाहिए।

५३०. देवगतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच क्षानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संक्लान, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्ता, देवायु, पम्रोन्द्रियज्ञाति, वैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कामणाशरीर, समचुरस्त्रसंस्थान, विकियिकशरीर आक्रीपाक, वर्णवादुष्क, देवगर शतुपूर्वी, अगुरुख्यु चतुष्क, प्रशस्त विहासोगति, अवस्तुष्क, स्थिर आहे छह, निर्माण, तीर्थक्टर, उच्चगोत्र और एष्ट अन्तरायका नियससे बन्ध करता है जो इनका

^{1.} ता**्प्रतौ 'पंचंत**ः असाद**े' इति पाटः। २. ता**्प्रतौ 'अगु॰ ३ तस ४ थिरादिख्**ः**' इति पाठः।

णि० वं० णि० जह० । एवं देवगदिभंगी सञ्चाणं पसत्थाणं णामाणं ।

५३८. अधिरः जहः पदेव्वं सादावे इस्तर्दिसुभ-जसः सियाः संखेजदि-भागस्म । असादाः अरि-सोग असुभ-अजसः सियाः जहः । सेसाओ 'णिः वं णिः अजहः संखेजदिभागस्म । एवं असस-अजसः ।

५२९, कम्मह्म० मूलोघभंगो । हत्यिवेदेसु पंचिहियतिस्कित्वजोणिणमंगो । णवि आहार०-आहार०अंगो०-तित्थ० मणुसि०भंगो । पुरिस० पंचिदियतिरिक्खभंगो । णविर आहार७अंगो०-तित्थ० आयो । णव्हमे संठाणं मूलोघं । णविर वेउव्वियस्क जोणिणमंगो । तित्थयमं औधं णिरहगस्म भविट ।

५४०. अवगद्वेदेसु आभिणि० जह० पदे०चंधंतो चदुणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-जसगि०-उचागो०-पंचंतरा० णि० वं० णियमा जहण्णा । कोधसंज० निया० जह० । माणसंज० सिया० तं तु० संखेजदिभागव्भ० । मायासंज० सिया० तं तु०

नियमसे जयन्य प्रदेशबन्थ करता है। इसी प्रकार देवगतिका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सिन्नवर्षके समान नामकर्मको सब प्रशान प्रकृतियोक। जपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सामकर्ष जानना चाहिए।

५२८. अस्थिर प्रकृतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव सातावेदनाय, हाम्य, र्रात, शुभ और यशःकीर्तिका कदाचित् वन्य करना है और कराचित् वन्य नहीं करना । यदि वन्य करता है। तो उनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। असातावेदनीय, अस्ति, श्रोक, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् वन्य करता है और कदाचित् वन्य नहीं करता । यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करना है। शेष प्रकृतियोक्षा नियमसे वन्य करता है तो उनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करना है। शेष प्रकृतियोक्षा नियमसे वन्य करता है जो उनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। होसी प्रकार अथित अधिरप्रकृतिका जयन्य प्रदेशवन्य करते हैं। इसी प्रकार अथित अधिरप्रकृतिका जयन्य प्रदेशवन्य करते के के स्वे गये उक्त सिक्त जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सिक्त जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके स्वकृत स्वकृता चाहिए।

4३९. कार्यणकाययोगी जीवांमें मूलोघके समान भङ्ग है। क्षांवेदों जीवांमें पञ्चोंत्रव तिर्वञ्ज योनिती जीवांके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकरारीर, आहारक-रारीरआङ्गोपाङ्ग और विशेष्ट्रपाष्ट्रनिका भङ्ग महाचियांके समान है। पुरुषवेदी जीवांमें पञ्चे-त्रित्र विरोधकों समान मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्श्वहूरम्बद्दीका भङ्ग ओघके समान है। नदुसकदेदी जीवांमें रक्षस्थान मुलोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियक्षस्टका एक्से त्रित्र विदेश्च योनित्री जीवांके समान भङ्ग है। तीर्थेष्ट्रपाष्ट्रतिका मङ्ग ओषके समान है। इसका जपन्य स्वामी नारकी होता है।

4४०. अपगतवेरी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सानावेदनीय, यशःकीर्ति, उद्यागेत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वस्य करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। कोधसंज्यतनका कराचिन् वस्य करता है और कराचिन् वस्य नहीं करता। विद वस्य करता है तो इसका नियमसे जयन्य प्रदेशवस्य करता है। सानसंबद्धनका कशाचिन् वस्य करता है और कशाचित् वस्य नहीं करता। यदि वस्य करता है तो जयन्य प्रदेशवस्य भी करता

१. ता०प्रती 'जह॰ सेसाक्रो' इति पाठः ।२. ता०प्रती 'जपु'सके० सं (स) हार्युं

संखेजिदिभागस्म० संखेजगुणस्महियं ना । छोमसंज ० णियमा तं तु० संखेजिदिभागस्म० संखेजगुणस्महियं ना चदुभागस्महियं ना । एवं चदुणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उचा०-पंचंत० ।

५४१, कोषसंज्ञ जह० पदे०बं० पंचणा०-चदुरंस०-सादा०-तिण्णिसंज्ञ०-जस०-दवा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । एवं तिण्णिसंज्ञ० ।

५४२. कोध-माण-माया-लोर्म ओघं । मदि-सुद० सब्वाणं ओघं । णवरि वेउच्वियछकं जोणिणिर्मगो ।

५४३. विमंगे आमिणि० जह० पदे०वं० चदुणा०-णवदंसणा०-भिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-वेउन्वियळ०-आदाब-दोगोद०' सिया० जह० । दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०-हे और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है तो इसका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। मायासंज्वतनका कदाचित् क्य करता है और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है। तो करता है और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है। तोभसज्वलनका नियमसे प्रदेशक्य भी करता है। क्यू वह इसका जयन्य प्रदेशक्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशक्य भी करता है। विक् जयन्य प्रदेशक्य करता है। तोभसज्वलनका नियमसे प्रदेशक्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशक्य करता है। इसका नियमसे संख्यातमाग अधिक या संख्यातगुण अधिक या चार भाग अधिक अजयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार सर्थात् आमिनिवोधिक क्षानावरणका जयन्य प्रदेशक्य करते-वाळे जोवके कहे गये उक्त सिक्रवंके समान चार क्षानावरणका जयन्य प्रदेशक्य करते-वाळे जोवके कहे गये उक्त सिक्रवंके समान चार क्षानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकार्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का जयन्य प्रदेशक्य करनेवाळे जोवके सांक्रवर्ष जानाना चाहिए।

५११. कोधसंज्वलनका जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शना-वरण, सातावेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीति, उच्चवाोत्र और पाँच अन्तरायका निवससे बन्ध करता है जो इनका नियससे जयन्य प्रदेशक्य करता है। इसी प्रकार अर्थात् क्रोधसंज्वलनका जयन्य प्रदेशक्य करनेवाले जीवके कहें गये उक्त सिक्षक्षेके समात तीत

संज्वातनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५४२. क्रोधकवायवाळे, मानकवायवाळे, मायाकवायवाळे और छोमकवायवाळे जीवॉर्मे ओपके समान भक्क है। मरवज्ञानी और खुताङ्गानी जीवॉर्मे सब प्रकृतियांका भक्क ओपके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैकियिकयर्कका भक्क प्रकृतियांका स्वत्या योजिनी जीवॉक्ते समान है।

424. विभक्तकानी जीवोंमें आसिनिवोधिक क्षानावरणका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाळा जीव वार क्षानावरण, नी दक्षेतावरण, मिध्यात्व, सीळह क्ष्यय, भय, जुगुन्सा और राँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। दो देशनीय, सात नोक्वाय, चार बाधु, वैक्षियिकपट्क, आतप और दो गोजका करावित वन्य करता है और करावित्त वन्य नहीं करता। यदि वन्य करता है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशवन्य करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकस्रोर, छह संस्थान, औदारिकस्रारीर

आ॰प्रती 'वेडव्विवकु॰ क्राहार॰ दोगोद॰' इति पाठः । २. क्रा॰प्रतौ 'सिवा॰ दोगिदि' इति पाठः ।

अंगो०-ऋस्तंघ०-दोआणु०-पर०'-उस्सा०-उओ०-दोबिहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं तु० संखेआदिमागन्म०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० षं० तं तु० संखेआदिमागन्म०। एवं चदुणा०-गत्रदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-गवणोक-दोगोद०-पंचतरा०। णवरि सादावेद० षंधंतस्स० णिरयगदितिगं वअ अमादावेदणीयं बंधंतस्स देवाउ० वक्ष०।

५४४. इत्थि० जह० पदे०बं० पंचणा०-गवदंस०-मिन्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक्त०-तिष्णिआउ०-दोगदि-चेऽन्वि०-वेउन्वि-अंगो०-दोआणु०-उझो०-दोगोद० सिया० जह०। तिरिक्स०-ओरालि०-इस्संठा०-ओरालि०अंगो०-इस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-थिरादिङयु० सिया० तं तु० संखेजदिमागब्स०। पंचिदि०-तेजा०-क०-वष्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं०

आक्कोपाङ्ग, छह संहनन, रो आनुपूर्वी, परपात, उच्छात, ज्योत, रो विहायोगित और त्रस आदि दस युगळका कहाथिक वन्य करता है जो इसका त्रम्य प्रदेशकर भी करता है। यदि वन्य करता है जो इसका त्रम्य प्रदेशकर भी करता है। यदि अध्यक्ष त्रम्य प्रदेशकर भी करता है। यदि अध्यक्ष करता है। ते तस- वस्त करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक अत्रमन्य प्रदेशकर करता है। ते तस- रारीर, कामेणश्रारीर, वर्णचलुष्क, अपुरुत्वपु, उपपात और तिमाणका नियमसे वन्य करता है। करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर भी करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर भी करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर भी करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर करती हो। वर्षा अध्यक्ष करता है। वरि अञ्चयन्य प्रदेशकर करते लोखे जीवक कहे गये उक्त सिक्किक साम चार ज्ञानवरण, तो वेदनीय, मिण्यात्व, सोळह कथाय, ती नोकथाय, दो गोत्र और पौष अन्तरायका ज्ञयन्य प्रदेशकर करते साम करता करता है। इस्त मालक स्वावप्त अपन्य प्रदेशकर करते लाखे जीवक कहे गये उक्त सिक्किक ज्ञान लाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयका ज्ञयन्य प्रदेशकर असातावेदनीयका ज्ञयन्य प्रदेशकर करतीविवक से विक्व करतीविवक के छोक्त हो व्याविवक करतीविवक के लाक लाकि विवक्त के स्माविवक स्थात करतीविवक के छोक्त हमा चाहिए। वष्य असातावेदनीयका ज्ञयन प्रदेशकर करतीविवक के स्वत्व विवक्त करतीविवक छोक हमा करतीविवक स्वावक हमा व्याविवक स्वावक हमा व्यावक स्वाविवक स्वावक हमा व्याविवक स्वावक हमा व्यावक स्वावक स्वावक हमा व्यावक स्वावक स

49%. स्रीवेदका जपन्य प्रदेशकन्य करनेवाळाजीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व. सोळह कपाय, भय, जुगुप्सा ओर पाँच अन्तरायका मियससे बच्च करता है जो इनका नियमसे जच्य करता है। दो वेदनीय, चार गोक्याय, तीन आगु, दो गांत, वेकिकिकारारी, वेकियकारीय आङ्गेपाङ्गे, दो आनुपूर्वी, उद्योत और दो आगु, दो गांत, वेकिकिकारारी, वेकियकारीय, अक्षायक, वाद्यावित वन्य करता है तो इनका नियमसे जपन्य प्रदेशकन्य करता है। तियंक्ष्याति, औदारिकारीर, छद्द संस्थान, औदारिकारीर आहिए छद्द युगळका कर्षाचित् वन्य करता है और क्याचित् वन्य नियमसे क्षाया । यदि वन्य करता है तो जपन्य प्रदेशकन्य भी करता है और अजधन्य प्रदेशकन्य भी करता है वो उपन्य प्रदेशकन्य भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशकन्य करता है वो एक्ष्मेन्द्रय-करता है और अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। प्रक्रीनेद्रय-करता है। प्रक्रीनेद्रय-जाति, तैजसकारी, कार्यवारी, वर्णवार्वक, अगुक्क्युन्तुक, प्रस चतुक्क और नियमिणका नियमसे स्थान करता है। किन्तु वह इनका जधन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य भी करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। से अजधन्य प्रदेशकन्य करता है। से स्वारी से अजधन्य प्रदेशकन्य भी करता है। विवस्त नियससे संस्थात

१. भा०प्रती 'बुस्संघ० पर०' इति याहः ।

तं तुः संखेजिदिमागन्मः । एवमेदेण क्रमेण णेदन्वाओ सन्वाओ पगदीओ । एवं पुरिसः । इस्स-रहीणं साद-मंगो । अरदि-सोगाणं असाद-भंगो । णामाणं हेट्टा उवरिं आभिणि-भंगो । णामाणं सत्याण-भंगो ।

५४५. आभिणि०-सुद-अधिणा० आभिणि० जह० पदे०वं० बद्दुणा०-छदंसणा०'-भारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । दोवंद०-चदुणोक० सिया० जह०। दोनदि-दोसरोर-दोअंगो०-यजरि०-दोआणु०-थिरादि-विण्णियुग०-तिस्य० सिया० तं तु० संखेजदिभागन्म०। पंचिदि०-तेजा०-क०-समचद् ०-वण्ण०४-अगु०४-पसस्य०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि० तं तु० संखेजदिभागन्म०। एवं चदुणा०-छदंसणा०-दोवंद०-बारसक०-सत्तणोक०-उचा०-पंचंत०।

भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार इस क्रमसे सव प्रकृतियोंका सिक्रकर्ष हो जाना चाहिए। इसी प्रकार पुरुषचेदका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके सिक्रकर्ष कहना चाहिए। तथा हास्य और रितेका अयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके साता-विद्यालय प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके साता-विद्यालय प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके साता-विद्यालय प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके समान सिन्कर्ष कहना चाहिए और अरित व शोकका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके समान सिन्कर्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके समान सिन्कर्य कहना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले प्रयुक्त प्रवक्त जीवके नामकर्मकी प्रवक्तियोंका अक्ष आमिनिवाधिक ज्ञाना-वरणका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जोवके कहें गये सिक्रक्षेत्र समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्क स्वस्थान सम्बिकर्षके समान है।

५४५, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोक्षायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वञ्चर्यभनोराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थेट्टर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे सं यातमाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चिन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरुछघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुरक, सुभग, सस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजवन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनि-बोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाछे जीवके कहे गये उक्त सिन्नकवंके समान चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशयन्य करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

१. ता०पतौ 'चतुणो॰ खदंस॰' इति पाडः ।

५४६. मणुसाउ० बहु० पदे०वं० पंचणा०-छदंसणा०-वाससक०-पुरिस०-भय-दु गुं०-मणुसगदि० उत्तरि याव उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० अबह० असंखेअगुणस्म०! दोवेद०-चदु णोक०-धिरादितिष्णिगुग०-तित्य० सिया० वं० सिया० अवं०। यदि वं० णि० अजह० असंखेअगुणस्म०। एवं देवाउ०। णवरि देवाउगपाओरगपगदीओ णाह्न्वाओ भवंति। आहारदुगं सिया० तं तु० संखेजदिभागन्म०। तित्य० सिया० असंखेजगणस्म०।

५४७. मणुस० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० ज० । दोवेद०'-चटुणोक० सिया० जह० । णामाणं' सरवाण०भंगो । एवं सब्बणामाणं । णवरि देवगदि० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुर्गु०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-चटुणोक०

५४०. मनुष्यगतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच क्वानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कवाय, पुरुषदेद, सम, जुगुप्सा, उच्चगोन्न और पाँच व्यन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो इनका निययसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। वो वेदनीय और चार नोक्यायका कराति है। तो का नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। नामकर्मको प्रकृतियोंका भक्क रवस्थानसीन कर्य से सान है। इसी प्रकार वर्षात्म सुज्यपतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवक करें गये उक्त सिन्न कर्य सान नामकर्मको अन्य प्रकृतियोंका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवक सिन्नकर्य जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवक सिन्नकर्य जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जयन्य प्रदेशवन्य करतेवाला जीव पाँच क्रानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कथाय, पुरुषदेद, स्पर्य, जुगुप्सा, उक्ष गोत्र और पाँच करतायका नियमसे वस्य करता है। तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियमसे करता है। तो इनका नियमसे करता है। तो इनका नियमसे अपन्य प्रदेशवन्य करता है। तो इनका नियमसे करता है। तो विषय क्वान नियमसे करता है। तो इनका नियमसे करता है। तो इनका नियमसे क्वान नियमसे क्वान नियमसे क्वान नियमसे करता है। तो विषय नियमसे करता है। तो विषय नियमसे क्वान नियमसे क्वान नियमसे करता है। तो विषय नियमसे क्वान न

ता-प्रती 'दुरि॰ "'दोबेद॰' आ०पती॰ 'दुरिस॰ भव दु॰ "उच्चा॰ पंचंत० णि॰ सं॰ णि॰ ज॰ दोबेद॰' इति पाठः । २. ता॰प्रती 'जद्द॰ जामाखं' इति पाठः ।

सिया॰ जह॰ । णामाणं सत्थाण॰मंगो । एवं [वेउन्वि॰-] वेउन्वि॰मंगो॰-देवाणु॰ । आहारदुर्गं 'ओघं । एवं ओघिरं०-सम्मादि० ।

पेश्टः मणपञ्ज० आभिणि० जह० पदे०वं० चदुणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज० रे-पुरिस०-इस्स-रदि-मय दुगुं०-देवाउ०-उचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । देवगदि०-पंचिदि०-वेउन्तिव०-तेजा० - क० - समचद्०-वेउन्जि०झंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पतत्व० रे-तस०४-विरादिङ०-णिमि० णि० तं तु० संखेजदिमागम्महियं० । आहारदुगं सिया० तं तु० संखेजदिमागम्महियं। तित्व० सिया० जह०। एवं चदुणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-इस्स-रदि-मय-दुगुं०-उचा०-पंचंत० ।

५४९, असादा० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंस०-चदसंज०-पुरिस०-भय-द०-

यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्क स्वस्थात सिष्ठकर्षके समात है। इसी प्रकार अर्थात देवातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सिष्ठकर्षके समान वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सिष्ठकर्ष कहना चाहिए। आहारक- शरीरहिकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सिष्ठकर्षक अध्यक्त समान है। इसी प्रकार अर्थात् आमिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान अवधिवर्शनी और सम्बन्दिष्ठ जीवोंके जानना चाहिए।

५४८. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आभिनिशोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवाय, उश्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, वैकिथिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वर्णवतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरूलघु चतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशवन्ध करता है। आहारकद्विकता कदाचित् वन्ध करता है और कदाचित् वन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अज्ञायन्य प्रदेशवन्ध करता है। तीर्थक्टर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार अर्थात् आभिनिवोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाछे जीवके कहे गये उक्त समिक्षक्षेके समान चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साताबेदनीय, चार सञ्बलन, परुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उश्वगोत्र और पाँच अन्तरायका जधन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवके सम्रिक्षे कहना चाहिए।

५४९. असातावेदनीयका अवन्य प्रदेशगन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह

^{3.} ता०मती 'देवाणु॰ बाहार॰ २' हित पाटः । २. ता०मती 'सम्मारि० मणु॰'' बहुसंब०' बा० मती 'सम्मारि० मणु॰''' बहुसंब०' हित पाटः । ३. ता०मती 'पेड० ितेबाक० समबदु० वेडांबि० संगो० वणग॰ थे]''''' वेवाणु॰ अगु० थ समय अंता० वणग॰ थे वेलाक० समबदु० वेडांबि० संगो० वणग० थे तेलाचु॰ मणु० थ सस्या० हित दाटः ।

देवम॰-पंचिंदि॰ -वेउच्चि॰-तेजा॰-क॰-समचदु०-वणण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्य॰-तस०४-सुमग-सुस्सर-आदे०-णिप्रि॰-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० संखेज- भागम्महि॰ । इस्स-रदि-चिर-सुभ-जस०-तित्य० सिया० संखेजदिभा०। अरदि-सौग० सिया० जह०। वेउच्चि०अंगो० णि० वं० सादिरेयं दुभागन्भ०। अधिर-असुभ-अजस० सिया० तं तु० संखेजदिभागम्भ०। एवं अरदि-सोगाणं।

५५०. देवगदि० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-इस्स-रदि-भय-दुगुं ०-देवाउ०-उचा० '-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । णामाणं सत्याण-भंगो ।

५५१. अधिर० जह० पदे०बं० पंचणा०न्छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचत० णि० वं० णि० अजह० संखेजमागन्म०। सादा०-हस्स-दि-सुभ-जस० सिया० संखेजमागन्भ०। असादा०-अरदि-सोग-असुम-अजस० सिया० जह०। एवं

द्यांनाबरण, चार संज्वलन, पुरुषेबर, भय, जुगुप्ता, देवाति, पक्कोन्द्रयज्ञाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसक्षरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंध्यान, वर्णचतुष्क, देवारावातुपूर्वी, अरात्रुक्षपुत्रकृष्क, प्रक्षस्त्रक्षात्र, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंध्यान, वर्णचतुष्क, देवारावातुपूर्वी, अरात्रुक्षपुत्रक, प्रक्षस्त विद्याचेगाति, उस चतुष्क, सुमा, सुस्वर, आदेव, निर्माण, उस्प्यांत्र और पाँच अन्तरावक नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयस्य प्रदेशक्ष्य करता है। हास्य, रति, स्थिन, सुभ, यक्षःकीर्ति और तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचिन् बन्ध करता है और कदाचिन् बन्ध नहीं करता। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजयस्य प्रदेशक्ष्य करता है जो इनका नियमसे जयस्य करता है और कदाचिन् वन्ध नदी करता। यदि वन्ध करता है तो इनका नियमसे जयस्य प्रदेशक्ष्य करता है। वेक्षियकश्ररीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे वन्ध करता है तो इनका नियमसे आपक दो अग्रिय अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य मा विद्वास्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य मा विद्वास्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य मी करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य करते तो के क्षान्य प्रदेशक्ष्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्ष्य करता है। व्यक्ति अज्ञास्य प्रदेशक्षय करता तो विद्व के समिष्ठके समान अरति और ती तो का ज्ञास्य प्रदेशक्ष्य करते वाले जीवके सिष्ठकं ज्ञानना चाहिए।

५५०. देवर्गातका जपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्ञकल, पुरुवंदर, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, उषगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जपन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी मकृतियांका मङ्ग स्थान सनिकर्यके समान है।

५५१. अस्थिर प्रकृतिका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवासा जीव पाँच झानावरण, छड् दर्फनावरण, चार संक्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका निययसे बन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशकन्य करता है। सातावेदनीय, हास्य, रित, जुभ और यशःकीर्तिक कराचिन क्याचन्य करता है और क्याचिन, बन्य नहीं करता। यदि बन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अज्ञधन्य प्रदेशकन्य करता है। असातावेदनीय, अरित, शीक, अञ्चम और अयशःकीर्तिका कवाचिन

१. आ० प्रसी 'भय दुगु' उच्चा॰' इति पाठ:।

अक्षुम-अजस० । सेसाणं तित्ययरेण सह णि० चं० णि० अजह० संखेजम:गन्म० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार० । सुहुमसंप० उकस्सभंगो ।

५५२. संजदासंजदेसु आभिणिः जहः पदेव्वं चदुणाः छदंसः सादाः अद्दर्भः पुरिसः हस्स-दि-मय-दुगुः व्येवाउव-उचाव्यंचंतः णिव बं णिव जहः । देवगव्यंचित्रः विव्यंचेत्रः णिव बं णिव जहः । देवगव्यंचित्रं वेउव्यव्यंगो व्यण्णव्यः देवाणु व्याप्यः अगुव्यः स्तर्भावः व्याप्यः साम्यद् व्याप्यः साम्यः साम

५५२, असंदेसु मूलोघं। चक्खु०-अचक्खु०-सण्णि० मूलोघं। किण्ण-गील-काउ० मूलोघं। केण कारणेण ? दब्बलेस्सा तस्स तिष्णि विभावलेस्सा परियत्तं तेण कारणेण । तित्य० जह० पदे०वं० देवगदि०४ णि० बं० णि० अजह० असंखेआगुणस्म०।

बन्ध करता है और कराचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् अध्यक्त ज्ञयन्य प्रदेशवन्ध करतेवाळे जीवके कहे गये उक्त सन्तिकर्धने समान अञ्चभ और अयशः श्रीक्षिण ज्ञयन्य प्रदेशवन्ध करतेवाळे जीवके सन्तिकर्ष जानना चाहिए। शेष प्रकृतियाँका तीधकूर प्रकृतिके साथ नियमसे बन्ध करता है जो इनका संख्यातभाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् मनःपर्यवहानी जीवांके समान संयत, सामाधिकसंयत, छेट्रोधस्थापनासंयत और परिहार-विद्युद्धिसयत जीवांमें जानना चाहिए। सून्धसान्यरायसंयत जीवांमें अपने उन्कृष्ट सन्तिकर्षके समान भक्ष है।

५५२. संयतासंगत जीवोंमें आभिनिशोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव बार ज्ञानावरण, छह दशेनावरण, सातावेदनीय, आठ कथाय पुरुषदेव, हास्य, रित, मय, जुगुप्ता, देवायु, उच्चांत्र और पाँच अन्तरावका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जचन्य प्रदेशवन्य करता है। देवति, प्रद्वोद्ध्याति, वैकिषिकरारीर, तैजतरारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्थाते, वैकिषिकरारीर आङ्गोपाङ्ग, वणंबतुष्क, देवतरवानुपूर्वी, अगुरुछधुवतुष्क, प्रशस्त विश्योगित, अत्वतुष्क, सिय आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्यु वह इनका जयन्य प्रदेशवन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। विश्व अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। देव अजयन्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। विश्व अजयन्य प्रदेशवन्य करता है विश्व क्षयान्य प्रदेशवन्य करता है। हमका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। हमका नियमसे अयन्य प्रदेशवन्य करता है। इस प्रकार समस्य करता है। इस प्रकार समस्य प्रदेशवन्य करता है। इस प्रकार इस करता है। इस प्रकार इस करता है। इस प्रवार इस करता है। इस प्रकार समस्य प्रदेशवन्य करता है। इस प्रकार इस करता है। इस प्रवार इस प्रवार विष्य स्थान स्थान

५५२. असंवतींमें मूलीपके समान भङ्ग है। चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले और संझी जीवांमें मूलीपके समान भङ्ग है। इच्छा, नील और कांपीतछेड्यावाले बीवांमें मूलीपके समान भङ्ग है। इच्छा, नील और कांपीतछेड्यावाले बीवांमें मूलीपके समान भङ्ग है। किस कारणसे १ क्यों कि जी हव्यकेड्या है उसकी तीनों ही मावछेड्यारें स्वाप्त में स्वाप्त में मावछेड्यारें स्वाप्त में स्वाप्त में मावछेड्यारें स्वाप्त में स्वा

ताव्यती, द्व्या बेस्सा ? तस्स विष्ण विभाग (व) बेस्सा इति पाठः ।

सेसाओ पगदीओ धुवियाओ परियत्तमाणिगाए असंखेजगुणाओ। किण्ण-णीलाणं देवगदि०४ जह० पदे०षं० तित्यकरं णत्यि।

५५४. तेऊए आभिणि जह० पदे०वं० चदुणा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह०। थीणगिद्धि०३ -दोवेद० - मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव-दोगो० सिया० जह०। छदंसणा०-बारसक०-अय-द० णि० वं० तं तु० अणंतमामक्मिह्यं०। पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतमामक्मिह्यं०। तिण्णिगदि-दोजादि-दोसरीर-छस्संटा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-उजो०-दोविहा०-तस०-थावर - थिरादिछयुग० '-तित्थ० सिया० तं तु० संखेजदिमागक्मिह्यं०। [तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जमप्पे०-णिम० णि० तं तु० संखेजदिमागक्म०।] एवं चदणा०-दोवेद०-पंचंत०।

५५५. णिहाणिहाए जह० पदे०बं० पंचणा०-अहुदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-

प्रदेशबन्ध करता है। क्षेत्र ध्रुव प्रकृतियोंको परावर्तमान प्रकृतियोंके साथ असंख्यातगुणा बाँधता है। मात्र कृष्ण और नीलळेड्यामे देवगतिचतुष्कका जधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके तीर्यक्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता।

५५४. पीतलेश्यावाले जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करना है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यास्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपंसकवेद, आतप और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जधन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कवाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। प च नोकषायका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजधन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, दो जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आक्नोपाक्न, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत. दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और तीर्थहुर प्रकृतिका कराचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशवन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्य करता है तो इनका नियमसे संख्यातमाग अधिक अजधन्य प्रदेशकम्ध करता है। तेजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुरुक, अगुरुलघुचतुरुक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशवन्ध भी करता है और अजधन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशवन्य करता है तो नियमसे इनका संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अधीत् आभिनिवीधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेबाठे जीवके कहे गये उक्त सन्निक्षके समान चार झानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळे जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। ५९५. निद्रानिद्राका जधन्य प्रदेशवन्ध करनेवाळा जीव पाँच झानावरण, आठ दशना-

The state of the s

१. ता०आ०प्रत्योः 'वसथावरादिङ्युग०' इति पाठः ।

प्रय-दु॰-यंचंत० णि० वं० णि० जह० । दोवेद०-सत्त्रभाक०-अहावस्दोमो० सिया० जह० । तिरिक्ष-दोजादि-इस्संठा०-प्रोरालि०वंगो०-इस्संघ०-तिरिक्षाष्ठ०-उजो०-दोविदा०-तस-यावर०-थिरादिङयुग०' सिया० तं तु० संखेजदिमागम्मदियं० । मणुसग०-मणुसाणु० सिया० संखेजदिमागम्मदियं० । जोगालि०-जेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जन-पर्न०-णिमि० णि० तं तु० संखेजदिमागम्महियं० । यथं महदंस०-मिच्छ०-सोइसक०-णवंस०-इण्णोक०-णीचा० । हत्वि"-गृरिसाणं पि तं चेव । मविर एइंदियसंज्ञनाओं णिय० । दोआउ० व वेवंगो । देवाड० कोचं० ।

५५६, तिरिक्ख० जह० षदे०बं० पंचणा०-गबरंस०-मिच्छ०-सोलसक०-मय-दगं०-णीचा०-पंचंत० णि० वं० णि० जह०। दोवेदणी०-ससमोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-

वरण, मिध्यास्त, सोलह कषाय, भय, जगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, साह नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्युक्काति, हो जाति, छह संस्थान, औदारिक-शरीर आक्रोपाक्क, छह सहनन, तिर्यक्कात्यानपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अज्ञघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका निवससे संस्थात भाग अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुषुर्वीका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका निषमसे संख्यात भाग अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसकारीर, कार्मणकारीर, वर्णचलक, अग्रह-लघचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्त वह इनका जपन्य प्रदेशवन्य भी करता है और अजयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेश-बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार अर्थात निद्वानिद्वाका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये एक सन्तिकर्षके समान आठ वर्धनावरण, मिध्यात्व, सोस्ट क्याय, नपंसक्वेद, छह नोक्याय और नीचगोत्रका जघन्य प्रवेशक्त्य करनेवाले जीवके सन्तिकर्य जानना चाहिए। स्वीवेद और परुष्येदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाछ जीवके भी वही सङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यह एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंका नियमसे प्रदेशवन्य करता है। दो आयुर्गोका जधन्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवका भक्क देवोंके समान है। तथा देवायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भक्त ओघके समान है।

५५६. तिर्बद्धातिका अघन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शना-वरण, मिष्यास्य, सीट्य कवाय, भय, जुगुष्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। हो वेदनीय, सात नोकवाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगळका कहाचित बन्ध

१. ता०आ०प्रस्थोः 'बिरादितिष्णपुग॰' इति पाठः । २. ता॰प्रती 'बीचा०३ इस्थि॰' इति पाठः । ३ ता०आ०प्रस्थोः 'संज्ञचाओं कट० । वोश्रादक' इति पाठः ।

दोविद्दा०-विरादिक्युव० सिवा० बह०। पंचिदि०-जोरासि०नेजा०-क०-जोरासि०-अंगो०-वण्यवध-विशेषकाषु०-अगु०४-उजो०-तस०४-णिमि० णि० वं० णि० जह०। एवं विशेषकाषिकंत्रो संठाणं सम्माणं मिल्हादिद्विपात्रोग्गाणं।

. १९५७. मञ्जस० जह० पदे०वं० पंचणा० उचा० गंचंत० णि० चं० णि० जह० । छदंस०-बास्सक्त-प्रसिक-मय-हुयुं० णि० वं० णि० अजह० अणंतमागन्म० । दोबेदणी०-बिरादिसिप्पयुग० सिया० जह० । चदुणोक्त० सिया० अणंतमागन्म० । णामाणं सत्याण०भंगो । एवं मञ्जसाण् ०-तित्य० ।

५५८, देवग० अह० षदे०वं० हेहा उवरि मणुसगदिभंगो । णामाणं सत्थाण०-भंगो । मणुस० सहष्यायं देवगदि० २ ।

५५९. पॅचिंदि० जह० पदे० बं० पंचणा०-ओरालि०नेजा०-क०-ओरालिअंगो०-चण्ण०४-अगु-४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० वं० णि० जह० । शीणगिद्धि०३-

करता है और कहाथिन कन्य नहीं करता। यांद बन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशकन्य करता है। पक्रोन्द्रपकारि, औदारिकश्वरीर, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, श्रीदारिकश्वरीर श्राह्मेणहा जर्णचतुष्क, तिर्वेक्षात्यानुपूर्वी, अगुरुक्षपुष्ठ, उच्चोत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्य करता है। इस प्रकार लगीत् विर्वेक्षातिका जयन्य प्रदेशकन्य करता है। इस प्रकार लगीत् विर्वेक्षातिका जयन्य प्रदेशकन्य करता है। इस प्रकार लगीत् विर्वेक्षातिका जयन्य प्रदेशकन्य करता है। उस समान मिर्याष्ट्रियसोग्य संस्थान आदि जो भी प्रकृतियाँ हैं वन सक्का जयन्य प्रदेशकन्य करतेवाळे जीवका सन्तिकर्ष जानना चाहिए।

५५७. मनुष्यगविका जपन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, वक्योप्र
और पाँच अन्तरायका त्रिवससे वन्य करता है जो इनका नियससे जयन्य प्रदेशवन्य करता है
। छद दर्शनावरण, बारह क्यांब, पुरुषदेद, भय और जुगुस्ताका नियससे वन्य करता है
जो इनका नियससे अनन्त्रभाग अधिक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। दो देदनीय ओर सिर्यः
आदि तीन सुगळका कदाधित् वन्य करता है और कदाधित् बन्य नहीं करता। यदि वन्य
करता है वो इनका नियससे अयन्य प्रदेशकन्य करता है। बार नोक्यायका कदाधित् वन्य
करता है वो इनका नियससे अयन्य प्रदेशकन्य करता है। दार नोक्यायका कदाधित् वन्य
अधिक अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। नामकर्मको प्रकृतियाँका अङ्ग स्वस्थान सन्तिकर्कके
समान है। इसी मक्स सर्वात सनुष्यगतिका जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीवके कद्दे गये
कर सिंकरर्के समान सतुष्वगत्यानुपूर्वी और तार्थक्करका प्रमन्त प्रदेशकन्य करनेवाले जीवके

५५८. देवगतिका जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीवका नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियाँका सङ्ग मुख्यागतिका जयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीवके इन प्रकृतियाँका कहे गये सन्तिकर्यके समान सङ्ग है। नामकर्मकी प्रकृतियाँका इन्हें सहस्यान सन्तिकर्यके समान है। मात्र देवानिवालका जयन्य प्रदेशकन्य मत्राव्यके होता है।

५५९ पञ्चित्त्रियज्ञातिका जघन्य प्रदेशक्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, श्रीदारिक-शरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिकश्चरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुक्ष्युचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायका नियससे वन्य करता है जो इनका नियससे जयन्य

१ ता०-आ०प्रत्योः 'दो वेट । विश्वदितिण्यवुग' इति पाठः ।

दोबेद ०-सिच्छ ०-अणंताषु० ४-इस्थि०-णर्डस०—दोगदि—छ रसंद्रध०-छ रसंव ०-दोआछ ०उज्ञो०-दोबिहा०-थिरादिळयुन ०-तिस्थ ०-दोगो० सिया० छह० । छ्रदंस०-बारसक ०भय-दुरंगु० णि० तं द्व० अणंतभागम्मिहेर्य० । पंचणेक० तिचा० तं तु० अणंतभागम्मे
हियं० । एवं पंचिदियमंगो अत्राहि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओतालि० शंगो०वज्जरि०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-वस०४-धिरादितिष्णिष्ठण०-सुमण-सुस्वर-जादे०णिमिण ति । सेसाणं तीसंसंजुत्ताणं तिस्मित्रगदिभंगो । एवं षेदच्याओ सन्वाओ
पगदीओ ।

५६०. एवं पस्माए सुकाए वि । सुकाए आभिणि० व जह० पदे ०वं० चहुणा०-पंचंत० वि० वं० वि० जह० । शोणमिद्धि०२-दोवेद०-विच्छ०-अर्णताणु०४-इत्थि०-णवंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्य०-इमग-इसस-अणादे०-दोवोद० सिया० जह० ।

प्रदेशवन्य करता है। स्यानगृद्धिप्रक, दो वेदनीय, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धोचलुष्क, स्रोवेद, न्युंतकवेद, दो गित, छह संस्थान, छह संहतन, दो आनुपूर्वी, वद्योत, दो बिहाबोगित, स्थिर आदि छह युगल, तीर्थहर और दो गोत्रका कराचित, वन्य करता है और कहाचित्त वन्य नहीं करता । यदि बन्य करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। छह दर्शनावरण, बारह कथाय, यय और जुगुत्वाका नियमसे बन्य करता है। विक् अजयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। के अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। विक् अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। यदि अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। विक अजयन्य प्रदेशवन्य करता है। इसी प्रकार प्रवेदिक्यविक स्थान विक स्थानकर्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवक स्थानकर्य प्रदेशवन्य करतेवाले जीवक स्थानकर्य प्रवेद्यावन व्यवस्थानिक स्थानकर्य प्रवेद्यावन व्यवस्थान अज्यवस्थान अज्यवस्थान करतेवाले जीवक स्थानकर्य प्रवेद्यावन व्यवस्थान व्यवस्थान अज्यवस्थान अज्यवस्थान अज्यवस्थान व्यवस्थानिक स्थानकर्य प्रवेद्यावन व्यवस्थान विक स्थानकर्य करतेवाले जाना चाहिए। तीस संयुक्त प्रकृतियांको अञ्च तिर्वस्थानिक स्थानकर्य व्यवस्थान व्यवस्थान व्यवस्थान व्यवस्थान व्यवस्थान विक स्थानकर्य व्यवस्थान विक स्थानकर्य करतेवाले ज्यान च्यान विक स्थानकर्य करत्याविक स्थान विक स्थानकर्य करतेवाले करत्यावले स्थान व्यवस्थान विक स्थानकर्य करतेवाले ज्यान विक स्थानकर्य करत्यावले करत्यावले स्थान विक स्थानकर्य करत्यावले कर्यावले व्यवस्थान विक स्थानकर्य करत्यावले कर्यावले विक स्था

५६०. पीतछेरवावाडों के समान पद्मछेरवावाडे और शुक्खछेरवावाडे जीवोंमें भी छे जाना चाहिए। मात्र शुक्छछेरवावाडो जीवोंमें आभिनावेषिक झानावएणका जमन्य प्रदेशमण्य करनेवाडा जावन वार झानावरण और पाँच मन्तरावका नियमसे चन्च करता है तो इनका नियमसे जपन प्रदेशकण्य करता है। स्वानगृद्धिकिक, दो वेदनीय, मिण्यात्व, जननाजुकची-चपुकः, क्षीवेद, गपुंसकवेद, पीच संख्यान, पीच संहमन, अप्रसत्त विद्यायोगित, दुर्मग, दुःसदर, अनादेय और दो गोत्रका कराचित्त वन्च करता है और कराधित वन्च महाव करता। यहि सन्य करता है तो इनका नियमसे अपन्य प्रदेशकण्य करता है। छह दूरीनावरण, वारह कथाय,

^{3,} ता०आ०प्रत्योः णिमिण चि । सेसाणं ठीसं संज्ञुणणं 'तिसिच्छपादिमंबो । देवगादि जहरू परेठ वंठ वेदित्यस्वर देविष्य अंगो - देवाणुर उद्याठ वायांतराचं वंचंदर विरु वंश पिर जहरू । सेसाबो णामपगरीधो संस्त्रेजभागस्मिदियं । एवं गेदायाओं हित पाठः । २. ता०प्रती 'शुक्काण् वि । आमिणिर' इति पाठः ।

छदंस - बास्सक - भव-दुसुं - बि॰ बं - बि॰ तं तु - अर्णतभागम्महियं । पंचणोक - सिया • तं तु - अर्णतभागम्महियं । दोगदि दोसरीर समयदु - दोअंगो - बजरि - दोआणु - पस्तकि वि-विराहितिष्णसुब - समय सुरसर-आदे - तिरये - सिया ॰ तं तु ॰ संखेज-भागम्महियं । पंचिति • तेजा - कं न्यण्य ० ४ अगु ० ४ तत्व ० ४ - णिमि ॰ णि ॰ तं तु ० संखेजभागम्महियं । पंचिति • तेजा - कं न्यण्य ० ४ अगु ० ४ तत्व ० ४ - णिमि ॰ णि ॰ तं तु ० संखेजभागम्महियं । प्योमेदेण कमेण भेदन्तं ।

५६१. मबसिद्धिया० ओषं । देदगे आभिणिश्मंगो । उनसमस० ओषिश्मंगो । णनरि देवगदि०४-आहारदुग० घोलमाणगस्स याओ पगदीओ आगच्छंति ताओ असंखेजगु० ।

५६२. सासचे आभिणि० जह० पदे०षं चदुणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-छण्णोक०-मणुस०-मणुसाणु०-उज्ञो०-दोगोद० सिया० जह०। सेसाओ णामपगदीओ' णि० तं० तु० सिया० तं तु०

भय और जुगुष्पाका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त भाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका जयन्य प्रदेशबन्ध करता है और कर्षाचित्र कथ्य नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका जयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। यो गित, देश रारोर, समन्तुरस्त स्यान, दो आङ्गीयाङ्ग, कर्ष्यक्षनामा अधिक अजवन्य प्रदेशबन्ध करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। विद अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका क्रिया भाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका विवससे सम्ब करता है। क्रिन्ध इनका क्रिया भाग अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका जयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका विवससे सम्ब करता है। व्यवसन्य अवस्थव अवसन्य अदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका विवससे सम्ब करता है। क्रिन्ध इनका क्रिया समा अधिक अजयन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रिन्ध इनका विवससे सम्ब करता है। क्रिन्ध इनका विवससे सम्बा विवससे सम्ब करता है। क्रिन्ध अजयन्य प्रदेशकन्य करता है। क्रिन्ध अजवन्य व्यवस्थ करता है। क्रिन्ध अज्यन्य अवस्थ करता है। व्यवस्थ करता है। क्रिन्ध अजवन्य व्यवस्थ करता है। क्रिन्ध अज्यन्य अवस्थ करता है। क्रिन्ध अज्यन्य अवस्थ करता है। क्रिन्ध अज्यन्य अवस्थ करता है। क्रिन्ध अज्यन्य करता है। क्रिन्ध करता है। क्रिन्ध अज्यन्य अवस्थ करता है। क्रिन्ध करता ह

६१. अरुपीमें ओपके समान भङ्ग है। देशकसम्यग्दष्टि जीवोंमें आभिनिवीधिकहानी जीवोंके समान भङ्ग है। उपरामसम्बग्दष्टि जीवोंमें अवधिहानो जोवोंके समान भङ्ग है। इनमें इतमें विशेषवा है कि चोलमान योगसे वैंपने नाली देवगतिचतुष्क और आहारकहिकके साथ जो प्रकृतियाँ आती हैं वे नियमसे असंस्थानगुणे प्रदेशबन्धके। खिए हुए होती हैं।

4६२. सासादनसम्बन्धिं जोवोंमें आभितिशोधिक झानावरणका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाला जीव पार झानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह क्याय, भय, जुगुप्सा और पॉच अन्तयायका नियमसे बच्च करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। दो देवनीय, छः नोक्चाय, मनुष्याति, मनुष्यारवानुष्वी, उद्योत और दो गोत्रका कर्ताचित बन्ध करता है और क्हापित् बन्च नहीं करता। विदे बन्च करता है तो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशवन्य करता है। क्षेच नामकर्मकी जो प्रकृतियाँ नियमसे बँचती हैं उनका जपन्य

१. ता॰प्रती 'सेसदि नामपगर्दाधो' इति पाठः ।

संखेजदिभागन्भः । एवं ' णेदच्वं । दोआउ० णिरयमंगो । देवाउ० पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणमंगो ।

५६३. सम्मामि० आमिणि० जहर पदेवं चतुणा०-छदंसणा०-वाससक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-उचामो०-पंचंत० णि० वं० णि० जहरू। दोवेद०-चदुणोक०-देवगदि०४ सिया० जहरू। मणुस०-मणुसाणुर्वे सिया० जहरू। पंचिदियादि याव णिमिण चि णि० तं तुरू संखेजदिमागन्महियं०।

५६४. देवगदि० जह० पदे०वं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-अय-दुगुं०-उचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० जह०। पंचिंदियजादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० संखेजभागन्महियं। वेउन्वि०-वेउन्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह०। सन्वाओ णामपगदीओ मणुसगदि-

प्रदेशवन्य भी करता है और अज्ञयन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। तथा जो करता है तो उनका निवससे संख्यात भाग अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है। तथा जो कदाचित् वंधती हैं और कदाचित् नहीं वँधती उनका भी उपयम प्रदेशवन्य करता है जो उनका कोरा अध्यम्य प्रदेशवन्य करता है तो उनका जोरा अध्यम्य प्रदेशवन्य करता है तो उनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करता है तो उनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अज्ञयन्य प्रदेशवन्य करती है। इस प्रकार आगे भी ले जाना चाहिए। दो आयुआंका ज्ञयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जोवका सन्निकर्य नारांक्योंके समान है। देशयुक्ता ज्ञयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जोवका सन्निकर्य प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जोवका सन्तिकर्य प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जावका सन्तिकर्य प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जावका सन्तिकर्य प्रदेशवन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जावका सन्तिकर्य करावले जावका सन्तिकर्य सन्तिकर्य सन्तिकर्य सन्यावकर्य सन्तिकर्य सन्ति

५६२. सम्यागमध्यारष्टि जीवांमें आभितिवोधिक ज्ञातावरणका जधन्य प्रदेशवन्य करतेवाला जीव चार ज्ञातावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्ता, उष्ट्यांत्र और पाँच अनत्तायका निवससे वन्य करता है जो इनका निवससे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। यो वेदनीय, चार नोकपाय और देवगितजुरुकका कराचित्त पत्य करता है और कराचित्त वच्छ तही करता। यदि वन्य करता है तो इनका निवससे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगर्थानुपूर्वीका कराचित्त वन्य करता है और कराचित्त वन्य करता है। यदि अच्छा है तो इनका निवससे जघन्य प्रदेशवन्य करता है। एक्कें निवस्त वन्य करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अच्छा अध्याप्त प्रदेशवन्य भी करता है। यदि अच्छा अधन्य प्रदेशवन्य भी करता है।

पर्दर्ध देवनातिका जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळा जीव पाँच क्षानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कथाय, पुरुषदेद, सय, जुगुस्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जयन्य प्रदेशक्य करता है। दो बेदनीय और चार नोक्शवाका कराणित्र बन्ध करता है और कदाचित्र वन्ध करता है। दो बेदनीय और जा कि इनका क्रियास करता है। पक्षेत्रियज्ञातिसे लेकर निर्माण तक की प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो इनका नियमसे संख्यातमा। अधिक अवधन्य प्रदेशक्य करता है। पक्षेत्रक्यकारा अधिक अवधन्य प्रदेशक्य करता है। है। विकिधिकरारीर, चौक्रियकरारीर आक्रोपाक्ष और देवगाव्यानुवर्षका विसमसे वन्य करता है। विकिधिकरारीर, जो इनका नियमसे करता है। सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका सङ्ग

१. ता॰प्रती 'तं तु॰ संबेज॰मा॰ एवं' इति पाटः । २. ता॰प्रती 'जह॰ मणुसाणु॰' इति॰ पाटः ।

मंगो । देवसदि०४' मोत्त्व ।

५६५. सर्ष्णि० मेणुसभंगो । असर्ष्णि० तिरिक्खोधं । शवरि बैउव्वियस्ककः जोषिणिमंगो । आहार० ओघं । अणाहार० कम्महगर्मगो ।

एवं जहण्णपत्थाणसण्णिकासं समत्तं।

एवं सिणकासं समत्तं।

भंगविचयपरूवणा

५६६, णाणाजीवेहि भंतविचयं दुविधं-जहण्णयं उकस्सयं च । उकस्सए पगदं । तत्य इमं अहुपदं-मूलपगदिभंगो । सन्वपगदीणं उकस्साणुकस्सं मूलपगदिभंगो । तिष्णाजाउ ० उकस्साणुकस्सं अहुमंगो । एवं जोधभंगो तिरिक्खोपं कायजोगि-ओरालि०-ओरालिपमि०-कम्मइ०-गानुंग०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंक० - अचस्तु० - किण्ण०-णील०-काउ०-मवसि०-अम्मविक-भिच्छा०-अस्मिण्-आस्त्राहरू०-अणाहार्ग चि । णवरि ओरालिपमि०-कम्मइ०-आणाहार् देवगदिपंचग० उक्क अनुक अहुभंगो ।

मनुष्यगतिके समान है। मात्र देवगतिचतुष्कको छोड़ देना चाहिए।

4६4. संझी जीवोंमें मतुष्योंके समान भक्त है। असंझी जीवोंमें सामान्य तिर्वञ्चाके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रिविकष्टक्का भक्त पञ्चोन्त्रिय तिर्वेख्य योनिनी जीवोंके समान है। आहारक दीवोंमें ओषके समान भक्त है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाय-योगी जीवोंके समान भक्त है।

> इस प्रकार जघन्य परस्थान सक्षिकर्ष समाप्त हुआ । इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

भङ्गविचयप्रस्पणा

५६६. नाना जीवॉकी अपेक्षा मङ्गिवचय दो प्रकारका है—जयन्य और उस्कृष्ट । उसके वह स्व अधेपद है—जो मुलप्रकृतिके समय कहे गये अधेपद के अनुसार है। सब गङ्गितंबोंका उस्कृष्ट भङ्गांवचय और अनुस्कृष्ट भङ्गांवचय मूलप्रकृतिके मङ्गके समान है। तीन आयुआंके उस्कृष्ट और अनुस्कृष्ट आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार ओवके समान सामान्य तिर्वेक्षामें तथा कावयोगी, औदारिक विश्वकाययोगी, कार्मण्याच्योगी, त्रांतकवेदी, कोधादि चार कराववाले, मत्यकाती, कुलाकाती, असंयत, अचक्रुद्रशैनखाले, कृष्णकेदरावाले, नोटलेदिया के सामान्य तिर्वेक्षामें तथा कावयोगी, कार्मण्याच्योगी, स्वर्यक्राव्योगी, कार्मण्याच्योगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, और अनाहारक जोवॉक्षे हे के वीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, और अनाहारक जोवॉक्षे हे के वीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, और अनाहारक जोवॉक्षे हे के वीदारिकमिश्रकाययोगी, कोर्मणकाययोगी, और अनाहारक जोवॉक्षे हे के विदारिकमिश्रकाययोगी, केर्मणकाययोगी, कोर्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, केर्मणकाययोगी, केर्मणकाययोगी, कोर्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कार्मणकाययोगी,

विश्वेषार्थ—यहाँ सब बत्तर प्रकृतियोंके व्यक्तष्ट और अनुकृष्ट प्रदेशमन्त्र करनेबाळे जीवोंके भङ्गांका संकलन किया गया है। इस विषयमें यह अर्थपद है कि जो जिस प्रकृतिका व्यक्तप्ट प्रदेशकन्य करते हैं वे वस समय वस प्रकृतिका अनुकृष्ट प्रदेशकन्य नहीं करते। तथा जो जिस प्रकृतिका अनुसरह प्रदेशकन्य करते हैं वे वस समय वस प्रकृतिका व्यक्तप्ट प्रदेशकन्य नहीं

१. ता०वती 'मणुसगदिभंगो देवगदि०४'इति याटः ।

५६७. निरम्सु सम्बपनदीणं मूलप्यदिशंगी। एवं सम्बपुदवीणं। संखेज-असंबैजगसीणं विस्पगदिशंगी। नवरि मणुस०अपज्ञ०-वेउन्वि०श्रि०-जाहार०-प्रि०-अवगद०-सुदुम०-उवसम०-सासण०-सम्मासि० सन्वपगदीणं अद्वर्शगी।

करते । इस अर्थपदके अनुसार उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा सब उत्तर प्रकृतियोंके भङ्ग छाने पर वे तीन भक्त प्राप्त होते हैं—सब उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा ? क्याचित सब जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले नहीं होते। २ कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले नहीं होते और एक जीव उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला होता है । ३ कदाचित अनेक जीव उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करवाले नहीं होते और अनेक जीव उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाछे होते हैं। इस प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी मुख्यतासे ये तीन भङ्ग होते हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा भङ्ग लाने पर ये तीन भक्त प्राप्त हीते हैं-१ कदाचित सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं। २ कदाचित अनेक जीव अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं और एक जीव अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला नहीं होता। ३ कदाचित् अनेक जीव अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्य करनेवाले होते हैं और अनेक ज व अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले नहीं होते । इस प्रकार अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्यकी अपेक्षा ये तीन अक होते हैं। मतप्रकृतिप्रदेशबन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके ये ही तीन-तीन भद्ग प्राप्त होते हैं, इसलिए यहाँ उसके समान जाननेकी सूचना की है। ओघसे यहाँ अन्य सब प्रकृतियोंके तो ये सब भक्क बन जाते हैं मात्र तीन आयु अर्थात् नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इसके अपवाद हैं। कारण कि इन आयओंका बन्ध कर्दाचित होता है, इसलिए बन्धावन्ध और एक तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा इनके उत्क्रष्ट और अनुत्रृष्टके आठ भक्न होते हैं। यथा- १ कदाचित एक जीव अत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करता है। २ कदाचित एक भी जीव उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करता। ३ कटाचित नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं । ४ कदाचित नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते । ५ कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करता । ६ कदाचित एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध नहीं करता और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करते हैं। ७ कटाचित एक जीव उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और नाना जीव उस्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते । ८ कदाचित नाना जीव चत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते। इस प्रकार तीनों आयुओंके एस्कृष्ट प्रदेशबन्धका विधि निषेध करनेसे ये आठ भक्त होते हैं। इसी प्रकार अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्धको मुख्य कर आठ भक्त कहने चाहिये। यहाँ सामान्य तिर्येश्व आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसकिए उनकी प्ररूपणा ओधके समान जाननेकी सुचना की है। मात्र जिस मार्गणामें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता हो उसीके अनुसार वहाँ भक्कविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिए। किन्त औरारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक मार्गणामें देवगतिपद्मकका बन्ध कदाचित एक या नाना जीव करते हैं और कदाचित नहीं करते. इसिक्क्ए यहाँ भी पर्वोक्त प्रकारसे उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट प्रदेशबन्धके आठ भक्न होते हैं।

५६७. नार्राक्योंमें सब प्रकृतिबाँके मुख प्रकृतिके समान मङ्ग होते हैं। इसी प्रकार सब प्रविविदांमें जानना चाहिये। संख्यात और असंस्थात संख्याताओं अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें नार्राक्रवांके समान भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मसुष्य अपवीत, वैकिषिकमिश्रकाययोगी, आहारकसिश्रकाययोगी, अपरावदेदी, सूचस-साम्परावस्वत, उपज्ञसमस्वत्वक, साम्परावस्वत, उपज्ञसमस्वत्वक, साम्परावस्वत, उपज्ञसमस्वत्वक, साम्परावस्वत, आठ मह होते हैं।

विद्येष्ट्य — नार्रोक्सोर्मे सब उत्तर प्रकृतियोंका विचार बपनी अपनी मूबध्कृतिके अनुसार जाननेकी सचना की है सो इसका यही अभिप्राय है कि जिस प्रकार आवक्सीको ५६८. रहंदिय-बादर-सुदुम-पञ्जनापञ्जनः सम्बयमदीणं उक्तः अणुः अत्यि वंचना य अवंचना य । मणुसाउः ओषं । एवं पुदनि०-आउः-तेउः-वाउः तेसि च बादर-पादरअपञ्ज-सञ्बसुदुम-पञ्जनापञ्जनयाणं च । सम्बवणप्यदि-णियोदः-वादर-सुदुम-पञ्जनापञ्जनयाणं च । सम्बवणप्यदि-णियोदः-वादर-सुदुम-पञ्जनापञ्जनयाणं वादरवणप्यदि-पियोदः-सिसाणं किरयमंगो । सेसाणं किरयमंगो ।

कोडकर सब सल प्रकृतियोंके उरकृष्ट और अनुरुकृष्टकी अपेक्षा तीन-तीन भक्क होते हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानने चाहिए। तथा आयक्रमेका बन्ध कादाचित्क है, इस्रिक्ट इसकी अपेक्षा मूळ-प्रकृतिके उत्कार और अनुस्कारका आश्रय कर जिस प्रकार आठ-आठ भङ्ग होते हैं उसी प्रकार यहाँ तिर्यक्राय और मनुष्यायकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग जानने चाहिए। इन भङ्गोंका खलासा पहले कर आगे हैं। यहाँ सातों प्रशिवियोंने तथा संख्यात संख्याताली और असंख्यात संख्याबाळी अन्य मार्गणाओंमें भी यह व्यवस्था वन जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा सामान्य नारिकयोंके समान जाननेकी दुचना की है। मात्र मनुख्य अपर्याप्त आदि जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं उनमें सब प्रकृतियोंके उस्कृष्ट और अनुत्कृष्टकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग होते हैं, क्योंकि इन मार्गणाओं में कदाचित कोई जीव होता है और कदाचित कोई जीव नहीं होता। यदि होता है तो कदाचित एक जीव होता है और कदाचित नाना जीव होते है। इसी प्रकार सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा भी बन्धायन्थ तथा एक और नाना जीवांकी अपेक्षा विकल्प बन जाते हैं, इसलिए उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टकी अपेक्षा आठ-आठ सङ्ग कहे हैं। यहाँ विशेष बात यह कहनी है कि यद्याप अपगतवेद मार्गणा निरन्तर होती है पर इसका यह नैरन्तर्य संयोगकेवली गुणस्थानको अपेक्षासे ही है। किन्त बन्धका विचार दसवें गणस्थान तक ही किया जाता है, इसलिए दसवें गुणस्थान तक तो यह भी सान्तर मार्गणा है, अतः यहाँ पर इसकी भी अन्य सान्तर मार्गणाओंके साथ परिगणना की है।

पहेंट. एकेन्द्रिय, बादर और सुद्ध तथा बादर और सुद्धोंके पर्याप्त और अपयोप्त इनमें सब प्रकृतियोंके एक्क्स और अनुक्कस पर्यरावि बन्धक जोव भी हैं। सात्र मनुष्यायुक्त भक्त ओपके समान है। इसी प्रकृत प्रियोक्त गिक्क , जककाधिक, असिकायिक और बायुक्तायिक जीव तथा इनके बादर और बादर अपयोप्त तथा सब सुद्ध और इनके पर्याप्त कीर अपयोप्त जीवार सन सुद्ध और अपयोप्त जीवार का स्वाप्त कीर अपयोप्त जीवार के स्वाप्त का स्वाप्त का स्वाप्त कीर अपयोप्त जीवार का स्वाप्त का स्वा

 ५६९, जहण्णए पगदं । तं चैव अहुपदं—मृत्वपगिदमंगो । ओषेण तिण्णिआउ०-वेउव्वियञ्च०-आहार०२-तित्य० जह० अजह० उकस्समंगो । सेसाणं सञ्वपगदीणं ज० अज० रे अरिव बंघगा य अवंघगा य । एवं ओघमंगो तिरिक्छोघो सञ्वएहंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव वादरअपज्ञत-सञ्बसुहुप०-सञ्ववणफादि-णियोदाणं बादरपचे० तस्सेच अपज्ञ० कायजोगि-ओग्रालि०-ओग्रालि०कि-कम्मह०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्तु०-किण्ण०-णोल०-काठ०-अवसि०-अन्भवसि०-िमच्छा०-असण्णि०-आहार-अणाहारगं ति। णवि ओग्रालि०िम०-कम्मह०-अणाहार० वेवग०पंचग० उकस्पर्मगो । सेवाणं सञ्बेधि उकस्तमंगो ।

एवं मामाजीवेहि भंगविचयं समत्तं है।

और उनके अपयोप्तक जीबोमें भी यही व्यवस्था बन जाती है, इसिक्ट उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सुचना की है। इस श्रकार यहाँ एकेन्द्रियादि अनन्त संख्याबाळी और असंख्यात संख्याबाळी जितनी मागेणाएँ गिनाई हैं उनके सिवा संख्यात और असंख्यात संख्यान बाली जिन मागेणाओंका अळगसे उल्लेख नहीं किया है उनमें सब प्रकृतियोंके सब भङ्ग नारिकोंके समान जाननेकी पुन: सुचना की है।

५६९. जधन्यका प्रकरण है। मूळप्रकृतिके समान नहीं अर्थपद है। भोषसे तीन आयु, विकिष्ठपटक, आहारिक्व भीर ती खेडूर प्रकृतिके जधन्य और अजधन्य प्रदेशक्यका भङ्ग उल्कुष्ट अनुगोगद्वारके समान है। होप सब प्रकृतियोंक जधन्य और अजधन्य प्रदेशके व्यक्त जाते हैं और अवस्थ्य प्रदेशिके व्यक्त जोते हैं अर्थ अर्थक जोते भी हैं। होप प्रकृतियोंक व्यक्त प्रकृति अर्थक के प्रकृतियोंक अर्थक जीत हैं अर्थ अर्थक जोते भी हैं। होप प्रकृतियोंक समान सामान्य विश्वक्त सब प्रकृतियों के भाविक बादर अपयोग्न और सब सूक्त जीत, सब वनसर्पतिकाशिक आर्थक साम त्रियों, साद प्रस्थेक बनस्पति काशिक, कायरागी, अर्थातिक स्थानिकाशिक आर्थकों, कामें प्रकृतियों के स्थानाती, अर्थातिक स्थानिकाशिक अर्थकां, कायरागी, अर्थकां, कायरागी, अर्थकां, कायरागी, अर्थकां, कायरागी अर्थकां, अर्थकां, अर्थकां, कायरागी कार्यकां स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक अर्थकां, अर्थकां, अर्थकां, अर्थकां, कायरागी अर्थकां, अन्तिहां स्विकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिकाशिक स्थानिकाशिकाशिकाशिकाशिक स्थानिकाशिकाशिकाशिक स्थानिकाशिकाशिकाशिकाशिका

१. आ॰मतौ 'सम्बयगदीखं चळ॰' इति पाटः । २. ता॰आ॰मरपोः 'बाड० घोषो तेसि चेव' इति पाटः । २. ता॰मतौ असम्बि॰ आहारेण बजाहारगं इति पाटः । २. ता॰मतौ 'पृवं बाजाबीबेहि संगविषयं समसं' इति पाटो नास्ति ।

भागाभागपरूवणा

५७०. भागाभागं दुविघं —जह० उक्तस्सयं च। उक्तस्सए पगदं०। दुवि०-ओषे० आदे०। ओषे० सव्वपगदीणं उक्तस्सपदेसबंघगा जीवा सच्वजीवाणं केविडियो भागो १ अर्णतमागो । अणु० सव्वजी० अर्णता मागा । जाति तिष्णिआउ०-वैउव्वि०छ०-तित्थ० उक्त० पदे०वं० सव्वजी० केव० १ असंखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजी० केव० १ असंखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजीव केव० १ असंखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजीवाणं केव० १ संखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजीवाणं केव० १ संखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजीवाणं केव० १ संखेजदिमागो । अणु० पदे०वं० सव्वजीवाणं केव० १ संखेजा भागा । एवं ओघमंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओराखि०-ओराखि०भि०-कम्मइ०-गवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-

जीब निरन्तर पाये जाते हैं इसिंछ" इनके भङ्गविचयका विचार स्वतन्त्र रूपसे किया है। यहाँ मुक्कमें सामान्य तिर्वेञ्ज भावि अन्य जितनी मार्गणाएँ मिनाई हैं उनमें यह औषप्रस्पणा अिषक व जाती है, इसिंछए उनकी प्ररूपणा आंपके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारकमांगणामें वैक्रियिकच्छाकका जपन्य प्रदेशकच्छाके अवस्प प्रदेशकच्छाके अवस्प प्रदेशकच्छाके अवस्प प्रदेशकच्छाके अवस्प प्रदेशकच्छाके कार्यक्र प्रदेशकच्छाके कार्यक प्रदेशकच्छाके कार्यक प्रदेशकच्छाके कार्यक प्रदेशकच्छाके समान जावि ही सहित्य दहीं इनके उन्हण्ड समान जमन्य और अजयन्य प्रदेशकच्छाके समान जानकी सुचना की है। यहाँ जिन मार्गणाओंम इस प्ररूपणा को उन्हण्डके समान जानकी सुचना की है। यहाँ जिन मार्गणाओंम इस प्ररूपणा को उनके सिवा अन्य जितनी मार्गणाई प्रेय रहति हैं उनमें उन्हण्डके समान अन्न है ऐसा कहनेका यहाँ तार्पर्य है कि जिस प्रकार उनकृष्ट अस्रपणाके समय इन मार्गणाओंमें तीन आयुओंके रिवा कोष सब प्रकृतियोंके उन्हण्ड और अनुत्कृष्ट प्रदेशवरूषकी अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं और तीन आयुओंके रहता वीर अनुत्कृष्ट प्रदेशवरूषको अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं वीर तीन आयुओंके रहता चार्य है। स्वर्ष्णा अनुतकृष्ट प्रदेशवरूषक अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं वि वीर वीर अनुतकृष्ट प्रदेशवरूषक अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं वि वीर वीर वान वान्ति होता चार्य होता वीर अनुतकृष्ट प्रदेशवरूषक अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं वि वीर वान चार्यक वि वि वि स्व क्षा कार्यक वि अनुतकृष्ट प्रदेशवरूषक अपेक्षा आठ आठ अन्न कहे हैं वि वि वा वान्ति वा सिंक वि स्व के वि वीर वीर वीर वीर वान वान्ति होता वान्ति वि स्व के वि वीर वीर अनुतकृष्ट अपेर अनुतकृष्ट अपेर वान्ति वान्ति

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभागप्ररूपणा

१. ता॰भा॰प्रस्थोः 'श्रवांतभागा' इति पाटः ।

अचक्सुः-िकष्णः - णीलः-काउ०-भवसि०- अम्भवसि०-मिच्छा० - असिण्णः - आहार०-अणाहारगः चि । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचगं आहारसरीर-भंगो । एवं इदरेसि सच्वेसि । असंखेआरासीणं ओघं देवगदिभंगो । एवं संखेआरासीणं तैसि आहारसरीरभंगो कादञ्जो ।

५७१. जहण्णए पगरं। दुनि०-ओषे० आदे०। ओषे० आहारदुगं' उकस्समंगो। सेसाणं सम्बपगदीणं जह० पदे०बं० सम्बजी० केन० मागो ? असंखेज-भागो। अजह० पदे०बं० केनडि० ? असंखेजा भागा। एवं यान अणाहारग त्ति

अचधुरक्षनी, कृष्णलेरमाबाले, नाललेरमाबाले, कापोतलेरमाबाले, भन्य, अमल्य, मिध्याद्दार्ष्ट असंब्री, आह्रारक और अनाहारक जीवों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जीदारिक-मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवनतिपक्षकका भङ्ग आह्रारक्षारिकारिक समान जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्य सव मार्गणाओं जानना चाहिए। उसमें भी असंस्थात संस्थावाली मार्गणाओं में ओघसे कहे गये देवगतिके समान भङ्ग जानने चाहिए। तथा इसी प्रकार जो संस्थात संस्थावाली मार्गणाएँ हैं उनमे आहारकक्षरीरके समान भङ्ग जानने चाहिए।

विश्लेषार्थ-सामान्यसे नरकायु, मनुष्यायु और देवायु तथा वैक्रियिकषट्क और तीर्थक्य प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यात हैं, इसिंखए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यातवं भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाळे जीव असंख्यात बहुभाग-प्रमाण कहे हैं। आहारकद्विक के बन्ध क जीव संख्यात हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने-वाले जीव संख्यातवे भागप्रमाण और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं। तथा इनके सिवा अन्य जितनी प्रकृतियाँ शेष रहती हैं उनके बन्धक जीव अनन्त हैं। उसमें भी उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपनी अपनी अन्य योग्यताके साथ संज्ञी जीव ही करते हैं। शेष सब अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण और अनुरक्छ प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण कहे हैं। यहाँ सामान्य तिर्यक्क आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें अपनी अपनी बन्धकी प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके अनुसार यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनका भोगाभाग ओघके समान जाननेकी सचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें वैकियकपद्मकका उत्कृष्ट और अनत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले कुछ जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें इन पांच प्रकृतियोंका भागाभाग आहारकहारीरके कहे गये भागाभागके समान जाननेको सूचनाको है। इसके सिवा एकेन्द्रिय आदि अन्य जितनी मार्गणाएं हैं उनमें अपनी अपनी बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका सङ्क ओचके समान है। मात्र असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओं में ओघ से देवगतिके समान भक्न है और संख्यात संख्यावाळी मार्गणाओं में आहारकशरीरके समान भक्त है यह स्पष्ट ही है।

५७१. जघन्यका प्रकाल है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आहारिकद्विकचा भक्क उक्कष्टके समान है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशकम्य करने-बाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातव भागप्रमाण हैं। अज्ञान्य प्रदेश-वन्य करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुमागप्रमाण हैं। इसी

१. आ०पती 'ओघे» उक्क० आहारदुर्ग' इति पाठः ।

णेदब्वं । णवरि ए सिं संखेजरासी ' तेसिं आहारसरीरअंगो कादब्बो । एवं भागामामं समत्तं ।

परिमाणपरूवणा

५७२, परिमाणं दुवियं— बहण्णयं उकस्सयं च । उक्कः पगदं । दुवि० — ओघे० आदे० । ओघे० तिष्णिआउ०-वेडिवयङ० उक्स्साणुकस्सपदेसमंघगो केविडयो १ असंखेजा । आइएदुगं उक्क० अणु० केव० १ संखेजा । तित्य० उक्क० पदे०वं० केव० १ संखेजा । अणु० केव० १ असंखेजा । सेसाणं उक्क० केव० १ असंखेजा । अणु० केवि० १ अणंता । णवरि पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-उचा०-पंचंत० उक्क० पदे०वं० केवि० १ संखेजा । अणु० केवि० १ अणंता ।

प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिनकी राशि संख्यात है उनमें आहारकशरीरके समान भक्त है।

विशेषार्थ पहाँ लोपसे असंख्यानका भाग देने पर एक भागप्रमाख जयन्य प्रदेश-बन्य करनेवाळींका प्रमाण आता है और बहुभागप्रमाण अजयन्य प्रदेशबन्य करनेवाळोंका प्रमाण आता है, इस्तिल्प आहारकद्विकको छोड़कर शेष सब प्रकृतिय की अपेक्षा असंख्यात भागप्रमाण जयन्य प्रदेशबन्य करनेवाळे जोव कहे हैं और असंख्यात बहुमाग्यमाण अजयन्य प्रदेशबन्य करनेवाळे जीव कहे हैं। सात्र आहारकद्विकका बन्ध करनेवाळे जीव ही संख्यात होते हैं, इसिल्प इनकी अपेक्षा भागाभाग उत्कृष्टक समान जाननेकी सूचना की है। नत्कातिसे लेकर अनाहारक तक अनन्त संख्यावाळी और असंख्यात संस्थावाळी जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें ओषके समान जाननेका सूचना की है। तथा जो संख्यात संख्यात संख्यात मार्गणाएँ हैं उनमें आहारकप्रारीरकी अपेक्षा कहा गया भागाभाग हो घटित हो जाता है, इसिल्प उनमें सब प्रकृतियाँके भागाभागको आहारक प्ररीरेके समान जाननेका सूचना की है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ । परिमाणप्ररूपणा

५७२. परिणाम दो प्रकारका है—जंबन्य और जरह हा उ तह हका प्रकरण है। निर्देश दो प्रधारका है—जोव और आदेश। ओबसे तीन आयु और बैकियिक छहका बरहा अनुरुष्ठ प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। आहारकिकका उत्कृष्ट और अनुरुष्ठ प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। तींध्रहूर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। तींध्रहूर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। अनुरुष्ठ प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। श्रेष सब प्रकृतियाँका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। श्रेष सब प्रकृतियाँका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? अस्यत्व हैं। श्रेष स्थापका करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। श्रेष सब प्रकृत्य प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं। हो प्रकृत्य करनेवाले जीव कितने हैं। अनुरुष्ठ प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं।

१. ता॰प्रती 'प् संसेश्नरासी॰' इति पाडः । २ ता॰प्रती 'पूर्व भागाभाग' समत्तं' इति पाडो नास्ति ।

एवं बोषभंगो तिरिक्खोषं कायजोगि-ओरालि०ओरालि०मि०-कम्मइ '०-गर्युत्त०-कोषादि
४-मदि०-सुद०-असंज०-अवक्खु ०-किष्ण०-णील०-काउ०-मवसि०-अन्मवसि०-मिच्छा०असण्णि०-आहार०-अणाहारम चि । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ ०-जणाहारमेसुदेवगदिपंचग० उक्क० अणु० के० १ संखेजा । पसत्यवि०-सुमग-सुस्सर-आदे० उक्क० पदे०
मं० के० १ संखेजा । अणु० केव० १ अणंता । सेसाणं च विसेसो जाणिदच्यो
सामिचेण ।

समान सामान्य तिर्युक्क, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकिसश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, नर्जुसक्केदी, कोधादि चार क्यायवाले, सरवहाती, श्रुताहाती, असंयत, अचकुं दर्शनी, क्रुराल्ड्याचाले, नीलल्ड्याचाले, कार्याल्ड्याचाले, भव्य, अभव्य, सिध्याइष्टि, असंही, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिक-सिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवातिराक्कका चल्कु और अनुत्कृष्ट प्रदेशकच करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुत्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशकच करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशकच्य करनेवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। होष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जो विशेषता है वह खामिसव्यक्ते अनुसार जान लेनी चाहिए।

विज्ञेषार्ध--दो आयु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध असंज्ञी पद्मोन्द्रिय और संज्ञी पञ्चन्द्रिय जीव ही करते हैं । उसमें भी सब नहीं करते । तथा सनव्याय के बन्धक पाँचां इन्द्रिय के जीव होते हये भी असंख्यात ही हैं, इसलिए इनके उत्क्रष्ट और अनुस्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत और अपर्यकरण जीव करते हैं, इसलिए इनका उत्ऋष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवींका परिमाण संख्यात कहा है। ओघसे तीर्थकर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सन्यन्दृष्टि मनुष्य करते हैं, इसिंखए इसका उत्क्रष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। इसका अनुस्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं यह स्पष्ट ही है। शेप प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य अपनी-अपनी योग्य सामग्रीके सद्भावमें संज्ञी पक्कन्द्रिय जीव करते हैं, इसिक्ट शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात कहे हैं और इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट ही है। यहाँ इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने-अपने योग्य स्थानमें उपरामश्रीणवाले या अपक्रभेणियाले जीव करते हैं. इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवांका परिमाण संख्यात कहा है। अन्य प्रकृतियोंके समान इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी अपनी-अपनी बन्ध बोग्य सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह परिमाण बन जाता है, इसिन्ए उनमें ओचके समान जाननेकी सचना की है। मात्र औदारिकसिश्रकाययोगी कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपद्भक्तका ऐसे सन्यग्दृष्टि जीव ही वन्ध करते हैं जो या तो देव और नरक पर्यायसे च्युत होकर मनुष्योंमें आकर उत्पन्न होते हैं या जो मनुष्य पर्यायसे च्युत होकर उत्तम भोगभूमिके तियं स्त्रों और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। यतः इन सबका परिमाण संख्यात है, अतः इन मार्गणाओं में देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवाका परिमाण

१ ता॰ प्रती 'ओरा (मि॰) कम॰' इति पाठः।

५७३. शिरवसु र सन्वयगदीणं उक्तः अणुः केः ? असंखेजा। मणुसाउः उक्तः अणुः संखेजा। एवं सन्वशिरय-सन्वयंत्रिदियतिरिक्सा सन्वअपज्रता सन्व-विग्रतिदिय-सन्वयनकायाणं वेउन्वि-वेउन्वियमिस्सकायजोगीणं न।

५७४. मणुसेसु दोआउ०-वेउन्वियक०-आहारद्ग-तिस्य० उक्क० अणु० के० १ सखेजा। सेसाणं उक्क० के० १ संखेजा। अणु० के० १ असंखेजा। मणुसपजत्त-मणुसिणीसु सन्वपगदीणं उक्क० अणु० के० १ संखेजा। एवं मणुसिमंगो सन्वद्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपञ्च०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०।

संख्यात कहा है। मात्र तीर्घोक्ट प्रकृतिका बन्ध करनेवाले भोगभूमिमें जन्म नहीं लेते इतना विशेष जानना चाहिए। यहाँ इन तीनों मार्गणाओं में प्रशस्त विहायोगित आदि कुछ अन्य प्रकृतियोंका उक्कष्ट प्रदेशकम्य भी उक्त जीय ही करते हैं, इसलिए इनका उक्कष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीवोंका परिमाण भो संस्थात कहा है। समजदुरकसंख्यान भी प्रशस्त विहायोगितिके साथ गिनी जानी चाहिए, क्योंकि इसका उक्तष्ट प्रदेशकम्य भी उक्त जीव हो करते हैं। इसी बातको सूचित करनेके लिए शेष प्रकृतियोंके विषयमें विशेषता जान लेनी चाहिए यह कहा है।

पूँच नारिक्योंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुकुष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मात्र मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुकुष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पद्धांन्द्रय तिर्वक्ष, सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रय प्रारम्भक चार और अस्पेक वनस्पति ये सब भौंच स्थावरकायिक, वैक्षियककाययोगी और विक्रियकक्षित्रकाययोगी जीवामे जानना चाहिए।

विशेषार्थ — ये सब राशियाँ असंस्थात है, इसिलए इनमें अपने-अपने स्वामित्यकों देखते हुए मनुष्यायुके सिवा होए सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट और अतुकृष्ट प्रदेशनन्य करनेवाले जीवाँका परिमाण असंस्थात वन जाता है। तथा सब प्रकार के नार्तक्षिणे से आकर यदि मनुष्य होते हैं, होते हैं, इसिलए इनमें मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रदेशक करनेवाले जीवाँका परिमाण संस्थात कहा है। यहाँ सब पक्षित्रिय तियंक्ष आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें नार्रक्यों के समान मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव तो संस्थात ही हैं पर अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव तो संस्थात ही हैं पर अनुकृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव तो सार्ग एया यापि मूलमें इस विशेषताका निर्देश नहीं किया है पर अकृतिबन्ध आदिके देखनेसे यह ब्रात होता है।

५७४. मतुष्योंमें दो आयु, बैकियिकयर्क, आहारकद्विक और तीर्थक्कर्मश्चिता उत्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रेष प्रकृतियाँका उत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुकृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संस्थ्यात हैं। मतुष्य पर्योग्न और मतुष्यित्योंमें सब प्रकृतियाँका उक्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संस्थ्यात हैं। स्वाप्य पर्योग्न और मतुष्यित्योंमें सब प्रकृतियाँका उक्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संस्थात हैं। इसी प्रकार मतुष्यित्यिक्ष समान सर्वार्थ-सिद्धिक देव, आहारक्ष्माययोगी, आहारक्षिप्रकाययोगी, अपगातवेदी, मनःपर्ययक्षाती, सयत, सामायिकसंयत, छेवप्ययापनासंयत, परिहारविद्यद्विस्थत और सुरूमसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्य — मनुष्योंमें हो आयु आदि ग्यारह प्रकृतियोंका बन्च स्टब्यपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसक्रिए इनमें इन प्रकृतियोंका स्कृष्ट और अनुस्कृष्ट प्रदेशवस्य करनेवाले जीव

१ ता॰मती 'जाणिवृच्यो । सामिस्रेण णिरयेस्' इति पाठः ।

५७५, देवेसु सव्वपगदीणं उक्तः अणुः केः ? असंखेजा । णवरि मणुसाउः उक्तः अणुः केः ? संखेजा । एवं सव्वदेवाणं ।

५७६: गृहंदिय-बादर सुद्धुम-पज्जतापज्ञ०-सन्ववणप्यदि-णियोद् ० सन्वपगदीणं उक्क० अणु० के० १ अणंता । णवरि मणुसाउ० उक्क० अणु० केव० १ असंखेजा ।

५७७. पंचिदिं -तस०२ पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-तित्य०-उच्चा०-पंचत० उक्त० के० ? संखेजा। अणु० के० ? असंखेजा। आहार०२ उक्त० अणु० के० ? संखेजा। सेसाणं उक्त० अणु० के० ? असंखेजा। एवं पंचिदियमंगो पंचमण०-पंचवचि०-चक्ख ०-सण्णि ति।

संख्यात कहे हैं। तथा शेष प्रकृतियोंका उस्कृष्ट प्रदेशकच्य भी उच्च्यपयीप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनमें शेष प्रकृतियोंका उस्कृष्ट प्रदेशकच्य करनेवाळे जीवोंका परिमाण संख्यात और अनस्कृष्ट प्रकेशकच्य करनेवाळे जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। शेष कथन सुराम है।

पंजर. देवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवांका परिमाण कितना है ? असंख्यात है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनु-उत्कृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंका परिमाण कितना है ? संख्यात है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ — देवोंमें नारिक्योंके और उनके अवान्तर भेदोंके समान स्पष्टीकरण कर छेना चाहिए ! मात्र सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात देव होते हैं, इसिक्रए उनका विचार मनुष्यिनियोंके समान पर्वमें ही कर आये हैं !

े०६. एकेन्द्रिय तथा उनके बादर और स्व्यं तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब बनस्पतिकायिक और सब निगोद जीवोंसे सब प्रकृतियांका उसकृष्ट बीर अनुरुक्ट प्रदेश-बन्ध करनेवाठ जीव किनने हैं? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि सनुष्यायुका उसकृष्ट और अनुरुक्ष प्रदेशबन्ध करनेवाळे जीव किनने हैं? असंस्थात हैं।

विशेषार्थ — ये सब राशियाँ अनन्त हैं, इसिलए इनमें मनुष्वायुके सिबा सब प्रकृ तियोंके उक्कष्ट और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे जोवाँका परिमाण अनन्त बन जाता है। मात्र कुळ मनुष्य ही असंस्थात होते हैं, इसिलए उक्त मार्गणाओं में मनुष्यायुका उन्कृष्ट और अनुकुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे जीवाँका परिमाण असंस्थात कहा है।

पुष्ण पुष्णिन्द्रयद्विक और त्रसद्विक वीबोंमें पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, साता-वेदनीय, चार संव्यक्त, पुरुषवेद, यशःवीति, तोधकूर, उच्चताोम और पाँच अन्तरायका उच्छ प्रदेशवम्य करीवारो जीव कितने हैं संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशवम्य करनेवारो जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकद्विकता उच्छ और अनुत्कृष्ट प्रदेशवम्य करनेवारो जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। होना प्रकृतियांका उच्छ और अनुत्कृष्ट प्रदेशवम्य करनेवारो जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकृति पञ्चीन्द्रय जीवीके समान पाँच मनोयोगी, पाँच बचनयोगी, चक्षुरश्चेतवारों और संही जीवोंमें जानना चाहिए।

बिहोबार्थ — उक्त मार्गणवाळे जीव असस्यात होते हैं, इसिळए इनमें पाँच झाना-वरणादिका अनुक्तष्ट प्रदेणवन्य करनेवाळे जीवोंका परिमाण और श्रेष प्रकृतियाँका उत्कृष्ट और अनुक्तष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे बीवोंका परिमाण असंस्थात कहा है। पाँच झाना-वरणादिका दश्हृष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे जीवोंका परिमाण और आहारकद्विकका दश्कृष्ट और ५७८. इस्थिवेरेक्क [पंचणाणा०-] चटुरंस०-[सादा०-] चटुसंत्र०-पुस्ति०-जस०-[उच्चा०-पंचंत०] उक्क० के० ? संसेजा। अणु० के० ? असंसेजा। आहार०-तिस्थ० उक्क० अणु० के० ? संसेजा। सेसाणं दो वि पदा असंसेजा। एवं प्रस्ति०। णवरि० तिस्थ ओषं।

५७९. विमंग 'े-संबदासंबद०-सासण०-सम्मामि० सञ्चपगदीणं उक्क० अणु० केव० ? असंखेजा । णवरि संबदासंबदेसु तित्थ० उक्क० अणु० केव० ? संखेजा । सासणे मणुसाउ० उक्क० अणु० केव० ? संखेजा ।

अनुरक्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंका परिमाण जो संख्यात कहा है सो इसका स्पष्टीकरण ओषके समान ज्ञान लेना चाहिए।

५७८. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच क्षानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संजवन, पुरुषवेद यहाश्रीतिं, रूप्यांत्र और पाँच अन्तरायका स्तुष्ट प्रदेशकम्य करनेवाळे श्रीव किनते हैं? असंख्यात हैं। अनुकुष्ट प्रदेशकम्य करनेवाळे जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। आहारकद्विक और तीर्षक्करणकृतिका चत्रकृष्ट और अनुकुष्ट प्रदेशकम्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। श्रेष प्रकृतियाँके दोनों ही पदवाले जीव असंस्थात हैं। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमे तीर्थक्कर प्रकृतिका अन्न ओषके समान है।

विशेषार्थ—पाँच झानावरण आदिका उन्छट प्रदेशवन्य गुणस्थानप्रतिपन्न मनुध्यिनी जीव स्वासिक्क अनुसार यथायोग्य स्थानमं करते हैं, इसिलए इनका उन्छट प्रदेशवन्य करतेवाले कोविष्यांका परिमाण संस्थान कहा है। किन्तु इनका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करोबाले करते हैं, इसिलए इनका उन्छट प्रदेशवन्य करोबाले करते हैं, इसिलए इनका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करोबाले करते हैं, इसिलए इनका अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करतेवालों जीव ही करते हैं इसिलए इनका उन्छट श्रीर अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य करतेवालों परिमाण संस्थान कहा है। तथा इनके सिवा यहाँ जितनी प्रकृतियाँ वंधनी हैं उनका उन्छट और अनुस्कृष्ट प्रदेशवन्य स्वासित्वके अनुसार यथायोग्य सर्वत्र सम्भव है, इसिलए इस अपेक्षासे दोनों प्रवृक्तवन्य स्वासित्वके अनुसार यथायोग्य सर्वत्र सम्भव है, इसिलए इस अपेक्षासे दोनों प्रवृक्तविष्ठ उनमं कीविष्यांके समान लाननेको सुचना को है। मात्र तथिङ्गर प्रकृतिके विषयसे अोधमें जो प्रस्थानों होना प्रवृक्तिको समान लाननेको सुचना को है। मात्र तथिङ्गर प्रकृतिके विषयसे आध्योग महण्या की है वह पुरुषवेदियोंमें वन जाती है, इसिलए पुरुषवेद्दांमें तीर्थङ्गर प्रकृतिका समान लाननेको सुचना की है।

५०९. विमङ्गझानी, संयतासंयत, सासादनसम्बग्धष्ट और सम्बन्धिस्थादृष्टि जीवोंमें स्व प्रकृतियोंका उन्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रदेशनन्य करनेवाले जीव कितने होते हैं? असंस्थात होते हैं। इसने विशेषत है कि संयतासंयतोंमें नीर्यङ्करफृतिका एकष्ट ही आजुक्क प्रदेशन्य करनेवाले जीव कितने होते हैं। संस्थाता होते हैं। तथा साझावनसम्बन्धार्याम् मनुष्यायुका उन्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रदेशनन्य करनेवाले जीव कितने होते हैं।

विशेषार्थ — तिर्थेक्कोंमें तीर्थेक्करमकृतिका बन्ध नहीं होता, इसलिए संयतासंयतीमें तीर्थेक्कर मकृतिके दोनों पद्दोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा

ा ताः बाः प्राचीः 'धनिर तिस्पः बोचं। यपुंससके। पंचनाः बाषाः वच्चाः पंचेतः रः केः 'बारंकोजा। बागुः केः ' ससंकेजा। बागुः केः ' बारंताः । सेसं बीचं। युवं सिन्मिकः ।विसंगः' इति पातः। ५८०. आभिषि-धुद-श्रोधिः पंचणाः चदुदंसणाः न्यदुतंत्रणः चदुरंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यदुतंत्रणः न्यद्वतं । अस्ति । अणुः केवः १ असंसेआः । मणुसाउः न्याद्वारः दोषदाः केवः १ संसेआः । सेताणं उक्षः अणुः केः १ असंसेआः । एवं ओधिदं - सम्मादिः न्वेदगः । शवरि वेदगे चदुसंवः न्यष्टसाउः न्याद्वारः २- वित्यपः अधिमंगो । सेताणं दोषदा असंसेआः । तेउ-पम्माष्ट् वि एसो चेव भंगो ।

सासादनसम्बन्दिष्ट जीव मरकर लब्ध्यपयोगक मतुष्योंमें नहीं उत्पन्न होते, इसिंछए इनमें संख्यात जीव ही मतुष्यायुका बन्ध करते हैं । इस कारण यहाँ मतुष्यायुके दोनों पर्दोका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है ?

५८०. आभिनिशेषिकहानी, अुरह्मानी और अविधिक्षानी बीवोंमें पाँच ह्वानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संव्यवतन, पुरुषवेद, यराक्रीति, तीर्यहुर, इच्यांत्र और संव्यवतन, पुरुषवेद, यराक्रीति, तीर्यहुर, इच्यांत्र और सांच व्यवत्वता व्यवद्वात्र वेदा अनुतक्ष्य प्रदेश कराने केदि स्वयत्व वेदा अनुतक्र प्रदेश क्या करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। मतुष्यायु और आहारकद्विक दे पर्वाक्ष क्या करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इस प्रकृतियाँका क्ष्मकृष्ट भीर अनुतकृष्ट प्रदेश क्या करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इस प्रकृतियाँका क्षमुष्ट और अनुतकृष्ट प्रदेश क्या करनेवाले जीव क्षमित्र हैं। अनुतकृष्ट प्रदेश क्या करनेवाले केदि केदिकसम्याव्यहि जीवों वेदकसम्याव्यक्ति जीवों जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्याव्यक्ति जीवों क्या करनेवाले जीव असंस्थात हैं। पीतकेदमा जीवों के समान है। होष प्रकृतियाँके दो पर्दोका क्या करनेवाले जीव असंस्थात हैं। पीतकेदमा और प्याक्रेत्र मी यही मक्र हैं।

विद्रोबार्ध-आभिनिबोधिक आदि तीनों झानोंमें पाँच झानावरणादिका उत्क्रष्ट प्रदेश-बन्ध करनेवाले जीव संख्यात होतेका जो कारण ओघ प्रहरणणामें बतला आये हैं वही यहां भी जान छेना चाहिए। तथा ये तीनों झानवाछे जीव असंख्यात होते हैं. इसलिए यहां पाँच क्षानावरणादिका अनुरक्षष्ट प्रदेशवन्य करनेवाळे जीवींका परिसाण असंख्यात बतलाया है। यहां मनुष्याय और आहारकदिकके हो पढ़ोंका बन्ध करनेवाले जीव संस्थात होते हैं तथा शेष प्रकृतियों के दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात होते हैं यह स्पष्ट ही है। यहां कही गई अवधिदर्शनी आदि तीन मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा घटित हो जाती है, इसिक्प वनमें आभिनियोधिकज्ञानी आदिके समान जाननेकी सचना की है। मात्र वेदकसम्यक्त्यमें चार संज्वलन, मनुष्यायु, आहारकद्विक और तीर्थक्करफ़क्कतिके दोनों पदोंके बन्ध ह जीबोंका भक्न तो अवधिकानी जीवोंके समान ही है, क्योंकि जिस प्रकार अवधिकानियोंमें चार संस्थालन और तीर्थक्कर प्रकृतिका सरहृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाळे जीव संख्यात और अनुस्कृत् प्रदेशबन्य करनेवाळे जीव असंख्यात तथा मनुष्याय और आहारफद्रिकके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाळे जीव संख्यात बतलाये हैं उसी प्रकार वेटकसम्बद्धत्वमें भी इन प्रकृतियोंकी खपेक्षा उक्त परिमाण प्राप्त होता है। अब रहीं होष प्रकृतियाँ सो धनके दोनों पदोंका बन्ध करनेबाछे वेदकसम्यन्दष्टि जीव असंख्यात ही होते हुँ, इसलिए आभिनिवीधिकहानी आदिसे वेदक-सम्यान्द्रष्टिमें जो विशेषता है उसका सूचन अलगसे किया है। तारपर्य यह है कि वेदक-सम्पन्स्वकी शांति सातर्वे गुणस्थान तक ही होती है, इसलिए इसमें चार संक्वलन और तीर्यहर प्रकृतिका एकक्ष प्रदेशवन्य करनेवार्टीका परिमाण संस्थात तो बन जाता है पर पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, परुषवेद, यशाकीर्ति, एएचगोत्र और

१. सा॰प्रती ' सम्मादिहि० देवग॰-(बेदग॰) जवरि' इति पाठः ।

५८१. सुकाए पदमदंडओ चक्खुदंसणियंगो। दोआउ०-आहार०२ उक्क० अणु० केव० १ संखेआ। सेसाणं उक्क० अणु० केव० १ असंखेआ। एवं खहग०। उनसम० पदमदंडओ आर्मिण०मंगो। णनिर आहार०२-तित्व० उक्क० अणु० केव० १ संखेआ। सेसाणं उक्क० अणु० के० १ असंखेआ।

५८२, जहण्णए पगर्द । दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवर्दसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ'०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खाउ०-सन्वणामपगदीओ दोगोद-पंचत० जह० अज्ञ० पदे०वं० केव०? अणंता।णवरि तिष्ण०आउ०-णिरयगदि-णिरयाशु०

पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालांका परिमाण स्वामित्व बदल जानेसे संख्यात ह होकर असंख्यात हो जाता है। अवधिक्रानी जीवांसे बेदकसम्यग्दष्टि जीवांसे मात्र इतनी ही बिशेषता है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या भी सातवें गुणस्थान तक होती हैं, इसिक्टंप इनसें बेदकसम्यग्दष्टियोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे वेदकसम्यग्द्रष्टियोंके समान जाननेकी सचना की है।

५८१. शुक्छलेड्सामें प्रथम दण्डकका मङ्ग चल्लुदर्शनी जीवोंके समान है। दो आयु और आहारकहिक्का उक्कृष्ट और अनुक्रुष्ट विदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। हो अप प्रकृतियोंका चक्कृष्ट और अनुक्रुष्ट प्रदेशक्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। है प्रिक्त क्षायिकसम्यग्टि जीवोंमें प्रथम दण्डकका मङ्ग आमिनियोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आहारकढिक और तीर्थेहर प्रकृतिका चक्कृष्ट और अनुक्रुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। होय प्रकृतियोंका उत्हृष्ट और अनुक्रुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। होय प्रकृतियोंका उत्हृष्ट और अनुक्रुष्ट प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ — चक्षुदर्शनी जीवों में प्रथम दण्डकका भङ्ग ओपके समान कहा है। उसी प्रकार छुक्तकेदयां भी बन जाता है, अतः यहां प्रथम दण्डकका भङ्ग चक्षुदर्शनी जीवों के समान कानेनेकी स्वना की है। यहां मनुष्यायु और देवायु हन दो आयुओं तथा आहारफ- समान जानेनेकी स्वना की है। यहां मनुष्यायु और देवायु हन दो आयुओं तथा आहारफ- इक्किंग सम्बन्ध स्वयात जीव ही करते हैं, इसिक्ष्य इन्ते होनों पदों का बन्ध करनेवाले जीवों का परिमाण संख्यात कहा है। तथा यहां होष प्रकृतियों के दोनों पदों का बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं यह स्पष्ट ही है। गुक्कलेदयाके समान ख्रायिकतम्बक्यनमें भी व्यवस्था बन जाती है। उपसामस्वयस्य यादक गुणस्थान तक होता है, इसिक्ष्य इसमें प्रथम दण्डकका भङ्ग आर्थानियोधिकज्ञानी जीवोंके समान बन जानेसे उनके समान कहा है। मात्र तार्थकूर प्रकृति इसका प्रयाद है, क्योंकि चरामत्वस्य स्टिमों तीर्थकूर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात है, हसिक्ष इसकी प्रकृत्या आहारिकद्विकके साथ की है। यहां भी केष प्रकृतियों करनक जीव असंस्थात है वह स्पष्ट ही है।

५८२. जयन्यका पकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओय और आदेश। ओयसे पाँच हानावरण, नी दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्याख, सोलह क्याय, नी नोकवाय, तिर्येक्षायु, नामकर्मेकी स्वर मक्रतियाँ, दो गोत्र और पाँच अन्दरायका जयन्य और अञ्चरन्य प्रदेशकन्य इरनेवाळे बांच किनने होते हैं। अनन्त होते हैं। हतनी बिहमेखा है कि दोन आयु, नास्कार्ति और तरकारपातुपूर्वीका जयन्य और अजयन्य श्रदेशबन्य करनेवाळे जीव किनने होते हैं।

१ ता • प्रती 'दोक्तेच [बेद ॰] सिच्छ' इति पाठः ।-

जह० अज० केव० ? असंखेजा। देवग०-वेउन्थिन०वंगो०-देवाणु०-तित्य० जह० केव०? संखेजा। अजह० केव०? असंखेजा। आहारदुगं जह० अजह० केव०? संखेजा। अह० केव०? असंखेजा। आहारदुगं जह० अजह० केव०? संखेजा। एवं ओपमंगो तिनिक्खोधं कायजोगि-जोरासि०-जोरासि०-मि०-कम्मह०-पांत्रतं-कोषादि०४ - मित्-सुद०-असंज० अवस्तुदं०-किण्यले०-पील०-काउ०-भवसि०-अम्मवसि०-निच्छा०-असन्णि०-जाहार०-अणाहारग चि। णवरि ओरासि०-मि०-कम्मह०-अणाहारगेसु देवगदिपंचग० जह० अजह० के०? संखेजा। मदि-सुद०-अम्मवसि०-मिच्छा०-असण्णि चि तिण्णिआउ०-वेउन्थियष्ठकं जह० अजह० के०? असंखेजा।

असंख्यात होते हैं। देवगति, बैकियिकरारीर, बैकियिकरारीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीथंड्कर प्रकृतिका जावन्य प्रदेशवन्य करतेवाळे जीव कितने होते हैं। संख्यात होते हैं। अजपन्य प्रदेशवन्य करनेवाळे जीव कितने होते हैं। अहाराव्हिक्क जावन्य प्रदेशवन्य करनेवाळे जीव कितने होते हैं। अहाराव्हिक्क के प्राचेपात होते हैं। आहाराव्हिक्क से पानंत प्रवास तिथंड्व, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकियात्र तिर्थेड्व, काययोगी, औदारिककाययोगी, अौदारिकियात्र तिर्थेड्व, काययोगी, कामणकाययोगी, नपुंतकवेदी, कोचादि वार कथायवाळे, मत्यात्रानी, अवाहाती, असंस्वत, अच्छारुक्तीनी, कृष्ण-छरपावाळे, तीळ्छेद्रयावाळे, कार्योत्तिष्ठेड्यावाळे, अस्त्र अस्त्य, अस्त्र क्रियात्र हिं अवेद्यात्र अस्त्र अस्तर अस्त्र अस्तर अस्त्र अस्त अस्त्र अस्त्र अस्त्र अस्

विद्रोबार्थ-जिन प्रकृतियोंका 'णवरि' पद दारा अलगसे उल्लेख किया है उन्हें छोडकर शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सहम निगोद अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं। तथा इन ग्रकृतियोंका एकेन्द्रियादि सभी जीव बन्ध करते हैं, इसिंखए इनके जवन्य और अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त कहा है। तीन आयू और नरकगतिद्विकका बन्ध असंब्री आदि जीव करते हैं, इस्र कि इनके दोनों परोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। देवगति आदि पाँच प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशवन्ध प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए मनुष्य योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं। ऐसे मनुष्योंका परिमाण सख्यात है. अतः इन प्रकृतियोंके उक्त पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा इनका अजघन्य प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात है यह स्पष्ट ही है। आहारकद्विकका वन्ध करनेवाले ही संख्यात हैं, इसक्रिए इनके दोनों पढ़ोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यह ओधप्ररूपणा तिर्यक्रगति आदि अन्य निर्देष्ट मार्गणाओंमें भी यथासम्भव बन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सुचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकता बन्ध करनेवाले जीव ही संख्यात होते है, इसिक्किए इनमें एक प्रकृतियोंके होनों पढ़ोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा मत्यज्ञानी आदि पाँच मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें देवगतिचतरुक जयन्य

१, ता॰ आ॰प्रस्वोः 'म्राहारद्वर्ग हो॰ अव॰' इति पाठः ।

५८३. णिरप्यु सन्वाणं बहु० अजह० के० ? असंखेजा। णवरि मणुसाउ० दो-पदा संखेजा। तित्व० बहु० के० ? संखेजा। अजह० के० ? असंखेजा। एवं पदमाए। बिटियाए याव सक्तमा ति उक्तम्तरमंगो।

५८४. पंचिदि॰ तिस्क्ति पंचिदि॰ तिस्क्तिपत्तत्व सन्वपादीणं जह० अजह० के॰ ? असंखेआ। जविर देकादि०४ जह० के॰ ? संखेआ। अजह० के॰ ? असंखेआ। एवं जोजिजीसु वि। जविर वेउन्ति॰ छक्षं० जह० अजह० के॰ ? असंखेआ। पंचिदि॰ तिरि॰ अपज॰ सन्वपमदीणं जह० अजह० के॰ ? असंखेआ। एवं मणुस०-

प्रदेशबन्धका स्वामी ओपके समान नहीं बनता, इसिल्य इन मार्गणाओं में तीन आयु और वैकिषिकपर्ट्कन जयन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवांका परिमाण असस्यात कहा है। यद्यपि तीन आयु और नरकातिद्विकि होनों पर्दोका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंस्थात ओय प्रस्पणामें भी कहा है। उससे यहां कोई विशेषता नहीं आती पर यहां इसे देवगित-चतुकके साथ दुहरा दिया है।

५८२. नारिक्वींमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुके दोनों पदवाळे जीव संस्थात हैं । तथा तीथंकूर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळ जीव कितने हैं ? संस्थात हैं । अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाळे जीव कितने हैं ? असंस्थात हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवींमें जाना चाहिए। दूसरी पृथिवींसे छेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकथोंमें उत्कृष्टके समान भक्क है ।

विशेषार्थ — नरकमें अधिकसे अधिक संस्थात जांच ही मतुष्यायुका बन्ध करते हैं, इसिंखए यहां मतुष्यायुके दोनों पदवालोंका परिमाण सस्थात कहा है। जो सन्यन्दृष्टि मतुष्य मर कर प्रथम नरकमें चरक होते हैं उनमें से कुछके ही प्रथम समयमें तीर्थ हुए प्रकृतिका जन्म करेरावन्य होता है, अतः यहां तीर्थ हुए प्रकृतिक उक्त पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संस्थात कहा है। तथा निरन्तर असंस्थात जीव नरकमें तीर्थ हुए प्रकृतिका बन्ध करनेवाले पाये जाते हैं, इसिंखए यहाँ इसके अजयन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंस्थात कहा है। इसिंख अजयन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंस्थात कहा है। इसिंख अजय सब प्रकृतिवोंके होनों पदवाले जीव वहां असंस्थात होते हैं यह स्पष्ट हो है। सामान्य नारिकवोंके समान प्रथम नरकमें प्रकृतिवांक ना नाती है, इसिंखए प्रथम नरकमें सामान्य नारिकवोंके समान प्रथम नरकमें प्रसुपण की है। उक्त एक्ट प्रकृत्याणके समय सब 'कृतिवांके होनों पदवालोंका परिमाण असंस्थात कीर मतुष्यायुके होनों पदवालोंका परिमाण संस्थात वतला आपे हैं। यहां द्वितीयादि नरकोंमें यह क्यन अविकात बन जाता है, इसिंलए इन नरकोंमें उक्त इक्त समान परिमाण जाननेकी सचना की है।

५८४. पञ्चेन्द्रिय विर्वेश्व और पञ्चेन्द्रिय विर्वेश्व पर्वाप्त बीवॉमें सब प्रकृतियोंका जपन्य और अजयन्य प्रदेशक्य करतेवाळ जीव कितने हैं ? असंस्थात हैं ! इतनी विशेषता है देवगतिचतुष्कका जपन्य प्रदेशक्य करतेवाळे जीव कितने हैं ? संस्थात हैं ! अजवन्य प्रदेशक्य करतेवाळे जीव कितने हैं ? असंस्थात हैं ! इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय विर्वेश्व योनिर्या जीवॉमें भी जानना चाईए ! इतनी विशेषता है कि इतमें वैक्रियक्यदुष्का जयन्य और अजयन्य प्रदेशक्य करतेवाळे जीव कितने हैं ? असंस्थात हैं ! पञ्चेन्द्रिय विर्वेश्व अपवासकोंमें सब प्रकृतियोंका जयन्य और अजवन्य प्रदेशक्य करतेवाळे जीव कितने हैं ?

अपज ०-सञ्चविगलिंदि०-वंचिदि०-तसअपज '० चटकां कायानं बाहरपत्तेगाणं च ।

५८५. मणसेस दोगाउ०-वेडव्वियळ०-आहार०२-तित्थ० सह० अन्तर० वं० केव० ? संखेआ । सेसामं बह० अबहर् ० केव० ? असंखेआ । मनुसपन्त्रच-मणुसिणीस सञ्जपगदीणं जह० अजह० के०? संखेखा^ड। एवं सञ्जह०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे ०-मणपञ्ज ०-संजद-सामाइ ०-छेदो ०-परिहार ०-सहमसंप ० ।

५८६. देवेस णिरयमंगो । एवं अवण०-वाणवें०-जोदिसि० । सोधम्मीसाणं० िएवं चेव । णबरि] मणुस०-मणुसाणु^२०-तित्थ० जह० के० ? संखेजा। अजह० के॰ ? असंखेज्जा । एवं याव सहस्सार ति । आगद याव णवनेवज्जा ति सव्वपगदीणं

असंख्यात है'। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विक्रलेन्द्रिय, प्रव्वेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त पृथिवी आदि चारों स्थावरकायिक और बादर प्रस्थेक बनस्पतिकायिक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ--प्रवेन्द्रिय तिर्यक्क और प्रवेन्द्रिय तिर्यक्क प्रयोगकों में प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ असंयतसम्यग्हरि जीव योग्य सामग्रीके सद्भावमें देवगति चतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। परन्त पद्धन्तिय तियंद्ध योनिनियोंमें वैकियिकषटकका जघन्य प्रदेशबन्ध योग्य सामग्रीके सद्भावमें असंज्ञी जीव करते हैं, इसिक्टए इनमें उक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवांका परिमाण असंख्यात वन जानेसे उसका विशेषरूपसे निर्देश किया है। जेव कथन स्पष्ट ही है।

५८५. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थक्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेबाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यितियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकिमश्रकाय-योगी, अवगतवेदबाले, मनःपर्ययञ्चानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और सुदमसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ- नो आय आदि ग्यारह प्रकृतियोंका मनुष्य अपर्याप्त बन्ध नहीं करते. इसिलिए मनुष्योंमें उनके दोनों पदींका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है।

शेष प्ररूपणा स्पष्ट ही है।

५८६. देवोंमें नारकियोंके समान भक्त है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देबों में जानना चाहिए। तथा सौधर्म और ऐशान कल्पमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र यहां मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्यद्वरप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाछे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इस प्रकार सहस्रार करूप तक जानना चाहिए। आनतकरूपसे लेकर नी प्रवेयकतक है होंगे सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रतेश-

ता०मती 'वंबिडि० तस्त (स)० अपज०' आ०मती 'वंबिडि० तस्तेव अपज० इति पाड: । २. मा॰प्रती 'सेसावां व॰ अजह॰' इति पाठः। ३. ता॰मा॰प्रत्योः 'असंबोधा॰' इति पाठः। ४. आ**्प्रतौ 'सोधम्मीसाखं** मणुसा**छ**े' इति पाठः ।

जह० के० ? संखेखा । अजह० के० ? असंखेज्जा । एवं अणुदिस-अणुत्तर० ।

५८७. सम्बर्ध्हंदिः-सञ्चवणप्पदि-णियोदः ओघमंगो। पॅचिदिः-तस०२ देवगदि०४-तिस्थः बहः केः १ संबेज्जा। अजहः केः १ असंबेज्जा। आहार०२ ओषं। सेसाणं जहः अजहः केवः १ असंबेज्जा।

५८८. पंचमण - तिण्णिवचि - दोगदि वेउच्चि - तेजा - क - वेउ च्चि न्यंगो - दो-आणु - तिस्थ - जह - के - १ संखेच्जा । अजह - के - १ असंखेच्जा । आहारदुर्ग ओषं | ।

क्य करनेवाछे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार नी अनुदिश और चार अनुत्तरके देवोंमें जानना चाहिए।

विश्वेषार्थ — जिस प्रकार नारिकयों में परिमाणकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सामान्य देवों में भी क्सकी प्ररूपणा बन जाती है, इसिक्य उसे नारिकयों के समान जाननेकी सूचना की है। भवनवासी, व्यस्तर और क्योंतियों देवों में में इसी प्रकार वह प्रस्पणा पिटत कर लेनी वाहिए। मा जहां जो प्रकृतियों हैं। उसके अनुसार ही बहां उसका विचार करना चाहिए। मा बात जहां जो प्रकृतियों हैं। उसके अनुसार ही बहां उसका विचार करना चाहिए। सीधर्म और ऐशान करनों भन्य प्रसूपणा तो इसी प्रकृतियों हो अने स्तृत्यारा की को सहस्त्रा के स्वाप्त करनों में मनुष्यारा की स्वाप्त करनों में मनुष्यारा की स्वाप्त करनों में सन्यान होने की स्वाप्त प्रसूपण अना सहस्त्र के स्वाप्त हों में स्वाप्त की स्वाप्त करनों सहस्त्र के स्वाप्त के स्वाप्त की स्वाप्त करने स्वाप्त की स्वाप्त करने स्वाप्त करने स्वाप्त की स्वाप्त की स्वाप्त करने स्वाप्त की स्वाप्त की स्वाप्त स्वाप्त करने स्वाप्त की स्वाप्त की स्वाप्त की स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त करने साम होने हैं। करने साम स्वाप्त की स्वाप्त की स्वाप्त करने साम साम स्वाप्त की स्वाप्त स्वाप्त करने साम सिन्यकी देखकर कर लेना चाहिए।

५८%. सब एकेन्द्रिय, सब बनस्पतिकायिक और निगोद जीवों में ओघके समान भङ्ग है। पञ्चीन्द्रयद्भिक और जारिक्क जीवों में देवर्गानचुक्क और तीर्थेक्क्रुप्रकृतिका जपन्य प्रदेशक्ष्म करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात है। अजयन्य प्रदेशक्ष्म करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात है। आहारकिटिकका भङ्ग भोपके समान है। शोष प्रकृतियोंका जपन्य और अजयन्य प्रदेशक्षम उत्तरेवाले जीव कितने हैं। असंस्थात हैं।

विश्वेषार्थ— एकेन्द्रयों में बंधनेवाठा प्रकृतियों का जपन्य प्रदेशबन्य ओपसे भी एके-निद्रयों में ही होता है, इसल्पि यहां सब एकेन्द्रिय, सब बनस्पतिकायिक और निगोद जीकों में ओपके समान प्रस्तपणा आननेकी सूचना को है। प्रकृतिनुष्टिक और जसिंद्रिक सर्स्वयात होते हैं, प्रतिष्ठ इनमें देवगतिषयुक्त, आहारफर्डिक और तोश्वेद्ध प्रकृतिकों छोड़कर अन्य प्रकृतियों-का जपन्य और अजपन्य प्रदेशवन्य करनेवाठे जीवोंका परिमाण असंख्यात वन जानेसे बह उतना कहा है। तथा दैवगतिषयुक्त आरिका जपन्य और अजयन्य प्रदेशबन्य करनेवाठे जीवोंका स्पष्टीकरण जिस्स प्रकार औपमें किया है उसी प्रकार यहां भी कर ठेना चाहिए, क्योंकि इससे इसमें कोई विशेषना नहीं है।

५८८. पाँच मनोयोगी और तीन बचनयोगी जीवोमें हो गति, वैक्तियक्करोर, तैजस-शरीर, कामणसरीर, बैक्किविकसरीर आङ्गापङ्ग, दो आशुप्ती और तीयङ्करफ्कतिका जयन्य प्रदेशक्त करनेतक जीव कितने हैं? संस्थात हैं। अजचन्य प्रदेशक्य करतेवाळे जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। आहारकहिक्का अङ्ग ओचके समान है। श्रेष कह्वियांका अपन्य सेसाणं जह० अजह '० वं० के० ? असंखेजा । वचि०-असच्चगोसचचि० सच्चपादीणं जोणिणिसंगो । णवरि आहार०२-तित्य० ओघं । वेउच्चि०-वेउच्चि०मि० देवोघमंगो ।

५८९, इत्थि-पुरिसेसु पॅनिंदियमंगो । णवरि इत्थि तित्थयरं बहु० अजह० कै० ? संखेजा । विभंगे सञ्चयगदीणं जह० अजह० केव० ? असंखेजा ।

५९०. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंस०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-

और अजधन्य प्रदेशधन्य करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। वचनयोगी और असस्यमृषावचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चोन्द्रय तिर्येश्व योनिनी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्यक्करण्डितका भङ्ग ओषके समान है। वैकियककाययोगी और वैकियकक्रमथ्योगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ— पाँच मनोयोगी और तीन बचनयोगी जीवोमें संस्थात जीव हो दो गाँत आदिका जयन्य प्रदेशबन्ध करते हैं, इसिल्ण यहां इनका जयन्य प्रदेशबन्ध करते वाले जीवोंका परिमाण संस्थात कहा है। शेष कथन स्रष्ट ही है। प्रक्रान्त्र्य तिर्वश्च योगिनी जीवोंका परिमाण संस्थात कहा है। शेष कथन स्रष्ट ही है। प्रक्रान्त्र्य तिर्वश्च योगिनी जीवोंका परिमाण जयन्य और अजध्यत्र प्रदेशवन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण स्वीत्यत्र करता आये हैं। अपने स्वामितको देखते हुए क्सी प्रकार यहां बचनयोगी और असस्यम्यावचनयोगी जीवोंकों भी यह घटित हो जाता है, इसिल्प इन मार्गणाओंमें स्वाह दिया विश्वच योगिनी जीवोंकों समान सहपणा जाननेत्री सुचना को है। साप्र इन दोगों मार्गणाओं में आहारकहिक और तीर्थहर प्रकृतिका भी बच्च होता है, इत्विष्ट इनले विचयमें अलगसे सुचना को है। विक्रियककाययोगी और वैक्रियकमित्रकाययोगी जीवों में सामान्य देवोंके समान भङ्ग है यह पष्ट हो है। मात्र इनमें मनुष्यगतिहिकका जम्म्य प्रदेशबन्ध प्रथम समर्थे तद्भवस्य हुए सम्मानष्टि हेंव नारकी करते हैं इतना जानकर सनुष्यगतिहिकका अपन्य प्रदेशबन्ध कर्माचाले जीवोंका परिमाण कहना चाहिए।

५८९. कीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चिन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कीवेदी जीवोंमें तीयेंक्टर प्रकृतिका जमन्य और अजमन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? संरूपाद है। विश्वज्ञज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जमन्य और अजमन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ — क्लोबेटी और पुरुषवेदी जीवों में पक्लोन्ट्रयोंकी अस्यता है, इसिछ, इनमें सब प्रकृतियोंका अङ्ग पक्लोन्ट्रयोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। मात्र की-वेदी जीवोंमें तीथेंद्वर प्रकृतिका बन्ध मतुष्यिनी करती हैं और मतुष्यिनी संस्थात होती हैं, इसिलए क्लोबेदियोंमें तीर्थद्वर प्रकृतिका जमन्य और अजमन्य परेशवन्य करनेबाले जीव संस्थात कहे हैं। विभक्कानमें सब प्रकृतियोंके जपन्य प्रदेशवन्य करनेबाले जीव है वसे देखते हुए इसमें सब प्रकृतियोंका जमन्य और अजमन्य प्रदेशवन्य करनेबाले जीवोंका परिमाण असंस्थात बन जाता है यह स्पष्ट ही है।

५९०. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, वारह कषाय, सात नोकषाय, देवायु, उच्चगोत्र

^{1.} मा॰प्रती 'सेसावां भजह॰' इति पाठः ।

देवाउ०-उचा०-पंचंत० जद्द० अजह० के० १ असंखेजा। मणुसाउ०-आहार०२ जद्द० अजह० केव० १ संखेजा'। सेसाणं जह० के० १ संखेजा। अजह० के० १ असंखेजा। एवं ओपिटं०-सम्मा०-खडग०-बेटग०-उवसम०।

५९१. संबदासंबद[ी] सन्वपमदीणं बहु॰ अजह॰ के॰ ? असंसेजा। णविर सन्वाणं णामाणं जहु॰ के॰ ? संसेजा। अजहु॰ के॰ ? असंसेजा। णविर तित्य॰ जहु॰ अजहु॰ के॰ ? संसेजा।

५९२. चक्तु ० पंचिंदियभंगो । तेउ-पम्माणं दोगिद-नेउव्नि ० तेजा०-क०-नेउव्नि-

भीर पाँच भन्तरायका जपन्य और अजयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? असंस्थात हैं। मतुष्यायु और आहारकद्विकका जयन्य और अजयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। रोप प्रकृतियाँका जपन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। अजयन्य प्रदेशकन्य करनेवाले जीव कितने हैं? संस्थात हैं। इसी प्रकार अविध्वितीन, सस्यग्रहिं, आयिकसम्यग्रहिं, वेदकसम्यग्रहिं और उपश्मसम्यग्रहिं जीवाँमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ— चारों गतिके असंयतसम्यग्दृष्टि जोव प्रवस समयमें तद्भवस्य होकर पाँच हानावरणादिक जयन्य प्रदेशन्य करते हैं। यथा—देवायुका दो गतिके जीव योग्य सामप्रीके सद्भावमें करन्य प्रदेशन्य करते हैं। अतः इनका परिमाण असंस्थात है, इसिल्य रहां पाँच हानावरणादिके जचन्य प्रदेशोंका नन्य करतेवाले जीव असंस्थात कहे हैं। तथा इन मार्गणाओंमें असंस्थात जीव होते हैं, इसिल्य एवं ह्या हानावरणादिका अजयन्य प्रदेशनन्य करतेवाले जीव भी असंस्थात कहे हैं। तपुष्टा होते होते होते कर प्रदेशनन्य करतेवाले जीव संस्थात हैं यह रपट ही है। अव रहां शेष प्रकृतियां सो इनका जयन्य प्रदेशनन्य करतेवाले जीव संस्थात होते हैं, अतः यहां इनका जयन्य प्रदेशनन्य करतेवाले जाव संस्थात होते हैं। अव प्रहां इनका जयन्य प्रदेशनन्य करतेवाले जीव संस्थात होते हैं। अव प्रहां इनका जयन्य प्रदेशनन्य करतेवाले जीव संस्थात होते हैं। अविष्ट्रश्ली आदि मार्गणाओंमें अपने-अपने स्थानिस्वके अनुसार यह प्रहरणा इसी प्रकार वन जाती है, इसिल्य करने आधितिवोधिकः हानी आदिके समाज जाननेकी सुचना की है।

५९१. संवतासंबत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जयन्य और श्रज्ञयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव किराने हैं ? असंक्यात दें। इतनी विशेषता है कि नामकर्गको सब प्रकृतियोंका जयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव किराने हैं ? संस्थात हैं। श्रज्ञयन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव किराने हैं ? असंस्थात हैं। उसमें भी इतनी विशेषता है कि तीचेंक्कर प्रकृतिका जयन्य

और अंजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाडे जीव कितने हैं ? संख्यात है ।

विशेषार्थ—यहां पर नामकर्मकी अन्य सब प्रकृतियोंका जचन्य प्रदेशकन्य तीर्थक्षर प्रकृतिके सम्बक्त समय होता है, इसिकण इनका जचन्य प्रदेशकन्य करतेवाळे जीवोंका परिमाण संस्थात कहा है, क्वोंकि संबतासंयत गुणस्थानमें मतुन्य ही तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्य करते हैं और इसी कारणसे तीर्थक्कर प्रकृतिका जचन्य और अजयन्य प्रदेशकन्य करतेवाळे जीवोंका परिमाण भी संस्थात कहा है। जेव कथन स्पष्ट ही है।

५९२ चक्कुरर्शनवाछे जीवॉका मङ्ग पञ्जीन्त्रयों के समान है। पीतछेश्या और पश-छेश्यामें दो गठि, वैक्रियिकशरीर, वैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ.

मा॰प्रवी 'मसंसेमा' इति पाठः । २. ता॰प्रती 'मोधिर्द्० । सम्मा॰ सङ्ग॰ देदग॰ उवसस्र० संज्वासंज्व०' इति पाठः ।

अंगो०-दोत्राणु०-तित्य जह० के० ? संखेज्जा। अजह० के० ? असंखेजा। मणुसाउ०-आहार०२ मणुसि०भंगो। सेसाणं जह० अह० अजह० के० ? असंखेजा। सुकाए पंचणा०-णवदंसणा०-सादासाद०-मिच्छ-सोलसक०-णवणोक०-दोगो०-पंचंत० जह० के० ? संखेजा । अजह० के०। असंखेज्जा। एवं सब्यपादीणं जाणिदण णेदव्वा।

४६३, सासणे मणुसाउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं जह० अजह० असंखेजा। सम्मामि० सन्वरगदीणं जह० अजह० के०। असंखेजा। सण्णीसु देवगदि० ४-तिरथ० जह० के०? संखेजा। अजह० के०? असंखेजा। सेसाणं पींचिंदियभंगो।

एवं परिभागं समत्तं।

हो आनुपूर्वी और नोर्श्वकर प्रकृतिका जपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव किनने हैं ? संख्यात हैं। अजपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव किनने हैं ? संस्थात हैं। मुद्रावायु और आहारकदिकका मंग मुद्राविवाले समान है। रोष प्रकृतियोंका जपन्य और अजपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव किनने हैं ? असंख्यात हैं। जुक्ललेट्यामें पाँच जानावरण, नी दर्भनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, (मध्यात्व, सोलह कथाय, नी नोकथाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका जपन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव किनने हैं ? असंख्यात हैं। प्रकार सकर करनेवाले जीव किनने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका जानकर ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ — पीत और पद्मलेश्यामें अपने स्वामित्व के अनुसार दो गति आदिका जघन्य प्रदेशवन्य संख्यात जीव ही करते हैं, इसलिए इनका जवन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यहाँ वात गुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण आदिका जघन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीवोंक परिमाणक विषयमें जाननी चाहिए। शेष कयन सुगम है।

४९३. सासादनसम्यक्तमें मनुष्यायुका भंग मनुष्यिनियों के समान है। शेष प्रकृतियों का जपन्य और अज्ञपन्य प्रदेशवन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यामध्यात्वमें सब प्रकृतियों का जपन्य और अज्ञपन्य प्रदेशवन्ध करनेवाले जीव कितते हैं ? असंख्यात हैं। सिंह्यों में देवगित-बनुष्क और तीर्थ कर प्रकृतिका जपन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अज्ञपन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अज्ञपन्य प्रदेशवन्य करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अप प्रकृतियों का भंग प्रकृतिन्यों के समान हैं।

विशेषार्थ — सासादन सम्यक्तव आदि उक्त मार्गणाओं में भी अपने अपने स्वामित्वके अनुसार सब प्रकृतियोंका जधन्य और अजधन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

१ आ० प्रती 'असंखेउजा' इति पाठ ।